भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज

भारतीय स्वाधीनता-आंदोलन के समूचे दौर में शहीद भगतसिंह-जैसा क्रांतिकारी चिंतक व्यक्तित्व दूसरा शायद कोई नहीं, हालाँकि क्रांतिकारियों की एक पूरी पीढ़ी उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर गतिशील थी। तेईस वर्ष के होते न होते भारतीय इतिहास के व्यापक यथार्थवादी विश्लेषण और सामाजिक बदलाव की बुनियादी समझ से परिपूर्ण उनकी तूफानी सक्रियता हर व्यक्ति को रोमांचित और प्रेरित करने की क्षमता रखती है।

लेकिन इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण यह है कि भगतसिंह की विचारधारा और उनकी क्रांतिकारिता के ज्वलंत प्रमाण जिन लेखों और दस्तावेज़ों में दर्ज़ हैं, वे आज भी उसी तरह प्रासंगिक हैं, क्योंकि इस आज़ादी के बाद भी भारतीय समाज उस आज़ादी से वंचित है, जिसके लिए उन्होंने और उनके असंख्येय साथियों ने बलिदान दिया था। दूसरे शब्दों में, भगतसिंह के क्रांतिकारी विचार उन्हीं के साथ समाप्त नहीं हो गए, क्योंकि व्यक्ति की तरह किसी विचार को कभी फाँसी नहीं दी जा सकती। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पुस्तक भगतसिंह की इसी विचारधारात्मक भूमिका को अपनी समग्रता में हमारे सामने रखती है।

डॉ. जगमोहनसिंह और डॉ. चमनलाल द्वारा संपादित इस कृति में भगतसिंह के क्रांतिकारी साथी शिव वर्मा की प्रस्तावना और डॉ. जगमोहनसिंह द्वारा लिखित 'शहीद भगतसिंह के विचारों संबंधी भ्रम क्यों?' शीर्षक महत्त्वपूर्ण समापिका भी शामिल है, जो उस क्रांतिचेता को समझने में और भी सहायक है। वस्तुतः हिंदी में पहली बार प्रकाशित यह कृति भगतसिंह के भावनाशील पत्रों, विचारोत्तेजक लेखों, ऐतिहासिक दस्तावेज़ों और वक्तव्यों तथा उनके साथियों और पूर्ववर्ती शहीदों की कलम से निकले महत्त्वपूर्ण विचारों की एक ऐसी प्रस्तुति है जो वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों की बुनियादी पड़ताल करने में हमारी दूर तक मदद करती है।



भगतसिंह और
उनके साथियों के दस्तावेज़

भगतसिंह और
उनके साथियों के दस्तावेज़

सम्पादक
जगमोहन सिंह
चमन लाल



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य : रु. 150.00

पहला संस्करण : 1986
दूसरा संस्करण : 1991
पहली आवृति : 1997

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002

लेज़र टाइपसेटिंग : फोटोटाइप डिवीजन,
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
101 ए, सूर्यकिरण, कस्तूरबा गाँधी मार्ग,
नई दिल्ली-110 001

मुद्रक : शुभम ऑफसेट
शाहदरा, दिल्ली-110 032

BHAGAT SINGH AUR UNKE
SATHIYON KE DASTAVEZ
Edited by Jagmohan Singh & Chaman Lal

ISBN : 81-7178-239-6

दूसरे संस्करण की भूमिका

इस बात की आशा भी थी और इससे हमें संतोष भी हुआ है कि **भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज़** का प्रथम संस्करण (सजिल्द व अजिल्द) प्रकाशन के एक वर्ष के भीतर समाप्त हो गया है। देश की जनता क्रांतिकारियों के विचारों को जानना, उन पर मनन करना व उन पर व्यवहार करना चाहती है, यह इस संस्करण की बिक्री से जाहिर है और यही हमारे श्रम का सबसे अच्छा फल है।

दस्तावेजों के प्रथम संस्करण का प्राय: सभी क्षेत्रों में स्वागत हुआ व शहीदों के जीवित साथियों ने इनका विशेष स्वागत किया, फिर भी एकाध समीक्षक ने दस्तावेज़ों के संकलन-संपादन में कुछ आपत्तियाँ उठाई हैं। यह आपत्तियाँ प्राय: तकनीकी किस्म की हैं। हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि इन दस्तावेज़ों की सबसे बड़ी विशेषता भगतसिंह द्वारा पंजाबी में लिखे व 'किरती' में छपे अनेक लेखों का प्रथम हिंदी प्रकाशन है। जहाँ तक हिंदी में पूर्व प्रकाशित दस्तावेज़ों का सवाल है, वे प्राय: शहीदों के साथियों द्वारा ही पूर्व संकलित रूप में हमारे सामने थे, और हमने उन्हीं को यहाँ प्रस्तुत किया है। इनके अनुवाद आदि को भी हमने दोबारा नहीं जाँचा, क्योंकि हमें शहीदों के उन साथियों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज़ों के प्रमाणीकृत रूप में कोई संदेह नहीं है। हाँ, सावधानियों के बावजूद कुछ तारीखों के छपने में अशुद्धियाँ जरूर रह गई थीं, कोशिश की गई है कि वे अशुद्धियाँ अब न रहें।

पुस्तक के इस दूसरे संस्करण में दस्तावेज़ों के क्रम में—कालक्रम व विषयगत दृष्टि से समायोजन के लिए—किंचित् परिवर्तन किया गया है। बटुकेश्वर दत्त के 1960 में लिखित लेख को लोभवश हमने पहले संस्करण में शामिल कर लिया था। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से यह दस्तावेज़ क्योंकि

1925-31 के बीच के भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के वैचारिक विकास को दर्शाते हैं, इसलिए इनके उसी रूप को बनाए रखने की दृष्टि से श्री दत्त के 'क्रांतिकारी जीवन दर्शन' शीर्षक लेख को हम इस संस्करण में शामिल नहीं कर रहे हैं।

भगतसिंह की जेल में लिखित 404 पृष्ठों की डायरी, जिसमें महत्त्वपूर्ण राजनीतिक व दार्शनिक नोट्स हैं, अब भी सामान्य पाठकों की पहुँच से बाहर है, हालाँकि इसकी फोटोप्रति तीनमूर्ति स्थित जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम व लायब्रेरी में सुरक्षित है। इस पर क्या कहा जा सकता है, पाठकगण स्वयं ही सोचें।

संपादक
23.3.1989

भूमिका

शहीद भगतसिंह ने फाँसी पर चढ़ने से कुछ समय पहले कहा था—''जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है तो किसी भी प्रकार की तब्दीली से वे हिचकिचाते हैं। इस जड़ता और निष्क्रियता को तोड़ने के लिए एक क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की जरूरत होती है, अन्यथा पतन और बर्बादी का वातावरण छा जाता है। लोगों को गुमराह करनेवाली प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ जनता को गलत रास्ते पर ले जाने में सफल हो जाती हैं। इससे इन्सान की प्रगति रुक जाती है और उसमें गतिरोध आ जाता है। इस परिस्थिति को बदलने के लिए यह जरूरी है कि क्रान्ति की स्पिरिट ताज़ा की जाय, ताकि इन्सानियत की रूह में एक हरकत पैदा हो।''

भगतसिंह जब यह कह रहे थे तो वे इतिहास के सिद्धान्तों की गहरी भावना को समझते हुए, अपने समय के बहुत आगे के भविष्य के लिए एक अहम सन्देश दे रहे थे। शायद इसी समझ को उन्होंने अन्तिम भेंट के समय भी प्रकट किया था जब उन्होंने कहा था कि अंग्रेज की जड़ें हिल गयी हैं और 15 साल में वे यहाँ से चले जायेंगे। बाद में काफी अफरा-तफरी होगी और तब लोगों को मेरी याद आयेगी।

देश की और विशेषत: पंजाब की वर्तमान स्थिति को देखते हुए, जब एक ओर प्रतिक्रियावादी शक्तियों की ताकत बढ़ रही है और दूसरी ओर लोगों की समस्याएँ बढ़ रही हैं जिनका हल कोई हो नहीं रहा और चारों ओर फासिस्ट रुझान पनप रहे हैं तो शहीद भगतसिंह के उपरोक्त कथन की सार्थकता स्वत: सिद्ध हो जाती है।

इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि भगतसिंह की शहादत के 54 वर्ष बाद तक भी उनका और उनके साथियों का लेखन और दस्तावेज़ पूरी तरह संकलित नहीं हो पाये, जबकि प्रत्येक वर्ष सरकारी से लेकर विभिन्न पार्टियों के स्तर तक इन देशभक्त शहीदों को औपचारिक श्रद्धांजलियाँ दी जाती रही हैं। अब हिन्दी में पहली बार इस पुस्तक में संकलित दस्तावेज़ों के जरिए यह यत्न किया जा रहा है कि शहीद भगतसिंह के वैज्ञानिक विचारधारात्मक सिद्धान्तों को पहचाना व समझा जाये।

फाँसी से एक दिन पहले भगतसिंह ने कहा था—"मैं क्रान्ति का मूल मन्त्र बन गया हूँ।" इससे उनका क्या आशय था, क्या सन्देश वे हमारे लिए छोड़ रहे थे, इसे आज अधिक शिद्दत व गहराई से समझने की जरूरत है और यह दस्तावेज़ उन्हें समझने की कोशिश का एक जरूरी हिस्सा है। इससे मन में कहीं यह आशा भी निहित है कि पूरा देश और विशेष रूप से पंजाब आज जिस अन्धी गुफा में पहुँच गया प्रतीत होता है, पंजाब के कुछ नवयुवक जिस भटकाव का शिकार हो रहे हैं, शहीद भगतसिंह की विचारधारा और यह दस्तावेज़ सम्भवतः उन्हें कोई दिशा दिखा सकें।

आज सबसे बड़ी जरूरत इस बात की है कि शहीद भगतसिंह के मूल वैचारिक तत्व को जाना व समझा जाय। यह पहचानने की जरूरत है कि वे कौन-से सिद्धान्त थे, कौन-से तरीके थे और कौन-से गुण थे, जिनसे भगतसिंह आत्म-बलिदान करनेवालों में सबसे ऊँचे स्थान के अधिकारी बने? वे कौन-सी परिस्थितियाँ थीं, जिन्होंने भगतसिंह को भारतीय चेतना का ऐसा अंश बनाया कि एक ओर तमिलनाडु में उन पर कविताएँ लिखी जाती हैं तो दूसरी ओर भोजपुर में होली के गीत में 'भगतसिंह की याद से अँचरिया भीग जाती है।' लेकिन ऐतिहासिक दुखान्त यह भी घटता है कि जब वर्तमान की समस्याओं का सामना करने के लिए हम अपने अतीत से उदाहरण खोजते हैं तो अतीत के सारतत्व को नहीं, उसके रूप को अपनाने की कोशिश करते हैं, जैसा कि भगतसिंह व उनके साथियों के साथ सरकारी और कुछ अन्य प्रचार-माध्यमों ने किया है।

भगतसिंह के जीवन और विचारों का यदि गहराई से विश्लेषण किया जाये तो हम पाते हैं कि उन्होंने 'देश के इतिहास, परिस्थितियों और आदर्शों के गम्भीर, परिश्रमी व ईमानदार विद्यार्थी' के रूप में इतिहास के वैज्ञानिक सिद्धान्तों की समझ हमारे साथ सांझी की है। एक गहरी ऐतिहासिक-भौतिकवादी दृष्टि उनमें हर जगह काम करती नजर आती है। सामाजिक विकास के अटल सिद्धान्तों को उन्होंने न सिर्फ पहचाना, वरन लागू भी किया।

भगतसिंह के साथी व अन्य विद्वान लोग जब इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि भगतसिंह भविष्यवाणी कर सकते थे—बता सकते थे कि निकट भविष्य में "कांग्रेस और ब्रिटिश साम्राज्य में समझौता होगा," जब वह पूरे विश्वास से यह कह सकते थे कि मेहनतकश जनता को आनेवाली आजादी से कोई राहत नहीं मिलेगी तो इस सबके पीछे वह कौन-सी समझ थी, जिससे वे ऐसा कह सके। भगतसिंह की विचार-प्रक्रिया को जानने के लिए यह बहुत अहम सवाल है। इन दस्तावेज़ों के अध्ययन-मनन से इस सवाल का उत्तर भी स्पष्ट हो जाता है।

शहीद भगतसिंह न सिर्फ वीरता, साहस, देशभक्ति, दृढ़ता और आत्म-बलिदान के

गुणों के सर्वोत्तम उदाहरण हैं, जैसाकि आज तक इस देश के लोगों को बताया-समझाया गया है, वरन् वे अपने लक्ष्य के प्रति स्पष्टता, वैज्ञानिक-ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण की क्षमतावाले अद्भुत बौद्धिक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के प्रतिरूप भी थे, जिसे जाने या अनजाने आज तक लोगों से छिपाया गया है। इन दस्तावेज़ों के संकलन का एक उद्देश्य भगतसिंह के व्यक्तित्व के अब तक अल्प परिचित इस पक्ष को सामने लाना भी है, ताकि हमारे देश के नवयुवक भगतसिंह के विचारों की रोशनी में अपने आन्दोलन को दिशा दे सकें।

1925 के काकोरी एक्शन के बाद हिन्दुस्तान रिपब्लिकन पार्टी के अधिकांश नेता पकड़े गये थे। उस समय क्रान्तिकारी दल की जिम्मेदारी भगतसिंह और उनके साथियों के कन्धों पर आयी। उस समय कई अहम सवाल उनके सामने थे, जैसे अपने नेताओं के महान बलिदानों और जनता के प्रति अटूट लगन के बावजूद वे जनता के निकट क्यों न जा सके, भारत के भविष्य की स्पष्ट रूपरेखा क्या हो, भारतीय जनता का अन्तिम लक्ष्य क्या है, इत्यादि।

भगतसिंह के अनुसार, उन्होंने इन सवालों का उत्तर पाने के लिए 'अध्ययन' को सिद्धान्त बनाया। भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलनों के अनुभवों का गहराई से विश्लेषण किया और विश्व-भर के क्रान्तिकारी आन्दोलनों के अनुभवों और विचारों को भी विश्लेषित कर समझा। लोगों और समय की जरूरतों को समझने के प्रयत्न किये। इसी रास्ते पर चलते हुए भगतसिंह 'रोमाण्टिक विचारवादी क्रान्तिकारी' से 'वैज्ञानिक क्रान्तिकारी' में परिवर्तित हुए।

भगतसिंह के क्रान्तिकारी चिन्तन में यह बात शामिल थी कि 'सेवा करना, कष्ट सहना और कुर्बानी देना' के सिद्धान्त पर चलते हुए अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर बढ़ना चाहिए। किसी भी गतिविधि की कसौटी यह है कि वह लक्ष्य की ओर आगे ले जाती है या नहीं, लोगों में साहसिक भावना पैदा करती है या नहीं और पार्टी को मजबूत बनाती है या नहीं।

भगतसिंह ने ठोस विचारों, यानी वैज्ञानिक आधार पर ऐतिहासिक-भौतिकवादी साँचे में ढले चिन्तन और क्रान्तिकारी चरित्र की दृढ़ता पर बल दिया। अपने साथियों के साथ उन्होंने इसकी मिसाल भी कायम की।

भारतीय समाज की ऐतिहासिक जरूरत को समझते हुए, उसके भविष्यत आदर्श के बारे में उन्होंने बार-बार स्पष्ट कहा, "क्रान्ति, जो जनता के लिए हो और जिसे जनता ही पूरी करे।" तथा "क्रान्ति का इस सदी में एक ही मतलब हो सकता है—जनता के लिए जनता द्वारा राजनीतिक सत्ता पर कब्जा।" अपने क्रान्तिकारी कार्यक्रम के मसौदे में

उन्होंने लिखा, "साम्राज्यवादियों को गद्दी से उतारने का भारत के पास एकमात्र हथियार श्रमिक क्रान्ति है। कोई और चीज़ इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकती।"

अपने दाँव-पेचों सम्बन्धी उनकी बहस द्वन्द्वात्मक पद्धति की थी। हिंसा-अहिंसा के प्रश्न पर उन्होंने कहा, "किसी विशेष हालत में हिंसा जायज हो सकती है, लेकिन जन-आन्दोलनों का मुख्य हथियार अहिंसा होगी।" अपने आन्दोलन के दाँव-पेंचों पर उन्होंने भावुकतापूर्ण उलझन से ऊपर उठकर वस्तुस्थिति के अनुसार विचार किया। लेकिन यदि हम पिछले पचास सालों को देखें तो पायेंगे कि भगतसिंह को लोगों की भावनाओं का हिस्सा तो बनाया गया, पर उनके विचार लोगों की सोच का हिस्सा नहीं बने। यही कारण है कि भगतसिंह के विचारों सम्बन्धी कुछ गलतफहमियाँ भी फैलीं।

ऐसी स्थिति का अनुमान करते हुए ही उन्होंने यह कहा था, "मैं अपनी पूरी ताकत से यह कहना चाहूँगा कि क्रान्तिकारी जीवन के पहले कुछ दिनों के सिवाय, न तो मैं आतंकवादी हूँ और न ही था। मुझे पूरा विश्वास है कि इन तरीकों से हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते।" एक और जगह उन्होंने कहा था, "आतंकवाद हमारे भीतर क्रान्तिकारी चिन्तन की पकड़ के अभाव की अभिव्यक्ति है।" 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' लेख के जरिए उन्होंने अपने सम्बन्ध में धार्मिक व कुछ साम्प्रदायिक लोगों द्वारा पैदा की गयी गलतफहमियों को फैलने से रोका, जिसकी चर्चा इस पुस्तक के अन्त में की गयी है।

भारतीय संस्कृति और परिस्थितियों की विशिष्टता को पहचानने में भी भगतसिंह ने क्रान्तिकारी पहल-कदमी का परिचय दिया है। साम्प्रदायिकता और धार्मिक जुनून के सवाल को उन्होंने और उनके साथियो ने 1926 में इस तरह पहचाना, "साम्प्रदायिक वहम और पूर्वाग्रह हमारी प्रगति के रास्ते में बड़ी रुकावट हैं। हमें इन्हें दूर फेंक देना चाहिए।" और यह पहचानते हुए कि "हमारा वास्तविक संघर्ष हमारी अपनी कमजोरियों के खिलाफ है, जिनका लाभ दुश्मन भी उठाता है और हम में से कुछ स्वार्थी लोग भी"; उन्होंने जन-जागृति और मजबूत संगठन पर बल दिया।

उन्होंने बड़ी स्पष्टता से सामाजिक प्रगति के रास्ते में अंदरूनी व बाहरी, दोनों तरह की समस्याओं को आँका और दोनों को चुनौती देते हुए कहा, "दुतरफा युद्ध हमें चुनौती दे रहा है।"

जिन नवयुवकों को देश और जनता के भविष्य के लिए काम करना है, उन्हें तैयार करने के लिए, अनेक गुणों व सिद्धान्तों से परिचित करवाने के लिए, भगतसिंह ने बहुत काम किया। उनके सभी लेखों में यह जानकारी अंकित है।

भगतसिंह ने जीवन के कुल 23 वर्ष ही पूरे किये। इनमें दो वर्ष जेल के भीतर के और उससे पहले दो वर्ष बाहर के—उनके जीवन में कर्मशीलता के दिन थे। लेकिन इन चार

सालों में भगतसिंह ने भारतीय जनता की क्रान्ति की सम्भावना को अभिव्यक्त करते हुए, बिजली की चाल से न सिर्फ दशकों का, वरन एक शती का काम किया। जेल को उन्होंने लायब्रेरी व प्रयोगशाला में बदल दिया। अपने जीवन की आखिरी साँस तक वे भारतीय क्रान्ति की समस्याओं को सुलझाने व उसके लिए क्रान्तिकारी पद-चिह्न बनाने में लगे रहे। क्योंकि वे जानते थे कि सम्भावना व वास्तविकता के द्वन्द्व में वास्तविकता मुख्य होती है और सम्भावना अगले पड़ाव तक टल जाती है, इसलिए जो भी समस्या विचाराधीन आयी उस पर उन्होंने विचार प्रकट कर दिये और यही वजह है कि 'हजार कोशिश उन्होंने की, मिटता नहीं निशान उनका।' अंग्रेजों के बाद अनेक प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने भगतसिंह को मिटाने की कोशिश की, लेकिन हर बार वे अधिक निखरकर सामने आये। जब भी उनके सम्बन्ध में कुछ भ्रम पैदा करने की कोशिशें हुई, उनके विचारों के सामने, उनके तर्कों के सामने दम्भ व भ्रम टिक नहीं पाये। न सिर्फ साम्राज्य के ही विरुद्ध; वरन सामाजिक पिछड़ेपन और विचारों के क्षेत्र में अन्धविश्वास के विरुद्ध भी भगतसिंह उतनी ही निर्भीकता से लड़े।

भगतसिंह गाँधीवादी विचारों को शक्तिहीन मान उसका विरोध करते थे, लेकिन गाँधीवाद की ऐतिहासिक भूमिका को उन्होंने एक वैज्ञानिक यथार्थवादी की तरह आँका। वे कहते हैं, "गाँधी एक दयालु मानवतावादी व्यक्ति हैं। लेकिन ऐसी दयालुता से सामाजिक तब्दीली नहीं आती, उसके लिए वैज्ञानिक और गतिशील सामाजिक शक्ति की जरूरत है।" अपने 2 फरवरी, 1931 के लम्बे लेख में उन्होंने फिर कहा, "हमें कांग्रेस-आन्दोलन की सम्भावनाओं, पराजयों व उपलब्धियों सम्बन्धी किसी किस्म का भ्रम नहीं होना चाहिए। आज के इस आन्दोलन को गाँधीवाद कहना ठीक है··· इसका तरीका अनूठा है, लेकिन इसके विचार बेचारे लोगों के किसी काम के नहीं है। गाँधीवाद साबरमती के सन्त को कोई स्थायी शिष्य नहीं दे पायेगा।" लेकिन गाँधी और गाँधीवाद को पूरी तरह रद्द न करते हुए वे जन-आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में इसका यथार्थवादी मूल्यांकन करते हैं, "इस तरह गाँधीवाद अपने भाग्यवादी मत के बावजूद क्रान्तिकारी विचारों के करीब पहुँचने की कोशिश करता है, क्योंकि यह जन-कार्यवाही पर निर्भर करता है, चाहे यह कार्यवाही जनता के लिए नहीं है।"

इस प्रकार भगतसिंह जहाँ हमें निस्वार्थ दृढ़ इरादे और बहादुरी के साथ सच्चाई के लिए खड़े होने की प्रेरणा देते हैं, वहीं वे हमें विचारधारात्मक परिपक्वता व तर्कशील वैज्ञानिक दृष्टि से अपने इतिहास की, आसपास की और भविष्य की समस्याओं के विश्लेषण का तरीका भी सिखाते हैं। अध्ययन के सम्बन्ध में उनकी शिक्षा है, "इसे आँख मूँदकर न पढ़ें। यह न समझें कि जो इसमें लिखा है, वह सही है। इसे पढ़ो, इसकी

आलोचना करो और इसकी मदद से अपने विचार बनाने की कोशिश करो।"

भगतसिंह महज एक व्यक्ति नहीं थे, वे एक आन्दोलन से पैदा हुए और फिर आन्दोलन का सर्वोच्च व सर्वोत्तम प्रतीक बन गये। भगतसिंह की विचारधारा सिर्फ एक व्यक्ति की ही नहीं, एक आन्दोलन की, बहुत-से साथियों की सांझी सोच की विचारधारा बनी। इसलिए यहाँ सिर्फ भगतसिंह ही नहीं, उनके साथियों की रचनाओं को भी संकलित किया गया है, क्योंकि इन सबसे मिलकर ही भगतसिंह-विचारधारा बनती है।

भगतसिंह और उनके साथियों की यह रचनाएँ किसी भी तरह सम्पूर्ण नहीं हैं। अभी भी भगतसिंह और उनके साथियों की अनेक रचनाएँ अप्रकाशित हैं या प्रकाशन के बाद गुम हैं। यहाँ संकलित रचनाओं के क्रम, संयोजन या अनुवाद में भी कुछ खामियाँ हो सकती हैं, लेकिन हमें संतोष इस बात का है कि कम-से-कम यह सब रचनाएँ एक जगह संकलित हो सकीं। इससे पहले केवल पंजाबी में ही इतनी रचनाओं का प्रकाशन हो पाया है। इनमें क्रैचिटों [ ] का प्रयोग सम्पादकों की ओर से हुआ है। इन रचनाओं के संकलन में हमें अनेक व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त हुआ है। हम इन सबके आभारी हैं और भविष्य में भी यह आशा रखते हैं कि जहाँ कहीं भी शहीद भगतसिंह या उनके किसी साथी की कोई प्रकाशित या अप्रकाशित रचना ध्यान में आयेगी तो वह 'शहीद भगत सिंह शोध समिति' की जानकारी में लायी जायेगी।

शहीद भगतसिंह के साथी व क्रान्तिकारी लेखक शिव वर्मा के हम आभारी हैं कि उन्होंने 'क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास' लेख को पुस्तक में प्रस्तावना स्वरूप देने की सहर्ष अनुमति दी, जिसे यहाँ अविकल प्रकाशित किया गया है।

श्री कर्मेन्दु शिशिर के हम आभारी हैं कि उन्होंने 'मतवाला' में भगतसिंह के छपे दो लेख हमें भेजे। श्री गुरुचरन ने इस पुस्तक के सम्पादन में दिल से सहयोग दिया है, उनके भी हम आभारी हैं। राजकमल से श्री मोहन गुप्त ने जिस श्रद्धा, तत्परता, धैर्य और दिलचस्पी से शहीद साथियों की रचनाओं के प्रकाशन का बीड़ा उठाया, उसके लिए भी उनके हार्दिक आभारी हैं। पाण्डुलिपि के संशोधन में श्री रामकुमार कृषक और उमा गुरबख्शसिंह ने जिस हार्दिक लगन से काम किया, उसके लिए भी हम दिल से आभारी हैं।

जगमोहनसिंह
चमन लाल

शहीद भगतसिंह शोध समिति
834, कृष्ण नगर, लुधियाना (पंजाब)

क्रम :

प्रस्तावना

क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास
(चापेकर बंधुओं से भगतसिंह तक)

स्वाधीनता संग्राम में क्रान्तिकारियों के प्रवेश की घोषणा करनेवाला पहला धमाका 1897 में पूना में चापेकर बन्धुओं ने किया था। पूना शहर में उन दिनों प्लेग जोरों पर था। रैंड नाम के एक अंग्रेज को वहाँ प्लेग कमिश्नर बनाकर भेजा गया। वह बड़ा ही ज़ालिम और तानाशाह किस्म का आदमी था। उसने प्लेग से प्रभावित मकानों को बिना कोई अपवाद ख़ाली कराए जाने का हुक्म जारी कर दिया। जहाँ तक उस हुक्म का सवाल है उसमें कोई गलत बात नहीं थी। लेकिन जिस तरह रैंड ने इस हुक्म पर अमल करवाया, उससे वह अलोकप्रिय हो गया। लोगों को उनके घरों से निकाला गया और उन्हें कपड़े, बर्तन आदि तक ले जाने का समय नहीं दिया गया।

4 मई, 1897 को लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र *केसरी* में एक लेख लिखकर न सिर्फ नीचे के अफसरों पर बल्कि खुद सरकार पर इल्जाम लगाया कि वह जान-बूझकर जनता का उत्पीड़न कर रही है। उन्होंने रैंड को निरंकुश बतलाया और सरकार पर "दमन का सहारा लेने" का आरोप लगाया।

फिर आया शिवाजी समारोह। इस अवसर पर, 12 जून, 1897 को एक सार्वजनिक सभा में अध्यक्ष पद से बोलते हुए तिलक ने कहा : "क्या शिवाजी ने अफजल खान को मारकर कोई पाप किया था ? इस प्रश्न का उत्तर महाभारत में मिल सकता है। गीता में श्रीमन कृष्ण ने अपने गुरुओं और बांधवों तक को मारने का उपदेश दिया है। उनके अनुसार अगर कोई व्यक्ति निष्काम भाव से कर्म करता है तो वह किसी भी तरह पाप का भागी नहीं बनता है। श्री शिवाजी ने अपने उदर-पूर्ति के लिए कुछ नहीं किया था। बहुत ही नेक इरादे के साथ, दूसरों की भलाई के लिए उन्होंने अफजल खान का वध

किया । अगर चोर हमारे घर में घुस आएँ और हमारे अन्दर उनको बाहर निकालने की ताकत न हो तो हमे बेहिचक दरवाजा बन्द करके उनको जिन्दा जला देना चाहिए। ईश्वर ने हिन्दुस्तान के राज्य का पट्टा ताम्र-पत्र पर लिखकर विदेशियों को तो नहीं दिया है । शिवाजी महाराज ने उनको अपनी जन्मभूमि से बाहर खदेडने की कोशिश की। ऐसा करके उन्होंने दूसरो की वस्तु हडपने का पाप नहीं किया । कुएँ के मेढक की तरह अपनी दृष्टि को सकुचित मत करो, ताजीराते-हिन्द की कैद से बाहर निकलो, श्रीमद्-भगवद्गीता के अत्यन्त उच्च वातावरण मे पहुंचो और महान व्यक्तियो के कार्यों पर विचार करो।''[1]

और 22 जून को चापेकर भाइयो ने रैंड व ऐवर्स्ट को मार दिया । इस तरह, ऊपरी तौर पर देखने से यही लगता है कि चापेकर भाइयों के कार्य के तात्कालिक प्रेरक तत्व रैंड की निरकुशता और तिलक का भाषण थे । लेकिन यह सिर्फ अर्धसत्य है । दरअसल, चापेकर बन्धुओं के विचार महामारी फैलने या रैंड के पूना आने से बहुत पहले से ही एक शक्ल अख्तियार करने लगे थे ।

1894 मे ही चापेकर भाइयों ने पूना मे शारीरिक और सैनिक प्रशिक्षण के लिए 'हिन्दू धर्म अवरोध निवारण समिति' कायम कर रखी थी जिसे हिन्दू सरंक्षिणी समिति भी कहा जाता था । यह समिति हर साल नियमपूर्वक शिवाजी व गणपति समारोह आयोजित करती थी । इन समारोहों में चापेकर भाइयो द्वारा पढ़े जानेवाले श्लोको से उनकी भावना का पता चलता है। जनता से तलवार उठाने का आग्रह करते हुए 'शिवाजी श्लोक' कहता है :

''भांड की तरह शिवाजी की कहानी दुहराने मात्र से स्वाधीनता प्राप्त नहीं की जा सकती । आवश्यकता इसकी है कि शिवाजी और बाजी की तरह तेजी के साथ काम किये जाएँ । आज हर भले आदमी को तलवार और ढाल पकडनी चाहिए—यह जानते हुए कि हमें राष्ट्रीय संग्राम के युद्धक्षेत्र में जीवन का जोखिम उठाना होगा । हम धरती पर उन दुश्मनों का खून बहा देंगे जो हमारे धर्म का विनाश कर रहे हैं । हम तो मारकर मर जाएँगे, लेकिन तुम औरतो की तरह सिर्फ कहानियाँ सुनाते रहोगे ।''[2]

'गणपति श्लोक' तो 'शिवाजी श्लोक' से भी ज्यादा उग्र था । गौ और धर्म की रक्षा के लिए उठ खड़े होने का आवाहन करते हुए इसमें हिन्दुओं से कहा गया है : ''अफसोस, तुम गुलामी की जिन्दगी पर शर्मिन्दा नहीं हो; जाओ, आत्महत्या कर लो । उफ़ ! यह कमीने कसाइयों की तरह गाय और बछड़ों को मार रहे हैं; उन्हे [गौ को] इस सकट से मुक्त कराओ; मरो लेकिन अंग्रेजों को मारकर; नपुंसक होकर धरती पर बोझ न बनो। इस देश को हिन्दुस्तान कहा जाता है; अंग्रेज भला किस तरह यहाँ राज कर रहे हैं ?''[3]

इस तरह हम देखते हैं कि चापेकर बन्धु और उनके सहयोगी मूलत: तीव्र धार्मिक भावनाओं से उत्प्रेरित थे और उनका दृष्टिकोण घोर कट्टरपंथी था । संभवत: इसी कारण से वे ब्रिटिश विरोधी ही नहीं, मुस्लिम विरोधी भी थे ।

चापेकर बन्धुओं की देशभक्ति हिन्दुत्व पर आधारित थी । वे हिन्दू धर्म और गौ की रक्षा के लिए अंग्रेजों को बाहर भगाना चाहते थे । रैंड की हत्या भी एक ऐसे व्यक्ति के प्रति उनकी गहरी नफरत का नतीजा थी जो अपनी दमन और निरंकुशता की कार्रवाइयों के कारण पूरी जनता की घृणा का पात्र बन गया था।

जहाँ तक उनको प्रेरित करनेवाले दूसरे कारणों का सवाल है, इसका कोई सुबूत नहीं मिलता कि वे 1857 के भारतीय स्वाधीनता संग्राम से या फ्रांसीसी व इतालवी क्रांतियों से प्रभावित रहे हों।

इन तमाम सीमाओं के बावजूद मुकदमे के दौरान या बाद मे, चापेकर भाइयों ने जिस वीरता, साहस और आत्म-बलिदान की भावना का परिचय दिया उसके महत्व को किसी भी तरह कम करके आँका नहीं जा सकता । सर ऊँचा किए हुए तीनों भाइयों ने फाँसी के फंदे को चूमा ।

गुलामी और आजादी की समस्याओं के प्रति यह धार्मिक दृष्टिकोण चापेकर भाइयों तक ही सीमित नही था । सावरकर बन्धु भी धार्मिक रहे बंगाल के क्रान्तिकारियों ने भी धर्म के सहारे लोगों को उभाड़ा था । इस वाक्य से शायद यह ग़लतफहमी हो कि वे धर्म को न मानते थे केवल उभाड़ने का काम उससे लेते थे, इसलिए यह कह देना जरूरी है कि वे स्वय धर्म के कट्टर माननेवाले थे।"[4]

1902 में कलकत्ता में कायम अनुशीलन समिति की कार्य-प्रणाली का वर्णन करते हुए तारिणीशंकर चक्रवर्ती लिखते हैं : "क्रान्तिकारी कार्य के लिए जो इस समिति में आते थे, उनको दो वर्गों में बाँटा जाता था । धर्म में जिनकी आस्था थी उनको एक वर्ग और धर्म विशेष में, जिन्हें आस्था नहीं थी परन्तु क्रान्तिकारी कार्यों में विशेष निष्ठा थी, ऐसे लड़को को दूसरे वर्ग में रखा जाता था।" "धर्म के प्रति जो श्रद्धावान थे वे इस बगीचे (मानिक तल्ला बागान—सं.) में रहते थे ये ही लड़के प्रथम कोटि के क्रान्तिकारी समझे जाते थे।"[5]

उस समय बंगाल के क्रान्तिकारियों का बहुमत बंकिमचन्द्र चटर्जी और स्वामी विवेकानन्द से बेहद प्रभावित था। "अनुशीलन समिति के सदस्यों को हिन्दू ग्रन्थों, खासकर गीता को बहुत ध्यान से पढ़ना पड़ता था।"[6]

"बंकिमचन्द्र चटर्जी और स्वामी विवेकानन्द की बौद्धिक परम्परा में पले-बढ़े बगाल के बीसवीं सदी के पहले दशक के ये क्रान्तिकारी धार्मिक उपादानों और कर्मकांडों से तथा प्राचीन व तात्कालिक हिन्दुत्व के पौराणिक उपाख्यानों, प्रतीकों, गीतों और नारों से प्रेरणा ग्रहण करते थे।"[7]

इस तरह, क्रान्तिकारी आंदोलन के पहले चरण (1897-1913) के क्रान्तिकारी आम तौर पर हिन्दू धर्म के प्रति आस्थावान थे और उससे प्रेरणा ग्रहण करते थे। यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी । इसके ऐतिहासिक कारण थे । पिछली सदी के आठवें दशक में तरुण भारत के दिलों को एक नयी भावना मथ रही थी । शिक्षित युवक राजनीतिक

दृष्टिकोण से सोचने लगे थे। एक नयी किस्म का राष्ट्रवाद जन्म ले रहा था। यह नया राष्ट्रवाद पुराने राजनीतिवाद के मुकाबले ज्यादा संजीदा, ज्यादा खुले दिमागवाला था। यह इस विचार से लैस और प्रेरित था कि पूरे राष्ट्रीय जीवन का पुनरुत्थान आवश्यक है। भारतीय मानस किस सीमा तक आंदोलित हो उठा था, इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि सभी बेहतरीन सोच के लोगों की नयी भावनाएँ और विचार धर्म से अनुप्राणित थे। पुराने देवताओं की जगह घृणा और रक्त के नये देवताओं की पूजा होने लगी थी।[8]

इस सीमा तक, धर्म की एक सकारात्मक भूमिका अवश्य थी। लेकिन इसका एक नकारात्मक पहलू भी था। इस दौर में बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, ब्रह्म बांधव उपाध्याय और अरविंद घोष जैसे सभी जुझारू राष्ट्रीय नेता राजनीति को धर्म के रंग में रँग रहे थे। इस तरह अचेतन रूप में ही सही, उन्होंने सांप्रदायिक राजनीति के विषवृक्ष लगाए। गाँधी और उनके अनुयायियों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया और अंत तक उससे चिपके रहे, जबकि क्रान्तिकारियों ने 1914 में ही, जब उनका आन्दोलन दूसरे चरण में प्रवेश कर रहा था, इसे छोड़कर धर्म निरपेक्षता को अपना लिया था। धर्म और राजनीति का यह तालमेल तब से आज तक लगातार हमारे सार्वजनिक जीवन को तबाह करता रहा है, और अब तो इसके कारण हमारी राष्ट्रीय एकता का ढाँचा ही चरमराता नजर आ रहा है।

हालाँकि महाराष्ट्र के चापेकर बन्धु और बंगाल के पहले दशक के क्रान्तिकारी, दोनों प्राचीन भारतीय संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण करते थे लेकिन दोनों के बीच एक मार्के का अन्तर भी है।

30 अप्रैल, 1908 को किंग्सफोर्ड की बग्घी पर एक बम आकर गिरा जिससे दो महिलाओं की मृत्यु हो गयी। इस घटना पर टिप्पणी करते हुए 22 जून के *केसरी* में लोकमान्य तिलक ने लिखा : "1897 की हत्या और बंगाल के बम कांड के बीच काफी अन्तर है। जहाँ तक दिलेरी और कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने का सवाल है चापेकर भाइयों का दर्जा बंगाल की बम पार्टी के सदस्यों से ऊँचा है। लेकिन अगर साध्य और साधन के नजरिये से देखें तो बंगालियों की ज्यादा तारीफ करनी होगी ...वर्ष 1897 में पूना निवासी प्लेग के समय के दमन के शिकार थे, और उस दमन से उत्पन्न उत्तेजना का कोई शुद्ध राजनीतिक चरित्र नहीं था। यह शासन प्रणाली ही खराब है और जब तक अधिकारियों को छाँट-छाँटकर व्यक्तिगत रूप से आतंकित नहीं किया जाता, तब तक वे व्यवस्था को बदलने पर तैयार नहीं होंगे—ऐसा कोई महत्वपूर्ण प्रश्न चापेकर भाइयों के सामने नहीं था। उनका कर्म प्लेग के बाद जारी दमन के, यानी एक विशेष कार्य के खिलाफ था। निश्चय ही बंगाल की बम पार्टी की दृष्टि एक ज्यादा व्यापक पटल पर थी जिसे बंगाल के विभाजन ने उभारा था।"[9]

इतना ही नहीं। बंगाल के क्रान्तिकारी धर्म को बहुत ज्यादा महत्व देते थे, इस तथ्य

के बावजूद आन्दोलन के अन्तिम लक्ष्य की दृष्टि से कहें तो, 1902 में ही उन्होंने एक बहुत महत्वपूर्ण घोषणा की थी। इसी वर्ष बंगाल के क्रान्तिकारियों ने अपने को 'अनुशीलन समिति नाम' की एक पार्टी के रूप में संगठित किया था । समिति की स्थापना के समय जारी घोषणापत्र में कहा गया था : '' 'अनुशीलन की कल्पना के समाज में अनपढ़ गरीब लोग नहीं होगे, कायर, दुष्ट लोग नहीं होंगे और अस्वस्थ लोग भी नहीं होंगे । ऐसे समाज के निर्माण के लिए सभी प्रकार की विषमताओं को समाप्त करना होगा । विषमता के बीच मानव की मानवता विकसित नहीं हो सकती । मानव समाज से धन की विषमता, सामाजिक विषमता, साम्प्रदायिक विषमता और प्रादेशिक विषमता दूर कर सभी मनुष्यों में समानता लानी होगी । केवल राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही ऐसा किया जाना सम्भव है । पराधीनता की दशा में अनुशीलन के स्वप्न के समाज की स्थापना संभव नहीं है, इसीलिए अनुशीलन पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा करती है । अनुशीलन भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता चाहती है ।''[10]

अनुशीलन समिति की यह घोषणा निश्चय ही आगे की तरफ एक बहुत बड़ा कदम था । यहीं पर बंगाल के क्रान्तिकारी 1897 के पूना केन्द्र से आगे हैं । चापेकर बन्धु विदेशियों से नफरत तो करते थे मगर वे खुद क्या चाहते हैं इसके बारे में स्पष्ट नहीं थे । यह बात बंगाल के क्रान्तिकारियों के साथ नहीं थी । ये लोग मुस्लिम विरोधी भी नहीं थे, हालाँकि वे धार्मिक लोग थे और हिन्दू ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त करते थे ।

इसके विपरीत इस दौर के पंजाब के क्रान्तिकारी आरम्भ से ही सांप्रदायिकता के दोष से मुक्त थे । सरदार अजीतसिंह, लालचन्द 'फ़लक', सूफी अम्बा प्रसाद, लाला हरदयाल और उनके सभी सहयोगी धर्मनिरपेक्ष थे । धर्म उनके लिए एक निजी मामला था ।

शताब्दी के पहले दशक के क्रान्तिकारी जिन स्रोतों से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे उनमें धर्म के अलावा एक था 1857 का भारत का पहला स्वाधीनता संग्राम । ''इस विषय पर 1907 या 1908 में लन्दन में लिखी गई वीर सावरकर की पुस्तक ने अपनी तमाम अपर्याप्तताओं के बावजूद, जो उस दौर में और उस समय की हालतों में स्वाभाविक थी, बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की । इस विषय पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा फैलाए गए लांछनों तथा उनके झूठे ऐतिहासिक लेखन की धज्जी उड़ाकर इस पुस्तक ने बहुत बड़ा काम किया । इसने बातों को सही तौर पर सामने रखा । इस किताब पर ब्रिटिश शासकों ने फौरन प्रतिबंध लगा दिया, लेकिन फिर भी यह मेहनत से और गुप्त रूप से तैयार की गयी पांडुलिपि के रूप में भारत के उस समय के क्रान्तिकारियों के बीच घूमती रही ।''[11]

वास्तविकता यह है कि 1857 का जन विद्रोह पूरे स्वाधीनता संग्राम के दौरान सभी स्वाधीनता सेनानियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहा ।

शताब्दी के पहले दशक मे क्रान्तिकारियों के लिए प्रेरणा का दूसरा स्रोत था फ्रांसीसी, इतालवी और रूसी क्रान्तिकारियों की कहानियाँ ।

आन्दोलन के पहले चरण की कमजोरियाँ और सीमाएँ

आन्दोलन के पहले चरण के दौरान पूना और बंगाल के क्रान्तिकारियों की पहली कमजोरी थी उनका हिन्दू पूर्वाग्रह । इस पूर्वाग्रह ने मुस्लिम जनता को आन्दोलन से दूर रखा । हालाँकि बंगाल के क्रान्तिकारी मुस्लिम विरोधी नहीं थे, लेकिन मुस्लिम जनता से कार्यकर्ता भर्ती करने का कोई गम्भीर प्रयास उन्होने कभी नहीं किया । इस कथन के कुछ अपवाद यहाँ-वहाँ मिल सकते हैं । लेकिन अपवाद कभी नियम नहीं बनते ।

आन्दोलन के दायरे को सीमित करनेवाली दूसरी कमजोरी थी जनता के साथ जीवंत संबंधों का न होना । स्वदेशी आन्दोलन के तीन या चार सालों को छोड़कर, जब बंगाल के क्रान्तिकारी जनता के बीच गये और लोगों को सक्रिय होने के लिए प्रोत्साहित किया, आमतौर पर क्रान्तिकारी व्यक्तिगत क्रियाशीलता में विश्वास रखते थे, जिसे सरकार आतंकवाद के गलत नाम से पुकारती थी । जनता इन क्रान्तिकारियों के आत्म-बलिदान, निर्भीकता और साहस की प्रशंसा तो करती थी लेकिन अपनी रोजमर्रा की समस्याओं के साथ उनकी कार्यवाहियों को जोड सकने में असमर्थ रहती थी। ऐसी स्थिति में साम्राज्यवादियों के लिए क्रान्तिकारियों का दमन कर सकना और भी आसान हो जाता था ।

आन्दोलन की तीसरी सीमा थी उसके कार्यकर्ताओं का वर्ग-चरित्र । क्रान्तिकारी आन्दोलन के कार्यकर्ताओं का एक बड़ा बहुमत निम्न-मध्यम वर्ग से सम्बन्धित था । इस चरण में यह एकदम स्वाभाविक था । यह वही दौर था जबकि नई पीढी विदेशी शासन से पूर्ण मुक्ति का दावा करने लगी थी । यह पीढ़ी खुद को 'वयस्क' समझने लगी थी । नौजवान तबके में बेचैनी थी मगर पुराना नेतृत्व होम रूल के लिए प्रस्तावों और प्रार्थनापत्रों से आगे बढने को तैयार न था । लेकिन शिक्षित नौजवान एक नयी दुनिया पाने के लिए अपना सबकुछ लुटा देने पर आमादा था । नौजवानों का विश्वास था कि वे जुझारू सशस्त्र संघर्ष के जरिये देश को आजाद करा सकते हैं । इसके लिए वे अपना जीवन तक होम कर देने को तैयार थे ।

मध्यम वर्ग स्वभाव से ही व्यक्तिवादी होता है । यह एक शक्तिशाली सहयोगी हो सकता है । अगर यह पूँजीपति वर्ग की तरफ जाता है तो प्रतिक्रियावाद का वाहक हो जाता है । अगर यह मजदूर वर्ग के साथ खड़ा होता है तो, स्वयं नेतृत्व प्रदान कर सकने की क्षमता न होते हुए भी, एक क्रान्तिकारी शक्ति बन जाता है । इसकी स्वतन्त्र कार्यवाहियाँ प्राय: व्यक्तिगत कार्यवाहियों का रूप ले लेती हैं । जिस दौर की बात हम कर रहे हैं उस समय स्वाधीनता के लिए जन आन्दोलन खड़ा कर सकने में न तो पूँजीपति वर्ग समर्थ था और न मजदूर वर्ग ही । इस चुनौती का सामना अपने सपनों को साकार करने के लिए सबकुछ कुर्बान कर देने को तैयार इन मध्यमवर्गीय नौजवानों ने स्वभावत: अपने ढंग से किया जो आरम्भ में व्यक्तिगत कार्रवाइयों का ही रूप ले सकती थी । यह सीमा

एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज थी।

गुलामी की अपमानजनक स्थिति के सामने समर्पण करने से बेहतर होता है चोट करना और नष्ट हो जाना। किसी न किसी को पहली चोट करनी ही होती है। और, आम तौर पर, पहली चोट का कोई नतीजा नहीं निकलता और पहली चोट करनेवाले ज्यादातर नष्ट हो जाते हैं। लेकिन उनकी कुर्बानियाँ कभी बेकार नहीं जातीं। झरना बढ़कर गरजता हुआ दरिया बन जाता है, चिंगारी ज्वालामुखी बनती है, व्यक्ति समष्टि से एकाकार हो जाता है। पुरानी व्यवस्था की जगह एक नयी व्यवस्था आती है, और सपना एक हकीकत का रूप ले लेता है। क्रान्तियाँ इसी तर्ज पर आगे बढ़ती हैं। भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन भी ठीक इसी तर्ज पर आगे बढ़ा।

"भारतीय क्रान्तिकारियों ने, अकल्पनीय कठिनाइयों के बीच भी, आधुनिक युग की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी—उपनिवेशवादी ताकत को चुनौती देने की जुर्रत की। इतना ही नहीं, उस युग के क्रान्तिकारी शूरवीरों—चापेकर भाइयों, खुदीराम, कनाईलाल, और मदनलाल धींगरा ने अपने आत्म-बलिदान और शहादत के माध्यम से अपने ऊँघते हुए देशवासियों को जगाया और उन्हें राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा अपने जन्मसिद्ध जनवादी राजनीतिक अधिकारों के उच्च विचारों से भी परिचित कराया। क्रान्तिकारी आन्दोलन, ऐतिहासिक रूप से, अपने ढंग का वह पहला आन्दोलन था जिसने राष्ट्रीय स्वाधीनता और सम्प्रभुता के लिए भारत के संघर्ष के राजनीतिक उद्देश्य के रूप में पूर्ण स्वाधीनता तथा ब्रिटिश साम्राज्य से हर तरह के राजनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद के लक्ष्य को जनता के सामने रखा। ठीक इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने विदेशी साम्राजी शासन के विरुद्ध संगठित हथियारबन्द संघर्ष के लिए जनता का आवाहन किया...

"वे शुरू से ही भारतीय जनता के लिए पूर्ण राष्ट्रीय प्रभुसत्ता और लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता के लिए अनवरत संघर्ष करते रहे और उस लक्ष्य से कभी डिगे नहीं...

"उनकी शहादतों ने उनके प्रति जनता की प्रशंसा को उभारकर विदेशी साम्राज्यवादी शासन के प्रति उसकी नफरत को और भी तीखा बनाया और उसके संघर्षशील साहस को और भी ऊँचा उठाया।"[12]

गदर पार्टी की स्थापना

क्रान्तिकारी आन्दोलन के पहले दौर में बहुत-से क्रान्तिकारी देश छोड़कर यूरोप और अमरीका चले गए थे। उनका उद्देश्य था भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों के संचालन के लिए धन संग्रह करना, प्रचार करना और साहसी, आत्मत्यागी तथा समर्पित युवकों की एक टीम खड़ी करना। इस काम में उनको कुछ कम सफलता नहीं मिली। लेकिन जहाँ तक अंतिम लक्ष्य का प्रश्न है, उनके विचार अभी तक भारत की आजादी की एक भावनात्मक धारणा तक ही सीमित थे। क्रान्ति के बाद स्थापित होनेवाली सरकार की

रूप-रेखा क्या होगी, दूसरे देशों की क्रान्तिकारी शक्तियों के साथ उसके सम्बन्ध क्या होंगे, नई व्यवस्था में धर्म का क्या स्थान होगा, आदि प्रश्नों पर उस समय के अधिकांश क्रान्तिकारी स्पष्ट नहीं थे। यह सूरत कमोबेश 1913 तक जारी रही। इन सभी मुद्दों पर स्पष्ट रवैया अपनाने का श्रेय गदर पार्टी के नेताओं को जाता है।

इस शताब्दी के पहले दशक में भारत छोड़कर जानेवाले क्रान्तिकारियों को अंग्रेज सरकार के हाथों में पड़ने से बचने के लिए एक देश से दूसरे देश तक भटकना पड़ता था। अन्त में, उनमें से कइयों ने अमरीका में बसने और उस देश को अपने कार्य का आधारक्षेत्र बनाने का फैसला किया। इनमें प्रमुख थे—तारकनाथ दास, शैलेन्द्र घोष, चन्द्र चक्रवर्ती, नन्दलाल कार, बसन्तकुमार राय, सारंगधर दास, सुधीन्द्रनाथ बोस तथा जी. डी. कुमार। पहले दशक के अंत तक लाला हरदयाल भी उनसे आ मिले। इन लोगों ने अमरीका और कनाडा में बसे भारतीय प्रवासियों से सम्पर्क किया, धन संग्रह किया, अखबार निकाले, और कई जगहों पर गुप्त संस्थाएँ कायम कीं।

तारकनाथ दास ने *फ्री हिन्दुस्तान* नाम से अखबार निकाला और अमरीका में रह रहे भारतीय छात्रों तथा भारतीय प्रवासियों के लिए व्याख्यान देते रहे। वे **समिति** नाम की एक गुप्त संस्था के प्रधान भी थे। इस संस्था के अन्य सदस्य थे—शैलेन्द्रनाथ बोस, सारंगधर दास, जी. डी. कुमार, लस्कर, और ग्रीन नामक एक अमरीकी।

रामनाथ पुरी ने 1908 में ओकलैंड में हिन्दुस्तान एसोसिएशन नाम की एक संस्था कायम की, और *सर्कुलर ऑफ फ्रीडम* नाम से एक अखबार निकाला। ये इस अखबार के माध्यम से अंग्रेजों को भारत से खदेड़े जाने की वकालत करते रहे। जी. डी. कुमार ने बैंकोवर से *स्वदेशी सेवक* नामक अखबार निकाला। वे वहाँ की एक गुप्त संस्था के सदस्य भी थे। इस संस्था के सदस्य रहीम और सुन्दर सिंह भी थे। सुन्दर सिंह *आर्यन* नाम के एक अखबार का सम्पादन भी करते थे और उसके जरिये लगातार ब्रिटिश-विरोधी प्रचार चलाते थे। रहीम और आत्माराम ने बैंकोवर में यूनाइटेड इंडिया लीग का गठन किया।

लाला हरदयाल 1911 में अमरीका पहुँचे और वहाँ स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो गये। सैन फ्रान्सिस्को में 'हिन्दुस्तानी स्टूडेन्ट्स एसोसिएशन' नाम की एक संस्था उन्होंने गठित की। 1913 में एस्टोरिया की 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन' का गठन हुआ। करीम बख्श, नवाबखान, बलवन्तसिंह, मुन्शीराम, केसरसिंह और कर्तारसिंह सराभा इसके सदस्य थे। ठाकुरदास और उनके मित्रों ने सेन्टजान में रहनेवाले भारतीयों की एक संस्था गठित की। 1913 में शिकागो में 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन ऑफ दि यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका' का गठन हुआ।[13]

लाला हरदयाल ने महसूस किया कि संयुक्त राज्य अमरीका के विभिन्न हिस्सों में कार्यरत इन संगठनों की गतिविधियों का समन्वय आवश्यक है। अतः उन्होंने कनाडा और अमरीका में रहनेवाले भारतीय क्रान्तिकारियों की एक मीटिंग बुलाई। इस मीटिंग

में 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन ऑफ द पैसिफिक कोस्ट' नाम की एक संस्था के गठन का फैसला लिया गया। बाबा सोहनसिंह भकना और लाला हरदयाल इसके क्रमशः अध्यक्ष और सचिव चुने गये। लाला हरदयाल नौकरी से इस्तीफा देकर अपना पूरा समय एसोसिएशन के काम में लगाने लगे।

मार्च 1913 में एसोसिएशन ने सैन फ्रान्सिस्को से *गदर* नाम से एक अखबार निकालने का फैसला किया। उसके बाद एसोसिएशन का नाम भी बदलकर 'गदर' पार्टी कर दिया गया।

आगे की तरफ एक बड़ा कदम

1913 में गदर पार्टी का गठन क्रान्तिकारी आन्दोलन के विकास की दिशा में एक बहुत बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण कदम था। इसने राजनीति को धर्म से मुक्त किया और धर्म-निरपेक्षता को अपनाया। धर्म को निजी मामला घोषित कर दिया गया।

अखबार *गदर* ने हिन्दू-मुसलमान दोनों का आवाहन किया कि वे आर्थिक मसलो पर ज्यादा ध्यान दें क्योंकि उनका दोनों के जीवन पर एक-जैसा प्रभाव पड़ता है। प्लेग से हिन्दू और मुसलमान दोनों ही मर रहे हैं। अकाल पड़ने पर अन्न से दोनों ही वंचित रहते हैं। पगार के लिए जोर-जबर्दस्ती दोनों पर की जाती है और दोनों को ही अत्यधिक ऊँची दरों पर भूराजस्व तथा जल-कर देना पड़ता है। समस्या हिन्दू बनाम मुसलमान की नहीं बल्कि भारतीय बनाम अंग्रेज शोषकों की है। हिन्दू-मुस्लिम एकता को इतना मजबूत बनाया जाना चाहिए कि कोई उसे तोड़ न सके।[14]

गदर पार्टी "धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करती थी और ठोस हिन्दू-मुस्लिम एकता की तरफदार थी। वह छूत और अछूत के भेदभाव को भी नहीं मानती थी। भारत की एकता और भारत के स्वाधीनता संग्राम के लिए एकता, यही उसे प्रेरित करनेवाले प्रमुख सिद्धान्त थे।"[15] इस मामले में गदर पार्टी उस समय के भारतीय नेताओं से मीलों आगे थी। सोहन सिंह जोश के अनुसार, "गदर के क्रान्तिकारी राजनीतिक-सामाजिक सुधार के सवालों पर अपने समसामयिकों से आधी सदी आगे थे।"[16]

14 मई, 1914 को *गदर* में प्रकाशित एक लेख में लाला हरदयाल ने लिखा: "प्रार्थनाओं का समय गया; अब तलवार उठाने का समय आ गया है। हमें पंडितों और काजियों की कोई जरूरत नहीं है।..."[17] 1913 में पोर्टलैंड में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि गदर के क्रान्तिकारियों को आगामी क्रान्ति के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें भारत जाकर और वहाँ से अंग्रेजों को भगाकर अमरीका जैसी एक जनतान्त्रिक सरकार कायम करनी चाहिए जिसमें धर्म, जाति और रंग के अन्तर से परे सभी भारतीय समान और स्वतन्त्र हों।

लाला हरदयाल ने जो अपने आपको अराजकतावादी कहा करते थे, एक बार कहा

था कि स्वामी और सेवक के बीच कभी कोई समानता नहीं हो सकती, भले ही वे दोनों मुसलमान हों, सिख हों, अथवा वैष्णव हों। ''अमीर हमेशा गरीब पर शासन करेगा' आर्थिक समानता के अभाव में भाईचारे की बात सिर्फ एक सपना है।[18]

हिन्दुस्तानियों के बीच सांप्रदायिक सद्भाव बढ़ाने को गदर पार्टी ने अपना एक उद्देश्य बनाया। युगान्तर आश्रम नाम के गदर पार्टी के दफ्तर में सवर्ण हिन्दू, अछूत, मुसलमान और सिख, सभी जमा होते और साथ-साथ भोजन करते थे।

धर्म जब राजनीति के साथ घुलमिल जाता है तो वह एक घातक विष बन जाता है जो राष्ट्र के जीवंत अंगों को धीरे-धीरे नष्ट करता रहता है, भाई को भाई से लड़ाता है, जनता के हौसले पस्त करता है, उसकी दृष्टि को धुँधला बनाता है, असली दुश्मन की पहचान कर पाना मुश्किल कर देता है, जनता की जुझारू मन:स्थिति को कमजोर करता है, और इस तरह राष्ट्र को साम्राज्यवादी साजिशों की आक्रमणकारी योजनाओं का लाचार शिकार बना देता है। भारत में इस बात को सबसे पहले गदर के क्रान्तिकारियों ने महसूस किया। उन्होंने दिलेरी के साथ ऐलान किया कि वे इस जहर को अपनी राजनीति से दूर ही रखेंगे। और उन्होंने जो कहा वैसा ही किया भी। भारतीय राजनीति में यह उनकी पहली महान उपलब्धि थी।

गदर के क्रान्तिकारियों की दूसरी महान उपलब्धि थी, उनका अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण। ''गदर का आन्दोलन एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन था। उसकी शाखाएँ मलाया, शंघाई, इन्डोनेशिया, ईस्ट इन्डीज, फिलीपीन, जापान, मनीला, न्यूजीलैंड, हांगकांग, सिंगापुर, फिजी, बर्मा और दूसरे देशों में कार्यरत थी। गदर पार्टी के उद्देश्यों के प्रति इंडस्ट्रियल वर्कर्स ऑफ द वर्ल्ड (आई. डब्ल्यू. डब्ल्यू.) की बहुत हमदर्दी थी वे (गदर के क्रान्तिकारी) सभी देशों की आजादी के तरफदार थे।''[19]

कई कवियों की लिखी हुई कविताओं के संग्रह *गदर दी गूँज* में एक कवि कहता है : ''भाइयो,चीन के खिलाफ जंग में न लड़ो। भारत, चीन और तुर्की के अवाम आपस में भाई हैं। दुश्मन को इसकी इजाजत नहीं दी जानी चाहिए कि वह इस भाईचारे को तहस-नहस कर सके।''[20]

बैंकोवर में 1911 में एक संस्था कायम हुई थी जिसका उद्देश्य था बाकी दुनिया के साथ भारतीय राष्ट्र के स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे के सम्बन्ध कायम करना। लाला हरदयाल ने भी कई बार अपने भाषणों में यह घोषणा की थी कि वे केवल भारत में ही नहीं बल्कि हर उस देश में क्रान्ति चाहते हैं जहाँ गुलामी और शोषण मौजूद है।[21]

गदर के क्रान्तिकारियों के प्रचार का एक प्रमुख अंग था दुनिया की श्रमिक यूनियनों के नाम अपील जारी करना। उन्होंने पूरी दुनिया के जनसाधारण से अपील की कि वे साम्राजी निजाम को उखाड़ फेंकने के लिए एकजुट हों।[22]

विचारधारा और कार्यक्रम

गदर पार्टी ब्रिटिश शासन की विरोधी थी और उसका उद्देश्य था सशस्त्र संघर्ष के जरिये भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त करके यहाँ अमरीकी ढंग का प्रजातन्त्र स्थापित करना । उसका विश्वास था कि प्रस्तावों, प्रतिनिधिमंडलों और प्रार्थनापत्रों से हमें कुछ मिलनेवाला नहीं है । अंग्रेज शासकों के सामने नर्मदलीय नेताओं का नाचना भी वे पसंद नहीं करते थे । जिस गणतन्त्र की बात वे करते थे उसमें किसी तरह के राजा की नहीं, बल्कि एक चुने हुए राष्ट्रपति की गुंजाइश थी ।

भारत की आजादी हासिल करने के लिए गदर पार्टी व्यक्तिगत कार्रवाइयों पर उतना निर्भर नहीं करती थी जितना इस बात पर कि सेना में प्रचार करके सैनिकों को विद्रोह के लिए प्रोत्साहित किया जाए । उन्होंने सैनिकों से अपील की कि वे विद्रोह के लिए उठ खड़े हों ।

गदर के क्रान्तिकारियों का वर्गचरित्र भी पहले के क्रान्तिकारियों से भिन्न था । पुराने क्रान्तिकारी मुख्यतः निम्न-मध्यम वर्ग के कुछ शिक्षित लोग थे जबकि गदर पार्टी के अधिकांश सदस्य किसान से मजदूर बने लोग थे, और इसलिए उन्होंने विद्रोह के लिए किसानों से भी उठ खड़े होने की अपील की ।

दो कमजोरियाँ

गदर पार्टी की स्थापना अमरीका में हुई थी जहाँ लोगों को कुछ नागरिक स्वाधीनताएँ और अभिव्यक्ति की आजादी हासिल थी जबकि उस समय भारत में ये चीजें नहीं थीं । वहाँ गदर के नेता खुलकर अपनी योजनाओं, इरादों और कार्यक्रम पर बहस करते और उन पर लेख लिखते थे । इस तरह ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को उनकी योजनाओं की पूरी-पूरी जानकारी रहती थी और वे गदर के क्रान्तिकारियों की गतिविधियों से पैदा हो सकनेवाली हर स्थिति से निपटने को तैयार थे । गदर के नेताओं और कार्यकर्ताओं की इस अगोपनीयता की बहुत बड़ी कीमत पार्टी को चुकानी पड़ी ।

दूसरी प्रमुख कमजोरी उनका यह भ्रामक विश्वास था कि एक साम्राज्यवादी शक्ति उनको दूसरी साम्राज्यवादी शक्ति के चंगुल से आजाद कराने में ईमानदारी के साथ सहायता करेगी । उनके दिमाग में यह बात साफ नहीं थी कि जर्मन हो या ब्रिटिश या कोई और–सभी साम्राज्यवादी शक्तियों की प्रवृत्ति एक जैसी होती है । जब पहला विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ तब गदर पार्टी और दूसरे क्रान्तिकारियों ने नारा दिया कि "ब्रिटेन की मुसीबत हमारे लिए सुनहरा अवसर है," और कि "दुश्मन का दुश्मन दोस्त होता है" । इस विश्वास के साथ उन्होंने जर्मनी के कैसर से सहायता के लिए संपर्क किया । कैसर के प्रतिनिधियों से बातचीत के दौरान स्वाधीन भारत की भावी व्यवस्था से

संबंधित कुछ शर्तें भी उन्होंने रखने की कोशिश की। मगर इस नुक्ते पर कैसर का जवाब हमेशा अस्पष्ट रहा। उसकी दिलचस्पी जंग के दौरान ब्रिटेन के खिलाफ गदर पार्टी के क्रान्तिकारियों का अधिक से अधिक इस्तेमाल कर सकने तक ही सीमित थी। उसके अपने जंगी उद्देश्य थे—ब्रिटेन और फ्रांस से अधिक से अधिक उपनिवेश छीनना। इस तरह गदर के क्रान्तिकारी साम्राज्यवाद की वास्तविक प्रकृति से एकदम अनजान थे। वास्तविक और स्थायी मुक्ति के लिए गुलाम देशों को पूरी साम्राज्यवादी व्यवस्था से लड़ाई लड़नी होगी—यह बात रूस में अक्टूबर (नई प्रणाली में नवम्बर) 1917 की क्रान्ति के बाद ही पूरी तरह स्पष्ट हुई।

महान अक्टूबर क्रान्ति और उसका प्रभाव

1917 की अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति मानवता के इतिहास में एक युगान्तकारी घटना है। उसने केवल रूस में ही साम्राज्यवाद को पराजित नहीं किया बल्कि पूरी साम्राज्यवादी व्यवस्था को भी एक जबरदस्त झटका दिया। इस क्रान्ति ने रूस में मनुष्य द्वारा मनुष्य के और राष्ट्र द्वारा राष्ट्र के शोषण पर आधारित व्यवस्था को समाप्त कर दिया। सोवियत जनता अपने भाग्य का स्वामी बन गयी। खेतों, कारखानों और वर्कशॉपों पर उसका सामूहिक स्वामित्व कायम हो गया। अक्टूबर क्रान्ति ने न सिर्फ रूस के अवाम को पूँजीपतियों और जमींदारों की गुलामी से मुक्त किया बल्कि एक बिल्कुल नये समाज और नये इन्सान को भी जन्म दिया। उसने गुलाम देशों के स्वाधीनता सेनानियों को प्रेरित किया और उनके अन्दर विश्वास जगाया कि उनकी लड़ाई कामयाब होकर रहेगी। उसने दुनिया के विभिन्न हिस्सों में चल रहे मुक्ति-संघर्षों को नये आयाम भी दिये।

विश्वव्यापी साम्राज्यवादी-विरोधी सग्राम का अंग होने के नाते भारत का स्वाधीनता संग्राम भी इससे अछूता नहीं रहा। उसके दृष्टिकोण में भी एक फैलाव आया और महसूस किया गया कि आर्थिक और सामाजिक समानताओं के बिना आजादी का कोई अर्थ नहीं होगा।

अक्टूबर क्रान्ति और यूरोप तथा एशिया में साम्राज्यवाद-विरोधी क्रान्ति की लहर ने, और साथ ही प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त भारतीय जनता के क्रान्ति की तरफ बढ़ते कदमों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को चौकन्ना कर दिया था। उन्होंने अप्रिय स्थिति से निपटने के लिए दोतरफा नीति अपनायी। एक तरफ तो उन्होंने माण्टेग्यु-चेम्सफोर्ड सुधारों का ढकोसला खड़ा करके नरम पंथी राष्ट्रीय नेताओं का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की और दूसरी तरफ राजद्रोह के मामलों की छानबीन करने और क्रान्तिकारियों के दमन के उपाय सुझाने के लिए न्यायमूर्ति रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी की सिफारिशें बड़ी ही पाशविक थीं। उसने साधारण राजनीतिक गतिविधियों तक को राजद्रोह करार दे दिया था। रौलट कमेटी की दमनकारी सिफारिशों

के विरोध में गाँधी जी ने एक दिन आम हड़ताल का आवाहन किया। इस आवाहन के अप्रत्याशित प्रभाव हुए और जनता अपना क्रोध व्यक्त करने के लिए एकजुट होकर सामने आ गयी। यह सरकार के लिए ही नहीं, हमारे नेताओं के लिए भी एक नयी बात थी। अंग्रेजों ने भारतीयों को सबक सिखाने का निश्चय किया और 13 अप्रैल, 1919 को जलियाँवाला बाग में इस निश्चय को अमली रूप भी दे दिया गया। इसके बाद तो जनता में गुस्से की लहर दौड़ गयी और पंजाब के लगभग सभी शहरों में लोग सड़कों पर निकल आये। सरकार ने उसे संगठित विद्रोह की संज्ञा दी। लेकिन वास्तव में गाँधी जी भी इस सबके लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने एलान किया कि एक दिन की आम हड़ताल का नारा देकर उन्होंने भयंकर भूल की थी। उन्होंने लोगों से आन्दोलन बन्द करने और सुधारों पर अमल करने का अनुरोध किया।

सितम्बर, 1920 में लाला लाजपत राय ने कांग्रेस को आगाह करते हुए कहा था कि जनता क्षुब्ध एवं परेशान है और कुछ कर गुजरने के मूड में है। उन्होंने कांग्रेस से यह भी कहा कि अगर जनता के इस गुस्से को सही रास्ते पर न डाला गया तो वह अपना रास्ता अपनायेगी जो देश के लिए अहितकर होगा। "इस तथ्य की ओर से आँखें बन्द करने से कोई लाभ नहीं होगा कि हम क्रान्तिकारी युग से होकर गुजर रहे हैं।" उन्होंने एलान किया और कहा, "प्रवृत्ति से और परम्परा से हम क्रान्तियों को पसन्द नहीं करते हैं।"[23] कांग्रेस ने नागपुर अधिवेशन में लाला जी की उस चेतावनी पर भी विचार किया और गाँधी जी को निर्देश दिया गया कि वे स्वराज्य के लिए असहयोग आन्दोलन आरम्भ करें। आन्दोलन शुरू करने से पहले महात्मा जी बंगाल गये और कुछ क्रान्तिकारी नेताओं से मिलकर उनसे एक साल का समय माँगा और कहा कि अगर वे एक साल के अन्दर स्वराज्य न प्राप्त कर लें तो क्रान्तिकारियों को अपने रास्ते पर चलने की पूरी छूट होगी। क्रान्तिकारी नेताओं ने गाँधी जी की बात मान ली। सत्याग्रह आन्दोलन शुरू हुआ। देखते-देखते वह सारे देश में फैल गया और गाँवों की छोटी-छोटी झोंपड़ियों तक में 'स्वराज्य' शब्द गूँजने लगा। आन्दोलन में भाग लेने के लिए गाँधी जी ने जो भी रोकथाम की शर्तें लगाई थीं उन सबको भी तोड़कर किसान पूरे जोश के साथ आन्दोलन में कूद पड़े। "सरकार परेशान और घबड़ाई हुई थी, उसके हाथ पैर-फूलने लगे थे। यदि सरकार की चौमुखी अवज्ञा की छूत शहरों से चलकर करोड़ों किसानों तक पहुँच जाती है तो अंग्रेजी हुकूमत के पास बचत के लिए कोई चारा नहीं रह जायगा; तीस करोड़ जनता के विद्रोह की खौलती हुई हाँडी से उनकी सारी तोपें और हवाई जहाज भी उन्हे बचा नहीं सकेंगे।"[24] गाँधी जी भी खुश नहीं थे और उतने ही घबड़ाये हुए थे। वे आन्दोलन वापस लेने के लिए किसी अवसर की प्रतीक्षा में थे और फरवरी, 1922 में चौरी-चौरा की घटना से उन्हें यह अवसर मिल गया। बजाय इसके कि वे उस घटना का स्वागत करते और जनता से उसी प्रकार की हजारों और घटनाओं की माँग करते, उन्होंने किसी से सलाह लिए बगैर चुपचाप आन्दोलन वापस ले लिया और राजनीति से अलग हो

गये। इस पृष्ठभूमि मे क्रान्तिकारियों ने, जिन्होंने गाँधी जी के कहने पर हथियार रख दिये थे, अपने को संगठित करके फिर से हथियार उठाने का फैसला किया।

हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन

सभी क्रान्तिकारियों को एक अखिल भारतीय पार्टी में संगठित करने में पहल की शचीन्द्रनाथ सान्याल ने। इसी उद्देश्य से उन्होंने 1923 के अन्त में हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ (हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन) की बुनियाद डाली। उन्होंने पार्टी का संविधान भी तैयार किया जो पीले कागज पर छपा था और इसीलिए वह 'पीला पर्चा' के नाम से मशहूर है। एक और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज जो उन्होने तैयार किया वह था हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ का घोषणापत्र जिसका शीर्षक था (दि रिवोल्यूशनरी)। यह दस्तावेज पहली जनवरी, 1925 की रात में पूरे उत्तर भारत में बाँटा गया था। 1917 की अक्टूबर क्रान्ति से प्रभावित होकर घोषणापत्र में भारतीय क्रान्तिकारियों के उद्देश्य का एलान नीचे लिखे शब्दो मे किया गया था:

"राजनीति के क्षेत्र में क्रान्तिकारी पार्टी का तात्कालिक उद्देश्य संगठित सशस्त्र क्रान्ति द्वारा भारत के संयुक्त राज्यों का एक संघीय गणराज्य (फेडरेल रिपब्लिक ऑफ यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ इण्डिया) स्थापित करना है। इस गणराज्य के अन्तिम संविधान का निर्माण एवं घोषणा तब होगी जब सम्पूर्ण भारत के प्रतिनिधि अपने निर्णयों को लागू करने में सक्षम होंगे। लेकिन इस गणराज्य का मूलभूत सिद्धान्त सार्वजनिक मताधिकार पर और शोषण पर आधारित ऐसी समस्त व्यवस्थाओं की समाप्ति पर आधारित होगा जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को सम्भव बनाती हैं। ...इस गणराज्य में मतदाताओं को, यदि वे चाहें तो, प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार होगा, अन्यथा प्रजातन्त्र एक मखौल बनकर रह जायगा।"

घोषणापत्र में कहा गया था कि "यह क्रान्तिकारी पार्टी इन अर्थों में राष्ट्रीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय है कि इसका अन्तिम उद्देश्य विश्व में मेल एवं सामंजस्य स्थापित करना है। ...यह विभिन्न राष्ट्रों और राज्यों के बीच प्रतिद्वन्द्विता के बजाय सहयोग चाहती है; और इन अर्थों में वह भारत के उज्ज्वल अतीत के महान ऋषियों एवं आज के बोल्शेविक रूस का अनुसरण करेगी। ..."[25]

घोषणापत्र में साम्प्रदायिक समस्या के बारे में, जनता के आर्थिक एवं सामाजिक हितों के सवाल पर और कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक पार्टियों के बारे में क्रान्तिकारियों के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया था।

इन सभी सवालों पर घोषणापत्र का दृष्टिकोण निश्चित रूप से अतीत का दामन छोड़कर समाजवाद का और सोवियत को 'विजयी समाजवाद का पहला देश' कहकर उसका स्वागत करता है। उसमें हमें राष्ट्रीय आजादी के लिए चलनेवाले आन्दोलनों के

अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र की समझ भी देखने को मिलती है। हालाँकि यह समझ अभी बहुत साफ नहीं है। स्वतन्त्र भारत की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था कैसी होगी, घोषणापत्र में उस पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मजदूरों और किसानों को संगठित करने की आवश्यकता को भी स्वीकार किया गया है। इन सभी मुद्दों पर घोषणापत्र अपने से पहले के क्रान्तिकारियों से अलग हटकर चलता है या चलने का प्रयास करता है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि घोषणापत्र का लेखक मार्क्सवादी था या उसने वैज्ञानिक समाजवाद के सारतत्व को आत्मसात कर लिया था। उसका झुकाव खास तौर पर ईश्वर और रहस्यवाद की ओर है। घोषणापत्र के अनुसार, "पार्टी का उद्देश्य सत्य को प्रस्थापित करना और उसका प्रचार करना है। विश्व न माया है न भ्रम कि उसकी तरफ से आँख बन्द कर ली जाय और उसकी उपेक्षा की जाय। वह एक अविभाज्य आत्मा का प्रकट स्वरूप है, आत्मा जो शक्ति, ज्ञान और सौन्दर्य का सर्वोच्च उद्गम है।" लेखक मार्क्सवाद के आर्थिक पक्ष को स्वीकार करता है, जो काकोरी से पहले के क्रान्तिकारियों के मुकाबिले निश्चय ही एक आगे बढ़ा हुआ कदम है। लेकिन जहाँ तक मार्क्सवाद के दार्शनिक पक्ष का सवाल है, लेखक भौतिकवाद को न मानकर भगवान और धैर्य पर अडिग रहता है। आगे चलकर सान्याल जी स्वयं लिखते हैं: "कम्युनिस्ट दर्शन में इतिहास के भौतिकवादी विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। और इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में वर्ग-संघर्ष की अवधारणा शुरू से आखीर तक लगातार मौजूद है...मैं आज भी इन सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं कर पाया हूँ...।"[26]

एक और महत्त्वपूर्ण मुद्दा जिस पर उनका कम्युनिज्म से मतभेद था, वह था सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व की अवधारणा। उनका यह मत था कि "सिर्फ मध्यम वर्ग के नौजवान ही नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता रखते हैं, जबकि मजदूर और किसान क्रान्तिकारी सेना के सिपाही का काम करेंगे।"[27]

शचीन्द्रनाथ सान्याल और उनके समय के अन्य क्रान्तिकारियों की सैद्धान्तिक मान्यताओं का सत्येन्द्र नारायण मजूमदार ने अपनी पुस्तक *इन सर्च आफ ए रिवोल्यूशनरी आइडियालोजी एण्ड रिवोल्यूशनरी प्रोग्राम* में संक्षेप में बड़ा अच्छा खुलासा प्रस्तुत किया है। दोनों दस्तावेजों (क्रान्तिकारी और संविधान) पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है: "यह दोनों दस्तावेज उन क्रान्तिकारियों की सोच का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उन दिनों साम्यवाद की तरफ आकर्षित हो रहे थे, लेकिन रोमानी क्रान्तिकारिता के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाये थे।"[28] इसके बाद दोनो दस्तावेजों की विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं: "इन दोनों दस्तावेजो की विशिष्टताएँ हैं—(क) समाजवाद की विजय-पताका फहरानेवाले पहले देश के रूप मे बोल्शेविक रूस के प्रति और साम्यवाद के प्रति स्पष्ट झुकाव; (ख) राष्ट्रीय मुक्ति के लिए क्रान्ति के अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र को समझने की शुरुआत, हालाँकि यह समझ अभी बहुत

साफ नहीं थी; (ग) स्वतन्त्र भारत की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की रूपरेखा तैयार करने की कोशिश; (घ) मजदूरों और किसानों को संगठित करने के लिए कृत-संकल्प होना; (ङ) पार्टी में जनवादी-केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त का प्रवेश।"[29]

दोनों दस्तावेजों की कमजोरियों को मजूमदार ने इस प्रकार गिनाया है: "(क) साम्यवाद के प्रति झुकाव अवश्य था; लेकिन अभी तक साम्यवाद के अध्ययन का ठोस आधार उसे नहीं मिला था; (ख) राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में मजदूरों और किसानों की भूमिका के वास्तविक महत्त्व को स्पष्ट रूप से नहीं समझा गया था; (ग) घोषणापत्र का लेखक अभी तक धार्मिक रहस्यवाद के प्रभाव से ग्रस्त है; (घ) घोषणापत्र यह समझने में असफल रहा कि आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए जवाबी आतंकवादी अभियान का मजदूरों और किसानों को संगठित करने के कार्य से सामंजस्य बैठाना अव्यावहारिक है; (ङ) राष्ट्रीय स्थिति का गलत विश्लेषण देते हुए घोषणापत्र में कहा गया था कि 'हमारे जीवन के हर क्षेत्र में चरम असहायत्व की भावना विद्यमान है और आतंकवाद उसमें यथोचित उत्साह पैदा करने का प्रभावकारी साधन' आदि। जबकि उस समय तक भारत की मेहनतकश जनता संघर्ष की राह पर कूच कर चुकी थी। उसका अगुवा दस्ता मजदूर वर्ग निर्मम पुलिस-दमन के बावजूद लगातार और बहादुरी के साथ शानदार लड़ाइयाँ लड़ रहा था।"[30]

बंगाल में भी उसी दिशा में विकास हो रहा था। वहाँ अनुशीलन और युगान्तर के कई नेताओं ने सोवियत रूस तथा कम्युनिज्म में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी थी। लेकिन यह दिलचस्पी साम्यवाद के अध्ययन पर या अक्टूबर क्रान्ति और उसकी विशिष्टता की ठीक समझ पर आधारित नहीं थी। वे सोवियत यूनियन और कोमिन्टर्न को "हथियार तथा अन्य प्रकार की सहायता, मसलन बम बनाने की शिक्षा आदि, प्राप्त करने के एक सम्भावित स्रोत के रूप में देखते थे। लेकिन जब उन्हें पता चला कि सोवियत यूनियन और कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल दोनों ही जनता से अलग किसी प्रकार की सशस्त्र गतिविधियों को प्रोत्साहन नहीं देते हैं तो उनकी दिलचस्पी ठंडी पड़ गयी।"[31]

उस समय, अर्थात तीसरे दशक के उत्तरार्ध में भारतवर्ष में कम्युनिस्ट विचारधारा जनप्रिय हो रही थी। अक्टूबर क्रान्ति और रूस के खिलाफ साम्राज्यवादी हस्तक्षेप की पराजय के अलावा इस बदलाव के कुछ अन्दरूनी कारण भी थे। यथा: (क) पेशावर और कानपुर के बोल्शेविक षड्यन्त्र केस; (ख) देश के कई भागों में किसानों के जुझारू संघर्ष; (ग) मजदूरों की देशव्यापी बड़ी-बड़ी हड़तालें (घ) मजदूर-किसान पार्टी का गठन; (ङ) देश के विभिन्न कम्युनिस्ट ग्रुपों को मिलाकर एक अखिल भारतीय पार्टी के गठन का प्रयास। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर घटित इन घटनाओं से प्रभावित हो कर अनुशीलन के कुछ कार्यकर्ता पार्टी से अलग होकर कम्युनिस्ट आन्दोलन में चले गये। अनुशीलन में उनका अच्छा सम्मान था और क्रान्तिकारी युवकों में साम्यवाद को जनप्रिय बनाने में उन लोगों की काफी हद तक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ का गठन

संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) में 1925 में क्रान्तिकारी पार्टी के प्रायः सभी प्रमुख नेता काकोरी षड्यन्त्र केस के सिलसिले में पकड़कर जेल में बन्द कर दिये गये थे। इससे हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ के संगठन को बहुत बड़ा धक्का लगा। केवल चन्द्रशेखर आजाद और कुन्दनलाल गुप्त ही पुलिस के चंगुल से बचकर निकल पाए थे। इनके अतिरिक्त बाहर जो साथी रह गये थे वे सब दूसरी पंक्ति के सिपाही थे। पार्टी को फिर से संगठित करने का दायित्व इन्हीं दूसरी पंक्ति के साथियों पर पड़ा। उस समय अर्थात् 1925 में कुछ क्रान्तिकारी लाहौर में सक्रिय थे और कुछ कानपुर में फिर से काम आरंभ करने का प्रयास कर रहे थे। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से उस समय तक इन दोनों केन्द्रों के साथियों के दिमाग साफ नहीं थे। हाँ, एक सही सिद्धान्त की तलाश अवश्य आरम्भ हो गयी थी। इस दिशा में दोनों केन्द्रों के साथियों को योग्य मार्गदर्शक भी मिल गये थे।

उस समय (1925-26) लाहौर के साथी, खासकर भगतसिंह और सुखदेव, रूसी अराजकतावादी बकुनिन से प्रभावित थे। भगतसिंह को अराजकतावाद से समाजवाद की ओर लाने का श्रेय दो व्यक्तियों को है—कामरेड सोहनसिंह जोश जो अब हमारे बीच में नहीं हैं और लाला छबीलदास। जोश एक मशहूर कम्युनिस्ट नेता और *किरती* नाम की पंजाबी मासिक पत्रिका के सम्पादक थे। वे भगतसिंह से विभिन्न विषयों पर बातचीत करते और उन्हें *किरती* में लिखने के लिए प्रोत्साहित करते थे। लाला छबीलदास 'तिलक स्कूल ऑफ पालिटिक्स', जो नेशनल कालेज के नाम से भी प्रसिद्ध था, के प्रधानाचार्य थे। वे नौजवान क्रान्तिकारियों को बतलाते रहते थे कि क्या पढ़ें और कैसे पढ़ें। भगवतीचरण वोहरा का समाजवाद की तरफ आरम्भ से ही रुझान था। सोहनसिंह जोश का सारा मार्ग-दर्शन और लाला छबीलदास के किताबों के बारे में सारे सुझाव पुस्तकों के अभाव में व्यर्थ ही रह जाते। इस आवश्यकता को कुछ हद तक पूरा किया लाला लाजपत राय की 'द्वारकादास लाइब्रेरी' ने। इस पुस्तकालय में राजनीति सम्बन्धी पुस्तकों का अच्छा संग्रह था जिनमें मार्क्सवादी और सोवियत रूस पर ऐसी पुस्तकें भी शामिल थीं जिन्हें सरकार ने जब्त नहीं किया था।

लाहौर के क्रान्तिकारियों ने उस पुस्तकालय से पूरा लाभ उठाया। उस काम में उन्हें पुस्तकालय के अध्यक्ष और क्रान्तिकारियों के हमदर्द श्री राजाराम शास्त्री (अब स्वर्गीय) से काफी सहायता मिलती थी। पुस्तकें प्राप्त करने का एक और भी सोर्स था रामकृष्ण एण्ड सन्स नाम की किताबों की एक दूकान। यह दूकान अनारकली बाजार में थी और उसके पास इग्लैण्ड से जब्तशुदा पुस्तकें मँगवाने की अच्छी व्यवस्था थी। पंजाब के क्रान्तिकारियों ने, खासकर भगतसिंह और भगवतीचरण वोहरा ने, इन सुविधाओं से पूरा लाभ उठाया। श्री राजाराम शास्त्री ने एक बार इन पंक्तियों के लेखक से कहा था कि भगतसिंह वस्तुतः पुस्तकों को पढ़ता नहीं निगलता था, लेकिन फिर भी

उसकी ज्ञान की पिपासा सदा अनबुझी ही रहती थी। भगतसिंह पुस्तकों का अध्ययन करता, नोट्स बनाता, अपने साथियों से उन पर विचार-विमर्श करता, अपनी समझ को नये ज्ञान की कसौटी पर आत्मालोचनात्मक ढंग से परखने का प्रयास करता और इस प्रक्रिया में अपनी समझ में जो-जो गलतियाँ दिखलायी पड़तीं उन्हें सुधारने की कोशिश करता। इन सब बातों ने पंजाब ग्रुप को तेजी के साथ आगे बढ़ने में मदद की। परिणामस्वरूप 1928 के आरम्भ में उन्होंने अराजकतावाद को छोड़कर समाजवाद को ध्येय के रूप में स्वीकार कर लिया। इसका यह मतलब नहीं कि उन्होंने मार्क्सवाद को पूरी तरह से समझ लिया था। अतीत के प्रभाव से अभी पूरी तरह छुटकारा नहीं मिल पाया था।

कानपुर के साथी भी ठीक उसी दिशा में आगे बढ रहे थे, हालाँकि उनकी आगे बढ़ने की गति में वह तेजी नहीं थी जो लाहौर के साथियों में थी। कांनपुर में राधामोहन गोकुलजी, सत्य भक्त और मौलाना हसरत मोहानी अपने को कम्युनिस्ट कहते थे। इनमें से राधामोहन जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके पास पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। अध्ययनशील व्यक्ति होने के साथ ही वे एक सशक्त लेखक भी थे। 1927 में उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी—*कम्युनिज्म क्या है ?* सरल और सीधी-सादी भाषा में इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने हिन्दी के पाठकों के सामने कम्युनिस्ट सिद्धान्त के प्रमुख मुद्दों को प्रस्तुत किया था। इन पंक्तियों के लेखक को भी कम्युनिज्म का पहला सबक राधामोहन जी से ही मिला था। राधामोहन जी कट्टर नास्तिक थे। ईश्वर, धर्म, अन्धविश्वास आदि पर उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में काफी कुछ लिखा था। उनका यह रूप देखकर हिन्दी के उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने उन्हें 'आधुनिक चार्वाक' कहकर पुकारा था।

सत्य भक्त का कम्युनिज्म अध्यात्मवादी रंग का था और मौलाना हसरत मोहानी के विचार कम्युनिज्म और इस्लाम की खिचड़ी कहे जा सकते हैं। इन कमजोरियों के बावजूद सोवियत रूस और साम्यवाद को हिन्दी भाषा-भाषी जनता के बीच जनप्रिय बनाने में इन तीनों की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। कानपुर के युवा क्रान्तिकारियों ने समाजवाद की प्रथम दीक्षा इन्हीं महानुभावों से प्राप्त की थी। शौकत उस्मानी भी विजय कुमार सिन्हा के माध्यम से कानपुर ग्रुप के सम्पर्क में थे, लेकिन हम लोगों को उनसे किसी प्रकार का सैद्धान्तिक मार्गदर्शन नहीं मिल सका था। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी से भी, जो कानपुर की बहुत बड़ी मशहूर हस्ती थे, क्रान्तिकारियों को हर तरह की सहायता मिलती रहती थी। वे राजनीतिक अध्ययन और जनता के बीच काम पर विशेष रूप से बल देते थे।

इस सबके परिणामस्वरूप कानपुर के साथियों का झुकाव भी समाजवाद की तरफ हो गया था। लेकिन यह झुकाव बुद्धिसंगत होने के बजाय भावात्मक अधिक था। उस समय तक कानपुर ग्रुप चन्द्रशेखर आजाद और कुन्दनलाल गुप्त से सम्पर्क स्थापित कर

चुका था। यह दोनों साथी काकोरी षड्यन्त्र केस में फरार घोषित किये जा चुके थे।

यह थी पृष्ठभूमि जब 1928 के आरम्भ में भगतसिंह ने विभिन्न दलों को मिलाकर क्रान्तिकारियो का एक अखिल भारतीय संगठन बनाने का विचार अपने साथियों के सामने रखा। उनके प्रस्ताव इस प्रकार थे : (क) समय आ गया है कि हम समाजवाद को साहस के साथ अपना अन्तिम लक्ष्य घोषित करें; (ख) पार्टी का नाम तदनुसार बदला जाना चाहिए ताकि लोग जान सकें कि हमारा अन्तिम लक्ष्य क्या है; (ग) हमें सिर्फ उन्हीं कामों को हाथ में लेना चाहिए जिनका सीधा सम्बन्ध जनता की जरूरतो और भावनाओं से हो सकता है, और हमें मामूली पुलिस अधिकारियों अथवा भेदियों को मारने में अपनी शक्ति और समय का अपव्यय नहीं करना चाहिए; (घ) धन के लिए हमें सरकारी खजाने पर ही हाथ डालना चाहिए और यथासम्भव निजी घरों पर कार्रवाई नहीं करनी चाहिए: और (ङ) सामूहिक नेतृत्व के सिद्धान्त का कड़ाई से पालन करना चाहिए।

भगतसिह ने इन सब मुद्दों पर लाहौर और कानपुर के अपने साथियों के साथ विचार-विमर्श किया और चन्द्रशेखर आजाद तथा कुन्दनलाल की सहमति भी ले ली। इसके बाद यह तै किया गया कि विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों की एक बैठक 8 और 9 सितम्बर, 1928 को दिल्ली में आयोजित की जाय। पाँच प्रान्तों के प्रतिनिधियों को इसके लिए आमन्त्रित किया गया, लेकिन इनमें से चार प्रान्तो ने ही अपनी स्वीकृति दी। बंगाल को मीटिंग में भाग लेने के लिए हम राजी नहीं कर पाये।

इस सम्बन्ध में एस. एन. मजूमदार ने लिखा है कि "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के बंगाल के प्रतिनिधियों ने मीटिंग में भाग नहीं लिया क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि वे आतंकवाद तथा हिसा के खिलाफ थे।" यह सही नहीं है। पार्टी की ओर से स्वयं मुझे ही अगस्त 1928 के अन्तिम सप्ताह में कलकत्ता भेजा गया था ताकि बंगाल के साथियों के साथ प्रस्तावों पर बातचीत करके उन्हें दिल्ली मीटिंग में आने के लिए आमंत्रित किया जा सके। सम्पर्क मिला था वाराणसी के एक तारापद भट्टाचार्य से। कलकत्ते में मेरा परिचय जिन सज्जन से कराया गया उनके बारे में कहा गया कि वे अभी-अभी जेल से छूटकर आये हैं। देखने से वे बुजुर्ग लगते थे, उनका शरीर मोटा और थुलथुला था और उनका व्यवहार बड़ा ही अरुचिकर था। उनकी बातचीत और हाव-भाव से मुझे यह समझने में देरी नहीं लगी कि मैं जिस व्यक्ति से मिल रहा हूँ, वह तानाशाही प्रवृत्तिवाला एक दम्भी एवं बड़ा अहंकारी व्यक्ति है। चार-पाँच नौजवान लड़के जो बराबर वहाँ मौजूद रहे, उन्हें सुशील दा कहकर सम्बोधित करते थे। मैंने जैसे ही उनके कमरे में प्रवेश किया वैसे ही उन्होंने यू. पी. के ग्रुप को काकोरी काण्ड के लिए डाटना-फटकारना शुरू कर दिया, "तुम लोगों ने यह काम हम लोगों से पूछे बगैर क्यों किया ? और अब सारा संगठन चौपट कर देने के बाद हमसे सहायता माँगने यहाँ आने से क्या फायदा ?" मैंने उनसे कहा कि मैं आपसे कोई सहायता माँगने नहीं आया हूँ बल्कि कुछ मुद्दों पर बातचीत करने और आपको दिल्ली मीटिंग के लिए आमंत्रिन करने आया हूँ।

इसके बाद मैंने एक-एक करके सभी प्रस्तावों के बारे में उन्हें बतलाया और उनसे दिल्ली मीटिंग में भाग लेने का अनुरोध किया । उन्होंने कहा कि वे अपनी शर्तों पर ही मीटिंग में भाग ले सकेंगे और मुझसे यह आश्वासन माँगा कि उनकी शर्तें मान ली जायेंगी । उनकी शर्तें इस प्रकार थीं; (क) कि हम लोग समाजवाद या कम्युनिज्म से कोई सरोकार नहीं रखेंगे; (ख) कि पार्टी का नाम नहीं बदला जायगा; (ग) कि हमें सरकार से सीधे भिड़ा देनेवाले काकोरी जैसे काम भविष्य में हमसे पूछे बगैर नहीं किये जायेंगे; (घ) कि केन्द्रीय कमेटी जैसी कोई चीज नहीं होगी और हम लोगों को केवल उन्हीं के माध्यम से बंगाल के मातहत रहकर काम करना होगा; (ङ) कि हम लोगों को अपनी गतिविधियाँ सिर्फ संगठन बनाने, हथियार और पैसा जमा करने तक ही सीमित रखनी होंगी; (च) कि पैसे के लिए सिर्फ अराजनीतिक कामों की ही इजाजत होगी । मैंने उन्हें इस बात पर राजी करने की कोशिश की कि वे बगैर किसी प्रकार की शर्तें लगाये खुले दिल से मीटिंग में आयें और सभी बातों पर बहस में हिस्सा लें । उन्होंने मेरी बात मानने से साफ इनकार कर दिया । चूँकि उनकी सभी शर्तें हमारे प्रस्तावों से बिलकुल भिन्न थीं इसलिए मैंने विनम्रतापूर्वक उनकी शर्तें मानने से इनकार कर दिया । इन कारणों से दिल्ली मीटिंग बगाल के साथियों की अनुपस्थिति में ही करनी पड़ी ।

दिल्ली मीटिंग और उसके बाद

आठ सितम्बर, 1928 को मीटिंग में भाग लेने के लिए चार प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करनेवाले कुल मिलाकर दस साथी कोटला फिरोजशाह में जमा हुए थे । इनमें दो बिहार से, दो पंजाब से; एक राजस्थान से और पाँच संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) से थे । यू. पी. के पाँच साथियों में से भी दो ने मीटिंग में बैठने से इनकार कर दिया क्योंकि बाकी साथियों ने उनकी कुछ शर्तें नहीं मानीं । इस प्रकार केवल आठ साथियों ने ही बातचीत में भाग लिया । आजाद को सुरक्षा की दृष्टि से दिल्ली नहीं लाया गया था । लेकिन उनसे सभी मुद्दों पर पूर्वस्वीकृति प्राप्त कर ली गयी थी । मीटिंग में दो दिन की बहस के बाद भगतसिंह द्वारा रखे गये सभी प्रस्तावों को दो के खिलाफ छः के बहुमत से स्वीकार कर लिया गया । फणीन्द्रनाथ घोष और मनमोहन बनर्जी (दोनों बिहार से) ने समाजवाद को पार्टी के अन्तिम लक्ष्य के रूप में अपनाये जाने और पार्टी का नाम बदलने के प्रस्ताव का विरोध किया । आगे चलकर जब दिसम्बर 1928 में भगतसिंह कलकत्ता गये और त्रैलोक्य चक्रवर्ती तथा प्रतुल गांगुली, जो उस समय तक जेल से छूटकर बाहर आ चुके थे, से मिले तो उन्होंने बतलाया कि दिल्ली मीटिंग के लिए बंगाल को आमंत्रित करने जो साथी पहले आये थे, उनको दुर्भाग्यवश एक गलत आदमी से मिला दिया गया था । भगतसिंह ने दोनों नेताओं को दिल्ली के फैसलों से अवगत कराया और सभी मुद्दों पर उनकी सहमति भी प्राप्त कर ली । वे हम में से कुछ साथियों को बम बनाने का प्रशिक्षण

देने के लिए यतीन्द्रनाथ दास को आगरा भेजने के लिए भी सहमत हो गये।

1928 के आते-आते हम लोगों ने समाजवाद को सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया था, लेकिन अमल में हम पर अतीत का साया अब भी हावी था। फिर भी यह कहना गलत होगा कि सांडर्स वध और केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकने के पीछे भगतसिंह की किसी प्रकार की मानसिक कुण्ठा या निराशा काम कर रही थी, जैसा कि एस.एन. मजूमदार ने साबित करने की कोशिश की है। वे लिखते हैं: "त्रैलोक्य चक्रवर्ती ने उन्हें (भगतसिंह को) पाँच हजार की एक युवा वालंटियर वाहिनी संगठित करने की सलाह दी, जैसी कि कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के समय (दिसम्बर 1928) संगठित की गयी थी। चक्रवर्ती ने आगे लिखा है कि भगतसिंह ने उनकी सलाह पर अमल करने की कोशिश की लेकिन असफल रहा। इसने उसके दिमाग में कुण्ठा और निराशा को जन्म दिया और कुछ सनसनीखेज काम की अनिवार्य आवश्यकता के बारे में उसके विश्वास को और पक्का कर दिया। शीघ्र ही उसके बाद असेम्बली में बम फेंकने की घटना हुई।"[32]

यह सारी कहानी तथ्यों से मेल नहीं खाती है। पहली बात तो यह कि भगतसिंह ने कभी कोई बड़ा राजनीतिक कदम पार्टी की केन्द्रीय कमेटी को विश्वास में लिए बगैर नहीं उठाया। पाँच हजार नौजवानों की एक वालंटियर सेना गठित करने का प्रश्न कभी भी केन्द्रीय समिति के सामने बहस के लिए नहीं आया। दूसरी बात यह कि इस प्रकार की किसी वालंटियर सेना का विचार एक हवा में पुल बाँधने जैसा विचार था। चार-पाँच दिनों के लिए थैलियों के सहारे खुले तौर पर पाँच हजार की वालंटियर सेना खड़ी कर लेना एक बात थी, लेकिन गुप्त क्रान्तिकारी काम के लिए राजनीतिक तौर पर सजग, प्रशिक्षित और अनुशासित नौजवानों की इतनी बड़ी सेना कुछ महीनों में खड़ी कर लेना सम्भव भी नहीं था। यहाँ यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि भगतसिंह कलकत्ते से जनवरी 1929 के पहले सप्ताह में वापस आये। फरवरी में जब यतीन्द्रनाथ दास आगरा आये तो हममे से हर कोई किसी न किसी रूप में बम फैक्ट्री स्थापित करने के काम में व्यस्त हो गया था। फिर मेरठ की गिरफ्तारियों से पहले फरवरी के अन्त में आगरा में ही असेम्बली में बम फेंकने का फैसला लिया गया। ऐसी स्थिति में भगतसिंह का त्रैलोक्य बाबू की सलाह पर अमल करने का प्रयास करना, विफल होना, निराशा और पस्ती का शिकार होना आदि का प्रश्न नहीं उठता था। इस प्रकार की असफलता, निराशा, कुण्ठा आदि की मनगढ़ंत बातों से असेम्बली में बम फेंकने के काम का राजनीतिक महत्त्व ही समाप्त हो जाता है और वह एक व्यक्ति की कुण्ठा और निराशा का परिणाम मात्र रह जाता है।

ऐसी ही हानिकारक और असेम्बली में बम फेंकने के महत्त्व को कम करनेवाली कहानी मन्मथनाथ गुप्त ने दी है। सुखदेव राज, जो 1928 और 29 के पूर्वार्ध में कहीं भी तसवीर में नही था, द्वारा प्रसारित एक सौ फीसदी मनगढ़ंत कहानी को आधार बनाकर

गुप्त जी ने कहा है कि पार्टी असेम्बली में बम फेंकने के लिए सुखदेव तथा बटुकेश्वर दत्त को भेजने के पक्ष में थी। लेकिन भगतसिंह के प्रति व्यक्तिगत ईर्ष्या के कारण उसने भगतसिंह को बी.के. दत्त के साथ जाने के लिए मजबूर कर दिया। चन्द्रशेखर आजाद और दूसरे लोग निकल आने के पक्ष में थे। लेकिन भगतसिंह इसके लिए राजी नहीं हुए। उनका तर्क था कि जनता को जगाने के लिए उच्चतम बलिदान की आवश्यकता है।[33]

यहाँ पर यह कहना ही गलत है कि असेम्बली में बम फेंकने के लिए सुखदेव को चुना गया था। आगरे में केन्द्रीय कमेटी की पहले दिन की मीटिंग में जो दो नाम तै हुए थे, वे थे बटुकेश्वर दत्त और विजय कुमार सिन्हा। इस काम के लिए किसी भी स्तर पर सुखदेव का नाम कमेटी में विचारार्थ नहीं आया। हमारे सामने विचार-विमर्श का मुख्य विषय राजनीति था न कि व्यक्तिगत ईर्ष्या या वैरभाव, जो सौभाग्यवश उस समय हमारे बीच में नही था। इसमें संदेह नहीं कि असेम्बली में बम फेंकने के लिए विजय कुमार सिन्हा के स्थान पर भगतसिंह को भेजने के लिए सुखदेव पूरी तरह उत्तरदायी था। उसने यह इसलिए किया क्योंकि वह ईमानदारी के साथ विश्वास करता था कि भगतसिंह के अलावा और किसी के जाने से काम का राजनीतिक उद्देश्य पूरा नही होगा। जहाँ तक उच्चतम बलिदान का सवाल है, क्रान्तिकारी आन्दोलन में बलिदान की कमी नहीं रही (और हर बलिदान उच्चतम होता है)। ऐसा नहीं था कि भगतसिंह एक निराश एवं विफल मनोरथ नौजवान था, जिसने असेम्बली में बम फेंककर आत्महत्या करने का एक आसान रास्ता निकाल लिया था।

असेम्बली में बम फेंकने का फैसला कैसे और कब लिया गया?

राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के इतिहास में तीसरे दशक के अंतिम वर्ष, खासकर 1928-30 के वर्ष, बड़े ही महत्त्वपूर्ण थे। यही समय था जब वामपन्थी शक्तियों ने संगठित रूप से एवं दृढ़तापूर्वक बोलना आरम्भ कर दिया था। सर्वहारा वर्ग की बड़ी-बड़ी जुझारू हड़तालों ने देश-व्यापी रूप धारण कर लिया था। मजदूरों की संगठित ट्रेड यूनियन गतिविधियाँ बढ़ती जा रही थीं, जिसके फलस्वरूप मजदूर काम की हालतों में सुधार और मजदूरी में बढ़ोतरी के लिए और अधिक मुस्तैदी के साथ संघर्ष करने की स्थिति में आ गये थे। मजदूरों, नौजवानों और विद्यार्थियों में कम्युनिस्टों का प्रभाव तेजी के साथ बढ़ रहा था : देश में पहली बार बाएँ बाजू का राजनीतिक आन्दोलन सर उठा रहा था। उस समय की युवा पीढ़ी की सोच की दिशा का वर्णन करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है, "बुद्धिजीवियों, यहाँ तक कि सरकारी अफसरों में भी साम्यवाद और समाजवाद के अस्पष्ट विचार फैल चुके थे। कांग्रेस के नौजवान पुरुष और महिलाएँ, जो पहले 'ब्राइस आन डिमोक्रेसी', मार्ले और कीथ और मैजिनी पढ़ा करते थे, अब जब भी उन्हें उपलब्ध होतीं तो समाजवाद, कम्युनिज्म और रूस पर किताबें पढ़ते थे : इन नये विचारों की तरफ

लोगों का रुझान पैदा करने में मेरठ षड्यन्त्र केस ने काफी सहायता पहुँचाई थी। विश्व-आर्थिक संकट ने भी लोगों को इस तरफ ध्यान देने के लिए मजबूर कर दिया था। चारों तरफ जिज्ञासा की एक नयी भावना स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थी—मौजूदा संस्थाओं के प्रति एक प्रश्नवाचक और चुनौती भरी जिज्ञासा। उस मानसिक तूफान का आम रुख स्पष्ट था। लेकिन वह अभी एक हल्की बयार थी—स्वयं अपने से अनभिज्ञ।''[34]

अंग्रेज साम्राज्यवादियों को इस सबसे चिन्ता हुई और उन्होंने आन्दोलन को प्रारम्भ में ही कुचल देने का फैसला किया। अधिकारी कितने घबड़ाये हुए थे और सरकार का दिमाग किस तरह काम कर रहा था, यह देखने के लिए एक मिसाल ही पर्याप्त होगी। गुप्तचर ब्यूरो के निदेशक सर डेविड पेट्रिक ने 'भारत में कम्युनिज़्म' पर अपनी रिपोर्ट में, जिसे उन्होंने 1926 में तैयार किया था, 'बोल्शेविक अभिशाप' के स्वरूप का नीचे लिखे शब्दों में वर्णन किया है : ''सन् 1920 में तीसरी इन्टरनेशनल ने अपनी दूसरी कांग्रेस में जो थीसिस पास की थी उसमें सर सेसिल केए ने भारत के खिलाफ एक सुनिश्चित षड्यन्त्र के कीटाणुओं को ठीक ही पहचाना था। उस थीसिस में कहा गया था, ''उपनिवेशिक और अर्ध-उपनिवेशिक देशों का राष्ट्रीय आन्दोलन वस्तुगत दृष्टिकोण से और बुनियादी तौर पर क्रान्तिकारी संघर्ष है, और इसलिए वह विश्व-क्रान्तिकारी संघर्ष का हिस्सा है।'' इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता ''कि ग्रेट ब्रिटेन ने बोल्शेविक हमले का मुख्य प्रहार अपने ऊपर लिया है '' क्योंकि वह विश्व-क्रान्ति, जिसे बोल्शेविक लोग अपनी अन्तिम सफलता के लिए जरूरी शर्त मानते हैं, के खिलाफ मुख्य किलों में से एक है। बोल्शेविकों का यह विश्वास है कि ब्रिटिश साम्राज्य में भारत सबसे कमजोर बिन्दु है। और वे इसे धार्मिक विश्वास के रूप में दिल में सँजोये हुए हैं कि जब तक भारत आजाद नही हो जाता तब तक रूस इंगलैण्ड के अभिशाप से मुक्त नहीं हो सकेगा।''[35]

जे. क्रेरर ने, जो उस समय भारत सरकार के होम मेम्बर थे, कहा था कि एक व्यवस्थित समाज के लिए कम्युनिज्म के सिद्धान्त और अमल से अधिक विध्वंसक और कोई चीज नही हो सकती।[36]

कम्युनिज्म, बाएँ बाजू की शक्तियों और श्रमिक वर्ग के आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार ने केन्द्रीय असेम्बली में दो बिल पेश करने का फैसला किया—पब्लिक सेफ्टी बिल और ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल। पहला बिल उन लोगों के खिलाफ था जो ब्रिटिश-भारत या किसी भारतीय रजवाड़े के निवासी नहीं थे। पहले बिल में गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया था कि वह अंग्रेज या अन्य विदेशी कम्युनिस्ट को भारत से निकाल दें। दूसरे बिल का उद्देश्य मजदूरों के ट्रेड यूनियन अधिकारों की कटौती करना था।

असेम्बली में पूरे विरोध पक्ष ने, जनता ने और प्रेस ने दोनों बिलों का जमकर विरोध किया। इस चौमुखी विरोध को नजरअन्दाज करते हुए सरकार ने 6 सितम्बर, 1928 को

पब्लिक सेफ्टी बिल असेम्बली में पेश किया । 24 सितम्बर को सदन ने उसे नामंजूर कर दिया । जनवरी 1929 में कुछ फेरबदल के साथ सरकार ने उसे फिर असेम्बली के सामने रखा ।[37]

जिस समय समाचार पत्रों में यह खबर छपी कि सरकार ने बिल को असेम्बली में फिर से पेश करने का फैसला कर लिया है उस समय भगतसिह आगरे में था । समाचार पर उसकी जो प्रतिक्रिया हुई वह बड़ी तीखी थी । उसने कहा कि सरकार के इस मनमानेपन के खिलाफ प्रतिवाद के रूप में कुछ-न-कुछ जरूर करना चाहिए । वह लाहौर गया, सुखदेव के साथ अपने प्रस्तावों पर बात की, वापस आया, केन्द्रीय कमेटी की बैठक बुलायी और उसके सामने अपने प्रस्ताव रखे । संक्षेप मे उसके प्रस्ताव इस प्रकार थे : (1) पार्टी को असेम्बली में बम फेंककर सरकार के इस सख्त एव हठी रवैये का विरोध करना चाहिए; (2) इस काम को करने के लिए जो साथी तैनात किये जाएँ वे काम के बाद भागने की कोशिश करने के बजाय वहीं आत्मसमर्पण कर दें और केस के दौरान अदालत को पार्टी के उद्देश्यो के प्रचार के लिए मंच के तौर पर इस्तेमाल करें; और (3) इस फैसले को कार्यान्वित करने के लिए एक और साथी के साथ उसे स्वयं जाने की अनुमति दी जाय । भगतसिह के पहले दो सुझावों का केन्द्रीय कमेटी के सभी सदस्यों ने स्वागत किया । लेकिन उसका तीसरा सुझाव किसी ने भी नहीं माना । यह मीटिंग आगरे में हुई थी और पहले दिन सुखदेव उसमें उपस्थित नहीं था । वह दूसरे दिन आया । सुखदेव के आ जाने पर भगतसिह को बल मिला और काफी बहस के बाद अन्त में कमेटी ने भगतसिह का तीसरा प्रस्ताव भी मान लिया ।

दूसरा बिल (ट्रेड डिस्प्यूट बिल) असेम्बली मे 4 सितम्बर, 1928 को पेश किया गया था । सदन ने उसे सेलेक्ट कमेटी के पास भेज दिया । वहाँ से कुछ फेर-बदल के साथ उसे 2 अप्रैल, 1929 को बहस के लिए असेम्बली के सामने फिर लाया गया । सदन ने 8 अप्रैल को 38 के खिलाफ कुछ वोटों से उसे पास कर दिया । जैसे ही अध्यक्ष महोदय वोटिंग का परिणाम घोषित करने के लिए उठे वैसे ही भगतसिह और बटुकेश्वर दत्त ने दर्शक दीर्घा से असेम्बली भवन में बम फेंके और नारे लगाने के साथ-साथ पर्चे भी गिराये, जिनमें बम फेंकने के राजनीतिक उद्देश्य को स्पष्ट किया गया था । यह पर्चा उसी दिन *हिन्दुस्तान टाइम्स* के संध्याकालीन परिशिष्ट में प्रकाशित हो गया था। यह हमें क्रान्तिकारी आन्दोलन के एक छोटे दौर में पहुँचा देता है, जिसका जिक्र लोग कभी-कभी आतंकवादी-साम्यवाद या टेरो-कम्युनिज्म के नाम से करते हैं ।

टेरो-कम्युनिज्म या आतंकवादी-साम्यवाद

लाहौर तथा कानपुर के क्रान्तिकारियों ने 1926-27 से ही समाजवाद की ओर बढ़ना शुरू कर दिया था । आठ-नौ सितम्बर 1928 की दिल्ली मीटिंग में हालाँकि समाजवाद को

सिद्धान्त के रूप में और समाजवादी समाज की स्थापना को अन्तिम उद्देश्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया था, अमल में हम लोग उसी पुराने व्यक्तिवादी ढंग के कामों में ही लगे रहे। हम मजदूरों, किसानों, युवकों, और मध्यमवर्ग के बुद्धिजीवियों को संगठित करने की बात तो करते थे लेकिन पंजाब में नौजवान भारत सभा के गठन को छोड़कर और कहीं भी संजीदगी के साथ उस दिशा में कदम उठाने की कोशिश नहीं की गयी। उस मानी में हमारी वैज्ञानिक समाजवाद अर्थात मार्क्सवाद की समझ अधकचरी थी। मार्क्सवाद अमल को सिद्धान्त से अलग करने की इजाजत नहीं देता, यह बात हम समझ नहीं पाये थे और यह कि उसमें व्यक्तिगत कामों के लिए कोई स्थान नहीं है। हम हिंसात्मक गतिविधियों को, जिसमें जालिम सरकारी अधिकारियों की हत्या और छुट-पुट विद्रोह शामिल थे, मजदूरों, किसानो, युवकों और विद्यार्थियों के जन-संगठन बनाने के काम से मिलाना चाहते थे। लेकिन अमल में हमारा जोर हिंसात्मक गतिविधियों और सशस्त्र कामों की तैयारी तक ही सीमित रहा। हमारा विश्वास था कि लोगों को नींद से जगाने के लिए और सरकारी दमन का जवाब देने के लिए यह सब आवश्यक है। काग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के अवसर पर दिसम्बर, 1928 में भगतसिह ने का. सोहनसिह जोश से कहा था "हम आपकी पार्टी के कामों से और उसके कार्यक्रम से सौ फीसदी सहमत हैं, लेकिन कभी-कभी ऐसे भी क्षण आते हैं जब जनता में विश्वास की भावना जाग्रत करने के लिए दुश्मन के प्रहार का सशस्त्र कामों द्वारा तत्काल जवाब देना आवश्यक हो जाता है।"[38] उस समय हमारे दिमाग इसी तरह काम कर रहे थे। हमारी समझ में निहित अन्तर्विरोध का अपना तर्क था। मजदूरों-किसानों को संगठित करने का हमारा फैसला केवल एक पवित्र इरादा बनकर ही रह गया। हमारी शक्ति का अधिकाश हिस्सा प्रतिशोधात्मक कामों को संगठित करने में ही ज़ाया हुआ।

हमारी गलत समझ को ठीक करने का एक प्रयास तीसरी इण्टरनेशनल ने किया था। यह प्रयास विदेश में गठित भारत की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा "राष्ट्रवादियों से अपील" के जरिये किया गया था। यह अपील 15 दिसम्बर, 1924 के *वानगार्ड* के परिशिष्ट में प्रकाशित हुई थी। अपील मे क्रान्तिकारियों के बारे में कहा गया था :

"गुप्त संस्थाओं द्वारा किये जानेवाले छुट-पुट आतंकवादी काम भी कुछ कम प्रभावहीन नहीं हैं। इस प्रकार के व्यर्थ के उग्रवाद को अपनानेवालों की क्रान्ति की समझ भी उतनी ही गलत है। समाज की मौजूदा स्थिति में ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती है कि राजनीतिक और सामाजिक क्रान्तियाँ अहिंसात्मक होंगी या उनमें रक्तपात नहीं होगा। लेकिन हर रक्तपात या हिंसात्मक काम को क्रान्ति नहीं कहा जा सकता। एक खास सामाजिक व्यवस्था को या राजनीतिक संस्था को उसके चन्द समर्थकों को मारकर कभी भी समाप्त नहीं किया जा सकता है। और यह तो और भी नामुमकिन है कि थोड़े-से सरकारी अफसरों को मारकर या ब्रिटिश पार्लियामेन्ट से बहुत से सुधार पास करवाकर

देश की आजादी हासिल की जा सके। यह दोनों उपाय समान रूप से प्राणहीन हैं, क्योंकि इनमें से कोई भी बुराई की जड़ पर चोट नहीं करते। दोनों ही राजनीतिक भूल हैं। लेकिन आतकवादियों को 'क्रान्तिकारी अपराधी' कहना निपट मूर्खता है, क्योंकि 'संवैधानिकतावादी' निश्चित रूप से गैर-क्रान्तिकारी हैं और निर्णायक घड़ी आते ही वे प्रतिक्रियावादी हो जायेंगे।"[39]

उसी लेख में दूसरी जगह पर क्रान्ति की सही-सही परिभाषा दे दी गयी थी:

"क्रान्ति क्या है? भारत के राष्ट्रीय हलकों में इसके बारे मे एक बड़ी गलत धारणा बनी हुई है। आमतौर पर क्रान्ति को बम, रिवाल्वर और गुप्त संस्थाओं से जोड़ दिया जाता है। भारतीय राजनीतिक शब्दकोष में बहु-प्रचलित वाक्य 'क्रान्तिकारी अपराध' क्रान्ति की इसी गलत अवधारणा की उपज है। बहरहाल, क्रान्ति इस सबसे कहीं अधिक गम्भीर समस्या है। क्रान्ति एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है, जो प्रस्तुत ऐतिहासिक युग का अन्त और उसके स्थान पर एक नये युग का शुभारम्भ करती है। चूकि जानेवाले समाज के प्रतिनिधि या दलाल, आर्थिक वर्ग और राजनीतिक संस्थाएँ, जो उस समाज में प्रचलित हालतों से लाभान्वित होते रहे हैं, एक भयानक प्रतिरोध के बगैर ऐसा कोई परिवर्तन नहीं होने देगे जिससे उनके प्रभुत्व का अन्त हो जाय और, जैसा कि आम तौर पर होता है, जिसका अन्त उनके चौमुखी विनाश में हो जाय। इसीलिए आम तौर पर राजनीतिक हिसा और सामाजिक उथल-पुथल 'क्रान्ति' कहलानेवाली ऐतिहासिक घटना के अंग बन जाते है।"[40]

सन् 1925 में यंग कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल ने बंगाल के युवा क्रान्तिकारी संगठन के नाम एक अपील शाया की थी। यह यंग कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के घोषणापत्र के रूप में थी जो *मासेज* के जिल्द 1, नम्बर 7 में प्रकाशित हुआ था। घोषणापत्र में इस बात को स्वीकार किया गया था कि पूर्व के क्रान्तिकारी नौजवान राष्ट्रीय आजादी की लड़ाई में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। जनता के लिए अपना जीवन बलिदान करनेवाले 'हीरो-आतंकवादी' के साहस और बहादुरी के प्रति गहरा आदर व्यक्त करते हुए घोषणापत्र ने कहा था कि "एक क्रान्तिकारी जो जनता के लिए लड़ रहा है उसे नैतिक अधिकार है कि वह जनता का गला घोंटनेवालों और जल्लादों को रास्ते से हटा दें।"[41]

दुर्भाग्यवश इनमें से कोई भी दस्तावेज उस समय हमें नहीं मिला और हमें अपने अनुभवों के सहारे ही आगे बढ़ना पड़ा। व्यक्तिगत कामों का दायरा बहुत सीमित है यह समझने में हमें तीन साल लग गये। हम कदम-ब-कदम समाजवाद की तरफ बढ़ रहे थे। गिरफ्तारी के बाद जेल में काफी समय मिला, पढ़ने के लिए काफी सामग्री मिली, आपस में बहस करने और अपने अतीत पर संजीदगी से सोचने का काफी मौका मिला और तब कहीं जाकर हम सही नतीजे पर पहुँच पाये।

इसका यह मतलब नहीं कि जिस दौर की समीक्षा की जा रही है उसमें सकारात्मक

कुछ था ही नहीं। उसकी कमजोरियों के साथ ही उसके कुछ सकारात्मक और मजबूत पहलू भी थे। मैं अपनी और अपने साथियों की समझ की खास-खास कमियों पर रोशनी डाल चुका हूँ। संक्षेप में फिर से दोहरा दूँ, पहली बात तो यह कि हमारा कम्युनिज्म को स्वीकार करना मार्क्सवाद के सही अध्ययन पर आधारित नहीं था। उस समय देश में जिस प्रकार की स्थिति थी उसमें मार्क्सवाद का अध्ययन आसान भी नहीं था। दूसरी कमजोरी थी मजदूरों और किसानों को संगठित करने और जवाबी आतंकवाद के बीच तालमेल बिठलाने की अव्यावहारिकता को न समझ पाना।

इन सारी कमियों और सीमाओं के बावजूद इस थोड़े समय चलनेवाले चर्चित दौर के खाते में कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी हैं। लाहौर की नौजवान भारत सभा का घोषणापत्र (1928), असेम्बली बम केस के दौरान भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा अदालत के सामने दिया गया बयान (1929), कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के समय बाँटा गया, हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ का घोषणापत्र (दिसम्बर 1929) और बम का दर्शन (जनवरी 1930) उस युग के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि दस्तावेज हैं। इन दस्तावेजों के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' (हिसप्रस) का पहला आगे बढ़ा हुआ कदम था मार्क्सवाद को सिद्धान्त के रूप में और समाजवाद को अन्तिम उद्देश्य के रूप में स्वीकार करना। बंगाल में भी आन्दोलन का रुख यही था, हालाँकि गति अपेक्षाकृत धीमी थी। जिस समय हिसप्रस ने समाजवाद को डंके की चोट पर अपना अन्तिम उद्देश्य घोषित कर दिया था उस समय बंगाल के लगभग सभी क्रान्तिकारी दल और प्रमुख पार्टियाँ इस सवाल पर अनिश्चितता की स्थिति में थे।

समाजवाद को ध्येय के रूप में स्वीकार करने के अलावा इस दौर के क्रान्तिकारी मनुष्य द्वारा मनुष्य के और एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण से मुक्त वर्गहीन समाज के पक्ष में थे। उन्होंने एलान किया कि उनकी लड़ाई सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ ही नहीं है, बल्कि विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था के खिलाफ है। उनके दिलों में सोवियत यूनियन के प्रति प्रगाढ़ आदर और अपनापन था। उनका विश्वास था कि क्रान्ति के बाद जो सरकार बनेगी उसका रूप एक प्रकार की सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का होगा। उन्होंने ईश्वर, धर्म और रहस्यवाद से पूरी तरह छुटकारा पा लिया था। वे धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करते थे और उनका दृष्टिकोण घोर साम्प्रदायिकतावाद-विरोधी था।

असेम्बली बम काण्ड के बाद हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ के अधिकांश साथी गिरफ्तार कर लिए गये। उन्होंने अपने मुकदमे की सुनवाई के दौरान अपने दृष्टिकोण को प्रचारित करने, समाजवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाने और क्रान्तिकारी पार्टी के उद्देश्यों तथा प्रयोजनों को जनता के सामने रखने के लिए अदालत का मंच के रूप में जमकर इस्तेमाल किया।

उनकी यह रणनीति कामयाब हुई। इसके बारे में एस. एन. मजूमदार ने लिखा है :

''हिन्दुस्तान सोसलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन की तमाम गलतियों और कमजोरियों के बावजूद समूचे राष्ट्रीय आन्दोलन में और तरुण क्रान्तिकारियों को साम्यवाद की ओर आकर्षित करने में इस पार्टी के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।''[42]

जी. एस. देओल के अनुसार ''क्रान्तिकारी आन्दोलन का कार्यक्षेत्र चाहे जितना सीमित रहा हो उसने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की गति को एक दूसरी धारा के माध्यम से और तेज किया। ···बेशक यह कहा जा सकता है कि उनके (भगतसिंह और उनके साथियों के—शि. व.) कार्यकलापों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए दिसम्बर 1929 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग करने और पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास करने का पथ प्रशस्त किया।''[43]

देओल के अनुसार क्रान्तिकारियों के कार्यकलापों और संघर्षों ने देश में अत्यन्त विस्फोटक स्थिति पैदा कर दी थी, जिसके कारण कांग्रेस 1930 का असहयोग आन्दोलन शुरू करने के लिए मजबूर हो गयी थी। ''यह आन्दोलन भगतसिंह और उनके साथियों के उग्र आन्दोलन के विकल्प के रूप में शुरू किया गया था। इस मत की पुष्टि महात्मा गाँधी द्वारा 2 मार्च, 1930 को वायसराय को लिखे गये एक पत्र के इस अंश से होती है; 'हिंसावादी पार्टी अपनी जगह बनाती जा रही है और उसने अपने अस्तित्व का एहसास कराना शुरू कर दिया है।' उन्होंने आगे स्पष्ट किया था कि वे जिस तरह का अहिंसक आन्दोलन शुरू करना चाहते हैं उससे न सिर्फ ब्रिटिश हुकूमत की हिंसक शक्ति का बल्कि उभरते हुए हिंसावादी दल की संगठित हिंसक शक्तियों का भी प्रतिरोध किया जा सकेगा।''[44]

वैज्ञानिक समाजवाद की ओर

'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' के अधिकांश प्रमुख नेता 1929 के मध्य तक गिरफ्तार करके जेलों में बन्द कर दिये गये थे, जहाँ उन्हें पढ़ने और विचार-विमर्श करने का भरपूर मौका मिला। इससे उनके अन्दर जो नयी समझ पैदा हुई थी, उसके आधार पर उन्होंने अपने पूरे अतीत को, खासकर वैयक्तिक कार्यकलापों और शौर्य प्रदर्शन के आदर्श को नये सिरे से जाँचा-परखा और अपनी अब तक की कार्य-प्रणाली को छोड़कर समाजवादी क्रान्ति का रास्ता अपनाने का निश्चय किया। गहन अध्ययन और वोर्स्टल जेल में दूसरे साथियों से लम्बे विचार-विमर्श के बाद भगतसिंह इस निर्णय पर पहुँचे कि यहाँ-वहाँ कुछ भेदियों और सरकारी अफसरों की वैयक्तिक हत्याओं से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

भगतसिंह ने 19 अक्टूबर, 1929 को पंजाब स्टूडेंट्स की कांग्रेस के नाम एक संदेश भेजा था जिसमें उन्होंने कहा था—''आज हम नौजवानों को बम और पिस्तौल अपनाने के लिए नहीं कह सकते। ···इन्हें औद्योगिक क्षेत्रों की गन्दी बस्तियों में और गाँवों के

टूटे-फूटे झोंपड़ों में रहनेवाले करोड़ों लोगों को जगाना है।"

2 फरवरी, 1931 को उन्होंने 'युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम' एक अपील लिखी थी जिसमें उन्होंने जनसाधारण के बीच काम करने के महत्त्व को बारम्बार रेखांकित किया था। उन्होंने कहा था, "गाँवों और कारखानों में किसान और मजदूर ही असली क्रान्तिकारी सैनिक हैं।"

इसी अपील में भगतसिंह ने बलपूर्वक इस बात से इनकार किया था कि वे आतंकवादी हैं। उनका कहना था, "मैंने एक आतंकवादी की तरह काम किया है। लेकिन मैं आतंकवादी नहीं हूँ। मैं तो ऐसा क्रान्तिकारी हूँ जिसके पास एक लम्बा कार्यक्रम और उसके बारे में सुनिश्चित विचार होते हैं। मैं पूरी ताकत के साथ बताना चाहता हूँ कि मैं आतंकवादी नहीं हूँ और कभी था भी नहीं, कदाचित उन कुछ दिनों को छोड़कर जब मैं अपने क्रान्तिकारी जीवन की शुरुआत कर रहा था। मुझे विश्वास है कि हम ऐसे तरीकों से कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।" उन्होंने नौजवान राजनीतिक कार्यकर्ताओं को सलाह दी कि वे मार्क्स और लेनिन का अध्ययन करें, उनकी शिक्षा को अपना मार्गदर्शक बनाएँ, जनता के बीच जाएँ, मजदूरों, किसानों और शिक्षित मध्यवर्गीय नौजवानों के बीच काम करें, उन्हें राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित करें, उनमें वर्ग-चेतना उत्पन्न करें, उन्हें यूनियनों में संगठित करें, आदि। उन्होंने नवयुवकों से यह भी कहा कि यह सारा काम तब तक सम्भव नहीं है जब तक जनता की एक अपनी पार्टी न हो। वे किस तरह की पार्टी चाहते थे इसका खुलासा करते हुए उन्होंने लिखा था, "हमें पेशेवर क्रान्तिकारियों की जरूरत है—यह शब्द लेनिन को बहुत प्रिय था—पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं की, जिनकी क्रान्ति के सिवा और कोई आकांक्षा न हो, और न जीवन का कोई दूसरा लक्ष्य हो। ऐसे कार्यकर्ता जितनी बड़ी संख्या में एक पार्टी के रूप में संगठित होंगे, उतनी ही तुम्हारी सफलता की सम्भावनाएँ बढ़ जाएँगी।"

उन्होंने आगे कहा :

"व्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ने के लिए आपको जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता है वह है एक पार्टी जिसके पास जिस टाइप के कार्यकर्ताओं का ऊपर जिक्र किया जा चुका है वैसे कार्यकर्ता हों—ऐसे कार्यकर्ता जिनके दिमाग साफ हों और समस्याओं की तीखी पकड़ हो और पहल करने और तुरन्त फैसला लेने की क्षमता हो। इस पार्टी का अनुशासन बहुत कठोर होगा और यह जरूरी नहीं है कि वह भूमिगत पार्टी हो, बल्कि भूमिगत नहीं होनी चाहिये ··पार्टी को अपने काम की शुरुआत अवाम के बीच प्रचार से करनी चाहिए किसानों और मजदूरों को संगठित करने और उनकी सक्रिय सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यह बहुत जरूरी है। इस पार्टी को कम्युनिस्ट पार्टी का नाम दिया जा सकता है।"

यहाँ भगतसिह खुल्लम-खुल्ला मार्क्सवाद, साम्यवाद और एक साम्यवादी पार्टी की वकालत करते दिखाई देते हैं।

क्रान्ति की परिभाषा

क्रान्ति के सम्बन्ध में भगतसिंह के विचार बहुत स्पष्ट थे । निचली अदालत में जब उनसे पूछा गया कि क्रान्ति शब्द से उनका क्या मतलब है, तो उत्तर में उन्होंने कहा था, ''क्रान्ति के लिए खूनी संघर्ष अनिवार्य नहीं है, और न ही उसमें व्यक्तिगत प्रतिहिंसा का कोई स्थान है । वह बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है । क्रान्ति से हमारा अभिप्राय यह है कि वर्त्तमान व्यवस्था, जो खुले तौर पर अन्याय पर टिकी हुई है, बदलनी चाहिए ।'' अपनी बात को और भी स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था, ''क्रान्ति से हमारा अभिप्राय अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना से है जिसको इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुसत्ता को मान्यता हो तथा एक विश्वसंघ मानव जाति को पूँजीवाद के बन्धन से और साम्राज्यवादी युद्धों से उत्पन्न होनेवाली बरबादी और मुसीबतों से बचा सके ।''

समाजवाद की दिशा में भगतसिंह की वैचारिक प्रगति की रफ्तार बहुत तेज थी । उन्होंने 1924 से 1928 के बीच विभिन्न विषयों का विस्तृत अध्ययन किया था । लाला लाजपत राय की द्वारकादास लाइब्रेरी के पुस्तकाध्यक्ष राजाराम शास्त्री के अनुसार उन दिनों भगतसिंह वस्तुतः ''किताबों को निगला करता था ।'' उनके प्रिय विषय थे रूसी क्रान्ति, सोवियत संघ, आयरलैण्ड, फ्रान्स और भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन, अराजकतावाद और मार्क्सवाद । उन्होने और उनके साथियों ने 1928 के अन्त तक समाजवाद को अपने आन्दोलन का अन्तिम लक्ष्य घोषित कर दिया था और अपनी पार्टी का नाम भी तदनुसार बदल दिया था । उनकी यह वैचारिक प्रगति उनके फाँसी पर चढ़ने के दिन तक जारी रही ।

ईश्वर और धर्म के बारे में

ईश्वर, धर्म तथा रहस्यवाद पर भगतसिंह के विचारों के बारे में कुछ शब्द कहे बगैर यह भूमिका अधूरी रह जायगी। यह इसलिए भी जरूरी है कि आज हर तरह के प्रतिक्रियावादी, रूढ़िवादी और साम्प्रदायिकतावादी लोग भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आजाद के नाम और यश को अपनी निज की राजनीति और विचारधारा के पक्ष में इस्तेमाल करने की कोशिश कर रहे हैं ।

अपने आपको नास्तिक बताते हुए ''भगतसिंह ने शुरू के क्रान्तिकारियों के तरीके और दृष्टिकोण के लिए पूरा सम्मान प्रदर्शित किया है और उनकी धार्मिकता के स्रोतों की पड़ताल की है । वे संकेत करते हैं कि अपने स्वयं के राजनीतिक कार्यों की वैज्ञानिक समझ के अभाव में उन क्रान्तिकारियों को अपनी आध्यात्मिकता की रक्षा करने, वैयक्तिक प्रलोभनों के विरुद्ध संघर्ष करने, अवसाद से उबरने, भौतिक सुखों और अपने परिवारों

तथा जीवन तक को त्यागने की सामर्थ्य जुटाने के लिए विवेकहीन विश्वासों एवं रहस्यवादिता की आवश्यकता थी। एक व्यक्ति जब निरंतर अपने जीवन को जोखिम में डालने और दूसरे सारे बलिदान करने के लिए तत्पर होता है तो उसे प्रेरणा के गहरे स्रोत की आवश्यकता होती है। शुरू के क्रान्तिकारी, आतंकवादियों की यह अनिवार्य आवश्यकता रहस्यवाद और धर्म से पूरी होती थी। लेकिन उन लोगों को ऐसे स्रोतों से प्रेरणा लेने की जरूरत नहीं रह गयी थी जो अपने कामों की प्रकृति को समझते थे, जो क्रान्तिकारी विचारधारा की दिशा में आगे बढ़ चुके थे, जो कृत्रिम आध्यात्मिकता की बैसाखी लगाये बिना अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर सकते थे, जो स्वर्ग और मोक्ष के प्रलोभन और आश्वासन के बिना ही विश्वास के साथ और निर्भीक भाव से फाँसी के तख्ते पर चढ़ सकते थे, जो दलितों की मुक्ति और स्वतन्त्रता के पक्ष में इसलिए लड़े क्योंकि लड़ने के अलावा और कोई रास्ता ही न था।"[46]

असेम्बली बम काण्ड के केस की अपील के दौरान लाहौर हाई कोर्ट में बयान देते हुए भगतसिंह ने विचारों की महत्ता पर बल देते हुए कहा था: "इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज की जाती है," और उसके आधार पर उन्होंने यह सूत्र प्रस्तुत किया कि "आलोचना और वतन्त्र विचार किसी क्रान्तिकारी के दो अपरिहार्य गुण हैं," और यह कि "जो आदमी प्रगति के लिए संघर्ष करता है उसे पुराने विश्वासों की एक-एक बात की आलोचना करनी होगी, उस पर अविश्वास करना होगा और उसे चुनौती देनी होगी। इस प्रचलित विश्वास के एक-एक कोने में झाँककर उसे विवेकपूर्वक समझना होगा।" उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा था कि "निरा विश्वास और अन्धविश्वास खतरनाक है, इससे मस्तिष्क कुण्ठित होता है और आदमी प्रतिक्रियावादी हो जाता है।"

भगतसिंह स्वीकार करते थे कि "ईश्वर में कमजोर आदमी को जबर्दस्त आश्वासन और सहारा मिलता है और विश्वास उसकी कठिनाइयों को आसान ही नहीं बल्कि सुखकर भी बना देता है।" वे यह भी जानते थे कि "आँधी और तूफान में अपने पाँवों पर खड़े रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है।" लेकिन वे सहारे के लिए किसी भी बनावटी अंग के विचार को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करते थे। वे कहते थे, "अपनी नियति का सामना करने के लिए मुझे किसी नशे की जरूरत नहीं है।" उन्होंने एलान किया था कि "जो आदमी अपने पाँवों पर खड़े होने की कोशिश करता है और यथार्थवादी हो जाता है, उसे धार्मिक विश्वास को एक तरफ रखकर, जिन-जिन मुसीबतों और दुखों में परिस्थितियों ने उसे डाल दिया है, उनका एक मर्द की तरह बहादुरी के साथ सामना करना होगा।"

ईश्वर, धार्मिक विश्वास और धर्म को यह तिलांजलि भगतसिंह के लिए न तो आकस्मिक थी और न ही उनके अभिमान या अहम् का परिणाम थी। उन्होंने बहुत पहले 1926 में ही ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार कर दिया था। उन्हीं के शब्दों में, "1926 के अन्त तक मुझे इस बात पर यकीन हो गया था कि सृष्टि का निर्माण, व्यवस्थापन और नियन्त्रण करनेवाली किसी सर्वशक्तिमान परम सत्ता के अस्तित्व का

सिद्धान्त एकदम निराधार है।"

भावना कभी नहीं मरती

वह जुलाई, 1930 का अन्तिम रविवार था। भगतसिंह लाहौर सेन्ट्रल जेल से हमें मिलने के लिए बोर्स्टल जेल आये थे। वे इस तर्क पर सरकार से यह सुविधा हासिल करने में कामयाब हो गये थे कि उन्हे दूसरे अभियुक्तों के साथ बचाव के तरीकों पर बातचीत करनी है। तो उस दिन हम किसी राजनीतिक विषय पर बहस कर रहे थे कि बातों का रुख फैसले की तरफ मुड गया, जिसका हम सबको बेसब्री से इन्तजार था। मजाक-मजाक में हम एक दूसरे के खिलाफ फैसले सुनाने लगे, सिर्फ राजगुरु और भगतसिंह को इन फैसलों से बरी रखा गया। हम जानते थे कि उन्हे फाँसी पर लटकाया जायेगा।

"और राजगुरु और मेरा फैसला ? क्या आप लोग हमें बरी कर रहे हैं ?" मुस्कराते हुए भगतसिंह ने पूछा।

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया।

"असलियत को स्वीकार करते डर लगता है ?" धीमे स्वर में उन्होंने पूछा। चुप्पी छाई रही।

हमारी चुप्पी पर उन्होंने ठहाका लगाया और बोले, "हमे गर्दन से फॉसी के फंदे से तब तक लटकाया जाय जब तक कि हम मर न जाएँ। यह है असलियत। मैं इसे जानता हूँ। तुम भी जानते हो। फिर इसकी तरफ से ऑखे क्यों बन्द करते हो ?"

अब तक भगतसिंह अपने रंग मे आ चुके थे। वे बहुत धीमे स्वर में बोल रहे थे। यही उनका तरीका था। सुननेवालों को लगता था कि वे उन्हें फुसलाने की कोशिश कर रहे हैं। चिल्लाकर बोलना उनकी आदत नहीं थी। यही शायद उनकी शक्ति भी थी।

वे अपने स्वाभाविक अन्दाज में बोलते रहे, "देशभक्ति के लिए यह सर्वोच्च पुरस्कार है, और मुझे गर्व है कि मैं यह पुरस्कार पाने जा रहा हूँ। वे सोचते हैं कि मेरे पार्थिव शरीर को नष्ट करके वे इस देश में सुरक्षित रह जायेंगे। यह उनकी भूल है। वे मुझे मार सकते हैं, लेकिन मेरे विचारो को नहीं मार सकते। वे मेरे शरीर को कुचल सकते हैं, लेकिन मेरी भावनाओं को नहीं कुचल सकेंगे। ब्रिटिश हुकूमत के सिर पर मेरे विचार उस समय तक एक अभिशाप की तरह मॅडराते रहेंगे जब तक वे यहाँ से भागने के लिए मजबूर न हो जाएँ।"

भगतसिंह पूरे आवेश में बोल रहे थे। कुछ समय के लिए हम लोग भूल गये कि जो आदमी हमारे सामने बैठा है वह हमारा सहयोगी है। वे बोलते जा रहे थे : "लेकिन यह तसवीर का सिर्फ एक पहलू है। दूसरा पहलू भी उतना ही उज्ज्वल है। ब्रिटिश हुकूमत के लिए मरा हुआ भगतसिंह जीवित भगतसिंह से ज्यादा खतरनाक होगा। मुझे फाँसी हो

जाने के बाद मेरे क्रान्तिकारी विचारों की सुगन्ध हमारे इस मनोहर देश के वातावरण में व्याप्त हो जाएगी। वह नौजवानों को मदहोश करेगी और वे आजादी और क्रान्ति के लिए पागल हो उठेंगे। नौजवानों का यह पागलपन ही ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को विनाश के कगार पर पहुँचा देगा। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं बेसब्री के साथ उस दिन का इन्तजार कर रहा हूँ जब मुझे देश के लिए मेरी सेवाओं और जनता के लिए मेरे प्रेम का सर्वोच्च पुरस्कार मिलेगा।"

भगतसिंह की भविष्यवाणी एक साल के अन्दर ही सच साबित हुई। उनका नाम मौत को चुनौती देनेवाले साहस, बलिदान, देशभक्ति और संकल्पशीलता का प्रतीक बन गया। समाजवादी समाज की स्थापना का उनका सपना शिक्षित युवकों का सपना बन गया और 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का उनका नारा समूचे राष्ट्र का युद्धनाद हो गया। 1930-32 में जनता एक होकर उठ खड़ी हुई। कारागार, कोड़े और लाठियों के प्रहार उसके मनोबल को तोड़ नहीं सके। यही भावना, इससे भी ऊँचे स्तर पर, 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान दिखाई दी थी। भगतसिंह का नाम होंठों पर और उनका नारा अपने झण्डों पर लिए हुए किशोरों और बच्चों ने गोलियों का सामना इस तरह किया मानो वे मक्खन की बनी हुई हों। पूरा राष्ट्र पागल हो उठा था। और फिर आया 1945-46 का दौर जब विश्व ने सर्वथा एक नये भारत को करवटें बदलते देखा। मजदूर, किसान, छात्र, नवयुवक, नौसेना, थलसेना, वायुसेना और पुलिस तक—सब कड़ा प्रहार करने के लिए आतुर थे। निष्क्रिय प्रतिरोध की जगह सक्रिय जवाबी हमले ने ले ली। बलिदान और यातनाओं को सहन करने की जो भावना 1930-31 तक थोड़े-से नौजवानों तक सीमित थी, अब समूची जनता में दिखाई दे रही थी। विद्रोह की भावना ने पूरे राष्ट्र को अपनी गिरफ्त में जकड़ लिया था। भगतसिंह ने ठीक ही तो कहा था, "भावना कभी नहीं मरती।" और उस समय भी वह मरी नहीं थी।

—शिव वर्मा

संदर्भ

1 Quoted in the Sedition Committee (Rowlatt) Report 1919, P. 3.
2. वही, पृ 2
3. वही, पृ 2
4 मन्मथनाथ गुप्त भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, दूसरा संस्करण, 1960, पृ 44.
5. तारिणी शकर चक्रवर्ती भारत मे मशस्त्र क्रान्ति की भूमिका, क्रान्तिकारी प्रकाशन, मिर्जापुर, पृ 142.
6 Budhadeva Bhattacharya (ed) Freedom Struggle & Anushilan Samiti, P 48.
7. वही, पृ 68
8. J. C. Car Political Troubles in India 1907-1917 Preface, 1973 P XIII.
9 Quoted in Sedition Committee Report P 7
10. तारिणी शकर चक्रवर्ती पृ 93.
11. G. Adhikari. Challenge, PPH, New Delhi, Jan. 1984. P. 3.
12. Tridib Chaudhary : Freedom Struggle and Anushilan Samiti, Introduction P. XVI-XVII.
13. अमरीका के भारतीय क्रान्तिकारियो की गतिविधियो के बारे मे अधिकतर सामग्री एल. पी माथुर की पुस्तक Indian Revolutionary Movement in United States of America से ली है। यह पुस्तक एस. चाँद एण्ड कं. नयी दिल्ली से 1970 में प्रकाशित हुई थी।
14. Paraphrased from Ghadar Weekly Vol 1, No 3 (Dec. 30, 1913) by Sohan Singh Josh, Hindustan Ghadar Party. A Short History P. 160
15. वही, पृ. 189
16. वही, पृ. 175.
17. वही, पृ. 192.

18. वही, पृ 177
19 वही, पृ 193
20 वही, पृ 193
21 L. P Mathur, op Cit P. 23
22 वही, पृ 29.
23 Presidential Address to Special (Calcutta) Session of the Indian National Congress Sep. 1920. Quoted by R. P Dutt; India Today, P. 280.
24. वही, पृ 284
25. देखिए परिशिष्ट न 1.
26 शचीन्द्रनाथ सान्याल की पुस्तक *बन्दी जीवन* मे विश्वमित्र उपाध्याय द्वारा *शचीन्द्र नाथ सान्याल और उनका युग* मे उद्धृत पृ. 195
27. वही, पृ 156
28 S. N Mazumdar In Search of a Revolutionary Theory and a Revolutionary Programme P 178.
29. वही, पृ 177
30. वही, पृ. 178.
31. वही, पृ 154.
32. वही, पृ. 181-2.
33. वही, पृ 183
34. Jawaharlal Nehru, An Autobiography, John Lane the Bodley Head, London, 1936 P 164-5.
35. Quoted by Pratima Ghosh, Meerut Conspiracy Case & the Left-wing in India P. 47.
36. वही पृ 53.
37. यह बिल सदन में बहस के लिए 21 मार्च को पेश किया गया। लेकिन अध्यक्ष ने उसे 2 अप्रैल, 1929 तक के लिए स्थगित कर दिया। 2 अप्रैल को उन्होंने निर्णय दिया कि चूँकि बिल का आधार और मेरठ षड्यन्त्र केस में अभियुक्तों के खिलाफ लगाये गये अभियोग एक-जैसे हैं, इस स्थिति मे बिल पर जो बहस होगी उससे अभियुक्तों के बचाव पर असर पडेगा। इन कारणो से उन्होंने बिल पर बहस की अनुमति नहीं दी। 4 अप्रैल को भारत सरकार ने उसे फिर सदन के सामने पेश किया और बहस की अनुमति माँगी। 11 अप्रैल को अध्यक्ष ने सरकार की अपील ठुकरा दी और अपना निर्णय बरकरार रखा। 13 अप्रैल को वायसराय ने उसे अध्यादेश के रूप में लागू कर दिया।
38. Quoted by G. Adhikari in an Article in Mainstream April 29, 1981.

39. G. Adhikari (ed.), Documents of the History of the Communist Party of India, Vol. II P 443.

40. वही, पृ. 442

41. वही, पृ 473.

42. S. N. Mazumdar, op Cit. 176

43 G. S. Deol, Sardar Bhagat Sing P. 112

44. वही, पृ. 113.

45. Bipan Chandra, Introduction to why I am an Atheist? Sardar Bhagat Singh Research Committee New Delhi. 1979.

46 वही ।

1

उगते शूलों के मुँह तीखे

दादा जी के नाम एक पत्र

[शहीद भगतसिंह का जन्म 28 सितम्बर, 1907 को हुआ। उस समय उनके चाचा स. अजीतसिंह को लाला लाजपतराय के साथ किसान-आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करने पर अंग्रेज सरकार ने मांडले (बर्मा) में निर्वासित कर रखा था। जनता के रोष के आगे झुकते हुए नवम्बर, 1907 को उन्हें रिहा किया गया। पिता स. किशनसिंह को अंग्रेज सरकार ने नेपाल से पकडा था और छोड दिया था। सबसे छोटे चाचा स. स्वर्णसिंह पर कई मुकदमे बनाये गये थे, और वे जमानत पर रिहा हुए थे। इस सारी खुशी से दादी ने, भगतसिंह को 'भागाँवाला' मान लिया था।

बाबा अर्जुनसिंह ने अपने पोते का पालन-पोषण अपनी देखरेख में किया। वे शुरू से ही उसके भीतर सामाजिक चेतना और तर्क-शक्ति के विकास के लिए प्रयत्नशील थे, और उसे सामाजिक बराबरी और प्रगति के विचारों से परिचित करा रहे थे।

भगतसिंह की पहले चार साल की पढ़ाई अपने गाँव बंगा चक्क नं. 105 गुगैरा ब्रांच (अब लायलपुर, पाकिस्तान) में हुई और आगे पढ़ने के लिए वे पिता जी के पास लाहौर आ गये। 1916-17 में जब भगतसिंह लाहौर पहुँचे तो चारों ओर गदर पार्टी के शहीदों के कीर्तिगान गूँज रहे थे।

यह भगतसिंह का पहला खत है, जब वे छठी कक्षा में पढ़ रहे थे। उनका यह पत्र दादा अर्जुनसिंह को सम्बोधित है, जो उन दिनों गाँव खटकड़ कलाँ आये हुए थे। पत्र उर्दू में है। —सं.]

लाहौर, 22 जुलाई, 1918

पूज्य बाबाजी,

नमस्ते।

अर्ज़ यह है कि आपका खत मिला पढ़कर दिल खुश हुआ। इम्तिहान की बात ये हैं कि मैंने पहले इसलिए नही लिखा था क्योंकि हमें बताया नही गया था। अब हमें अंग्रेजी और संस्कृत का नतीजा बताया गया है। उनमें मैं पास हूँ। सस्कृत मे मेरे 150 नम्बरो मे 110 नम्बर हैं। अंग्रेजी मे 150 में से 68 नम्बर हैं। जो 150 में से 50 नम्बर ले जाये वह पास होता है। 68 नम्बरों को लेकर मैं अच्छी तरह पास हो गया हूँ। किसी किस्म की चिन्ता न करना। बाकी नहीं बताया गया। छुट्टियाँ, 8 अगस्त को पहली छुट्टी होगी। आप कब आयेंगे, लिखना।

आपका आज्ञाकारी
भगतसिंह

दादा जी के नाम एक और पत्र

लाहौर, 14 नवम्बर, 1921

मेरे पूज्य दादा साहब जी,

नमस्ते।

अर्ज़ यह है कि इस जगह खैरियत है और आपकी खैरियत श्री परमात्मा जी से नेक मतलूब हूँ। अहवाल ये है कि मुद्दत से आपका कृपा-पत्र नहीं मिला। क्या सबब है? कुलबीरसिंह, कुलतारसिंह की खैरियत से जल्दी मुत्तला फरमाएँ। बेबे साहबा–अभी मोरांवाली से वापस नहीं आयीं। बाकी सब खैरियत है।

[कार्ड की दूसरी तरफ]

माता जी को नमस्ते। चाची साहबा को नमस्ते। मंगू चमार अभी तक तो नहीं आया। मैंने एक पुरानी किताब मोल ली थी, जो कि बहुत सस्ती मिल गयी थी।

[कार्ड की लाइनों के बीच उल्टे रुख]

आजकल रेलवेवाले हड़ताल की तैयारी कर रहे हैं। उम्मीद है कि अगले हफ्ते के बाद जल्द शुरू हो जायेगी।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

[दादा को लिखे इस पत्र से पता चलता है कि उस समय चल रहे चर्चित असहयोग आन्दोलन का प्रभाव किस तरह जनता में जोर मार रहा था, जिसका असर भगतसिंह पर भी हुआ। वे उससे अनजाने न रह सके। साथ ही दादा को भी यह बताये बिना न रह सके कि जल्दी आरम्भ होनेवाली रेल-हड़ताल की भी उन्हें सूचना है। —सं.]

गुरुमुखी में लिखा पहला पत्र

[13 अप्रैल, 1919 के दिन जलियाँवाला बाग में अंग्रेजों ने बेरहम कत्लेआम किया। 12 वर्षीय भगतसिंह जब दूसरे दिन वहाँ पहुँचे और रक्त-सनी मिट्टी लेकर घर लौटे, तो कई सवाल उनके मन में थे। अपनी छोटी बहिन बीबी अमरकौर से उन्होंने अपने मन की बातें कीं।

21 फरवरी, 1921 को महन्त नारायणदास ने ननकाना साहिब में 140 सिखों को बड़ी बेरहमी से मार डाला। बहुतो को जिन्दा ही जला दिया। लाहौर से अपने गाँव बंगा जाते समय भगतसिंह यह सारा मौका देख गये और 5 मार्च को हुई बड़ी कान्फ्रेन्स भी देखी। वे ननकाना साहिब से इस घटना सम्बन्धी एक कैलेण्डर भी लेते गये थे। इस घटना से पूरे पंजाब के गाँवों में अंग्रेज सरकार के खिलाफ, जिसने महन्त की मदद की थी, एक जोरदार आन्दोलन उठा। हर गाँव में काली पगड़ियाँ बाँधने और पंजाबी पढ़ने का रिवाज चल पड़ा। भगतसिंह भी इसके प्रभाव में आये। भाई-बहिन—बीबी अमरकौर और भगतसिंह—ने पंजाबी पढ़नी व लिखनी सीखी। यह पत्र उसी समय का है, जो 1910 में जेल-यातनाओं से शहीद हुए चाचा स्वर्णसिंह की धर्मपत्नी चाची हुक्मकौर को लिखा गया था। शब्द-जोड़ जैसे-के-तैसे दिये जा रहे हैं। गुरुमुखी लिपि में लिखा भगतसिंह का यह पहला पत्र है। बाद में पंजाबी में भगतसिंह ने बहुत-से लेख भी लिखे। —सं.]

15 नवम्बर, 1921

मेरी परम प्यारी चाची जी,

नमस्ते।

मुझे खत लिघ लिघने [लिखने] में देरी हो गयी है। सो उम्मीद है कि आप माफ करोगे। भाइया जी [पिता किशनसिंह] दिल्ली गये हुए हैं। भेभे [बेबे—माँ] मोरांवाली को गयी हुई है। बाकी सब राजी खुशी है। बड़ी चाची जी को मत्था टेकना। माता जी को मत्था टेकना, कुलबीर, कुलतारसिंह को सति श्री अकाल या नमस्ते।

आपका आज्ञाकारी
भगतसिंह

घर को अलविदा : पिता जी के नाम पत्र

[सन् 1923 में भगतसिंह, नेशनल कालेज, लाहौर के विद्यार्थी थे। जन-जागरण के लिए ड्रामा-क्लब में भी भाग लेते थे। क्रान्तिकारी अध्यापको और साथियों से नाता जुड़ गया था। भारत को आजादी कैसे मिले, इस बारे मे लम्बा-चौड़ा अध्ययन और बहसें जारी थीं।

घर में दादी जी ने अपने पोते की शादी की बात चलायी। उनके सामने अपना तर्क न चलते देख पिता जी के नाम यह पत्र लिख छोड़ा और कानपुर में गणेशशंकर विद्यार्थी के पास पहुँचकर 'प्रताप' में काम शुरू कर दिया। वहीं बी. के. दत्त, शिव वर्मा, विजयकुमार सिन्हा-जैसे क्रान्तिकारी साथियों से मुलाकात हुई। उनका कानपुर पहुँचना क्रान्ति के रास्ते पर एक बड़ा कदम बना। पिता जी के नाम लिखा गया भगतसिंह का यह पत्र घर छोडने सम्बन्धी उनके विचारों को सामने लाता है। —सं.]

पूज्य पिता जी,

नमस्ते।

मेरी जिन्दगी मकसदे आला[1] यानी आजादी-ए-हिन्द के असूल[2] के लिए वक्फ[3] हो चुकी है। इसलिए मेरी जिन्दगी में आराम और दुनियावी ख्वाहशात[4] बायसे कशिश[5] नहीं हैं।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था, तो बापू जी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते वतन[6] के लिए वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतीज्ञा पूरी कर रहा हूँ।

उम्मीद है आप मुझे माफ फरमाएँगे।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

---

1. उच्च उद्देश्य, 2. सिद्धान्त, 3. दान, 4. सांसारिक इच्छाएँ, 5 आकर्षक, 6. देश-सेवा।

2

विचारों का प्रस्फुटन

ंजाब की भाषा तथा लिपि की समस्या

[1924 की बात है । पंजाब में भाषा-विवाद चल रहा था । पंजाबी भाषा की लिपि क्या हो, यह प्रश्न उठा हुआ था । उर्दू और हिन्दी के पक्षधर खूब बहस कर रहे थे । तरह-तरह के तर्क रखे जा रहे थे । भगतसिंह भी इस बहस पर अपने विचार बनाने लगे थे । पंजाब की भाषा और लिपि की समस्या पर यह लेख उन्होंने पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बुलावे पर लिखा था और अव्वल मानकर सम्मेलन ने इस पर 50/- का इनाम भी दिया था ।

यह लेख सम्मेलन के प्रधान मन्त्री श्री भीमसेन विद्यालंकार ने सुरक्षित रखा और भगतसिंह के बलिदान के बाद 28 फरवरी, 1933 के 'हिन्दी सन्देश' में प्रकाशित किया । –सं.]

"किसी समाज अथवा देश को पहचानने के लिए उस समाज अथवा देश के साहित्य से परिचित होने की परमावश्यकता होती है, क्योंकि समाज के प्राणों की चेतना उस समाज के साहित्य में भी प्रतिच्छवित हुआ करती है ।"

उपरोक्त कथन की सत्यता का इतिहास साक्षी है । जिस देश के साहित्य का प्रवाह जिस ओर बहा, ठीक उसी ओर वह देश भी अग्रसर होता रहा । किसी भी जाति के उत्थान के लिए ऊँचे साहित्य की आवश्यकता हुआ करती है । ज्यों-ज्यों देश का साहित्य ऊँचा होता जाता है, त्यों-त्यों देश भी उन्नति करता जाता है । देशभक्त, चाहे वे निरे समाज-सुधारक हों अथवा राजनैतिक नेता, सबसे अधिक ध्यान देश के साहित्य की ओर दिया करते हैं । यदि वे सामाजिक समस्याओं तथा परिस्थितियों के अनुसार

नवीन साहित्य की सृष्टि न करें तो उनके सब प्रयत्न निष्फल हो जाये और उनके कार्य स्थायी न हो पायें।

शायद गैरीबाल्डी को इतनी जल्दी सेनाएँ न मिल पातीं, यदि मेजिनी ने 30 वर्ष देश में साहित्य तथा साहित्यिक जागृति पैदा करने में ही न लगा दिये होते। आयरलैण्ड के पुनरुत्थान के साथ गैलिक भाषा के पुनरुत्थान का प्रयत्न भी उसी वेग से किया गया। शासक लोग आयरिश लोगो को दबाये रखने के लिए उनकी भाषा का दमन करना इतना आवश्यक समझते थे कि गैलिक भाषा की एक-आध कविता रखने के कारण छोटे-छोटे बच्चों तक को दण्डित किया जाता था। रूसो, वाल्टेयर के साहित्य के बिना फ्रास की राज्यक्रान्ति घटित न हो पाती। यदि टालस्टाय, कार्ल मार्क्स तथा मैक्सिम गोर्की इत्यादि ने नवीन साहित्य पैदा करने में वर्षों व्यतीत न कर दिये होते, तो रूस की क्रान्ति न हो पाती, साम्यवाद का प्रचार तथा व्यवहार तो दूर रहा।

यही दशा हम सामाजिक तथा धार्मिक सुधारको में देख पाते हैं। कबीर के साहित्य के कारण उनके भावों का स्थायी प्रभाव दीख पड़ता है। आज तक उनकी मधुर तथा सरस कविताओं को सुनकर लोग मुग्ध हो जाते हैं।

ठीक यही बात गुरु नानकदेव जी के विषय में भी कही जा सकती है। सिक्ख गुरुओ ने अपने मत के प्रचार के साथ जब नवीन सम्प्रदाय स्थापित करना शुरू किया, उस समय उन्होने नवीन साहित्य की आवश्यकता भी अनुभव की और इसी विचार से गुरु अंगददेव जी ने गुरुमुखी लिपि बनायी। शताब्दियो तक निरन्तर युद्ध और मुसलमानो के आक्रमणों के कारण पजाब में साहित्य की कमी हो गयी थी। हिन्दी भाषा का भी लोप-सा हो गया था। इस समय किसी भारतीय लिपि को ही अपनाने के लिए उन्होंने काश्मीरी लिपि को अपना लिया। तत्पश्चात् गुरु अर्जुनदेव जी तथा भाई गुरुदास जी के प्रयत्न से आदि ग्रन्थ का सकलन हुआ। अपनी लिपि तथा अपना साहित्य बनाकर अपने मत को स्थायी रूप देने में उन्होंने यह बहुत प्रभावशाली तथा उपयोगी कदम उठाया था।

उसके बाद ज्यों-ज्यों परिस्थिति बदलती गयी, त्यों-त्यों साहित्य का प्रवाह भी बदलता गया। गुरुओं के निरन्तर बलिदानों तथा कष्ट-सहन से परिस्थिति बदलती गयी। जहाँ हम प्रथम गुरु के उपदेश में भक्ति तथा आत्म-विस्मृति के भाव सुनते हैं और निम्नलिखित पद में कमाल आजिजी का भाव पाते हैं :

नानक नन्हे हो रहे, जैसी नन्हीं दूब।
और घास जरि जात है, दूब खूब की खूब।।

वहीं पर हम नवें गुरु श्री तेगबहादुर जी के उपदेश मे पददलित लोगों की हमदर्दी तथा उनकी सहायता के भाव पाते हैं :

बाँहि जिन्हाँ दी पकडिए, सिर दीजिए बाँहि न छोड़िए ।
गुरु तेगबहादुर बोलया, धरती पै धर्म न छोड़िए । ।

उनके बलिदान के बाद हम एकाएक गुरु गोविन्दसिंह जी के उपदेश में क्षात्र धर्म का भाव पाते हैं । जब उन्होने देखा कि अब केवल भक्ति-भाव से ही काम न चलेगा, तो उन्होने चण्डी की पूजा भी प्रारम्भ की और भक्ति तथा क्षात्र धर्म का समावेश कर सिक्ख समुदाय को भक्तों तथा योद्धाओं का समूह बना दिया । उनकी कविता (साहित्य) मे हम नवीन भाव देखते हैं ।

वे लिखते हैं ·

जे तोहि प्रेम खेलण का चाव, सिर धर तली गली मोरी आव ।
जे इत मारग पैर धरीजै, सिर दीजै कांण न कीजै । ।

और फिर—

सूरा सो पहिचानिये, जो लड़ै दीन के हेत ।
पुर्जा-पुर्जा कट मरै, कभूँ न छाँड़ै खेत । ।

और फिर एकाएक खड्ग की पूजा प्रारम्भ हो जाती है :

खग खण्ड विहण्ड, खल दल खण्ड अति रन मण्ड प्रखण्ड ।
भुज दण्ड अखण्ड, तेज प्रचण्ड जोति अभण्ड भानुप्रभं । ।

उन्हीं भावो को लेकर बाबा बन्दा आदि मुसलमानों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध करते रहे, परन्तु उसके बाद हम देखते हैं कि जब सिक्ख सम्प्रदाय केवल अराजकों का एक समूह रह जाता है और जब वे गैर कानूनी (Out-law) घोषित कर दिये जाते हैं, तब उन्हें निरन्तर जगलों मे ही रहना पड़ता है । अब इस समय नवीन साहित्य की सृष्टि नहीं हो सकी । उनमें नवीन भाव नही भरे जा सके । उनमें क्षात्र-वृत्ति थी, वीरत्व तथा बलिदान का भाव था और मुसलमान शासकों के विरुद्ध युद्ध करते रहने का भाव था, परन्तु उसके बाद क्या करना होगा, यह वे भली-भाँति नहीं समझे । तभी तो उन वीर योद्धाओं के समूह (मिसलें) आपस में भिड़ गये । यहीं पर सामयिक भावों की त्रुटि बुरी तरह अखरती है । यदि बाद में रणजीतसिंह जैसा वीर योद्धा और चालाक शासक न निकल आता, तो सिक्खों को एकत्रित करने के लिए कोई उच्च आदर्श अथवा भाव शेष न रह गया था ।

इन सबके साथ एक बात और भी खास ध्यान देने योग्य है । संस्कृत का सारा साहित्य हिन्दू समाज को पुनर्जीवित न कर सका, इसीलिए सामयिक भाषा में नवीन साहित्य की सृष्टि की गयी । उस सामयिक भाव के साहित्य ने अपना जो प्रभाव दिखाया वही हम आज तक अनुभव करते हैं । एक अच्छे समझदार व्यक्ति के लिए क्लिष्ट

संस्कृत के मन्त्र तथा पुरानी अरबी की आयतें इतनी प्रभावकारी नही हो सकती जितनी कि उसकी अपनी साधारण भाषा की साधारण बातें।

ऊपर पंजाबी भाषा तथा साहित्य के विकास का संक्षिप्त इतिहास लिखा गया है। अब हम वर्तमान अवस्था पर आते हैं। लगभग एक ही समय पर बंगाल में स्वामी विवेकानन्द तथा पंजाब में स्वामी रामतीर्थ पैदा हुए। दोनों एक ही ढर्रे के महापुरुष थे। दोनों विदेशों में भारतीय तत्त्वज्ञान की धाक जमाकर स्वयं भी जगत्-प्रसिद्ध हो गये, परन्तु स्वामी विवेकानन्द का मिशन बंगाल में एक स्थायी संस्था बन गया, पर पजाब में स्वामी रामतीर्थ का स्मारक तक नहीं दीख पड़ता। उन दोनो के विचारो मे भारी अन्तर रहने पर भी तह में हम एक गहरी समता देखते हैं। जहाँ स्वामी विवेकानन्द कर्मयोग का प्रचार कर रहे थे, वहाँ स्वामी रामतीर्थ भी मस्तानावार गाया करते थे :

हम रूखे टुकड़े खायेंगे, भारत पर वारे जायेंगे।
हम सूखे चने चबायेंगे, भारत की बात बनायेंगे।
हम नंगे उमर बितायेंगे, भारत पर जान मिटायेंगे।

वे कई बार अमरीका मे अस्त होते सूर्य को देखकर आँसू बहाते हुए कहा करते थे—"तुम अब मेरे प्यारे भारत में उदय होने जा रहे हो। मेरे इन आँसुओं को भारत के सलिल सुन्दर खेतो में ओस की बूँदों के रूप मे रख देना।" इतना महान देश तथा ईश्वर-भक्त हमारे प्रान्त मे पैदा हुआ हो, परन्तु उसका स्मारक तक न दीख पडे, इसका कारण साहित्यिक फिसड्डीपन के अतिरिक्त क्या हो सकता है?

यह बात हम पद-पद पर अनुभव करते है। बगाल के महापुरुष श्री देवेन्द्र ठाकुर तथा श्री केशवचन्द्र सेन की टक्कर के पजाब में भी कई महापुरुष हुए हैं, परन्तु उनकी वह कद्र नही और मरने के बाद वे जल्द ही भुला दिये गये, जैसे गुरु ज्ञानसिंहजी इत्यादि। इन सबकी तह में हम देखते हैं कि एक ही मुख्य कारण है, और वह है साहित्यिक रुचि-जागृति का सर्वथा अभाव।

यह तो निश्चय ही है कि साहित्य के बिना कोई देश अथवा जाति उन्नति नही कर सकती, परन्तु साहित्य के लिए सबसे पहले भाषा की आवश्यकता होती है और पजाब मे वह नहीं है। इतने दिनों से यह त्रुटि अनुभव करते रहने पर भी अभी तक भाषा का कोई निर्णय न हो पाया। उसका मुख्य कारण है हमारे प्रान्त के दुर्भाग्य से भाषा को मजहबी समस्या बना देना। अन्य प्रान्तों में हम देखते हैं कि मुसलमानों ने प्रान्तीय भाषा को खूब अपना लिया है। बंगाल के साहित्य-क्षेत्र मे कवि नजर-उल-इस्लाम एक चमकते सितारे हैं। हिन्दी कवियों में लतीफ हुसैन 'नटवर' उल्लेखनीय है। इसी तरह गुजरात मे भी हैं, परन्तु दुर्भाग्य है पंजाब का। यहाँ पर मुसलमानों का प्रश्न तो अलग रहा, हिन्दू-सिक्ख भी इस बात पर न मिल सके।

पंजाब की भाषा अन्य प्रान्तों की तरह पंजाबी ही होनी चाहिए थी, फिर क्यो नहीं

हुई, यह प्रश्न अनायास ही उठता है, परन्तु यहाँ के मुसलमानों ने उर्दू को अपनाया। मुसलमानों में भारतीयता का सर्वथा अभाव है, इसीलिए वे समस्त भारत में भारतीयता का महत्त्व न समझकर अरबी लिपि तथा फारसी भाषा का प्रचार करना चाहते हैं। समस्त भारत की एक भाषा और वह भी हिन्दी होने का महत्त्व उनकी समझ में नहीं आता। इसलिए वे तो अपनी उर्दू की रट लगाते रहे और एक ओर बैठ गये।

फिर सिक्खों की बारी आयी। उनका सारा साहित्य गुरुमुखी लिपि में है। भाषा में अच्छी-खासी हिन्दी है, परन्तु मुख्य पंजाबी भाषा है। इसलिए सिक्खों ने गुरुमुखी लिपि में लिखी जानेवाली पंजाबी भाषा को ही अपना लिया। वे उसे किसी तरह छोड़ न सकते थे। वे उसे मज़हबी भाषा बनाकर उससे चिपट गये।

इधर आर्यसमाज का आविर्भाव हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समस्त भारतवर्ष में हिन्दी प्रचार करने का भाव रखा। हिन्दी भाषा आर्यसमाज का एक धार्मिक अंग बन गयी। धार्मिक अंग बन जाने से एक लाभ तो हुआ कि सिक्खों की कट्टरता से पंजाबी की रक्षा हो गयी और आर्यसमाजियों की कट्टरता से हिन्दी भाषा ने अपना स्थान बना लिया।

आर्यसमाज के प्रारम्भ के दिनों में सिक्खों तथा आर्यसमाजियों की धार्मिक सभाएँ एक ही स्थान पर होती थीं। तब उनमें कोई भिन्न भेदभाव न था, परन्तु पीछे 'सत्यार्थ प्रकाश' के किन्हीं दो-एक वाक्यों के कारण आपस में मनोमालिन्य बहुत बढ़ गया और एक-दूसरे से घृणा होने लगी। इसी प्रवाह में बहकर सिक्ख लोग हिन्दी भाषा को भी घृणा की दृष्टि से देखने लगे। औरों ने इसकी ओर किंचित भी ध्यान न दिया।

बाद में, कहते हैं कि आर्यसमाजी नेता महात्मा हंसराज जी ने लोगों से कुछ परामर्श किया था कि यदि वह हिन्दी लिपि को अपना लें, तो हिन्दी लिपि में लिखी जानेवाली पंजाबी भाषा यूनिवर्सिटी में मंजूर करवा लेंगे, परन्तु दुर्भाग्यवश वे लोग संकीर्णता के कारण और साहित्यिक जागृति के न रहने के कारण इस बात के महत्त्व को समझ ही न सके और वैसा न हो सका। खैर! तो इस समय पंजाब में तीन मत हैं। पहला मुसलमानों का उर्दू सम्बन्धी कट्टर पक्षपात, दूसरा आर्यसमाजियों तथा कुछ हिन्दुओं का हिन्दी सम्बन्धी, तीसरा पंजाबी का।

इस समय हम एक-एक भाषा के सम्बन्ध में कुछ विचार करें, तो अनुचित न होगा। सबसे पहले हम मुसलमानों का विचार रखेंगे। वे उर्दू के कट्टर पक्षपाती हैं। इस समय पंजाब में इसी भाषा का जोर भी है। कोर्ट की भाषा भी यही है, और फिर मुसलमान सज्जनों का कहना यह है कि उर्दू लिपि में ज्यादा बात थोड़े स्थान में लिखी जा सकती है। यह सब ठीक है, परन्तु हमारे सामने इस समय सबसे मुख्य प्रश्न भारत को एक राष्ट्र बनाना है। एक राष्ट्र बनाने के लिए एक भाषा होना आवश्यक है, परन्तु यह एकदम हो नहीं सकता। उसके लिए कदम-कदम चलना पड़ता है। यदि हम अभी भारत की एक भाषा नहीं बना सकते तो कम-से-कम लिपि तो एक बना देनी चाहिए। उर्दू लिपि तो

सर्वांगसम्पूर्ण नहीं कहला सकती, और फिर सबसे बडी बात तो यह है कि उसका आधार फारसी भाषा पर है। उर्दू कवियों की उडान, चाहे वे हिन्दी (भारतीय) ही क्यों न हो, ईरान के साकी और अरब की खजूरो को जा पहुँचती है। काजी नजर-उल-इस्लाम की कविता में तो धूरजटी, विश्वामित्र और दुर्वासा की चर्चा बार-बार है, परन्तु हमारे पंजाबी हिन्दी-उर्दू कवि उस ओर ध्यान तक भी न दे सके। क्या यह दुःख की बात नहीं? इसका मुख्य कारण भारतीयता और भारतीय साहित्य से उनकी अनभिज्ञता है। उनमे भारतीयता आ ही नहीं पाती, तो फिर उनके रचित साहित्य से हम कहाँ तक भारतीय बन सकते हैं? केवल उर्दू पढ़नेवाले विद्यार्थी भारत के पुरातन साहित्य का ज्ञान नहीं हासिल कर सकते। यह नहीं कि उर्दू जैसी साहित्यिक भाषा मे उन ग्रन्थों का अनुवाद नही हो सकता, परन्तु उसमें ठीक वैसा ही अनुवाद हो सकता है, जैसा कि एक ईरानी को भारतीय साहित्य सम्बन्धी ज्ञानोपार्जन के लिए आवश्यक हो।

हम अपने उपरोक्त कथन के समर्थन में केवल इतना ही कहेंगे कि जब साधारण आर्य और स्वराज्य आदि शब्दों को आर्या और स्वराजिया लिखा और पढ़ा जाता है तो गूढ़ तत्त्वज्ञान सम्बन्धी विषयों की चर्चा ही क्या? अभी उस दिन श्री लाला हरदयाल जी एम. ए. की उर्दू पुस्तक 'कौमें किस तरह ज़िन्दा रह सकती हैं?' का अनुवाद करते हुए सरकारी अनुवादक ने ऋषि नचिकेता को उर्दू में लिखा होने से नीची कुतिया समझकर 'ए बिच आफ लो ओरिजिन' अनुवाद किया था। इसमें न तो लाला हरदयाल जी का अपराध था, न अनुवादक महोदय का। इसमें कसूर था उर्दू लिपि का और उर्दू भाषा की हिन्दी भाषा तथा साहित्य से विभिन्नता का।

शेष भारत मे भारतीय भाषाएँ और लिपियाँ प्रचलित हैं। ऐसी अवस्था में पंजाब में उर्दू का प्रचार कर क्या हम भारत से एकदम अलग-थलग हो जावें? नहीं। और फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि उर्दू के कट्टर पक्षपाती मुसलमान लेखकों की उर्दू में फारसी का ही आधिक्य रहता है। 'ज़मींदार' और 'सियासत' आदि मुसलमान-समाचार पत्रों में तो अरबी का ज़ोर रहता है, जिसे एक साधारण व्यक्ति समझ भी नहीं सकता। ऐसी दशा में उसका प्रचार कैसे किया जा सकता है? हम तो चाहते हैं कि मुसलमान भाई भी अपने मज़हब पर पक्के रहते हुए ठीक वैसे ही भारतीय बन जायें जैसे कि कमाल टर्क हैं। भारतोद्धार तभी हो सकेगा। हमें भाषा आदि के प्रश्नों को मार्मिक समस्या न बनाकर खूब विशाल दृष्टिकोण से देखना चाहिए।

इसके बाद हम हिन्दी-पंजाबी भाषाओं की समस्या पर विचार करेंगे। बहुत-से आदर्शवादी सज्जन समस्त जगत को एक राष्ट्र, विश्व राष्ट्र बना हुआ देखना चाहते हैं। यह आदर्श बहुत सुन्दर है। हमको भी इसी आदर्श को सामने रखना चाहिए। उस पर पूर्णतया आज व्यवहार नहीं किया जा सकता, परन्तु हमारा हर एक कदम, हमारा हर एक कार्य इस संसार की समस्त जातियों, देशों तथा राष्ट्रों को एक सुदृढ़ सूत्र में बाँधकर सुख-वृद्धि करने के विचार से उठना चाहिए। उससे पहले हमको अपने देश में यही

आदर्श कायम करना होगा। समस्त देश में एक भाषा, एक लिपि, एक साहित्य, एक आदर्श और एक राष्ट्र बनाना पड़ेगा, परन्तु समस्त एकताओं से पहले एक भाषा का होना जरूरी है, ताकि हम एक-दूसरे को भली-भाँति समझ सकें। एक पंजाबी और एक मद्रासी इकट्ठे बैठकर केवल एक-दूसरे का मुँह ही न ताका करें, बल्कि एक-दूसरे के विचार तथा भाव जानने का प्रयत्न करें, परन्तु यह पराई भाषा अंग्रेजी में नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान की अपनी भाषा हिन्दी में। यह आदर्श भी, पूरा होते-होते अभी कई वर्ष लगेंगे। उसके प्रयत्न में हमें सबसे पहले साहित्यिक जागृति पैदा करनी चाहिए। केवल गिनती के कुछ-एक व्यक्तियों में नही, बल्कि सर्वसाधारण में। सर्वसाधारण में साहित्यिक जागृति पैदा करने के लिए उनकी अपनी ही भाषा आवश्यक है। इसी तर्क के आधार पर हम कहते हैं कि पंजाब में पंजाबी भाषा ही आपको सफल बना सकती है।

अभी तक पंजाबी साहित्यिक भाषा नहीं बन सकी है और समस्त पंजाब की एक भाषा भी वह नहीं है। गुरुमुखी लिपि में लिखी जानेवाली मध्य पंजाब की बोलचाल की भाषा को ही इस समय तक पंजाबी कहा जाता है। वह न तो अभी तक विशेष रूप से प्रचलित ही हो पायी है और न ही साहित्यिक तथा वैज्ञानिक ही बन पायी है। उसकी ओर पहले तो किसी ने ध्यान ही नहीं दिया, परन्तु अब जो सज्जन उस ओर ध्यान भी दे रहे हैं उन्हें लिपि की अपूर्णता बेतरह अखरती है। संयुक्त अक्षरों का अभाव और हलन्त न लिख सकने आदि के कारण उसमें भी ठीक-ठीक सब शब्द नहीं लिखे जा सकते, और तो और, पूर्ण शब्द भी नहीं लिखा जा सकता। यह लिपि तो उर्दू से भी अधिक अपूर्ण है और जब हमारे सामने वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर निर्भर सर्वांगसम्पूर्ण हिन्दी लिपि विद्यमान है, फिर उसे अपनाने में हिचक क्या? गुरुमुखी लिपि तो हिन्दी अक्षरों का ही बिगड़ा हुआ रूप है। आरम्भ में ही उसका उ का ੳ, अ का ਅ बना हुआ है और म ट ठ आदि तो वे ही अक्षर हैं। सब नियम मिलते हैं फिर एकदम उसे ही अपना लेने से कितना लाभ हो जायगा? सर्वांगसम्पूर्ण लिपि को अपनाते ही पंजाबी भाषा उन्नति करना शुरू कर देगी। और उसके प्रचार में कठिनाई ही क्या है? पँजाब की हिन्दू स्त्रियाँ इसी लिपि से परिचित हैं। डी. ए. वी. स्कूलों और सनातन धर्म स्कूलों में हिन्दी ही पढ़ाई जाती है। ऐसी दशा में कठिनाई ही क्या है? हिन्दी के पक्षपाती सज्जनों से हम कहेंगे कि निश्चय ही हिन्दी भाषा ही अन्त में समस्त भारत की एक भाषा बनेगी, परन्तु पहले से ही उसका प्रचार करने से बहुत सुविधा होगी। हिन्दी लिपि के अपनाने से ही पंजाबी हिन्दी की-सी बन जाती है। फिर तो कोई भेद ही नहीं रहेगा और इसकी जरूरत है, इसलिए कि सर्वसाधारण को शिक्षित किया जा सके और यह अपनी भाषा के अपने साहित्य से ही हो सकता है। पंजाबी की यह कविता देखिए—

ओ राहिया राहे जान्दया, सुन जा गल मेरी,
सिर ते पग तेरे वलैत दी, इहनूँ फूक मआनड़ा ला।।

और इसके मुकाबले में हिन्दी की बड़ी-बड़ी सुन्दर कविताएँ कुछ प्रभाव न कर सकेगी, क्योंकि वह अभी सर्वसाधारण के हृदय के ठीक भीतर अपना स्थान नही बना सकी हैं। वह अभी कुछ बहुत पराई-सी दीख पड़ती हैं। कारण कि हिन्दी का आधार संस्कृत है। पंजाब उससे कोसों दूर हो चुका है। पंजाबी में फारसी ने अपना प्रभाव बहुत कुछ रखा है। यथा, चीज का जमा 'चीजें' न होकर फारसी की तरह 'चीजाँ' बन गया है। यह असूल अन्त तक कार्य करता दिखायी देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पंजाबी के निकट होने पर भी हिन्दी अभी पंजाबी-हृदय से काफी दूर है। हाँ, पंजाबी भाषा के हिन्दी लिपि में लिखे जाने पर और उसके साहित्य बनाने के प्रयत्न में निश्चय ही वह हिन्दी के निकटतर आ जायेगी।

प्रायः सभी मुख्य तर्कों पर तर्क किया जा चुका है। अब केवल एक बात कहेंगे। बहुत-से सज्जनों का कथन है कि पंजाबी भाषा में माधुर्य, सौन्दर्य और भावुकता नही है। यह सरासर निराधार है। अभी उस दिन–

लच्छीए जित्थे तू पानी डोलिया ओत्थे उग पये सन्दल दे बूटे

वाले गाने के माधुर्य ने कवीन्द्र रवीन्द्र तक को मोहित कर लिया और वे झट अंग्रेजी में अनुवाद करने लगे–O Lachi, where there spilt water, where there spilt water···etc···etc···

और बहुत-से और उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। निम्न वाक्य क्या किसी अन्य भाषा की कविताओ से कम है?–

पिपले दे पत्तया वे केही खड़खड़ लायी ऐ।
पत्ते झड़े पुराने हुण रुत्त नवयां दी आयी आ।।

और फिर जब पंजाबी अकेला अथवा समूह बैठा हो तो 'गौहर' के यह पद जितना प्रभाव करेंगे, उतना कोई और भाषा क्या करेगी?

लाम लक्खां ते करोडां दे शाह वेखे
न मुसाफिरां कोई उधार देंदा,
दिने रातीं जिन्हां दे कूच डेरे
न उन्हां दे थायीं कोई एतबार देंदा।
भौरे बहदे गुलां दी वाशना ते
ना सप्पा दे मुहां ते कोई प्यार देंदा
गौहर समय सलूक हन ज्यूँदया दे
मोयां गियां नूं हर कोई विसार देदा।

और फिर–

जीम ज्यूदियां नूं क्यों मारना ऐं, जेकर नहीं तूं मोयां नूं जिऔण जोगा
घर आये सवाली नूं क्यों घूरना ऐं, जेकर नहीं तू हत्थीं खैर पौण जोगा
मिले दिलां नूं क्यों बिछोड़ना ऐं, जेकर नहीं तू बिछड़यां नू मिलौण जोगा
गौहरा बदीयां रख बन्द खाने, जेकर नहीं तू नेकीआं कमौण जोगा।

और फिर अब तो दर्द, मस्ताना, दीवाना बड़े अच्छे-अच्छे कवि पंजाबी की कविता का भण्डार बढ़ा रहे हैं।

ऐसी मधुर, ऐसी विमुग्धकारी भाषा तो पंजाबियों ने ही न अपनायी, यही दुख है। अब भी नहीं अपनाते, समस्या यही है। हरेक अपनी बात के पीछे मज़हबी डण्डा लिये खड़ा है। इसी अड़ंगे को किस तरह दूर किया जाय, यही पंजाब की भाषा तथा लिपि विषयक समस्या है, परन्तु आशा केवल इतनी है कि सिक्खों में इस समय साहित्यिक जागृति पैदा हो रही है। हिन्दुओं में भी है। सभी समझदार लोग मिलकर-बैठकर निश्चय ही क्यों नहीं कर लेते! यही एक उपाय है इस समस्या के हल करने का। मज़हबी विचार से ऊपर उठकर इस प्रश्न पर गौर किया जा सकता है, वैसे ही किया जाये, और फिर अमृतसर के 'प्रेम' जैसे पत्र की भाषा को ज़रा साहित्यिक बनाते हुए पंजाब यूनिवर्सिटी में पंजाबी भाषा को मंजूर करा देना चाहिए। इस तरह सब बखेड़ा तय हो जाता है। इस बखेड़े के तय होते ही पंजाब में इतना सुन्दर और ऊँचा साहित्य पैदा होगा कि यह भी भारत की उत्तम भाषाओं में गिनी जाने लगेगी।

विश्व-प्रेम

[बलवन्तसिंह के छद्म नाम से लिखा गया भगतसिंह का यह लेख कलकत्ता से प्रकाशित सा. 'मतवाला' (वर्ष : 2, अंक सं. 13-14) के दो अंकों में छपा था। इन अंकों की तारीखें क्रमशः 15 नवम्बर, 1924 एवं 22 नवम्बर, 1924 थीं। —सं.]

"वसुधैव कुटुम्बकम्!" जिस कवि सम्राट की यह अमूल्य कल्पना है, जिस विश्व-प्रेम के अनुभवी का यह हृदयोद्गार है, उसकी महत्ता का वर्णन करना मनुष्य-शक्ति से सर्वथा बाहर है।

'विश्वबन्धुता!' इसका अर्थ मैं तो समस्त संसार में समानता (साम्यवाद, World wide Equality in the true sence) के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता।

कैसा उच्च है यह विचार! सभी अपने हों। कोई भी पराया न हो। कैसा सुखमय होगा वह समय, जब संसार से परायापन सर्वथा नष्ट हो जायेगा; जिस दिन यह सिद्धान्त

समस्त संसार में व्यावहारिक रूप में परिणत होगा, उस दिन ससार को उन्नति के शिखर पर कह सकेगे। जिस दिन प्रत्येक मनुष्य इस भाव को हृदयगम कर लेगा, उस दिन—उस दिन संसार कैसा होगा ? जरा कल्पना करो तो !

उस दिन इतनी शक्ति होगी कि 'शान्ति शान्ति' की पुकार भी शान्ति भंग न कर सकेगी। उस दिन भूख लगने पर रोटी के लिए किसी को भी चिल्ल-पों मचाने की आवश्यकता नहीं हुआ करेगी। व्यापार उस दिन उन्नति के शिखर पर होगा, परन्तु फ्रास और जर्मनी में व्यापार के नाम पर घोर युद्ध न हुआ करेगे। उस दिन अमेरिका और जापान दोनों होंगे, परन्तु उनमें पूर्वीय और पश्चिमीयपन न होगा। काले-गोरे उस दिन भी होंगे परन्तु अमरीकावासी वहाँ के काले निवासी (Red Indians) को जीते-जी जला न सकेगे। शान्ति होगी परन्तु पीनलकोड की आवश्यकता न होगी। अग्रेज भी होगे और भारतवासी भी, परन्तु उस समय उनमें गुलाम और शासक का भाव न होगा। उस दिन महात्मा टाल्स्टाय के Resist not the evil (बुराइयों का प्रतिकार मत करो) वाले सिद्धान्त की उच्च ध्वनि न लगाने पर भी संसार में बुराइयाँ नजर न आयेगी। उस समय होगी पूर्ण स्वतन्त्रता। कैसा होगा वह समय ? जरा कल्पना करो !

वर्तमान दशा को देखकर कौन कह सकता है कि ऐसा समय भी आ सकता है, जिस समय किसी के भय से नही, परन्तु अपने हृदय की प्रेरणा से ही मनुष्य पाप कर्म नहीं करेगे। यदि उस दिन भी हमे किसी कल्पित स्वर्ग की लिप्सा होगी तो हम कह देंगे कि स्वर्ग कोई वस्तु है ही नही ! क्या वह समय आ सकता है ? यह है एक समस्या—एक बडी समस्या है। इसका उत्तर देना कोई सुगम कार्य नही है। परन्तु मै पूछता हूँ कि क्या लोग उस समय को लाना चाहते हैं ? वह लोग जो 'विश्वबन्धुता' (Universal brotherhood या Cosmopolitanism) का घोर नाद किया करते हैं; क्या वास्तव में उसे लाने के इच्छुक हैं ? 'हाँ' कह देने से ही काम नहीं चलेगा। काग्रेस का प्रस्ताव नहीं है। प्रश्न गम्भीरतापूर्वक विचार करने योग्य है। क्या लोग उसके लिए बलिदान देने को तैयार हैं ? उस कल्पित भविष्य के लिए हमें घोर वर्तमान देना होगा। उस कल्पित शान्ति के लिए हमें अशान्ति फैलानी होगी। उस हवाई किले के लिए हमें सर्वस्व देना होगा। उस शान्तिपूर्ण राज्य की स्थापना के लिए हमें घोर अराजकता फैलानी होगी। उस अत्याचार रहित संसार को अपनी ओर खींचने के लिए अत्याचार करने होगे। उस सुखमय जीवन के लिए—नहीं, नहीं, उसकी आशा मात्र के लिए मर मिटना होगा। क्या लोग उसके लिए तैयार हैं ?

हमें प्रचार करना होगा समता-समानता का। अत्याचार करना होगा उन पर जो उससे इनकारी हो। अराजकता फैलानी होगी उन राज्य-साम्राज्यों के स्थान पर जो शक्तिमद से अन्धे होकर करोड़ों की पीडा का कारण हो रहे हैं। क्या लोग उसके लिए तैयार है ?

हमें समस्त संसार को उस सिद्धान्त के स्वागत के लिए तैयार करना होगा। उस

आशामयी खेती के लिए हमें खेतों में से सबकुछ उखाड़ फेंकना होगा। काँटेदार झाड़ियों को उखाड़कर ज्वाला की शान्ति के लिए मटियामेट कर देना होगा। रोड़ा, कंकड़ पीस डालना होगा ? हमें घोर परिश्रम करना होगा। गिरे हुओं का उत्थान करना होगा। 'पस्ती' वालों को उन्नति का मार्ग दिखाना होगा। मिथ्या शक्तिवादियों को घसीटकर अपने साथ खड़े होने को विवश करना होगा। अहंकारियों का अहंकार तोड़ उन्हें नम्रता प्रदान करनी होगी। निर्बलों को बल, पराधीनों को स्वाधीनता, अशिक्षितों को शिक्षा, निराशावादियों को आशा की आभा, भूखों को रोटी, बेघरों को घर, नास्तिकों को विश्वास, अन्धविश्वासियों को विचार-स्वतन्त्रता देनी होगी। क्या लोग इतना काम करेंगे। ऐ विश्वबन्धुता विश्वबन्धुता चिल्लानेवाले ! क्या तुम उसके लिए तैयार हो ? यदि नहीं तो आज से इस ढोंग को छोड़ दो। हमें उस विश्वप्रेम की देवी के चरणों पर तुम्हारा भी बलिदान देना होगा, क्योंकि तुम मिथ्यावादी हो। अगर तैयार हो तो आ जाओ कर्मक्षेत्र में अभी परीक्षा हो जायेगी। घर में बैठे हुए, कोनों में दुबके हुए कर्मक्षेत्र के भयंकर दृश्य की कल्पना मात्र से काँपते हुए, सत्यप्रकाश से 'बाज' रहने के लिए इस महान सिद्धान्त की आड मत लो। यदि सचमुच उस कल्पित समय को लाने की चेष्टा है तो आओ। पहला काम पतित भारत का उत्थान करना होगा। गुलामियों की जंजीरों को काटना होगा। अत्याचार का सर्वनाश करना होगा। पराधीनता को मिट्टी में मिला देना होगा क्योंकि यह अपनी कमजोरी के कारण उस मनुष्य-जाति को, जिसकी सृष्टि परमपिता ने अपने ही अनुरूप की थी, न्यायपथ से भ्रष्ट करने का प्रलोभन हो रहा है।

यदि उपरोक्त कथन की सत्यता को मानते हुए भी तुम जेल के डर से या फाँसी के डर से इस मार्ग में आने से झिझकते हो तो आज से इस ढोंग को छोड दो।

अगर इस भय से कि क्रान्ति के पीछे घोर अराजकता फैल जायेगी या घोर रक्तपात होगा, एकदम अशान्ति होगी—तुम इस मार्ग में नहीं आते तो भी तुम भीरु हो, कायर हो, बुजदिल हो, इस आडम्बर को छोड़ दो।

अशान्ति फैलती है तो फैलने दो, परतन्त्रता भी तो न होगी। अराजकता फैलती है तो फैलने दो, पराधीनता का भी तो सर्वनाश हो जायेगा। आहा ! उस कशमकश में कमजोर पिस जायेंगे। रोज-रोज का रोना बन्द हो जायेगा। निर्बल न रहेंगे, बलवानों में मैत्री होगी। बलिष्ट लोगों में घनिष्टता होगी। उनमें प्रेम होगा, संसार में विश्वप्रेम का प्रचार हो सकेगा।

हाँ ! हाँ !! निर्बलों को एकबारगी पिस जाना होगा। वे समस्त संसार के अपराधी हैं। उन्होंने ही घोर अशान्ति फैला रखी है। सब बलवान बनें, नहीं तो उस चक्की में पिसकर मलीदा हो जायेंगे।

आये ! कौन माता का लाल सच्चे हृदय से विश्वबन्धुता का इच्छुक है। कौन है समस्त संसार के लिए अपना सुख बलिदान करनेवाला ?

कोई गुलाम जाति इस उच्चतम सिद्धान्त का नाम तक लेने की अधिकारिणी नहीं

है। एक गुलाम मनुष्य के मुख से निकलकर इसका महत्त्व ही जाता रहता है। एक अपमानित मनुष्य, पद-दलित मनुष्य, पैरों तले रौंदे जानेवाला मनुष्य यदि कहे—'मैं विश्वबन्धुता का अनुगामी हूँ, Universal brotherhood का पक्षपाती हूँ, इसलिए इन अत्याचारों का प्रतिकार नही करता—तो उसका कथन क्या मूल्य रख सकता है? कौन सुनेगा उसके इस कायरतापूर्ण वाक्य को? हाँ—तुममें शक्ति हो, तुममें बल हो, चाहो तो बडे-बडों को पैरों तले रौंद सको, एक इशारे से बडे-बडे अभिमानियो को मिट्टी में मिला सको, तख्तो-ताज वालो को खाक में सुला सको, उनको धूलि मे मिला सको, और फिर तुम यह वाक्य कहते हुए कि 'हम विश्वप्रेमी हैं' ऐसा न करो, तो तुम्हारी बात वजनदार होगी—फिर तुम्हारा एक-एक वाक्य प्रभावशाली होगा। फिर 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' भी महत्त्वपूर्ण हो जायेगा।

आज तुम गुलाम हो, पराधीन हो, परतन्त्र हो, बन्दी हो, तुम्हारी यही बात आज ढोंग प्रतीत होती है, एक आडम्बर दीख पड़ता है, बकवास मालूम देती है। क्या तुम उसका प्रचार करना चाहते हो? अगर हाँ, तो उसका अनुसरण करना होगा, जो कहता था, "He who loveth Humanity loveth God—" "God is love and love is God"—जो राजद्रोह के अपराध मे फॉसी चढा, उसकी तरह वीरतापूर्वक विश्वप्रेम का प्रचार करने को तैयार हो? जिस दिन तुम सच्चे प्रचारक बनोगे इस अद्वितीय सिद्धान्त के उस दिन तुम्हे माँ के सच्चे सुपुत्र गुरु गोविन्दसिह की तरह कर्मक्षेत्र मे उतरना पडेगा। उस विश्वप्रेम के सच्चे अनुगामी—सच्चे पक्षपाती की तरह—सब सपूत हैं एक पिता के, कहनेवाले उस महापुरुष की तरह, अपने चारो—आँखो के तारो, लख्ते जिगरो को जाति के भेंटकर माता के पूछने पर सरलता से उत्तर देनेवाले की तरह तुम्हे धैर्य दिखाना होगा। क्या तुम अपने प्रिय से प्रिय को—जिसकी स्मृति मात्र से हृदय धड़कने लगता हो, जिसे तुम हर समय अपने हृदय मे छिपाये रखने के इच्छुक हो—को अपनी आँखों के सामने बलिवेदी पर चढ़ता देख, अकथनीय कष्ट सहता देख धैर्य रख सकोगे? क्या उसके सामने ही तुम जीते-जी अग्नि-चिता पर प्रसन्नतापूर्वक चढ़ सकोगे; और हँसते हुए संसार की ओर करुणा-भरी दृष्टि से देखते हुए विदा हो सकोगे? यदि हाँ, तो आओ परीक्षा हो जायेगी, समय आ गया है। यदि हृदय में कुछ भी झिझक है तो खुदा के वास्ते इस आडम्बर को छोड़ दो।

जब तक 'काला-गोरा', 'सभ्य-असभ्य', 'शासक-शासित', 'धनी-निर्धन', 'छूत-अछूत' आदि शब्दों का प्रयोग होता है तब तक कहाँ विश्व-बन्धुता और विश्वप्रेम? यह उपदेश स्वतन्त्र जातियाँ कर सकती हैं। भारत-जैसी गुलाम जाति इसका नाम नहीं ले सकती।

फिर उसका प्रचार कैसे होगा? तुम्हें शक्ति एकत्र करनी होगी। शक्ति एकत्र करने के लिए अपनी एकत्रित शक्ति खर्च कर देनी पड़ेगी। राणाप्रताप की तरह आयुपर्यन्त ठोकरें खानी होंगी, तब कहीं उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकोगे। देखते नही विश्वबन्धुता

का सच्चा प्रचारक था मेज़िनी जो बीस वर्ष स्वयं ही एक जगह बन्द रहता है। लेनिन था उसका पक्षपाती—अकथनीय कष्ट सहन किये थे उसने। विश्वबन्धुता का अनुगामी जार्ज वाशिंगटन था—अमरीका का मुक्ति प्रदाता—फ्रांस के क्रान्तिकारी नेता थे कट्टर पक्षपाती—कितना रुधिर उन्होंने बहा दिया था। आदर्शवादी ब्रूट्स था विश्वप्रेमी—जिसने अपनी जन्मभूमि के लिए अपने परमप्रिय 'सीजर' को अपने हाथों कंतल कर डाला था और पीछे स्वय भी आत्महत्या कर ली थी। सानन्द युद्धों में प्रवीण रहनेवाला गैरीबाल्डी था, जिसे विश्वप्रेमी होने का श्रेय प्राप्त हो सकता है।

विश्वप्रेमी वह वीर है जिसे भीषण विप्लववादी, कट्टर अराजकतावादी कहने में हम लोग तनिक भी लज्जा नहीं समझते—वही वीर सावरकर। विश्वप्रेम की तरंग में आकर घास पर चलते-चलते रुक जाते कि कोमल घास पैरों तले मसली जायेगी।

75 दिन अनशन करके स्वर्गधाम को सिधारनेवाला वीर मैकस्वेनी इस मार्ग का पथिक होने का श्रेय प्राप्त कर सकता हैं जो कहता था—"It is the love of the country that ınspires us and not the hate of the enemy and the desire for full satisfaction for the past."

विश्वप्रेम की देवी का उपासक था 'गीता रहस्य' का लेखक पूज्य लोकमान्य तिलक। और देखोगे? वह सूखा सुकड़ा-सा 'लँगोटबन्द' जो सजा का हुक्म सुनाये जाने पर स्वर्गीय हँसी के साथ कह सकता था कि—मुझे जो दण्ड दिया गया वह अत्यन्त हल्का है और मेरे साथ जैसा विनम्र व्यवहार किया गया है उससे अधिक की आशा मैं नहीं कर सकता था, जिसके मर्मस्पर्शी कथन का तुम्हारे पत्थर के हृदयों पर कुछ प्रभाव नहीं होना—महात्मा है इस सिद्धान्त का पक्षपाती।

अरे! रावण और बाली को मार गिरानेवाले रामचन्द्र ने अपने विश्वप्रेम का परिचय दिया था भीलिनी के जूठे-कूठे बेरो को खाकर। चचेरे भाइयों में घोर युद्ध करवा देनेवाले, ससार से अन्याय को सर्वथा उठा देनेवाले कृष्ण ने परिचय दिया अपने विश्वप्रेम का—सुदामा के कच्चे चावलों को फाँक जाने में।

तुम भी विश्वप्रेम का दम भरते हो! पहिले पैरो पर खड़ा होना सीखो। स्वतन्त्र जातियों में अभिमान के साथ सिर ऊँचा करके खड़े होने के योग्य बनो। जब तक तुम्हारे साथ कामागाटामारू जहाज-जैसे दुर्व्यवहार होते रहेंगे, जब तक डैम काला मैन कहलाओगे, जब तक तुम्हारे देश में जलियाँवाले बाग-जैसे भीषण हत्याकाण्ड होते रहेंगे, जब तक वीरांगनाओं का अपमान होगा और तुम्हारी ओर से कोई प्रतिकार न होगा; तब तक तुम्हारा यह ढोंग कुछ मानी नहीं रखता। कैसी शान्ति, कैसा सुख और कैसा विश्वप्रेम?

यदि वास्तव में चाहते हो कि संसारव्यापी सुख-शान्ति और विश्वप्रेम का प्रचार करो तो पहिले अपमानो का प्रतिकार करना सीखो। माँ के बन्धन काटने के लिए कट मरो। बन्दी माँ को स्वतन्त्र करने के लिए आजन्म कालेपानी में ठोकरें खाने को तैयार हो

जाओ। सिसकती माँ को जीवित रखने के लिए मरने को तत्पर हो जाओ। तब हमारा देश स्वतन्त्र होगा। हम बलवान होंगे। हम छाती ठोंककर विश्वप्रेम का प्रचार कर सकेंगे। संसार को शान्ति-पथ पर चलने को बाध्य कर सकेंगे।

युवक !

['युवक !' शीर्षक से नीचे दिया गया भगतसिंह का यह लेख 'सा मतवाला' (वर्ष : 2, अंक सं. 38, 16 मई, 1925) में बलवन्तसिंह के नाम से छपा था। इस लेख की चर्चा 'मतवाला' के सम्पादकीय कर्म से जुड़े आचार्य शिवपूजन सहाय की डायरी मे भी मिलती है। लेख से पूर्व यहाँ 'आलोचना' में प्रकाशित डायरी के उस अंश को भी उद्धृत किया जा रहा है। —सं.]

आचार्य शिवपूजन सहाय की डायरी के अंश (पृ. 28)

23 मार्च

सन्ध्या समय सम्मेलन भवन के रगमच पर देशभक्त भगतसिंह की स्मृति मे सभा हुई। भगतसिंह ने 'मतवाला' (कलकत्ता) मे एक लेख लिखा था, जिसको सँवार-सुधारकर मैंने छापा था और उसे पुस्तक भण्डार द्वारा प्रकाशित 'युवक-साहित्य' में संगृहीत भी मैंने ही किया था। वह लेख बलवन्तसिंह के नाम से लिखा था। क्रान्तिकारी लेख प्रायः गुमनाम लिखते थे। यह रहस्य किसी को ज्ञात नही। वह लेख युवक-विषयक था। वह लाहौर से उन्होने भेजा था। असली नाम की जगह 'बलवन सिंह' ही छापने को लिखा था।

आलोचना-67/-वर्ष 32, अक्टूबर-दिसम्बर, 1983

युवावस्था मानव-जीवन का वसन्तकाल है। उसे पाकर मनुष्य मतवाला हो जाता है। हज़ारों बोतल का नशा छा जाता है। विधाता की दी हुई सारी शक्तियाँ सहस्र-धारा होकर फूट पड़ती हैं। मदान्ध मातंग की तरह निरकुश, वर्षाकालीन शोणभद्र की तरह दुर्द्धर्ष, प्रलयकालीन प्रबल प्रभंजन की तरह प्रचण्ड, नवागत वसन्त की प्रथम मल्लिका कलिका की तरह कोमल, ज्वालामुखी की तरह उच्छृंखल और भैरवी-संगीत की तरह मधुर युवावस्था है। उज्ज्वल प्रभात की शोभा, स्निग्ध सन्ध्या की छटा, शरच्चन्द्रिका की माधुरी ग्रीष्म-मध्याह्न का उत्ताप और भाद्रपदी अमावस्या के अर्द्धरात्र की भीषणता युवावस्था में सन्निहित है। जैसे क्रान्तिकारी के जेब में बमगोला, षड्यन्त्री की असटी में भरा-भराया तमञ्चा, रण-रस-रसिक वीर के हाथ में खड्ग, वैसे ही मनुष्य की देह में

युवावस्था। 16 से 25 वर्ष तक हाड़-चाम के सन्दूक में संसार-भर के हाहाकारों को समेटकर विधाता बन्द कर देता है। दस बरस तक यह झांझरी नैया मँझधार तूफ़ान में डगमगाती रहती है। युवावस्था देखने में तो शस्यश्यामला वसुन्धरा से भी सुन्दर है, पर इसके अन्दर भूकम्प की-सी भयंकरता भरी हुई है। इसीलिए युवावस्था में मनुष्य के लिए केवल दो ही मार्ग हैं—वह चढ़ सकता है उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर, वह गिर सकता है, अधःपात के अँधेरे ख़न्दक में। चाहे तो त्यागी हो सकता है युवक, चाहे तो विलासी बन सकता है युवक। वह देवता बन सकता है, तो पिशाच भी बन सकता है। वही संसार को त्रस्त कर सकता है, वही संसार को अभयदान दे सकता है। संसार में युवक का ही साम्राज्य है। युवक के कीर्तिमान से संसार का इतिहास भरा पड़ा है। युवक ही रणचण्डी के ललाट की रेखा है। युवक स्वदेश की यश-दुन्दुभि का तुमुल निनाद है। युवक ही स्वदेश की विजय-वैजयन्ती का सुदृढ़ दण्ड है। वह महासागर की उत्ताल तरंगों के समान उद्दण्ड है। वह महाभारत के भीष्मपर्व की पहली ललकार के समान विकराल है, प्रथम मिलन के स्फीत चुम्बन की तरह सरस है, रावण के अहंकार की तरह निर्भीक है, प्रह्लाद के सत्याग्रह की तरह दृढ़ और अटल है। अगर किसी विशाल हृदय की आवश्यकता हो, तो युवकों के हृदय टटोलो। अगर किसी आत्मत्यागी वीर की चाह हो, तो युवकों से माँगो। रसिकता उसी के बाँटे पड़ी है। भावुकता पर उसी का सिक्का है। वह छन्दः शास्त्र से अनभिज्ञ होने पर भी प्रतिभाशाली कवि है। कवि भी उसी के हृदयारविन्द का मधुप है। वह रसों की परिभाषा नहीं जानता, पर वह कविता का सच्चा मर्मज्ञ है। सृष्टि की एक विषम समस्या है युवक। ईश्वरीय रचना-कौशल का एक उत्कृष्ट नमूना है युवक। सन्ध्या समय वह नदी के तट पर घण्टों बैठा रहता है। क्षितिज की ओर बढ़ते जानेवाले रक्त-रश्मि सूर्यदेव को आकृष्ट नेत्रों से देखता रह जाता है। उस पार से आती हुई संगीत-लहरी के मन्द प्रवाह में तल्लीन हो जाता है। विचित्र है उसका जीवन। अद्भुत है उसका साहस। अमोघ है उसका उत्साह।

वह निश्चिन्त है, असावधान है। लगन लग गयी, तो रात-भर जागना उसके बायें हाथ का खेल है, जेठ की दुपहरी चैत की चाँदनी है, सावन-भादों की झड़ी मंगलोत्सव की पुष्पवृष्टि है, श्मशान की निस्तब्धता, उद्यान का विहंग-कल-कूजन है। वह इच्छा करे तो समाज और जाति को उद्बुद्ध कर दे, देश की लाली रख ले, राष्ट्र का मुखोज्ज्वल कर दे, बड़े-बड़े साम्राज्य उलट डाले। पतितों के उत्थान और संसार के उद्धारक सूत्र उसी के हाथ में हैं। वह इस विशाल विश्वरंगस्थल का सिद्धहस्त खिलाड़ी है।

अगर रक्त की भेंट चाहिए, तो सिवा युवक के कौन देगा? अगर तुम बलिदान चाहते हो, तो तुम्हें युवक की ओर देखना पड़ेगा। प्रत्येक जाति के भाग्यविधाता युवक ही तो होते हैं। एक पाश्चात्य पंडित ने ठीक कहा है—It is an established truism that youngmen of today are the Countrymen of tomorrow holding in their hands the high destinies of the Land. They are the seeds that

Spring and bear fruit. भावार्थ यह कि आज के युवक ही कल के देश के भाग्य-निर्माता हैं। वे ही भविष्य के सफलता के बीज है।

संसार के इतिहासों के पन्ने खोलकर देख लो, युवक के रक्त से लिखे हुए अमर सन्देश भरे पड़े हैं। संसार की क्रान्तियों और परिवर्तनों के वर्णन छाँट डालो, उनमें केवल ऐसे युवक ही मिलेंगे, जिन्हें बुद्धिमानों ने 'पागल छोकड़े' अथवा 'पथ-भ्रष्ट' कहा है। पर जो सिड़ी हैं, वे क्या ख़ाक समझेंगे कि स्वदेशाभिमान से उन्मत्त होकर अपनी लोथों से किले की खाइयों को पाट देनेवाले जापानी युवक किस फ़ौलाद के टुकड़े थे। सच्चा युवक तो बिना झिझक के मृत्यु का आलिंगन करता है, चोखी संगीनों के सामने छाती खोलकर डट जाता है, तोप के मुँह पर बैठकर भी मुस्कुराता ही रहता है, बेड़ियों की झनकार पर राष्ट्रीय गान गाता है और फाँसी के तख्ते पर अट्टहासपूर्वक आरूढ़ हो जाता है। फाँसी के दिन युवक का ही वज़न बढ़ता है, जेल की चक्की पर युवक ही उद्‌बोधन-मन्त्र गाता है, कालकोठरी के अन्धकार में धँसकर ही वह स्वदेश को अन्धकार के बीच से उबारता है। अमेरिका के युवक-दल के नेता 'पैट्रिक हेनरी' ने अपनी ओजस्विनी वक्तृता में एक बार कहा था—Life a dearer outside the prisonwals, but it is immeasurably dearer within the prison—cells, where it is the price paid for the freedom's fight. अर्थात् जेल की दीवारों से बाहर की ज़िन्दगी बड़ी महँगी है, पर जेल की काल-कोठरियों की ज़िन्दगी और भी महँगी है; क्योंकि वहाँ यह स्वतन्त्रता-संग्राम के मूल्य-रूप में चुकायी जाती है।

जब ऐसा सजीव नेता है, तभी तो अमेरिका के युवकों में यह ज्वलन्त घोषणा करने का साहस भी है कि, "We believe that when a Government becomes a destructive of the natural right of man, it is the man's duty to destroy that Government. अर्थात् अमेरिका के युवक विश्वास करते हैं कि जन्मसिद्ध अधिकारों को पद-दलित करनेवाली सत्ता का विनाश करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

ऐ भारतीय युवक! तू क्यों गफलत की नींद में पड़ा बेखबर सो रहा है! उठ, आँखें खोल, देख, प्राची-दिशा का ललाट सिन्दूर-रञ्जित हो उठा। अब अधिक मत सो। सोना हो तो अनन्त निद्रा की गोद में जाकर सो रह। कापुरुषता के क्रोड़ में क्यों सोता है? माया-मोह-ममता त्यागकर गरज उठ—

"Farewell Farewell My true Love
The army is on move;
And if I stayed with you Love,
A coward I shall prove."

तेरी माता, तेरी प्रातः स्मरणीया, तेरी परम वन्दनीया, तेरी जगदम्बा, तेरी

अन्नपूर्णा, तेरी त्रिशूलधारिणी, तेरी सिंहवाहिनी, तेरी शस्यश्यामलाञ्चला आज फूट-फूटकर रो रही है। क्या उसकी विकलता तुझे तनिक भी चंचल नहीं करती? धिक्कार है तेरी निर्जीवता पर! तेरे पितर भी नतमस्तक हैं इस नपुंसत्व पर! यदि अब भी तेरे किसी अंग में टुक हया बाकी हो, तो उठकर माता के दूध की लाज रख, उसके उद्धार का बीड़ा उठा, उसके आँसुओं की एक-एक बूँद की सौगन्ध ले, उसका बेड़ा पार कर और बोल मुक्त कण्ठ से बन्देमातरम्।

3

भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास

होली के दिन रक्त के छींटे

[घर से फरार होकर भगतसिंह कानपुर आ गये थे । वहाँ देशभक्त गणेशशकर विद्यार्थी के साप्ताहिक 'प्रताप' के सम्पादकीय विभाग में काम करते रहे । कानपुर में ही क्रान्तिकारी पार्टी से उनके गहरे सम्बन्ध बने । शिव वर्मा, जयदेव कपूर, बटुकेश्वर दत्त, विजय कुमार सिन्हा व क्रान्तिकारी पार्टी के अन्य साथियों से भारत के भविष्य पर लम्बा विचार-विमर्श हुआ । काज़ी नजरुल इस्लाम की बंगाली कविताएँ भी उन्होंने इसी दौरान पढ़ीं ।

पजाब में बब्बर अकाली आन्दोलन चल रहा था । उस आन्दोलन के छः कार्यकर्ताओं की फाँसी पर 'एक पंजाबी युवक' के नाम से 15 मार्च, 1926 के 'प्रताप' में यह लेख हिन्दी में छपा था । उस आन्दोलन की जानकारी तो लेख से मिलती ही है, साढे अठारह वर्षीय भगतसिंह की मानसिक परिपक्वता का बिम्ब भी इस लेख से झलकता है । —सं.]

होली के दिल—27 फरवरी, 1926 के दिन, जब हम लोग खेल-कूद में व्यस्त हो रहे थे, उसी समय इस विशाल प्रदेश के एक कोने में एक भीषण काण्ड किया जा रहा था । सुनोगे तो सिहर उठोगे ! काँप उठोगे ! ! लाहौर सेन्ट्रल जेल में ठीक उसी दिन छः बब्बर अकाली वीर फाँसी पर लटका दिये गये । श्री किशनसिंह जी गड़गज्ज, श्री सन्तासिह जी, श्री दिलीपसिंह जी, श्री नन्दसिह जी, श्री करमसिंह जी व श्री धरमसिंह जी लगभग दो वर्ष से अपने इसी अभियोग में जो उपेक्षा, जो लापरवाही दिखा रहे थे, उसी से जाना जा सकता था कि वे इस दिन की प्रतीक्षा कितने चाव से करते थे । महीनों बाद जज महोदय ने फैसला सुनाया । पाँच को फाँसी, बहुतों को काला पानी अथवा देश-निकाला और

लम्बी-लम्बी कैदें। अभियुक्त वीर गरज उठे। उन्होंने आकाश को अपने जयघोषों से गुंजायमान कर दिया। अपील हुई। पाँच की जगह छः मृत्युदण्ड के भागी बने। उस दिन समाचार पढ़ा कि दया के लिए अपील भेजी गयी है, पंजाब सचिव ने घोषणा की कि अभी फाँसी नहीं दी जायेगी।

प्रतीक्षा थी, परन्तु एकाएक क्या देखते हैं कि होली के दिन शोकग्रस्त लोगों का एक छोटा समूह उन वीरों के मृत शवों को श्मशान में लिये जा रहा है। चुपचाप उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त हो गयी।

नगर में वही धूम थी। आने-जानेवालों पर उसी प्रकार रंग डाला जा रहा था। कैसी भीषण उपेक्षा थी! यदि वे पथभ्रष्ट थे तो होने दो, उन्मत्त थे तो होने दो। वे निर्भीक देशभक्त तो थे। उन्होंने जो कुछ किया था, इस अभागे देश के ही लिए तो किया था। वे अन्याय न सहन कर सके, देश की पतित अवस्था को न देख सके, निर्बलों पर ढाये जानेवाले अत्याचार उनके लिए असह्य हो उठे, आम जनता का शोषण वह बर्दाश्त न कर सके, उन्होंने ललकारा और वे कूद पड़े कर्मक्षेत्र में। वे सजीव थे, वे सदृश थे। कर्मक्षेत्र की भीषणते! धन्य है तू!! मृत्यु के पश्चात् मित्र-शत्रु सब समान हो जाते हैं, यह आदर्श है पुरुषों का। अगर उन्होंने कोई घृणित कार्य किया भी हो, तो स्वदेश के चरणों में जिस साहस और तत्परता से उन्होंने अपने प्राण चढा दिये, उसे देखते हुए तो उनकी पूजा की जानी चाहिए। श्री टेगार्ड महोदय विपक्षी दल के होने पर भी जतीन मुकर्जी, बंगाल के वीर क्रान्तिकारी, की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए उनकी वीरता, देशप्रेम और कर्मशीलता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कर सकते हैं, परन्तु हम, कायर नरपशु, एक क्षण के लिए भी आनन्द-विलास छोड़ वीरों की मृत्यु पर आह तक भरने का साहस नहीं करते। कितनी निराशाजनक बात है! उन गरीबों का जो अपराध, नौकरशाही की दृष्टि मे था, उसका उन्होंने पर्याप्त दण्ड, क्रूर नौकरशाही की भी दृष्टि में पा लिया। इस भीषण दुखान्त नाटक का एक और पर्व समाप्त हो गया। अभी यवनिका-पतन नहीं हुआ है। नाटक अभी कुछ दिन और भीषण दृश्य दिखायेगा। कथा लम्बी है, सुनने के लिए जरा दूर तक पीछे मुड़ना होगा।

असहयोग आन्दोलन पूरे यौवन पर था। पंजाब किसी से पीछे नहीं रहा। पंजाब में सिक्ख भी उठे, बड़ी गहरी नींद से उठे और उठे खूब जोरों के साथ। अकाली आन्दोलन शुरू हुआ। बलिदानों की लड़ी लग गयी। मास्टर मोतासिंह, खालसा मिडिल स्कूल, माहलपुर, जिला होशियारपुर, के भूतपूर्व मास्टर महोदय, ने एक व्याख्यान दिया। उनका वारण्ट निकला। परन्तु सम्राट का आतिथ्य उन्हें स्वीकार न था। यों ही जेलों में चले जाने के वे विरोधी थे। उनके व्याख्यान फिर भी होते रहे। कोट फतूही नामक ग्राम में भारी दीवान हुआ, पुलिस ने चारों ओर से घेरा डाला, फिर भी मास्टर मोतासिंह ने व्याख्यान दिया। अन्त में प्रधान की आज्ञा से सभी दर्शक उठ गये। मास्टर जी न जाने किधर पहुँचे। बहुत दिनों तक इसी तरह यह आँखमिचौनी का खेल होता रहा। सरकार

बौखला उठी। अन्त में एक हमजोली ने धोखा दिया और डेढ़ वर्ष बाद एक दिन मास्टर साहब पकड़ लिये गये। यह पहला दृश्य था उस भयानक नाटक का।

गुरु का बाग आन्दोलन शुरू हुआ। निहत्थे वीरों पर जिस समय भाड़े के टट्टू टूट पड़ते, उन्हें मार-मारकर अधमरा-सा कर देते, देखने-सुननेवालों में से कौन होगा जो द्रवित न हो उठा हो! चारों ओर गिरफ्तारियों की धूम थी। सरदार किशनसिंह गड़गज्ज के नाम भी वारण्ट निकला। मगर वे भी तो उसी दल के थे। उन्होंने भी गिरफ्तार होना स्वीकार नहीं किया। पुलिस हाथ धोकर पीछे पड़ गयी, पर फिर भी वे बचते ही रहे। उनका संगठित किया हुआ अपना एक क्रान्तिकारी दल था। निहत्थों पर किये जानेवाले अत्याचार को वे सहन न कर सके। इस शान्तिपूर्ण आन्दोलन के साथ-साथ उन्होंने शस्त्रों का प्रयोग भी जरूरी समझा।

एक ओर कुत्ते, शिकारी कुत्ते, उनको खोज निकालने के लिए सूँघते फिरते थे, दूसरी ओर निश्चय हुआ कि खुशामदियों (झोलीचुक्कों) का सुधार किया जाये। सरदार किशनसिंह जी कहते थे, अपनी रक्षा के लिए हमें सशस्त्र जरूर रहना चाहिए, पर अभी कोई और कदम न उठाना चाहिए। परन्तु बहुमत दूसरी ओर था। अन्त में फैसला हुआ कि तीन व्यक्ति अपने नाम घोषित कर दें और सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लें तथा झोलीचुक्कों का सुधार शुरू कर दें। श्री कर्मसिंह, श्री धन्नासिंह तथा श्री उदयसिंह जी आगे बढ़े। यह उचित था अथवा अनुचित, इसे एक ओर हटाकर ज़रा उस समय की कल्पना तो कीजिए, जब इन नवीन वीरों ने शपथ ली थी–

'हम देश-सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देंगे, हम प्रतिज्ञा करते हैं कि लड़ते-लड़ते मर जायेंगे, मगर जेल जाना मंजूर न करेंगे।'

जिन्होंने अपने परिवार का मोह त्याग दिया था वे लोग जब ऐसी शपथ ले रहे थे, उस समय कैसा सुन्दर, मनोरम, पवित्रता से परिपूरित दृश्य रहा होगा! आत्म-त्याग की पराकाष्ठा कहाँ है? साहस और निर्भीकता की सीमा किस ओर है? आदर्शपरायणता की चरमता का निवास किधर है?

श्याम चुरासी, होशियारपुर ब्रांच रेलवे लाइन के एक स्टेशन के निकट सबसे पहले एक सूबेदार पर हाथ साफ किया गया। उसके बाद इन तीनों व्यक्तियों ने अपने नाम भी घोषित कर दिये। सरकार ने पूरी ताकत लगाकर इन्हें पकड़ने की कोशिश की, मगर सफलता न मिली। रुड़की कलाँ में सरदार किशनसिंह गड़गज्ज घिर गये। उनके साथ एक और युवक भी था जो वहीं घायल होकर पकड़ा गया। परन्तु किशनसिंह वहाँ से भी अपने शस्त्रों की सहायता से बच निकले। रास्ते में उन्हें एक साधु मिला। उसने उन्हें बताया कि उसके पास एक ऐसी बूटी है कि जिसकी सहायता से मनचाहा काम आसानी से किया जा सकता है। भ्रम में फँसकर एक दिन वे अपने शस्त्र रखकर इसी साधु के पास गये। कुछ दवाई रगड़ने को देकर साधु बूटी लेने गया और पुलिस को ले आया। सरदार साहब पकड़ लिये गये। वह साधु सी. आई. डी. विभाग का

सब-इन्सपेक्टर था। बब्बर अकाली वीरों ने अपना काम खूब जोरों के साथ शुरू कर दिया। कितने ही सरकार के सहायक मार डाले गये। दोआब-व्यास और सतलज के बीच में, जालन्धर और होशियारपुर का जिला पहले ही भारत के राजनैतिक मानचित्र में प्रसिद्ध है। 1915 के शहीदों में भी अधिकतर इन्हीं जिलों के लोग थे। अब फिर वहीं पर धूम मची। पुलिस विभाग ने सारी शक्ति खर्च कर दी, परन्तु कुछ न बन पड़ा। जालन्धर से कुछ दूर एक बिलकुल छोटी-सी नदी है। उसके किनारे एक गाँव में 'चौंतासाहब' नामक गुरुद्वारा है। उसमें श्री कर्मसिंह जी, श्री धन्नासिंह जी, श्री उदयसिंह जी तथा श्री अनूपसिंह जी दो-एक और व्यक्तियों के साथ बैठे थे, चाय बनाने की तैयारियाँ हो रही थीं। बैठे-बैठे श्री धन्नासिंह ने कहा, 'बाबा कर्मसिंह जी ! हमें यहाँ से अभी इसी वक्त चल देना चाहिए। मुझे किसी बुरी घटना होने का-सा आभास हो रहा है।' 75 वर्ष के बूढ़े कर्मसिंह ने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। पर श्री धन्नासिंह अपने साथ 18 वर्षीय दिलीपसिंह को साथ लेकर चले ही गये। बैठे-बैठे बाबा कर्मसिंह ने श्री अनूपसिंह की ओर बड़े गौर से देखकर कहा—'अनूपसिंह, तुम अच्छे आदमी नहीं हो,' मगर इसके बाद उन्होंने खुद भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। बातें अभी हो रही थीं कि सचमुच ही पुलिस आ धमकी। सारे बम श्री अनूपसिंह के कब्जे मे थे। ये सब लोग उठकर गाँवों में छिप गये। पुलिस ने लाख सिर मारा, पर विफल रही। अन्त में पुलिस की ओर से एक घोषणा की गयी। बागियों को निकालो, वरना गाँव में आग लगा दी जायेगी। पर गाँववाले विचलित नहीं हुए।

अवस्था को देखकर वे सब खुद ही बाहर निकल पड़े। सारे बम अनूपसिंह ले भागा और जाकर आत्मसमर्पण कर दिया। शेष चार व्यक्ति वहीं पर घिरे हुए खड़े थे। पुलिस के अंग्रेज कप्तान ने कहा, 'कर्मसिंह ! हथियार छोड़ दो, तुम्हें माफ कर दिया जायेगा।' वीर ने ललकारकर जवाब दिया—'हम अपने देश के लिए सच्चे क्रान्तिकारी की तरह लड़ते-लड़ते शहीद हो जायेंगे, पर हथियार नहीं डाल सकते।' उन्होंने अपने तीनों साथियों को ललकारा। वे सिंह की तरह गरज उठे। लड़ाई छिड़ गयी। खूब दनादन गोलियाँ चलीं। गोली-बारूद समाप्त होने पर वे वीर पानी में कूद पड़े और घण्टों गोलियों की वर्षा होते रहने पर ये चारों वीर स्वर्गधाम सिधार गये।

श्री कर्मसिंह की आयु 75 वर्ष की थी। वह कनाडा में रह चुके थे। उनका आचरण पवित्र और चरित्र आदर्श था। सरकार ने समझा, बब्बर अकाली खत्म हो गये, परन्तु वे उन्नति कर रहे थे। 18 वर्षीय दिलीपसिंह एक अत्यन्त सुन्दर, सुदृढ़, हृष्ट-पुष्ट, पर अशिक्षित नवयुवक थे, और उनका डाकुओं का साथ हो गया था। धन्नासिंह जी की शिक्षा ने उन्हें डाकुओं से एक सच्चा क्रान्तिकारी बना दिया। उधर सरदार बन्तासिंह और बरियामसिंह आदि कई प्रसिद्ध डाकू डाकेजनी छोड़कर इनमें आ मिले।

इन सबमें मृत्यु का डर नहीं था। ये अपने पिछले कुकर्मों को धो डालना चाहते थे। इनकी संख्या उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। एक दिन मानहाना नामक गाँव में धन्नासिंह

बैठे थे, पुलिस बुला ली गयी । नशे में चूर धन्नासिंह बैठे ही पकड लिये गये । उनका भरा हुआ पिस्तौल छीनकर हाथों में हथकड़ी लगा दी गयी और उन्हें बाहर लाया गया। बारह साधारण सिपाही और दो अंग्रेज आफिसर उनको घेरकर खड़े हो गये । ठीक उसी समय धमाके की आवाज़ हुई । धन्नासिंह जी ने बम चला दिया था । इससे वे स्वयं भी मरे और साथ ही एक अंग्रेज आफिसर और दस सिपाही । बाकी के लोग बुरी तरह घायल हुए ।

इसी तरह मुण्डेर नामक गाँव मे बैठे हुए बन्तासिंह, ज्वालासिंह आदि कई लोग घिर गये । ये सब छत पर बैठे हुए थे । गोली चली, कुछ देर तक अच्छी झडप होती रही, पर पुलिस ने पम्प से मिट्टी का तेल छिडककर घर मे आग लगा दी । फिर भी वरियामसिंह बच निकले, परन्तु बन्तासिंह वहीं मारे गये ।

अगर इससे पहले की एक-दो अन्य घटनाओं का वर्णन कर दिया जाये तो अनुचित न होगा । बन्तासिंह बडे साहसी पुरुष थे । एक बार, शायद जालन्धर छावनी मे जाकर रिसाले मे पहरे पर खड़े हुए सिपाही की घोडी तथा राइफल वे छीन लाये थे । इन दिनों, जबकि पुलिस के दस्ते-के-दस्ते इनकी तलाश में मारे-मारे फिरते थे, कहीं जगल में किसी दस्ते से इनकी भेंट हो गयी। सरदार बन्तासिंह ने फौरन चुनौती दी—'अगर हिम्मत हो तो दो-दो हाथ कर लो,' परन्तु उस ओर तो थे पैसे के गुलाम और इस ओर आत्मोत्सर्ग के इच्छुक । तुलना कैसे हो सकती है । सिपाहियो का दस्ता चुपचाप चला गया ।

इन लोगों को पकडने के लिए खासतौर से पुलिस नियुक्त की गयी थी । और उसकी थी यह दशा ! खैर, गिरफ्तारियो की भरमार थी । गाँव-गाँव मे पुलिस की ताजीरी चौकियाँ बिठायी जाने लगीं । धीरे-धीरे बब्बर अकालियों का जोर कम होने लगा । अब तक तो मानो इन्हीं का राज्य था । जहाँ जाते, कुछ लोग हर्ष और चाव से, कुछ भय और त्रास से इनकी खूब आवभगत करते । सरकार के सहायक एकदम पस्त हुए बैठे थे । सूर्योदय के पहले सूर्योदय के बाद घर से निकलने का साहस ही उन्हे न होता था । ये उन दिनों के 'हीरो' समझे जाते थे । वे वीर थे और उनकी पूजा वीर-पूजा समझी जाती थी । परन्तु धीरे-धीरे उनका जोर खत्म हो गया । सैकड़ों पकडे गये, मुकदमे शुरू हुए ।

वरियामसिंह अकेले बचे थे । जालन्धर, होशियारपुर मे पुलिस का अधिक जोर देखकर वे दूर लायलपुर में जा रहे थे । वहाँ पर एक दिन बिलकुल घिर गये, मगर खूब शान के साथ लड़ते हुए बच निकले, लेकिन बहुत थक गये थे । कोई साथी भी न था । दशा बड़ी विचित्र थी । एक दिन ढेसिया नामक गाँव में अपने मामा के पास गये । शस्त्र बाहर रखे थे । शाम को भोजन करने के बाद अपने शस्त्रों के पास जा रहे थे कि पुलिस आ पहुँची । फिर घिर गये । अंग्रेज नायक ने उन्हें पीछे से जा पकड़ा । उन्होंने कृपाण से ही उसे बुरी तरह घायल कर दिया । फिर वे नीचे गिर गये । हथकड़ी पहनाने की सारी चेष्टाएँ विफल हुईं । दो वर्ष के पूर्ण दमन के पश्चात् अकाली जत्थे का अन्त हुआ । उधर

मुकदमा चलने लगा, जिसका परिणाम ऊपर लिखा जा चुका है। अभी उस दिन इन लोगों ने शीघ्र फाँसी पर चढ़ाये जाने की इच्छा प्रकट की थी। उनकी वह इच्छा पूरी हो गयी। वे शान्त हो गये।

अपने मित्र अमरचन्द (जो उस समय अमरीका में पढ़ रहे थे) को लिखा भगतसिंह का सन् 1927 का पत्र

प्यारे भाई अमरचन्द जी,

नमस्ते।

अर्ज है कि इस दफा अचानक माँ के बीमार होने पर इधर आया और आपकी मोहतरिमा वाल्दा [आदरणीया माँ] के दर्शन हुए। आपका खत पढ़ा। इनके लिए यह [साथ वाला] खत लिखा। साथ ही दो-चार अल्फाज़ [शब्द] लिखने का मौका मिल गया। क्या लिखूँ, करमसिह विलायत गया है, उसका पता भेजा जा रहा है। अभी तो उसने लिखा है कि लॉ पढेगा, मगर कैसे चल रहा है, सो खुदा जाने, खर्च बहुत ज्यादा हो रहा है।

भाई, हमारी मुमालिक गैर [विदेश] में जाकर तालीम [शिक्षा] हासिल करने की ख्वाहिश खूब पायमाल [बर्बाद] हुई। अच्छा, तुम्हीं लोगों को सब मुबारक, कभी मौका मिले तो कोई अच्छी-अच्छी कुतब [पुस्तकें] भेजने की तकलीफ उठाना। आखिर अमेरिका मे लिट्रेचर तो बहुत है। खैर, अभी तो अपनी तालीम में बुरी तरह फँसे हुए हो।

सान्फ्रासिस्को वगैरह की तरफ से सरदारजी [अजीतसिह जी] का शायद कुछ पता मिल सके। कोशिश करना। कम-अज-कम ज़िन्दगी का यकीन तो हो जाये। मैं अभी लाहौर जा रहा हूँ। कभी मौका मिले तो ख़त तहरीर फरमाइयेगा। पता सूत्र मण्डी लाहौर होगा। और क्या लिखूँ? कुछ लिखने को नहीं है। मेरा हाल भी खूब है। बारहा [कई बार] मुसायब [मुसीबतों] का शिकार होना पड़ा। आखिर केस वापस ले लिया गया। बादवाँ [बाद में] फिर गिरफ्तार हुआ। साठ हज़ार की ज़मानत पर रिहा हूँ। अभी तक कोई मुकदमा मेरे खिलाफ तैयार नहीं हो सका और ईश्वर ने चाहा तो हो भी नहीं सकेगा। आज एक बरस होने को आया, मगर ज़मानत वापस नहीं ली गयी। जिस तरह ईश्वर को मंजूर होगा। **ख्वाहमख्वाह तंग करते हैं**[1]। भाई, खूब दिल लगाकर तालीम हासिल करते चले जाओ।

आपका ताबेदार

भगतसिह

---

1 *काले टाइप मे दिये गये शब्द लिखकर काट दिये गये हैं।*

अपने मुताल्लिक और क्या लिखूँ, ख्वाहमख्वाह शक का शिकार बना हुआ हूँ। मेरी डाक रुकती है। खतूत [पत्र] खोल लिये जाते हैं। न जाने मैं कैसे इस कदर शक की निगाह से देखा जाने लगा। खैर भाई, आखिर सच्चाई सतह पर आयेगी और इसी की फतह होगी।

काकोरी के वीरों से परिचय

[9 अगस्त, 1925 को शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला और उनके अन्य क्रान्तिकारी साथियों ने क्रान्तिकारी पार्टी के लिए चन्दा इकट्ठा करने के लिए लखनऊ के करीब काकोरी के पास रेलगाड़ी रोक सरकारी खजाना लूटा, इसके बाद सिवाय शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद के बाकी सभी क्रान्तिकारी पकड़े गये। भगतसिंह भी तब कानपुर निवास के समय हिन्दुस्तान रिपब्लिकन पार्टी में भर्ती हो चुके थे। उनके अपने शब्दों में, "फिर सारी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर उठाने का समय आया।" भगतसिंह ने रोमाण्टिक क्रान्तिकारी से एक बड़ा मोड़ काटा और उनके ही शब्दों में, "मैंने अध्ययन शुरू कर दिया।"

'विद्रोही' नाम से मई, 1927 में भगतसिंह ने एक लेख 'काकोरी के वीरों से परिचय' शीर्षक से पंजाबी में छपवाया। उस लेख के छपते ही भगतसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया और चारपाई पर हथकड़ी लगे बैठे भगतसिंह का प्रसिद्ध चित्र इसी गिरफ्तारी के समय लिया गया। इससे पहले भगतसिंह पंजाब लौटकर शचीन्द्रनाथ सान्याल की पुस्तक 'बन्दी जीवन' का पंजाबी अनुवाद छपवा चुके थे। —सं.]

पहले 'किरती' [पंजाबी पत्रिका] में काकोरी से सम्बन्धित कुछ लिखा जा चुका है। आज हम काकोरी षड्यन्त्र और उन वीरों के सम्बन्ध में कुछ लिखेंगे जिन्हें उस सम्बन्ध में कड़ी सजाएँ मिली हैं।

9 अगस्त, 1925 को एक छोटे-से स्टेशन काकोरी से एक पैसेंजर ट्रेन चली। यह स्टेशन लखनऊ से आठ मील की दूरी पर है। ट्रेन मील-डेढ़ मील चली होगी कि सेकेण्ड क्लास में बैठे हुए तीन नौजवानों ने गाड़ी रोक ली और दूसरों ने मिलकर गाड़ी में जा रहा सरकारी खजाना लूट लिया। उन्होंने पहले ही जोर से आवाज देकर सभी यात्रियों को समझा दिया था कि वे डरें नहीं, क्योंकि उनका उद्देश्य यात्रियों को तंग करने का नहीं, सिर्फ सरकारी खजाना लूटने का है। खैर, वे गोलियाँ चलाते रहे। वह [कोई यात्री] आदमी गाड़ी से उतर पड़ा और गोली लग जाने से मर गया।

सरकारी अधिकारी हार्टन, सी. आई. डी. इसकी जाँच में लगा। उसे पहले से ही यकीन हो गया था कि यह डाका क्रान्तिकारी जत्थे का काम है। उसने सभी संदिग्ध

व्यक्तियों की छान-बीन शुरू कर दी। इतने में क्रान्तिकारी जत्थे की राज्य परिषद की एक बैठक मेरठ में होनी तय हुई। सरकार को इसका पता चल गया। वहाँ खूब छान-बीन की गयी।

फिर सितम्बर के अन्त में हार्टन ने गिरफ्तारियों के वारण्ट जारी किये और 26 सितम्बर को बहुत-सी तलाशियाँ ली गयीं और बहुत-से व्यक्ति पकड़ लिये गये। कुछ नहीं पकडे गये। उनमे से एक श्री राजेन्द्र लाहिड़ी दक्षिणेश्वर बम केस में पकड़े गये और वहीं उन्हे दस बरस कैद हो गयी। और श्री अशफाकउल्ला और शचीन्द्र बख्शी बाद में पकड़े गये, जिन पर अलग मुकदमा चला।

जज के फैसले से यह पता चलता है कि असहयोग आन्दोलन दब जाने से देशभक्त युवकों का शान्ति से विश्वास उठ गया और उन्होंने युगान्तर दल स्थापित किया। श्री जोगेशचन्द्र चट्टोपाध्याय बंगाल से इस दल का सगठन बनाने यू. पी. आये और पक्का काम कर सितम्बर, 1924 में लौट गये। उस समय बंगाल में आर्डिनेंस पास हो चुका था और आप लौटते ही हावड़ा पुल पर पकड़े गये। तलाशी लेने पर आपकी जेब से एक कागज मिला, जिस पर यू. पी. की राज्य परिषद की किसी बैठक का और यू. पी. में अपने दल के संगठन का हाल लिखा हुआ था। खैर, फिर काम चल पड़ा और काम चलाने की खातिर कई डकैतियाँ भी की गयीं। जज के विचार में इस दल के नेता हैं—श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल।

श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल का नाम किससे छिपा है। आप ही 'बन्दी जीवन' जैसी प्रसिद्ध व शानदार पुस्तक के लेखक हैं। बनारस के निवासी हैं और 1915 के गदर आन्दोलन में आपने खूब काम किया था। आप बनारस षड्यन्त्र के नेता व श्री रासबिहारीजी का दायाँ हाथ थे। तब उम्र कैद हुई थी लेकिन 1920 में छूट गये थे। फिर आप अपने पिछले काम पर ही जुट गये और सन् 1925 के शुरू मे 'दी रेवल्यूशनरी' पर्चा एक ही दिन में सारे हिन्दुस्तान में बँटा। उसकी भाषा व अच्छे विचारों की अंग्रेजी अखबारों ने भी खूब तारीफ की थी। आप फरवरी में पकड़े गये। आप पर उस सम्बन्ध में मुकदमा चलाया गया और आपको दो साल कैद की सजा मिली। वहीं से आपको काकोरी के मुकदमे मे घसीट लिया गया। आप बड़े जिन्दादिल हैं। कोर्ट में स्वयं खुश रहना और दूसरों को खुश रखना ही आपका काम था। आप ने अपना मामला स्वयं लड़ा। जज आपको ही सबका गुरु कहता है। 'बन्दी जीवन' का गुजराती व पंजाबी में अनुवाद हो चुका है।

आप अंग्रेजी और बंगाली के उच्च कोटि के लेखक हैं। अब आपको दो उम्र कैद हो गयी हैं।

आपके साथ आपका छोटा भाई भूपेन्द्रनाथ सान्याल भी घसीट लिया गया। वह करीब बी. ए. में पढ़ता था। पकड़ा गया और उसे पाँच साल की कैद हो गयी।

श्री शचीन्द्र के बाद अत्यन्त प्रसिद्ध वीर श्री रामप्रसाद हैं। आप जैसा सुन्दर,

मजबूत जवान खोजने से मिलना भी मुश्किल है । बहुत योग्य आदमी है । हिन्दी का बड़ा लेखक है। आपने 'कैथराइन', 'बोल्शेविकों के काम', 'मन की लहर' आदि अनेक पुस्तकें लिखीं । आप उर्दू के माने हुए शायर हैं । आपकी उम्र 28 बरस की है । पहले 1919 में मैनपुरी षड्यन्त्र मे आपके वारण्ट निकले और आपके गुरु श्री गेंदालालजी आदि पकड़े गये, लेकिन आप नेपाल की ओर चले गये और वहाँ बडी मुश्किलें सहन कर गुजारा करते रहे । पूरा दिन हल चलाना, कुदाल चलाना, मेहनत-मशक्कत करना और रात में सिर्फ डेढ आना पाना, जिससे पेट-भर रोटी भी नही खा सकते थे । कई बार तो घास तक खाना पड़ा । लेकिन मजा यह, फिर भी बैठकर कविता लिखना, और भारत माता की याद और प्रेम में आँसू बहाने और गीत गाने । ऐसे नौजवान कहाँ से मिल सकते हैं ? आप युद्ध-विद्या में बड़े कुशल हैं और आज उन्हें फाँसी का दण्ड मिलने का कारण भी बहुत हद तक यही है । इस वीर को फाँसी का दण्ड मिला और आप हँस दिये । ऐसा निर्भीक वीर, ऐसा सुन्दर जवान, ऐसा योग्य और उच्चकोटि का लेखक और निर्भय योद्धा मिलना मुश्किल है ।

तीसरे वीर श्री राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी हैं । 24 वर्ष का अत्यन्त सुन्दर जवान एम. ए., बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था । जज कहता है कि यह युगान्तर दल का एक मजबूत स्तम्भ है। आप गाड़ी रोकनेवालो मे थे। बाहर से था कमजोर सूखा-सा । कलकत्ते के पास दक्षिणेश्वर बम फैक्ट्री में पकड़ा गया, वहीं दस साल कैद हुई । खुशी में मोटा होने लगा । काकोरी के मुकदमे में तो शरीर खूब भर गया था और अब फाँसी की सजा हो गयी है ।

वीर रोशनसिंह को भी फाँसी की सजा हुई है । आप पहले पुलिस की मदद करते थे और बहुत-से डकैत आपने पकडवाये थे । आप भी फँस गये । लेकिन कोई डकैत तो नहीं है। जज भी कहता है, यह नौजवान सच्चे देशसेवक थे! अच्छा! इस वीर को भी बार-बार नमस्कार ।

इसके बाद श्री मन्मथनाथ गुप्त की बारी है । आप काशी विद्यापीठ के बी. ए. के विद्यार्थी थे । 18 बरस की उम्र है । बंगाली, गुजराती, मराठी, उड़िया, हिन्दी, अंग्रेजी और फ्रेन्च आदि अनेक भाषाएँ आपने सीख ली थीं । जज ने आपको भी डकैतियों में शामिल कर 14 साल की सख्त सजा दी है । आप बड़े निर्भय हैं और यह सजा सुनकर हँस दिये । आजकल जेल में भूख हड़ताल किये बैठे हैं । आपसे गैर-सरकारी सदस्य ने जेल में आकर पूछा कि खाना क्यों नहीं खाते, तो आप ने उत्तर दिया कि हम मनुष्य हैं । हमारे साथ मनुष्यों-जैसा व्यवहार होना चाहिए। मैं नहीं समझता कि इस पशुओं-जैसे व्यवहार को सहन कर मैं 14 साल तक जी सकूँगा । तिल-तिलकर मरने से एक बार मर जाना अच्छा है । आप पहले असहयोग में भी जेल जा चुके हैं ।

अब जिस नौजवान का जिक्र होगा उसे यदि हम महापुरुष कह दें तो कुछ झूठ न होगा । वह वीर श्री जोगेशचन्द्र चटर्जी हैं । आप कोमिल्ला (ढाका) के रहनेवाले हैं । वह

बी. ए. में फिलास्फी के विद्यार्थी थे। प्रोफेसर आप पर बहुत खुश थे और कहते थे कि लडका बड़ा होनहार है। लेकिन आपने कालेज तो क्या, पूरी दुनिया की फिलास्फी पर लात मार दी और सबकुछ छोड़कर युगान्तर दल में जा मिले। आपको डिफेन्स आफ इण्डिया एक्ट के अनुसार गिरफ्तार किया गया और अकथनीय व असहनीय कष्ट दिये गये। एक दिन आपके सर पर पाखाना डाल दिया गया और चार दिन तक कोठरी में बन्द रखा गया। मुँह धोने तक के लिए पानी नहीं दिया गया और बुरी तरह मार-मारकर पूरा बदन जख्मी कर दिया गया। लेकिन आपके पास चुप से अधिक क्या रखा था।

1920 में छूटे तो एक मामूली कार्यकर्ता की तरह कांग्रेस में काम करते रहे। घर से गरीब हैं, लेकिन अपना घर तबाह करके भी दुनिया की सेवा होती है। आप 1923 में यू. पी. आये और फिर 'युगान्तर' दल की नींव रखी। 1924 में बंगाल लौट गये और पकड़े गये। पहले आपको आर्डिनेंस के तहत पकड़ा था, फिर यहाँ काकोरी लाया गया। आपको दस बरस कैद हुई है। बेहद खूबसूरत नौजवान हैं। जज ने आपकी बड़ी तारीफ की है।

श्री गोविन्द चरणकार उर्फ डी. एन. चौधरी लखनऊ से पकड़े गये थे। आप बहुत पुराने क्रान्तिकारी हैं। 1918 या 1919 में ढाका में पुलिस आपको पकड़ने आयी। आपने गोलियों का जवाब गोलियों से दिया और गोलियों में से लड़ते-लड़ाते भाग निकले, लेकिन गोलियाँ खत्म हो चुकी थीं और आप घायल हो गये थे। पकड़े गये, काला पानी मिला। 1922 में बहुत बीमार हो गये थे, तब छोड़े गये। 1925 में फिर पकड़े गये और अब 10 साल कैद हो गयी है।

अब श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य सम्बन्धी कुछ लिखेंगे। आप भी बनारस के रहनेवाले थे। बनारस षड्यन्त्र के समय आपकी उम्र 16 बरस की थी, पकड़े गये। लेकिन कुछ प्रमाणित न होने से छूट गये और फिर नजरबन्द कर बुन्देलखण्ड में रखे गये। आप हिन्दी के बड़े प्रसिद्ध लेखक हैं। कानपुर के 'प्रताप' जैसे प्रसिद्ध अखबार के सहायक सम्पादक थे। आप बनारस से पकड़े गये और अब आपको सात साल कैद हुई है। आप बहुत सुन्दर गाते हैं। जेल में आप योगाभ्यास करते थे।

श्री राजकुमार कानपुर के रहनेवाले हैं। आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बी. ए. में पढ़ते थे। पकड़े गये। आपके कमरे से दो राइफलें निकलीं। बहुत सुन्दर गानेवाले और देखने में भी आप काफी सुन्दर हैं। जोशीले बहुत हैं। श्री दामोदर स्वरूप जब बहुत बीमार होने पर भी कोर्ट में बुलाये गये तो आपको जोश आ गया और आपने जज को खूब सुनायी। जज ने कहा कि फैसले के समय तुम्हें इसका मजा चखाया जायेगा। वीर युवक को दस साल की सजा हो गयी! जीवन एक तरह से तबाह हो गया, लेकिन आप हँस दिये। धन्य हैं यह वीर और इन्हें जन्म देनेवाली वीर माताएँ।

श्री विष्णु शरण दुबलिस मेरठ के रहनेवाले हैं। वैश्य अनाथालय के अधीक्षक थे। बी. ए. में असहयोग कर दिया गया था और मेरठ को उन्होंने दूसरा बारदोली बना दिया

था। सिवल नाफरमानी के लिए तैयार हो गये थे। बड़े सुन्दर वक्ता थे। आपके घर युगान्तरकारियों की बैठक हुई थी। आपको सात साल की सजा हो गयी है।

श्री रामदुलारे को भी 7 साल की सजा हुई है। आप कानपुर निवासी थे। स्काउट मास्टर, कांग्रेस के जोशीले सेवक थे।

6 अप्रैल को फैसला सुनाया गया, उस दिन सभी वीर गाते आये थे—

सरफरोशी की तमन्ना, अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाज़ुए-कातिल में है!

सजाएँ लापरवाही से सुनीं और हँस दिये। उसके बाद दुख की घड़ी आ गयी। जिन वीरों ने एक साथ समुद्र में किश्तियाँ डाली थीं, उनके ही अलग होने का पल आ गया। "क्रान्तिकारी लोगों में जो अगाध और गम्भीर प्रेम होता है, उसे साधारण दुनियादार आदमी अनुभव नहीं कर सकते," श्री रासबिहारी के इस वाक्य का अर्थ भी हम लोग नहीं समझ सकते। जिन लोगों ने 'सिर रख तली प्रेम की गली' में पैर रख दिया हो, उनकी महिमा को हमारे-जैसे निकृष्ट आदमी क्या समझ सकते हैं? उनका परस्पर प्रेम कितना गहन होता है, उसे हम सपने में भी नहीं जान सकते। डेढ़ साल से अपने जीवन के अन्धकारमय भविष्य के इन्तजार में मिलकर बैठे थे। वह पल आया, तीन को फाँसी, एक को उम्र कैद, एक को 14 बरस कैद, 4 को दस बरस कैद व बाकियों को 5 से 10 साल की सख्त कैद सुनाकर जज उन्हें उपदेश देने लगा, "आप सच्चे सेवक और त्यागी हो। लेकिन गलत रास्ते पर चले हो।" गरीब भारत में ही सच्चे देशभक्तों का यह हाल होता है। जज उन्हें अपने कामों पर पुनर्विचार करने की बात कह चलता बना और फिर फिर क्या हुआ? क्या पूछते हैं? जुदाई के पल बडे बुरे होते हैं। जिन्हें फाँसी की सजा मिल गयी, जिन्हें उम्र-भर के लिए जेल में बन्द कर दिया गया, उनके दिलों का हाल हम नहीं समझ सकते। कदम-कदम पर रोनेवाले हिन्दुस्तानी, यों ही थर-थर काँपने लग जानेवाले कायर हिन्दुस्तानी, उन्हे क्या समझ सकते हैं? छोटों ने बड़ों के पैरों पर झुककर नमस्कार किया। उन्होंने छोटों को आशीर्वाद दिया, जोर से गले मिले और आह भरकर रह गये। भेज दिये गये। जाते हुए श्री रामप्रसादजी ने बड़े दर्दनाक लहजे में कहा—

दरो-दीवार पे हसरत से नज़र करते हैं।
खुश रहो एहले वतन हम तो सफर करते हैं।

यह कहकर वह लम्बी, बड़ी दूर की यात्रा पर चले गये। दरवाजे से निकलते समय उस अदालत के बड़े भारी रैंकन थिएटर हाल की भयावह चुप्पी को एक आह भरकर तोड़ते हुए उन्होंने फिर कहा—

हाय, हम जिस पर भी तैयार थे मर जाने को।
जीते जी हमसे छुड़ाया उसी काशाने को।

हम लोग एक आह भरकर समझ लेते हैं कि हमारा फर्ज पूरा हो गया । हमें आग नहीं लग उठती, हम तड़प नहीं उठते, हम इतना मुर्दे हो गये हैं । आज वे भूख-हड़ताल कर बैठे हैं और तड़प रहे हैं और हम चुपचाप सब तमाशा देख रहे हैं । ईश्वर उन्हें बल व शक्ति दे कि वे वीरता से अपने दिन पूरे करें और उन वीरों के बलिदान रंग लायें ।

लेखक
'विद्रोही

शहीद राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी का पत्र

[भगतसिंह काकोरी के शहीद राजिन्द्र लाहिड़ी से इतने प्रभावित हुए कि अपने सबसे छोटे भाई, जिसका जन्म 1927 में हुआ, का नाम राजिन्द्र रखा । कारण यह कि वह वैचारिक स्तर पर अपने दूसरे साथियों से आगे थे, समाजवाद, साम्यवाद से वे काफी परिचित थे । यह पत्र उनकी टिप्पणी सहित अक्तूबर, 1927 में 'किरती' में छपा ।—सं.]

मैं फिर जन्म लूँगा

काकोरी षड्यन्त्र केस में जिन चार भाइयो को फाँसी की सजा हुई है उनके नाम यह हैं—1. रामप्रसाद 2. राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी 3. रोशनसिंह 4. अशफाकउल्ला खान ।

इनमे से राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी, एम. ए. कक्षा का छात्र था । वह बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढता था । वह 1925 में पकड़ा गया था । इसकी अपील व रहम की दरखास्त की गयी थी, लेकिन वे सब नामंजूर हो गयीं ।

इस बहादुर भाई ने निम्न पत्र अपने बड़े भाई को लिखा है ।

मेरे प्रिय भाई !

आज मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट ने बताया है कि वाइसराय ने मेरी रहम की दरखास्त नामंजूर कर दी है । जेल के नियमों के अनुसार मुझे एक सप्ताह के भीतर फाँसी पर चढ़ाया जायेगा । तुम्हें मेरे लिए अफसोस नहीं करना चाहिए क्योंकि मैं अपना पुराना शरीर छोड़कर नया जन्म धारण कर रहा हूँ । आपको यहाँ आकर मुलाकात करने की जरूरत नहीं, क्योंकि कुछ दिन पहले ही आप मुलाकात कर चुके हो । जब मैं लखनऊ में था तो बहिन ने दो बार मुलाकात की थी । सभी को मेरी ओर से प्रणाम और लड़कों को प्यार ।

आपका प्रिय
राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी

इस पत्र ने हमें फिर करतारसिंह सराभा और भाई पिंगले आदि का समय याद दिला दिया है और हमारे पुराने घावों को हरा कर दिया है।

शहीद रामप्रसाद बिस्मिल का अन्तिम सन्देश

[1927 में काकोरी के चार शहीदों को फाँसी दी गयी। जनवरी, 1928 के 'किरती' में भगतसिंह ने 'विद्रोही' नाम से इन पर कुछ लेख छपवाये। यह उन्हीं में से एक है।—सं.]

आपने एक लेख 'निज-जीवन घटा' लिखा था जो गोरखपुर के 'स्वदेश' अखबार में छपा था। उसी का संक्षेप हम पाठकों की सेवा में रख रहे हैं, ताकि वे जान सकें कि उन क्रान्तिकारी वीरों के शहादत के समय क्या विचार थे।

आप 16 तारीख को लिखते हैं—

19 तारीख सुबह साढ़े छः बजे फाँसी का समय निश्चित हो चुका है। कोई चिन्ता नहीं, ईश्वर की कृपा से मैं बार-बार जन्म लूँगा और मेरा उद्देश्य होगा कि संसार में पूर्ण स्वतन्त्रता हो, कि प्रकृति की देन पर सबका एक-सा अधिकार हो कि कोई किसी पर शासन न करे। सभी जगह लोगों के अपने पचायती राज्य स्थापित हों। अब मैं उन बातों का उल्लेख कर देना जरूरी समझता हूँ जो सेशन जज के 6 अप्रैल, 1927 के फैसले के बाद काकोरी के कैदियों के साथ हुईं। 18 जुलाई को अवध चीफ कोर्ट में अपील हुई। वह सिर्फ मौत की सजा पाये चार कैदियों की ओर से थी। लेकिन पुलिस की ओर से सज़ा बढ़ाने की अपील हुई। फिर बाकी कैदियों ने भी अपील कर दी, लेकिन श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल, श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल और इकबालिया गवाह बनवारीलाल ने अपील नहीं की थी और फिर प्रणव चटर्जी ने इकबाल कर लिया और अपील वापस ले ली। फाँसीवालों की सजा बहाल रही और श्री जोगेशचन्द्र चटर्जी, श्री गोविन्दचरण क्यू और श्री मुकन्दीलाल जी को दस साल की उम्र कैद हो गयी। श्री सुरेशचन्द भट्टाचार्य और श्री विष्णुशरण दुबलिस की सज़ा 7-7 साल से बढाकर 10-10 साल कर दी गयी। रामनाथ पाण्डे की तीन साल और प्रणवेश की कैद चार साल रह गयी। प्रेमकिशन खन्ना पर से डकैती की सज़ा कम कर पाँच वर्ष कैद रह गयी। बाकी सबकी अपीलें खारिज कर दी गयीं। अशफाक की मौत की सजा बनी रही, शचीन्द्रनाथ बख्शी ने अपील ही नहीं की थी।

अपील से पहले ही मैंने गवर्नर के पास प्रार्थनापत्र लिख भेजा था जिसमें मैंने कहा था कि मैं गुप्त षड्यन्त्रो में हिस्सा न लिया करूँगा और कोई सम्बन्ध भी उनसे नहीं रखूंगा।

रहम की अपील में भी इस प्रार्थनापत्र का जिक्र कर दिया था। लेकिन जजों ने कोई ध्यान देना जरूरी न समझा। जेल से अपना बचाव मैंने खुद लिखकर चीफ कोर्ट में भेजा, लेकिन जजों ने कहा कि यह बचाव रामप्रसाद का लिखा हुआ नहीं, जरूर किसी बड़े सयाने आदमी की मदद से लिखा गया है। उल्टे उन्होंने यह कह दिया कि रामप्रसाद बड़ा भयानक क्रान्तिकारी है और यदि रिहा हुआ तो फिर वही काम करेगा।

उन्होंने (मेरी) बुद्धिमत्ता-समझदारी आदि की प्रशंसा करने के बाद कहा कि यह एक ऐसा निर्दयी कातिल है, जो उन पर भी गोली चला सकता है जिसके साथ उसकी कोई दुश्मनी नहीं है। खैर! कलम उनके हाथ थी, जो चाहते वह लिखते। लेकिन चीफ कोर्ट के फैसले से स्पष्ट पता चलता है कि बदला लेने के विचार से ही हमें फाँसी की सजा दी गयी है।

अपील खारिज हो गयी; फिर लाट साहिब और वायसराय के पास रहम का प्रार्थनापत्र दिया गया। श्री राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी, श्री अशफ़ाक़उल्ला ख़ान, श्री रोशन सिंह और रामप्रसाद की मौत की सज़ा बदलने के लिए यू. पी. कौन्सिल के लगभग सभी चुने हुए सदस्यों के हस्ताक्षर से एक प्रार्थनापत्र दिया गया। मेरे पिता के प्रयत्नों से 250 आनरेरी मजिस्ट्रेटों और बड़े-बड़े जमींदारों के हस्ताक्षरों सहित एक अलग प्रार्थनापत्र दिया गया। असेम्बली और कौन्सिल आफ स्टेट के 108 सदस्यों ने भी हमारी मौत की सजा बदलने के लिए वायसराय के पास प्रार्थनापत्र दिया। उन्होंने यह भी कहा कि जज ने कहा था कि यदि लोग पश्चाताप करें तो सजाएँ बहुत कम कर दी जायेंगी। चारों ओर से इतनी घोषणाएँ हो चुकी थीं, लेकिन एक सिरे से दूसरे सिरे तक सभी हमारे रक्त के प्यासे थे और वायसराय ने भी हमारी एक न सुनी।

पण्डित मदनमोहन मालवीय जी कई और सज्जनों को लेकर वायसराय से मिले। सबको उम्मीद थी कि अब जरूर मौत की सजा हटा ली जायेगी। लेकिन क्या होना था। चुपचाप दशहरे से दो दिन पहले सभी जेलों में तार दे दी गयी कि फाँसी की तारीख निश्चित हो गयी है। जब जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने यह तार मुझे सुनायी तो मैंने कहा, अच्छा! आप अपना काम करो। लेकिन उनके जोर देकर कहने से एक रहम की तार बादशाह को भेज दी। उस समय प्रिवी कौन्सिल में अपील करने का विचार भी मन में आया। श्री मोहनलाल सक्सेना वकील को तार दी गयी। जब उन्हें बताया गया कि वायसराय ने सभी की दरखास्तें नामंजूर कर दी हैं तो किसी को यकीन ही नहीं हो रहा था। उनसे कह-सुनकर प्रिवी कौंसिल में अपील करवायी गयी। परिणाम पहले ही पता था, अपील खारिज हो गयी।

अब सवाल उठेगा कि सबकुछ पहले से ही जानते हुए भी मैंने माफीनामा, रहम की दरखास्त, अपीलों पर अपीलें क्यों लिख-लिख भेजीं? मुझे तो इसका एक ही कारण समझ में आता है कि राजनीति एक शतरंज का खेल है। सरकार ने बंगाल आर्डिनेंस के कैदियों सम्बन्धी असेम्बली में जोर देकर कहा था कि उनके खिलाफ बड़े सबूत हैं, जो

गवाहों की सुरक्षा के लिए हम खुली अदालत में पेश नहीं करते । हालाँकि दक्षिणेश्वर बम काण्ड और शोभा बाजार षड्यन्त्र के मुकदमे खुली अदालत में चले । खुफिया पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट को मारने का मुकदमा भी खुली अदालत में चला । काकोरी केस भी डेढ़ साल चला । सरकार की ओर से 300 गवाह पेश हुए । कभी किसी गवाह पर मुसीबत न आयी, हालाँकि यह भी कहा गया था कि काकोरी षड्यन्त्र की शुरुआत बंगाल में हुई । सरकारी घोषणाओं की पोल खोलने की इच्छा से ही मैंने यह सब किया । माफीनामे भी लिखे, अपीलें भी कीं, लेकिन क्या होना था । असलियत तो यह है कि जोरावर मारे भी और रोने भी न दे ।

हमारे जिन्दा रहने से कहीं विद्रोह नहीं हो चला था । अब तक क्रान्तिकारियों के लिए किसी ने इतनी भारी सिफारिश नहीं की थी, लेकिन सरकार को इससे क्या ? उसे अपनी ताकत पर नाज़ है, अपने बल पर अहंकार है । सर विलियम मौरिस ने स्वयं शाहजहाँपुर और इलाहाबाद के दंगों में मौत की सजा पानेवालों की मौत की सजाएँ माफ की थीं, जबकि वहाँ रोज दंगे होते थे । यदि हमारी सज़ा कम करने से औरों की हिम्मत बढ़ती है तो यही बात साम्प्रदायिक दंगों सम्बन्धी भी कही जा सकती है । लेकिन यहाँ मामला ही कुछ और था ।

आज प्राण उत्सर्ग करते हुए मुझे कोई निराशा नहीं हो रही कि यह व्यर्थ गये । बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाते । क्या पता हमारे-जैसे लोगों की ठण्डी आहों से ही यह परिणाम हुआ कि लार्ड बर्कन हैड के दिमाग में हिन्दुस्तान की जंजीरें जकड़ने का विचार आया और उसने रॉयल कमिशन भेजा, जिसके बायकाट के लिए हिन्दू-मुसलमानों में फिर कुछ एकता हो रही है । ईश्वर करे कि इनको शीघ्र ही सद्बुद्धि आये और यह फिर एक हो जायें । हमारी अपील नामंजूर होते ही मैंने श्री मोहनलाल सक्सेना से कहा था कि इस बार हमारी यादगार मनाने के लिए हिन्दू-मुसलमान नेताओं को इकट्ठा बुलाया जाये ।

अशफाक़उल्ला को सरकार ने रामप्रसाद का दायाँ हाथ बताया है । अशफ़ाक़ कट्टर मुसलमान होते हुए भी रामप्रसाद-जैसे कट्टर आर्यसमाजी का क्रान्ति में दाहिना हाथ हो सकता है तो क्या भारत के अन्य हिन्दू-मुसलमान आजादी के लिए अपने छोटे-मोटे लाभ भुला एक नहीं हो सकते ? अशफ़ाक़ तो पहले ऐसे मुसलमान हैं जिन्हें कि बंगाली क्रान्तिकारी पार्टी के सम्बन्ध में फाँसी दी जा रही है । ईश्वर ने मेरी पुकार सुन ली । मेरा काम खत्म हो गया । मैंने मुसलमानों में से एक नौजवान निकालकर हिन्दुस्तान को यह दिखा दिया है कि मुस्लिम नौजवान भी हिन्दू नौजवानों से बढ-चढकर देश के लिए बलिदान दे सकता है और वह सभी परीक्षाओं में सफल हुआ । **अब यह कहने की हिम्मत किसी में नहीं होनी चाहिए कि मुसलमानों पर विश्वास नहीं करना चाहिए ।** यह पहला तजुर्बा था जो पूरा हुआ ।

अशफ़ाक़ ! ईश्वर तुम्हारी आत्मा को शान्ति दे । तुमने मेरी और देश के सभी

मुसलमानों की लाज बचा ली है और यह दिखा दिया है कि भारत में भी तुर्की और मिस्र जैसे मुसलमान युवक मिल सकते हैं।

अब देशवासियों के सामने यही प्रार्थना है कि यदि उन्हें हमारे मरने का ज़रा भी अफसोस है तो वे जैसे भी हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करें—यही हमारी आखिरी इच्छा थी, यही हमारी यादगार हो सकती है। सभी धर्मों और सभी पार्टियों को कांग्रेस को ही प्रतिनिधि मानना चाहिए। फिर वह दिन दूर नहीं, जब अंग्रेजों को भारतीयों के आगे शीश झुकाना होगा।

जो कुछ मैं कह रहा हूँ, ठीक वही श्री अशफ़ाक़उल्ला खान वारसी का विचार है। अपील लिखते समय लखनऊ जेल में मैंने उनसे बातचीत की थी। श्री अशफ़ाक़ तो रहम की दरखास्त देने के लिए राजी नहीं थे। उन्होंने तो सिर्फ मेरी ज़िद पर, मेरे कहने पर ही ऐसा किया था।

सरकार से मैंने यहाँ तक कहा था कि जब तक उसे विश्वास न हो, तब तक मुझे जेल में कैद रखे या किसी दूसरे देश में निर्वासित कर दे, और हिन्दुस्तान न लौटने दे। लेकिन सरकार को क्या करना था। सरकार को यही मंजूर था कि हमें फाँसी जरूर दी जाये, हिन्दुस्तानियों के जले दिल पर नमक छिड़का जाये और वे तड़प उठें; कुछ सँभल जायें और हमारे पुनर्जन्म लेकर काम के लिए तैयार होने तक देश की हालत सुधर गयी हो।

अब तो मेरी यही राय है कि अंग्रेजी अदालत के आगे न तो कोई बयान दे और न ही कोई सफाई पेश करे। अपील करने के पीछे एक कारण यह भी था कि फाँसी की तारीख बदलवाकर मैं एक बार देशवासियों की सहायता और नवयुवकों का दम देखूँ। इसमें मुझे बहुत निराशा हुई। मैंने निश्चय किया था कि सम्भव हो तो जेल से भाग जाऊँ। यदि ऐसा हो सकता तो बाकी तीनों की मौत की सज़ा भी माफ हो जाती। यदि सरकार न करती तो मैं करवा लेता। इसका तरीका मुझे खूब आता था। मैंने बाहर निकलने के लिए बड़े यत्न किये, लेकिन बाहर से कोई सहायता नहीं मिली। अफसोस तो इसी बात का है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रान्तिकारी दल खड़ा कर दिया था, वहीं अपनी रक्षा के लिए मुझे एक पिस्तौल तक न मिला। कोई नौजवान मेरी सहायता के लिए आगे नहीं आया। मेरी नौजवानों से प्रार्थना है कि जब तक सभी लोग पढ़-लिख न जायें, तब तक कोई भी गुप्त पार्टियों की ओर ध्यान नहीं दे। यदि देश-सेवा की इच्छा है तो खुला काम करें। व्यर्थ बातें सुन-सुनकर ख्याली पुलाव पकाते हुए अपने जीवन को मुसीबतों में न डालें। अभी गुप्त काम का समय नहीं आया। हमें इस मुकदमे के दौरान बड़े अनुभव हुए, लेकिन उनका लाभ उठाने का अवसर सरकार ने हमें नहीं दिया। लेकिन इस बात के लिए हिन्दुस्तान और ब्रिटिश सरकार बहुत पछतायेगी।

मुलाकात के समय आपने यह भी कहा था कि, "क्रान्तिकारी लोगों में भी हिम्मत की बहुत कमी है और जनता की हमदर्दी अभी उनके साथ नहीं है। साथ ही इनमें भी प्रान्तीयता की भावना बहुत है। परस्पर पूरा विश्वास भी नहीं है।" इन बातों के कारण

हमारी हसरतें दिल में ही रह गयीं। मौखिक रूप से इन्कार करने से ही मुझे 5000 रुपये नकद और विलायत भेज बैरिस्टर बनने का वायदा मिल रहा था। लेकिन इस बात को घोर पाप समझकर मैंने इसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। लेकिन अफसोस इस बात का है कि बड़े-बड़े विश्वसनीय कहे जानेवाले साथियों ने अपने सुख के लिए छिप-छिपकर पार्टी को धोखा दिया और हमारे साथ दगा कमाया।

शहीद अशफ़ाक़उल्ला का फाँसीघर से सन्देश

[यह सन्देश 16 दिसम्बर, 1927 को फ़ैज़ाबाद जेल से देशवासियों के लिए भेजा गया।—सं.]

भारतमाता के रंगमंच पर हम अपनी भूमिका अदा कर चुके हैं। गलत किया या सही, जो भी हमने किया, स्वतन्त्रता-प्राप्ति की भावना से प्रेरित होकर किया। हमारे अपने [अर्थात् कांग्रेसी नेता] हमारी निन्दा करे या प्रशंसा, लेकिन हमारे दुश्मनों तक को हमारी हिम्मत और वीरता की प्रशंसा करनी पड़ी है। लोग कहते हैं हमने देश में आतंकवाद (Terrorism) फैलाना चाहा है, यह गलत है। इतनी देर तक मुकदमा चलता रहा। हमारे मे से बहुत-से लोग बहुत दिनों तक आजाद रहे और अब भी कुछ लोग आजाद हैं [संकेत चन्द्रशेखर आजाद की ओर है।] फिर भी हमने या हमारे किसी साथी ने हमें नुकसान पहुँचानेवालों तक पर गोली नहीं चलायी। हमारा उद्देश्य यह नहीं था। हम तो आजादी हासिल करने के लिए देश-भर में क्रान्ति लाना चाहते थे।

जजो ने हमें निर्दयी, बर्बर, मानव-कलंकी आदि विशेषणों से याद किया है। हमारे शासकों की कौम के जनरल डायर ने निहत्थों पर गोलियाँ चलायी थीं और चलायी थीं बच्चों, बूढ़ों व स्त्री-पुरुषो पर। इन्साफ के इन ठेकेदारों ने अपने इन भाई-बन्धुओं को किस विशेषण से सम्बोधित किया था? फिर हमारे साथ ही यह सलूक क्यों?

हिन्दुस्तानी भाइयो! आप चाहे किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को माननेवाले हों, देश के काम में साथ दो। व्यर्थ आपस में न लड़ो। रास्ते चाहे अलग हों, लेकिन उद्देश्य सबका एक है। सभी कार्य एक ही उद्देश्य की पूर्ति के साधन हैं, फिर यह व्यर्थ के लड़ाई-झगड़े क्यों? एक होकर देश की नौकरशाही का मुकाबला करो अपने देश को आजाद कराओ। देश के सात करोड़ मुसलमानों में मैं पहला मुसलमान[1] हूँ, जो देश की

---

1 ऐतिहासिक शोध के अनुसार एक सौ के करीब मुसलमान गदर पार्टी आंदोलन मे शहीद हुए और सैकडों ही 1857 के आंदोलन में। लेकिन अशफ़ाक़ को अपने रास्ते से हटाने के लिए और धोखा देने के लिए पुलिस ने एक बार उनसे कहा था कि शहीद होनेवाले तुम एकमात्र मुसलमान हो, शायद इसी से उन्होंने यह लिखा है।—संपादक।

आजादी के लिए फाँसी चढ़ रहा हूँ, यह सोचकर मुझे गर्व महसूस होता है।

अन्त में सभी को मेरा सलाम!

हिन्दुस्तान आजाद हो!

मेरे भाई खुश रहें!

आपका भाई

अशफाक

काकोरी के शहीदों की फाँसी के हालात

[जनवरी, 1928 के 'किरती' में भगतसिंह ने एक और लेख काकोरी के शहीदों के बारे में 'विद्रोही' के नाम से लिखा।—सं.]

'किरती' के पाठकों को पहले किसी अंक में हम काकोरी के मुकदमे के हालात बता चुके हैं। अब इन चार वीरों को फाँसी दिये जाने का हाल बताते हैं।

17 दिसम्बर, 1927 को श्री राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी को गोंडा जेल में फाँसी दी गयी और 19 दिसम्बर, 1927 को श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' को गोरखपुर जेल में, श्री अशफ़ाक़उल्ला को फैजाबाद जेल में और श्री रोशनसिंह जी को इलाहाबाद जेल में फाँसी चढ़ा दिया गया।

इस मुकदमे के सेशन जज मि. हेमिल्टन ने फैसला देते हुए कहा था कि ये नौजवान देशभक्त हैं ओर इन्होंने अपने किसी लाभ के लिए कुछ भी नहीं किया और यदि यह नौजवान अपने किये पर पश्चाताप करें तो उनकी सजाओं में रियायत की जा सकती है। उन चारो वीरो द्वारा इस आशय की घोषणा भी हुई, लेकिन उन्हें फाँसी दिये बगैर डायन नौकरशाही को चैन कैसे पड़ता। अपील में बहुत-सी लोगों की सजाएँ बढ़ा दी गयीं। फिर न तो गवर्नर और न ही वायसराय ने उनकी जवानी की ओर ध्यान दिया और प्रिवी कौंसिल ने उनकी अपील सुनने से पहले ही खारिज कर दी। यू. पी. कौंसिल के बहुत-से सदस्यो, असेम्बली और कौंसिल और स्टेट के बहुत-से सदस्यों ने वायसराय को उनकी जवानी पर दया करने की दरखास्त दी, लेकिन होना क्या था? उनके इतने हाथ-पाँव मारने का कोई परिणाम न निकला। यू. पी. कौंसिल के स्वराज पार्टी के नेता श्री गोविन्द वल्लभ पन्त उनके मामले पर बहस के लिए अपना मत वायसराय और लाट साहिब को भेजने के लिए शोर मचा रहे थे। पहले तो प्रेजिडेण्ट साहिब ही अनुमति नहीं दे रहे थे, लेकिन बहुत-से सदस्यो ने मिलकर कहा तो सोमवार को बहस के लिए इजाजत मिली, लेकिन फिर छोटे अंग्रेज अध्यक्ष ने, जो उस समय अध्यक्ष का काम कर रहा था, सोमवार को कौंसिल की छुट्टी ही कर दी। होम मेम्बर नवाब छत्तारी के दर पर जा चिल्लाये,

लेकिन उनके कानों पर जूँ तक न सरकी । और कौंसिल मे उनके सम्बन्ध में एक शब्द भी न कहा जा सका और उन्हें फाँसी पर लटका ही दिया गया । इसी क्रोध में नीचता के साथ रूसी जार और फ्रांसीसी लुइस बादशाह होनहार युवको को फाँसी पर लटका-लटकाकर दिलो की भड़ास निकालते रहे लेकिन उनके राज्यों की नींवें खोखली हो गयी थीं और उनके तख्ते पलट गये । इसी गलत तरीके का आज फिर इस्तेमाल हो रहा है । देखे यदि इस बार इनकी मुरादें पूरी हों । नीचे हम उन चारो वीरों के हालात संक्षेप मे लिखते हैं, जिससे यह पता चले कि यह अमूल्य रत्न मौत के सामने खड़े होते भी किस बहादुरी से हँस रहे थे ।

श्री राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी

आप हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस के एम. ए. के छात्र थे । 1925 मे कलकत्ते के पास दक्षिणेश्वर बम फैक्ट्री पकडी गयी थी, उसमें आप भी पकडे गये थे और आपको सात बरस की कैद हो गयी थी । वही से आपको लखनऊ लाया गया और काकोरी केस मे आपको फाँसी की सजा दे दी गयी । आपको बाराबकी और गोडा जेलों में रखा गया । आप मौत को सामने देख घबराते नहीं थे, बल्कि हमेशा हँसते रहते थे । आपका स्वभाव बडा हँसमुख और निर्भय था । आप मौत का मजाक उडाते रहते थे । आपके दो पत्र हमारे सामने हैं । एक छह अक्तूबर को तब लिखा था जब वायसराय ने रहम की दरखास्त नामजूर कर दी थी । आप लिखते हैं–

छह महीने बाराबकी और गोडा की काल-कोठरियो मे रहने के बाद आज मुझे बताया गया है कि एक हफ्ते के भीतर फाँसी दे दी जायेगी, क्योंकि वायसराय ने दरखास्त नामजूर कर दी है । अब मैं अपना फर्ज समझता हूँ कि अपने इन मित्रो का [यहाँ उनके नाम हैं] धन्यवाद कर जाऊँ जिन्होंने मेरे लिए बहुत-सी कोशिशें कीं । आप मेरा अन्तिम नमस्कार स्वीकार करे । हमारे लिए मरना-जीना पुराने कपडे बदलने से अधिक कुछ भी नही [यहाँ जेलवालो ने कुछ काट-छाँट की है, जो बिल्कुल पढा नहीं जाता] मौत आ रही है, हँसते-हँसते बडे चाव और खुशी से उसे जोर से गले लगा लूँगा । जेल के कानून अनुसार और कुछ नहीं लिख सकता । आपको नमस्कार, देश के दर्दमन्दो को नमस्कार, बन्देमातरम् !

आपका,
राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी

फिर इस पत्र के बाद फाँसी नहीं हो सकी, क्योंकि प्रिवी कौंसिल मे अपील की गयी थी । दूसरा पत्र आपने 14 दिसम्बर को एक मित्र के नाम लिखा था–

कल मुझे पता चला है कि प्रिवी कौंसिल ने मेरी अपील खारिज कर दी है । आप लोगो ने हमें बचाने की बहुत कोशिश की, लेकिन लगता है कि देश की बलि-वेदी पर हमारे

प्राणों के बलिदान की ही जरूरत है। मौत क्या है? जीवन की दूसरी दिशा के सिवाय कुछ नही। जीवन क्या है? मौत की ही दूसरी दिशा का नाम है। फिर डरने की क्या जरूरत है? यह तो प्राकृतिक बात है, उतनी ही प्राकृतिक जितना कि प्रातः में सूर्योदय। यदि हमारी यह बात सच है कि इतिहास पलटा खाता है तो मैं समझता हूँ कि हमारा बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा।

मेरा नमस्कार सबको—अन्तिम नमस्कार!

आपका
राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी

कितना भोला, कितना सुन्दर और निर्भीकतापूर्ण पत्र है और इनका लेखन कितना भोला है! फिर इन्हे ही अन्यों से दो दिन पहले ही फाँसी दे दी गयी। फाँसी के समय आपको हथकड़ी पहनाने का इन्तज़ाम किया जाने लगा तो आपने कहा कि क्या जरूरत है। आप मुझे रास्ता बताते जाओ, मैं स्वयं ही उधर चल पड़ता हूँ। अर्थी का जुलूस निकाला गया और बडे जोश से अन्तिम सस्कार किया गया। वहीं यादगार बनाने की सलाह की जा रही है।

श्री रोशनसिंह जी

आपको 19 दिसम्बर को इलाहाबाद में फाँसी दी गयी। उनका एक आखिरी पत्र 13 दिसम्बर का लिखा हुआ है। आप लिखते हैं—

इस हफ्ते फाँसी हो जायेगी। ईश्वर के आगे विनती है कि आपके प्रेम का आपको फल दे। आप मेरे लिए कोई ग़म न करना। मेरी मौत तो खुशीवाली है। चाहिए तो यह कि कोई बदफैली करके बदनाम होकर न मरे और अन्त समय ईश्वर याद रहे। सो यही दो बाते हैं। इसलिए कोई गम नहीं करना चाहिए। दो साल बाल-बच्चों से अलग रहा हूँ। ईश्वर-भजन का खूब अवसर मिला। इसलिए मोह-माया सब टूट गयी। अब कोई चाह बाकी न रही। मुझे विश्वास है कि जीवन की दुख भरी यात्रा खत्म करके सुख के स्थान पर जा रहा हूँ। शास्त्रों में लिखा है, युद्ध में मरनेवालों की ऋषियों जैसी रहत [श्रेणी] होती है। (आगे अस्पष्ट है)।

'जिन्दगी जिन्दादिली को जानिए रोशन!' वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं। आखिरी नमस्कार!

श्री रोशनसिंह रायबरेली के काम करनेवालों में थे। किसान आन्दोलन में जेल जा चुके थे। सबको विश्वास था कि हाईकोर्ट से आपकी मौत की सजा टूट जायेगी क्योंकि आपके खिलाफ कुछ भी नही था। लेकिन फिर भी वे अंग्रेजशाही का शिकार हो ही गये और फाँसी पर लटका दिये गये। तख्ते पर खडे होने के बाद आपके मुँह से जो आवाज निकली, वह यह थी—

'बन्देमातरम् !'

आपकी अर्थी के जुलूस की इजाजत नहीं दी गयी। लाश की फोटो लेकर दोपहर में आपका दाह-संस्कार कर दिया गया।

श्री अशफ़ाक़उल्ला

यह मस्ताना शायर भी हैरान करनेवाली खुशी से फाँसी चढ़ा। बड़ा सुन्दर और लम्बा-चौड़ा जवान था, तगडा बहुत था। जेल में कुछ कमजोर हो गया था। आपने मुलाकात के समय बताया कि कमजोर होने का कारण ग़म नहीं, बल्कि खुदा की याद में मस्त रहने की खातिर रोटी बहुत कम खाना है। फाँसी से एक दिन पहले आपकी मुलाकात हुई। आप खूब सजे-सँवरे थे। बड़े-बड़े कढ़े हुए केश खूब सजते थे। बड़ा हँस-हँसकर बातें करते रहे। आपने कहा, कल मेरी शादी होनेवाली है। दूसरे दिन सुबह छह बजे आपको फाँसी दी गयी। कुरान शरीफ का बस्ता लटकाकर हाज़ियों की तरह वजीफा पढ़ते हुए बड़े हौंसले से चल पड़े। आगे जाकर तख़्ते पर रस्सी को चूम लिया। वहीं आपने कहा—

''मैंने कभी किसी आदमी के ख़ून से अपने हाथ नहीं रँगे और मेरा इन्साफ खुदा के सामने होगा। मेरे ऊपर लगाये सभी इल्जाम गलत हैं।'' खुदा का नाम लेते ही रस्सी खींची गयी और वे कूच कर गये। उनके रिश्तेदारों ने बड़ी मिन्नतों-खुशामदों से उनकी लाश ली और उन्हें शाहजहाँपुर ले आये। लखनऊ स्टेशन पर मालगाड़ी के एक डिब्बे में उनकी लाश देखने का अवसर कुछ लोगों को मिला। फाँसी के दस घण्टे बाद भी चेहरे पर वैसी ही रौनक थी। ऐसा लगता था कि अभी ही सोये हों। लेकिन अशफाक़ तो ऐसी नींद सो गये थे कि जहाँ से वे कभी नहीं जागेंगे। अशफाक़ शायर थे और उनका शायर उपनाम हसरत था। मरने से पहले आपने ये दो शेर कहे थे—

'फनाह हैं हम सबके लिए, हम पै कुछ नहीं मौकूफ !
वका है एक फकत जाने की ब्रिया के लिए।'

(नाश तो सभी होंगे, कोई हम अकेले थोड़े होंगे। न मरनेवाला तो सिर्फ एक परमात्मा है।)

और—

'तंग आकर हम उनके जुल्म से बेदाद से,
चल दिये सूए अदम ज़िन्दाने फैज़ाबाद से।'

श्री अशफ़ाक़ की ओर से एक माफीनामा छपा था, उसके सम्बन्ध में श्री रामप्रसादजी ने अपने आखिरी ऐलान में पोजीशन साफ कर दी है। आपने कहा है कि

अशफाक माफीनामा तो क्या, अपील के लिए भी राजी नहीं थे। आपने कहा था, मैं खुदा के सिवाय किसी के आगे झुकना नहीं चाहता। परन्तु रामप्रसाद के कहने-सुनने से आपने वही सबकुछ लिखा था। वरना मौत का उन्हें कोई डर या भय नहीं था। उपरोक्त हाल पढ़कर पाठक भी यह बात समझ सकते हैं। आप शाहजहाँपुर के रहनेवाले थे और आप श्री रामप्रसाद के दायें हाथ थे, मुसलमान होने के बावजूद आपका कट्टर आर्यसमाजी धर्म से हद दर्जे का प्रेम था। दोनों प्रेमी एक बड़े काम के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर अमर हो गये।

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल'

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' बड़े होनहार नौजवान थे। गजब के शायर थे। देखने में भी बहुत सुन्दर थे। योग्य बहुत थे। जाननेवाले कहते हैं कि यदि किसी और जगह या किसी और देश या किसी और समय पैदा हुए होते तो सेनाध्यक्ष बनते। आपको पूरे षड्यन्त्र का नेता माना गया है। चाहे बहुत ज्यादा पढ़े हुए नहीं थे, लेकिन फिर भी पण्डित जगतनारायण जैसे सरकारी वकील की सुध-बुध भुला देते थे। चीफ कोर्ट में अपनी अपील खुद ही लिखी थी, जिससे कि जजों को कहना पड़ा कि इसे लिखने में जरूर ही किसी बहुत बुद्धिमान व योग्य व्यक्ति का हाथ है।

19 तारीख की शाम को आपको फाँसी दी गयी। 12 की शाम को जब आपको दूध दिया गया तो आपने यह कहकर इन्कार कर दिया कि अब मैं माँ का दूध ही पिऊँगा। 18 को आपकी मुलाकात हुई। माँ को मिलते समय आपकी आँखों से अश्रु बह चले। माँ बहुत हिम्मतवाली देवी थी। आपसे कहने लगी—हरीशचन्द्र, दधीचि आदि बुजुर्गों की तरह वीरता, धर्म व देश के लिए जान दे, चिन्ता करने और पछताने की जरूरत नहीं। आप हँस पड़े। कहा, 'माँ! मुझे क्या चिन्ता और क्या पछतावा, मैंने कोई पाप नहीं किया। मैं मौत से नहीं डरता। लेकिन माँ! आग के पास रखा घी पिघल ही जाता है। तेरा-मेरा सम्बन्ध ही कुछ ऐसा है कि पास होते ही आँखों से अश्रु उमड़ पड़े। नहीं तो मैं बहुत खुश हूँ।' फाँसी पर ले जाते समय आपने बड़े जोर से कहा, 'बन्देमातरम्', 'भारत माता की जय' और शान्ति से चलते हुए कहा—

'मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे।
जब तक कि तन में जान रगों में लहू रहे,
तेरा ही जिक्रेयार, तेरी जुस्तजू रहे।'

फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर आपने कहा—

I wish the downfall of the British Empire.

(मैं ब्रिटिश साम्राज्य का पतन चाहता हूँ।)

फिर यह शेर पढ़ा—

'अब न अहले वलवले हैं
और न अरमानों की भीड़ !
एक मिट जाने की हसरत,
अब दिले-बिस्मिल में है !'

फिर ईश्वर के आगे प्रार्थना की और फिर एक मन्त्र पढ़ना शुरू किया। रस्सी खींची गयी। रामप्रसादजी फाँसी पर लटक गये। आज वह वीर इस संसार में नहीं है। उसे अग्रेजी सरकार ने अपना खौफनाक दुश्मन समझा। आम ख्याल यह है कि उसका कसूर यही था कि वह इस गुलाम देश में जन्म लेकर भी एक बड़ा भारी बोझ बन गया था और लड़ाई की विद्या से खूब परिचित था। आपको मैनपुरी षड्यन्त्र के नेता श्री गेंदालाल दीक्षित-जैसे शूरवीर ने विशेष तौर पर शिक्षा देकर तैयार किया था। मैनपुरी के मुकद्दमे के समय आप भागकर नेपाल चले गये थे। अब वही शिक्षा आपकी मृत्यु का एक बड़ा कारण हो गया। 7 बजे आपकी लाश मिली और बडा भारी जुलूस निकला। स्वदेश-प्रेम में आपकी माता ने कहा—

"मैं अपने पुत्र की इस मृत्यु पर प्रसन्न हूँ, दुखी नही। मैं श्री रामचन्द्र-जैसा ही पुत्र चाहती थी। बोलो श्री रामचन्द्र की जय!"

इत्र-फुलेल और फूलों की वर्षा के बीच उनकी लाश का जुलूस जा रहा था। दुकानदारों ने उनके ऊपर से पैसे फेंके। 11 बजे आपकी लाश श्मशान भूमि में पहुँची और अन्तिम क्रिया समाप्त हुई।

आपके पत्र का आखिरी हिस्सा आपकी सेवा में प्रस्तुत है—

"मैं खूब सुखी हूँ। 19 तारीख को प्रातः जो होना है उसके लिए तैयार हूँ। परमात्मा काफी शक्ति देंगे। मेरा विश्वास है कि मैं लोगों की सेवा के लिए फिर जल्द ही जन्म लूँगा। सभी से मेरा नमस्कार कहें। दया कर इतना काम और भी करना कि मेरी ओर से पण्डित जगतनारायण (सरकारी वकील जिसने इन्हें फाँसी लगवाने के लिए बहुत जोर लगाया था) को अन्तिम नमस्कार कह देना। उन्हें हमारे खून से लथपथ रुपयों से चैन की नींद आये। बुढ़ापे में ईश्वर उन्हें सद्‌बुद्धि दे।"

रामप्रसाद जी की सारी हसरतें दिल-ही-दिल में रह गयीं। आपने एक लम्बा-चौड़ा ऐलान किया है, जिसे सक्षेप में हम दूसरी जगह दे रहे हैं। फाँसी से दो दिन पहले सी. आई. डी. के मि. हैमिल्टन आप लोगों की मिन्नतें करते रहे कि आप मौखिक रूप से सब बातें बता दो, आपको पाँच हजार रुपया नकद दे दिया जायेगा और सरकारी खर्चे पर विलायत भेजकर बैरिस्टर की पढ़ाई करवाई जायेगी। लेकिन आप कब इन बातों की परवाह करते थे। आप हकूमतों को ठुकरानेवाले व कभी-कभार जन्म लेनेवाले वीरों में से थे।

मुकदमे के दिनों आपसे जज ने पूछा था, "आपके पास क्या डिग्री है ?" तो आपने हँसकर जवाब दिया था, "सम्राट बनानेवालों को डिग्री की कोई जरूरत नहीं होती, क्लाइव के पास भी कोई डिग्री नहीं थी ।" आज वह वीर हमारे बीच नहीं है । आह !!

काकोरी के शहीदों के लिए प्रेम के आँसू

[जनवरी, 1928 के 'किरती' ने काकोरी के शहीदों सम्बन्धी एक सम्पादकीय नोट भी प्रकाशित किया । यह भगतसिंह का लिखा हुआ तो नहीं है, लेकिन उनके साथी भगवतीचरण वोहरा का हो सकता है । निश्चय ही, यह भी ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसे नीचे दिया जा रहा है । –सं.]

काकोरी केस के चार वीरों को फाँसी पर लटका दिया गया । वे लाड़-प्यार से पले शूरवीर हँसते-हँसते शहादत प्राप्त कर गये । भारत माता के चार सुपुत्र अपने शीश देश और राष्ट्र के नाम अर्पण कर गये । उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा, अपना फर्ज पूरा कर दिया । वे इस पंच भौतिक शरीर की कैद से आजाद हो गये और हम गुलामों को अपनी गुलामी के दुखड़े रोने के लिए पीछे छोड़ गये !!!

जिस देश में देशभक्ति गुनाह समझा जाता हो, जिस देश में आजादी की ख्वाहिश रखनी बगावत समझी जाती हो, जहाँ लोककल्याण की सजा मौत हो, जहाँ देशभक्तों की गर्दन में फाँसी का रस्सा डाला जाता हो, उस देश की हालत ख्याल में तो भले ही आ जाये, लेकिन बयान नहीं की जा सकती । किसी देश की अधोगति इससे ज्यादा क्या हो सकती है । लेकिन जिस देश में यह अन्याय नित्य प्रति होते हों, जहाँ ऐसे अत्याचार दिन-प्रतिदिन ही होते रहें यदि वहाँ के निवासी ऐसे-ऐसे अन्यायों, ऐसे अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठानी तो दूर, आह तक न भर सकते हों तो उस देश के निवासियों की हालत कैसी होगी ?

हिन्दुस्तान गुलाम है । इसकी बागडोर विदेशियों के हाथ है । इससे प्रेम करना मौत को पुकारना है । इसकी आजादी के सपने देखना घर-बार, बाल-बच्चे छोडकर जलावतनी की जिन्दगी गुजारना है । इस महीवाल के प्रेम ने कई सोहनियों को गहरे समुद्रों मे डुबोया । इसके प्रेम ने कई प्रेमियों के दल-के-दल खतम किये । इसका प्रेम अगाध है, अथाह है । इसके प्रेमी बेअन्त हैं, असंख्य हैं । न इस प्रेम का स्वर पता चलता है, न इसके प्रेमियों को ताव आती है । यहाँ तो 'चुप भाई चुप' वाली बात है ।

यह जुल्म कब तक रहेगा ? इस अन्याय का भाँडा कब फूटेगा ? बेगुनाहों को कब तक शहीद किया जायेगा ? देश-प्रेमियों को कब तक गोली का निशाना बनाया जायेगा ? कब तक इस गुलामी डायन का और मुँह देखना पड़ेगा ? आजादी देवी के दर्शन कब तक होंगे ? अभी कितनी शहीदियाँ प्राप्त करनी होंगी ? अभी और कितनों को फाँसी पर चढ़ाया जायेगा ?

रब्बा ! वह दिन कब आयेगा, जब यह शहीदियाँ रंग लायेंगी । ईश्वर, वह दिन कब देखेगे जब हमारा बगीचा हरा-भरा होगा ? यहाँ से पतझड का कूच कब होगा ? उल्लू कब तक इस बाग मे डेरा जमाये बैठे रहेंगे ? बुलबुले किस दिन फिर यहाँ चहचहायेंगी ? यह पिजरे कब टूटेगे ? आजादी कब लौटेगी, उजडे कब फिर बसेंगे ?

लोगो ! भारत माता के चार सुन्दर जवान फॉसी चढ़ा दिये गये । वे नौकरशाही के डसे, दुश्मनी का शिकार हो गये । कौन बता सकता है कि यदि वे जीवित रहते तो क्या-क्या नेकी के काम करते, कौन-कौन से परोपकार करते ? कौन कह सकता है कि उनके रहने से ससार पहले से सुन्दर और रहने योग्य न दिखायी देता ? वे वीर थे, आजादी के आशिक थे । उन्होंने देश और कौम की खातिर अपनी जान लुटा दी । वे अपनी माँओं की कोख को सफल बना गये ।

यदि भारत माता आजाद होती तो इनके बलिदानों का मोल पड़ता । यदि आज हिन्दुस्तान मे कुछ जान होती तो यह बलिदान बेकार न होते । हाय ! आजादी के वीर चले गये । उन्हें किसी ने न पहचाना, उन्हें किसी ने न कहा, आप शूरवीर हो, आप बहादुर हो । वह जगह धन्य है, जहाँ आप जन्मे-पले ! जहाँ आप खेले। वे राहें धन्य हैं, जहाँ आप चले, जहाँ आप कूदे-भागे । वीर, मातृभूमि के लाडले वीर चले गये ! वे अपना जन्म सफल कर गये !

बातें करनी आसान हैं, बड़कें मारनी आसान है । चगल-चगल करना और बात है, कुर्बानी देना और बात है । परीक्षा अलूणी चट्टान है, इसे चाटना आसान नहीं है । परीक्षा से बड़े-बड़े तौबा कर उठे थे । परीक्षा के आगे कोई जिगरवाला ही टिक सकता है । इन वीरो ने किस हिम्मत, किस बहादुरी से परीक्षा दी है । इनकी बहादुरी कभी भूल सकती है ? धन्य हैं इनके माँ-बाप, जिन्होने उन्हे जन्म दिया । धन्य हैं ये स्वयं, जो बलिदान के पुंज, आत्म-त्याग की मिसाल हैं ।

जब कभी आजादी का इतिहास लिखा जायेगा, जब कभी शहीदों का जिक्र होगा, जब कभी भारत माता के लिए बलिदान करनेवालों की चर्चा होगी तो वही 1. राजिन्द्रनाथ लाहिडी, 2. रामप्रसाद बिस्मिल, 3. रोशनसिह, और 4. अशफाकउल्ला का नाम जरूर लिया जायेगा । उस समय आनेवाली पीढ़ियाँ इन शहीदों के आगे शीश झुकायेंगी और इन वीरों के बहादुरी भरे किस्से सुन-सुन सिर हिलायेंगी । उस समय ये कौम का आदर्श माने जायेंगे, इन बुजुर्गों की पूजा होगी ।

आज हम कमजोर हैं, नि:शक्त हैं । आज हम गिरे हुए हैं, झूठे हैं । आज हम अपनी दिली भावनाएँ नहीं बता सकते—क्योंकि हम कायर हैं, डरपोक हैं, आज हमें सच कहने से डर लगता है, क्योंकि कानून की तलवार हमारे सिरों पर लटकती दिखायी देती है । इससे यह नहीं कह सकते, 'काकोरी के शहीदो ! आपने जो किया, भारत माता के बन्धन तोड़ने के लिए किया । आपने जो कष्ट उठाये, वह हिन्दुस्तान को आजाद करवाने के लिए उठाये ।' आज हम यह नहीं कह सकते कि 'आपने अपने मतानुसार अच्छा किया ।'

गुलामों की अवस्था कितनी गिर जाती है। गुलामों में कितनी गिरावट आ जाती है। दैवी गुण उनमें से किस तरह भाग जाते हैं। वे कितने ढोंगी और पाखण्डी बन जाते हैं। वे कितने बुजदिल व कायर बन जाते हैं। वे सच्ची-खरी बातें मुँह पर नहीं कह सकते। वे दिल में कुछ और रखते हैं और बाहर कुछ और। उनकी हालत कितनी दयनीय हो जाती है!

इस हालत को सुधारने का एक ही साधन है, इस दुर्दशा को बदलने का एकमात्र इलाज है, इस दुर्दशा की एक ही दवा है, और वह है आजादी। आजादी कुर्बानियों के बगैर नहीं मिल सकती। शहीदों की इज्जत करने से, शहीदों के कारनामे याद करने से कुर्बानी का चाव उमड़ता है। जो कौम शहीदों को शहीद नहीं कह सकती, उसे क्या खाक आजाद होना है?

लोगो! देखे हैं आशिक सूली पर चढ़ते? वे मौत से मजाक करते थे। वे मौत पर हँसते थे, उन्हें मृत्यु का भय नहीं था। वे यार की गली में शीश तली पर रखकर आये थे। उन्हें डर क्या था, वे तो आये ही मरने थे। मृत्यु का तो वे पहले ही वरण कर चुके थे, जीवन की आशा तो वे पहले ही छोड़ चुके थे। वे तो गाते थे—

एक मिट जाने की हसरत अब दिले-बिस्मिल में है।

कहाँ वे और कहाँ हम? वे तो किसी और ही देश के निवासी थे। वे तो गरीबों की आह सुनकर मैदान में उतरे थे। वे तो हिन्दुस्तान से भूख-नंग को दूर करने आये थे। वे तो मजदूरों और किसानों का हाल पूछने आये थे। वे तो किसी ऊँचे आदर्श के पुजारी थे। वे तो किसी ऊँचे स्वप्न की उड़ान में मस्त थे। वे तो वे नजारे देखते थे, जहाँ न भूख है, न नग्नता। जहाँ न गरीबी है, न अमीरी। जहाँ न जुल्म है, न अन्याय। बस जहाँ प्रेम है, एकता है, जहाँ इन्साफ है, आजादी है, जहाँ सुन्दरता है। पर हम? हम? हाय रे!

किसी का आदर्श कमाना, आप खाना और बच्चों को पालना होता है। किसी का आदर्श स्वयं को ऊँचा उठाने का होता है। किसी का आदर्श गरीबों, दुखियों को लूटकर धन-दौलत इकट्ठी करना होता है, किसी का आदर्श अपने सुन्दर शरीर को तकलीफ से दूर रखने का होता है।

किसी का आदर्श कुछ होता है, किसी का कुछ। लेकिन उनका आदर्श देश था। उनका आदर्श हिन्दुस्तान की आजादी था। उनका कोई स्वार्थ नहीं था। उनके खाने के लिए, उन्हें ओढ़ने के लिए किसी बात की कमी न थी। वे तो जो कुछ करते थे, लोक-कल्याण की खातिर, लोक-सेवा के लिए करते थे। वे इतने बलिदान के पुंज निकले, कि स्वयं को हमारे ऊपर वार दिया। आइए, इन वीरों को प्रणाम करें।

मातृभूमि के लाडलो! क्या हुआ यदि डर के मारे आज हम आपका नाम भी लिखने से घबराते हैं? क्या हुआ जो आज हम दिल की बातें कहने में झिझकते हैं? क्या हुआ यदि आज हिन्दुस्तान में मुर्दानोशी छायी है और आपका नाम लेने से ही षड्यन्त्रकारी बन

जाते हैं ? क्या हुआ यदि कोई हिन्दुस्तानी आपको भला-बुरा भी कहे, लेकिन समय आयेगा जब आपकी कद्र होगी, जब आपको शहीद कहा जायेगा, जिस तरह 1857 के गदर को अब 'आजादी की जग' कहा जाता है। समय सिद्ध कर देता है, समय सच्ची-सच्ची कहलवा देता है, समय किसी का लिहाज नही करता। उस समय आप अपनी असली शान मे चमकेगे और उस समय हिन्दुस्तान आप पर बलिहारी जायेगा।

शहीद वीरो ! हम कृतघ्न है, हम तुम्हारे किये को नही जानते। हम कायर हैं, हम सच-सच नही कह सकते। हमे आप माफ करो, हमे आप क्षमादान दो। हमें मौत से भय लगता है, हमारा दिमाग सूली का नाम सुनते ही चक्कर खा जाता है। आप धन्य थे। आपके बडे जिगर थे कि आपने फाँसी को टिच्च समझा। आपने मौत के समय मजाक किये ! पर हम ? हमे चमड़ी प्यारी है, हमे तो ज़रा-सी तकलीफ ही मौत बनकर दिखने लगती है। आजादी ! आजादी का तो नाम सुनते ही हमें कँपकँपी छिड़ जाती है। हाँ ! गुलामी के साथ हमे प्यार है, गुलामी की ठोकरों से हमें मजा आता है ! आपकी नस-नस से, रग-रग से आजादी की पुकार गूँजती थी लेकिन हमारी रग-रग से, हमारी नस-नस से, गुलामी की आवाज निकलती है। आपका और हमारा क्या मेल ? हमें आप क्षमा करो, आप हमारे केवल यह प्रेम के अश्रु ही स्वीकार करो।

कहो, धन्य हैं, काकोरी के शहीद !

[भगतसिंह ने 1926 मे अपने विचारो को परिपक्व बनाने के लिए खूब अध्ययन किया। इस सम्बन्ध मे उन्होने 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' नामक लेख में लिखा भी है कि ''यह मेरे क्रान्तिकारी जीवन में आया बड़ा मोड़ था। अध्ययन करने की तरंगें मेरे मन में उठती रहीं। अध्ययन करूँ, ताकि अपने विरोधियो के तर्को का उत्तर दे सकूँ।''

1927 में भगतसिह ने लिखना भी शुरू कर दिया था। काकोरी के शहीदो को दिसम्बर, 1927 मे फाँसी होने के बाद भगतसिह ने अपने साथियों—भगवतीचरण वोहरा, शिव वर्मा, जयदेव कपूर आदि—से विचार-विमर्श करते हुए अपने देश के शहीदों व क्रान्तिकारी आन्दोलन सम्बन्धी जानकारी देने के निरन्तर यत्न शुरू किये। वे स्वयं भी इन आन्दोलनों का गहराई से अध्ययन कर रहे थे और देशवासियों को जाग्रत भी कर रहे थे।

फरवरी, 1928 में 'चाँद' का 'फाँसी अक' प्रकाशित हुआ। भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन और शहीदों के जीवन-चरित्र सम्बन्धी इस अंक में बड़ी अच्छी सामग्री थी। 'विद्रोही' छद्म नाम से भगतसिह ने इसमें कई जीवन-चरित्र लिखे। इस अध्याय में उनके लिखे तीन जीवन-चरित्र प्रस्तुत हैं। इसी में कुछ और देशभक्तों के जीवन-चरित्र भी दिये गये है। —सं.]

सूफी अम्बा प्रसाद

आज भारतवर्ष मे कितने लोग उनका नाम जानते हैं ? कितने उनकी स्मृति में शोकातुर होकर आँसू बहाते हैं ? कृतघ्न भारत ने कितने ही ऐसे रत्न खो दिये और क्षण-भर के लिए भी दुख अनुभव नही किया ।

वे सच्चे देशभक्त थे । उनके हृदय मे देश के लिए दर्द था । वे भारत की प्रतिष्ठा देखना चाहते थे, भारत को उन्नति के शिखर पर पहुँचाना चाहते थे, तो भी आज भारत के बहुत कम लोग उनका नाम जानते हैं । उनकी कदर भी की तो ईरान ने, आज यहाँ आका सूफी का नाम सर्वप्रिय हो रहा है ।

सूफी जी का जन्म 1858 में मुरादाबाद में हुआ था । आपका दाहिना हाथ जन्म से ही कटा था । आप हँसी में कहा करते थे—अरे भाई ! हमने सत्तावन में अँग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया । हाथ कट गया । मृत्यु हो गयी । पुनर्जन्म हुआ, हाथ कटे का कटा आ गया !

आपने मुरादाबाद, बरेली और जालन्धर आदि कई शहरों मे शिक्षा पायी । एफ. ए. पास करने के पश्चात आपने वकालत पढी, परन्तु की नहीं । आप उर्दू के प्रभावशाली लेखक थे । आपने यही काम सँभाला ।

सन् 1890 में आपने मुरादाबाद से जाम्युल इलूक नामक उर्दू साप्ताहिक पत्र निकाला । इसका प्रत्येक शब्द उनकी आन्तरिक अवस्था का परिचय देता था । वे हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक थे, परन्तु इनमे गम्भीरता भी कम न थी । वे हिन्दू-मुस्लिम-एकता के कट्टर पक्षपाती थे और शासकों की कड़ी आलोचना किया करते थे ।

सन् 1897 मे आपको राजद्रोह के अपराध में डेढ वर्ष का कारागार मिला । जब 1899 मे छूटकर आये तो यू. पी. के कुछ छोटे राज्यो पर अग्रेज लोग हस्तक्षेप कर रहे थे । सूफी जी ने वहाँ के अंग्रेजों तथा रेजिडेण्टो का खूब भण्डाफोड़ किया । आप पर मिथ्या दोषारोपण का अभियोग चलाया गया और सारी जायदाद जब्त कर 6 साल का कारागार दिया गया । जेल मे उन्हें अकथनीय कष्ट सहन करने पडे, परन्तु वे कभी विचलित नहीं हुए ।

सूफी जी जेल मे बीमार पडे । एक गलीज कोठरी में बन्द थे । उन्हे औषधि नहीं दी जाती थी, यहाँ तक कि पानी आदि का भी ठीक प्रबन्ध न था । जेलर आता और हँसता हुआ प्रश्न करता—सूफी, अभी तक तुम जिन्दा हो ? खैर ! ज्यो-त्यो कर जेल कटी और 1906 के अन्त मे आप बाहर आये ।

सूफी जी का निजाम हैदराबाद से घनिष्ठ सम्बन्ध था । जेल से छूटते ही वहाँ गये । निजाम ने उनके लिए एक अच्छा-सा मकान बनवाया । मकान बन जाने पर उन्होंने सूफी जी से कहा—'आपके लिए मकान तैयार हो गया है ।' आपने उत्तर दिया—'हम भी तैयार हो गये हैं ।' आपने वस्त्रादि उठाये और पजाब के लिए चल दिये । वहाँ जाकर आप

'हिन्दुस्तान' अखबार मे काम करने लगे । सुनते हैं वहाँ आपकी चतुरता, वाक्पटुता और समझदारी देखकर सरकार की ओर से 1000 रुपया मासिक जासूस विभाग से पेश किये गये थे, परन्तु आपने उनकी अपेक्षा जेल और दरिद्रता को ही श्रेष्ठ समझा । बाद को 'हिन्दुस्तान'-सम्पादक से भी आपकी न बनी । आपने वहाँ से भी त्यागपत्र दे दिया ।

उन्ही दिनो सरदार अजीत सिह ने भारत माता सोसाइटी की नींव डाली और पंजाब के न्यू कालोनी बिल के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया । सूफी जी का भी मेल उनसे बनने लगा । उधर वे भी इनकी ओर आकर्षित होने लगे ।

सन् 1906 में पजाब में फिर धर-पकड़ आरम्भ हुई तो सरदार अजीतसिह के भाई सरदार किशनसिह और भारत माता सोसाइटी के मन्त्री मेहता आनन्द किशोर के साथ वे नेपाल चल दिये । वहाँ नेपाल राज्य के गवर्नर श्री जंगबहादुर जी से आपका परिचय हो गया । वे इनसे बहुत अच्छी तरह पेश आये । बाद को श्री जंगबहादुर जी सूफी को आश्रय देने के कारण ही पदच्युत कर दिये गये । उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी । खैर, सूफी जी वहाँ पकड़े गये और लाहौर लाये गये । लाला पिण्डीदास जी के पत्र 'इण्डिया' मे प्रकाशित आपके लेखो के सम्बन्ध मे ही आप पर अभियोग चलाया गया, परन्तु निर्दोष सिद्ध होने पर बाद मे आपको छोड दिया गया ।

तत्पश्चात सरदार अजीतसिह भी छूटकर आ गये । और सन् 1909 मे भारत माता बुक सोसाइटी की नीव डाली गयी । इसका अधिकतर कार्य सूफी जी ही किया करते थे । आपने 'बागी मसीह' या 'विद्रोही मसीह' नामक एक पुस्तक प्रकाशित करवायी जो बाद को जब्त कर ली गयी ।

इसी वर्ष लोकमान्य तिलक पर अभियोग चलाया गया और उन्हे भी 6 वर्ष का कारावास मिला । तब देशभक्त-मण्डल के सभी सदस्य साधु बनकर पर्वतो की ओर यात्रा करने निकल पडे । पर्वतों के ऊपर जा रहे थे । एक भक्त भी साथ आया । साधु बैठे तो उस भक्त ने सूफी जी के चरणों पर सीस नवाकर नमस्कार किया । बडा जैण्टलमैन था । खूब सूट-बूट पहने था । सूफी जी के चरणो पर शीश रखा और पूछने लगा—बाबा जी, आप कहाँ रहते हैं ?

सूफी जी ने कठोर शब्दो मे उत्तर दिया—रहते है तुम्हारे सर में ।

—साधु जी, आप नाराज क्यो हो गये ?

—अरे बेवकूफ ! तूने मुझे क्यो नमस्कार किया ! इतने और साधु भी थे, इनको प्रणाम क्यों न किया ?

—मै आपको साधु समझा था ।

—अच्छा खैर जाओ, खाने-पीने की वस्तुएँ लाओ ।

वह कुछ देर बाद अच्छे-अच्छे पदार्थ लेकर आया । खा-पीकर सूफी जी ने उसे फिर बुलाया और कहने लगे—क्यों बे, हमारा पीछा छोडेगा या नहीं ?

—भला मैं आपसे क्या कहता हूँ जी ?

—चालाकी को छोड़। आया है जासूसी करने! जा, अपने बाप से कह देना कि सूफी पहाड़ में गदर करने जा रहे हैं।

वह चरणों पर गिर पड़ा—हजूर, पेट की खातिर सबकुछ करना पड़ता है!

आपने सन् 1909 में 'पेशवा' अखबार निकाला। उन्हीं दिनों बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। सरकार को चिन्ता हुई कि कहीं यह पंजाब को भी जला न डाले। अस्तु, दमन-चक्र आरम्भ हुआ। तब सूफी जी, सरदार अजीतसिंह और जिया-उल-हक़ ईरान चले गये। वहाँ पहुँचकर जिया-उल-हक़ की नीयत बदल गयी। उसने चाहा, इन्हें पकड़वा दूँ तो इनाम भी मिलेगा और सजा भी न होगी। परन्तु सूफी जी ताड़ गये। उन्होंने उसे आगे भेज दिया। [फलस्वरूप वह] स्वयं ही पकड़ा गया और ये दोनों बच निकले।

ईरान में वे कैसे रहे, क्या हुआ, यह बातें तो किसी अवसर पर खुलेंगी परन्तु जो कुछ सुनने में आया, उसी का उल्लेख इस स्थान पर किया जाता है। ईरान में अंग्रेजों ने उनकी बहुत खोज की और उन्हें कई प्रकार के कष्ट सहन करने पड़े। कहा जाता है कि वे एक स्थान पर घेर लिये गये। वहाँ से निकलना असम्भव-सा हो गया। वहाँ व्यापारियों का एक काफिला ठहरा हुआ था। ऊँटों पर बहुत-से सन्दूक लदे थे। आगे वस्त्र आदि भरे थे। एक ऊँट के दोनों सन्दूकों में सूफी जी तथा अजीतसिंह को बन्द कर दिया गया और वहाँ से बचाकर निकाला गया।

फिर किसी अमीर के घर ठहरे। पता चल गया और वह घेर लिये गये। उसी समय उन दोनों को बुरका पहना जनाने में बिठा दिया गया। सबकी तलाशी ली गयी और अन्त में स्त्रियों की भी तलाशी ली जाने लगी। एक-दो स्त्रियों के बुरके उठाये भी गये, परन्तु मुसलमान लोग लड़ने-मरने को तैयार हो गये और फिर अन्य किसी स्त्री का बुरका नहीं उठाने दिया गया। इस तरह वे दोनों यहाँ से भी बचे।

पीछे उन्होंने वहाँ से 'आबे हयात' नामक पत्र निकाला और राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे। सरदार साहिब के टर्की चले जाने पर वहाँ का सारा कार्य इन्हीं के सर आ पड़ा और फिर ये वहाँ आकर सूफी के नाम से प्रसिद्ध हुए। सन् 1915 में जिस समय ईरान में अंग्रेजों ने पूर्ण प्रभुत्व जमाना चाहा तो फिर कुछ उथल-पुथल मची थी। शीराज़ पर घेरा डाला गया। उस समय सूफी जी ने बायें हाथ से रिवाल्वर चलाकर मुकाबला किया था, परन्तु अन्त में आप अंग्रेजों के हाथ आ गये। उनका कोर्ट मार्शल किया गया। फैसला हुआ कि कल गोली से उड़ा दिये जायेंगे। सूफी कोठरी में बन्द थे। प्रातः समय देखा तो वे समाधि की अवस्था में थे। उनके प्राण पखेरू उड़ चुके थे! उनके जनाजे के साथ असंख्य ईरानी गये और उन्होंने बहुत शोक मनाया। कई दिन तक नगर में उदासी छायी रही। सूफी जी की कब्र बनायी गयी। अभी तक हर वर्ष उनकी कब्र पर उत्सव मनाया जाता है। लोग उनका नाम सुनते ही श्रद्धा से सर झुका लेते हैं। वे पैर से भी लेखनी पकड़कर अच्छी तरह लिख सकते थे। एक दिन एक महाशय कह रहे थे कि मुझे

उन्होंने पैर से ही लिखकर एक नुस्खा दिया था।

एक और कहानी मित्रो ने सुनायी थी। पता नहीं कहाँ तक सच है। परन्तु बहुत सम्भव है वह सच हो। कहते हैं, जब भोपाल या किसी और स्टेट में रेजिडेंट कुछ गडबड़ कर रहे थे और उसके हडप करने की चिन्ता में थे, तो वहाँ का भेद प्रकाशित करने के लिए अमृत बाजार पत्रिका की ओर से सूफी जी वहाँ भेजे गये। यह बात 1890 के लगभग की है।

एक पागल-सा मनुष्य रेजिडेण्ट के बैरे के पास नौकरी की खोज मे आया और अन्त मे केवल भोजन पर ही रख लिया गया। वह पागल बर्तन साफ करता तो मिट्टी में लथपथ हो जाता। मुँह पर मिट्टी पोत लेता। वह सौदा खरीदने में बड़ा चतुर था, अस्तु चीजे खरीदने वही भेजा जाता था।

उधर अमृत बाजार पत्रिका में रेजिडेण्ट के विरुद्ध धड़ाधड लेख निकलने लगे। अन्त मे इतना बदनाम हुआ कि पदच्युत कर दिया गया। जिस समय वह स्टेट से बाहर पहुँच गया तो एक जंक्शन पर एक काला-सा आदमी हैट लगाये, पतलून-बूट पहने उसकी ओर आया। उसे देखकर रेजिडेण्ट चकित-सा रह गया। ये तो वही है जो मेरे बर्तन साफ किया करता था! आज पागल नही है। उसने आते ही अग्रेजी मे बातचीत शुरू की। उसे देखकर रेजिडेण्ट काँपने लगा। आखिर उसने कहा—तुम्हे इनाम तो दिया जा चुका है, अब तुम मेरे पास क्यों आये हो?

—आपने कहा था—जो आदमी उस गुप्तचर को, जिसने कि आपका भेद खोला है, पकड़वाये तो आप कुछ इनाम देगे।

—हाँ, कहा तो था। क्या तुमने उसे पकडा?

—हाँ, हाँ इनाम दीजिए। वह मैं स्वयं ही हूँ।

वह थर-थर काँपने लगा। बोला—यदि राज्य के अन्दर ही मुझे तेरा पता चल जाता तो बोटी-बोटी उड़वा देता। खैर, उसने उन्हें एक सोने की घड़ी दी और कहा—यदि तुम स्वीकार करो तो जासूस विभाग से 1000 रु. मासिक वेतन दिला सकता हूँ। परन्तु सूफी जी ने कहा—अगर वेतन ही लेना होता तो आपके बर्तन क्यों साफ करता?

आज सूफी जी इस देश में नहीं है। पर ऐसे देशभक्त का स्मरण ही स्फूर्तिदायक होता है। भगवान उनकी आत्मा को चिर शान्ति दे।

श्री बलवन्तसिंह

वे बड़े ईश्वर-भक्त थे। धर्मनिष्ठा के कारण उन्हे सिक्खों में पुरोहित बना दिया गया था। शान्ति के परम उपासक बलवन्त का स्वभाव बड़ा मृदुल था। वे सुमधुर भाषी थे। पहले-पहल वे ईश्वरोपासना की ओर लगे। फिर लोगों को उस ओर लाने की चेष्टा

प्रारम्भ की। बाद में लोगों के कष्ट दूर करने के प्रयास में धीरे-धीरे गौरांग महाप्रभुओं से मुठभेड़ होती गयी और अन्त में फाँसी पर मुस्कराते हुए आपने प्राण-त्याग किया।

श्री बलवन्तसिंह का जन्म गाँव खुर्दपुर, जिला जालन्धर में पहिली आश्विन, सम्वत् 1939 विक्रम शुक्रवार को हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार बुद्धसिंह था।

परिवार बड़ा धनाढ्य था। पिता को धन के अतिरिक्त स्वभाव तथा अन्य गुणों के कारण सभी मान तथा आदर की दृष्टि से देखते थे। आपको होश सँभालते ही आदमपुर के मिडिल स्कूल में शिक्षा के लिए दाखिल करवा दिया। विद्यार्थी-जीवन में ही आपका विवाह हो गया। परन्तु विवाह के बाद शीघ्र ही धर्मपत्नी की मृत्यु हो गयी। मिडिल पास किये बिना ही स्कूल छोडकर वे फौज में जा भरती हुए। पल्टन में आपका सन्त कर्मसिंह जी से संसर्ग हुआ। उनकी संगति से आपका ईश्वर-भजन की ओर झुकाव हो गया। दस साल ज्यों-त्यों नौकरी की, फिर एकाएक नौकरी छोड़ अपने गाँव में रहकर ईश्वरोपासना शुरू कर दी। पल्टन की नौकरी में ही आपका दूसरा विवाह भी हुआ था। गाँव के पास एक गुफा थी। उसी मे बन्द रहकर भगवद्भजन मे तल्लीन रहने लगे। ग्यारह महीने वहीं रहने के बाद बाहर आते ही सन् 1905 में कैनेडा जाने का निश्चय कर, उधर ही प्रस्थान कर दिया।

कैनेडा में जाकर आपने अपने दूसरे साथी श्री भागसिंह जी से, जिन्हें एक देशद्रोही ने बाद में गोली मार दी थी, मिलकर गुरुद्वारा बनाने का कार्य आरम्भ किया। वैंकोवर में ही उनके प्रयत्न से अमेरिका का सबसे पहला गुरुद्वारा स्थापित हुआ। उस समय वहाँ गये हुए भारतवासियों में कोई संगठन न था। उन्हें गोरे लोग तंग किया करते थे, परन्तु हमारे नायक वहाँ गये तो उन्होंने इन सब त्रुटियों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया।

उस समय वहाँ के प्रवासी हिन्दुओं तथा सिक्खो को मृतक-संस्कार करने मे बड़ी विपत्ति होती। मुर्दे जलाने की उन्हे आज्ञा न थी। ऐसी अवस्था में बेचारे उन लोगों को अनेकानेक कष्ट सहन करने पडते। कई बार उन्हें वर्षा में, बर्फ में, शव को जंगल में ले जाकर, कुछ लकड़ियाँ इकट्ठी कर, तेल डाल आग लगाकर भागना पड़ता। ऐसी अवस्था मे भी कैनेडियन लोगों की गोली का निशाना बनने का डर रहता। श्री बलवन्तसिंह जी ने यह असुविधा दूर करने का प्रबन्ध किया। कुछ जमीन खरीद ली। दाह-संस्कार करने की आज्ञा भी प्राप्त कर ली। गुरुद्वारे मे भारतीय मजदूरों का संगठन भी करने लगे। उनमें सच्चरित्रता तथा ईश्वरोपासना का प्रचार किया करते। गुरुद्वारा बडे प्रयत्न से बन पाया था, उन सबमें आपका परिश्रम ही सबसे अधिक था, अत: सबने मिलकर आपको ही ग्रन्थी बनाने का निश्चय किया। पहले तो आपने कुछ इन्कार किया, परन्तु बाद में स्वीकार कर लिया।

सिक्ख लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट तथा परिश्रमी होते हैं। उनके कैनेडा में जाने से गोरे मजदूरों की कद्र कम हो गयी। उधर अँगरेज़ मजदूरों से उनका वेतन भी कहीं कम होता। उनके पहले दल के पहुँचते ही गोरे मजदूरो ने दंगा-फिसाद शुरू कर दिया था।

परन्तु योद्धा-वीर सिक्ख इन बातों से डरनेवाले नहीं थे। इससे गोरे और भी चिढ़ उठे। और उधर गुरुद्वारा बनने से इनका संगठन बढ़ने लगा। नवीन आगन्तुकों को हर प्रकार की सुविधा होने लगी। यह सब देखकर वहाँ की गोरी सरकार ने उनको निकालने के लिए यत्किंचित उपाय ढूँढ़ने शुरू किये। इमिग्रेशन विभागवालों ने भारतीय मजदूरों को बहुत-कुछ फुसलाकर हण्डूरॉस नामक द्वीप में चले जाने पर राजी करने का प्रयत्न किया। उस द्वीप की बहुत तारीफ की गयी। परन्तु भाई बलवन्तसिंह जी खूब समझते थे कि यह सब धोखे की टट्टी है। आपने अपने किसी विश्वस्त सज्जन को वह स्थान देख आने के लिए भेजा। उस सज्जन का नाम था श्री नागरसिंह। उन्हे वहाँ इमिग्रेशन विभागवालो ने भारत मे पॉच मुरब्बे जमीन और पाँच हजार डॉलर देने का लोभ देकर इस बात पर राजी करना चाहा कि वह भारतवासियो को हण्डूरॉस में आने पर राजी कर दे। उन्होंने आते ही सब भेद खोल दिया। इमिग्रेशन विभागवाले भी खुल खेले। अब खुल्लमखुल्ला युद्ध छिड़ गया। इमिग्रेशन विभाग ने औचित्यानौचित्य का विचार छोड दिया। ज्यो-ज्यों मामला बढ़ा त्यों-त्यों श्री बलवन्तसिंह जी भी आगे बढते गये।

प्रवासी भारतवासियो की इच्छा थी कि वे लोग भारत लौटकर अपने परिवारों को साथ ले जा सके। बहुत दिनों तक खीचातानी हुई। आखिर एक सलाह सोची गयी। श्री बलवन्तसिंह, श्री भागसिंह तथा भाई सुन्दरसिंह जी को भारत लौटकर अपने परिवार लाने के लिए भेजने का प्रस्ताव हुआ। वह तीनो सज्जन भारत को लौट आये।

1911 मे वे फिर सपरिवार रवाना हुए। हांगकांग पहुँचकर टिकट न मिलने के कारण रुक जाना पड़ा। वहीं पडे रहकर वे वैंकोवर-गुरुद्वारावालो से पत्र-व्यवहार द्वारा सलाह करते रहे। आखिर तीनो सज्जन चल दिये। श्री सुन्दरसिंह जी तो गये वैंकोवर को तथा शेष दोनो सज्जन तीनों परिवार सहित सान्फ्रान्सिस्को रवाना हुए। भाई सुन्दरसिंह तो वैंकोवर पहुँच गये, परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका भी तो आखिर गोरो का देश था और इधर तो वे ही गुलाम भारतवासी थे, परिवारों सहित उन दोनों सज्जनों को वहाँ उतरने की आज्ञा न मिली। वे फिर हांगकांग लौट आये। फिर बहुत दिन बाद बडे यत्न से परिवारो के लिए वैंकोवर के टिकट मिले। वैंकोवर मे उन दोनों सज्जनो को तो उतरने की आज्ञा मिल गयी, परिवारो को उतरने की आज्ञा न मिली। बड़ा झञ्झट बढ़ा। आखिर परिवारों को उतने दिनों तक उतरने की आज्ञा मिली, जितने दिनो मे कि आशा की जा सकती थी कि इमिग्रेशन विभाग के केन्द्रीय ओटावा (Ottava) से अन्तिम आज्ञा आ जायेगी। परिवार उतरे तो सही, पर जमानत पर। जमानत की अवधि पूरी हो जाने के दो दिन बाद इमिग्रेशन विभागवाले परिवारो को लेने के लिए आये, परन्तु सिक्ख लोग झगड़े के लिए तैयार हो गये। अफसर लोग जरा गरम हुए, परन्तु वीर योद्धाओं की लाल ऑखे देख, अपना-सा मुँह लेकर लौट गये। लाल आँखो के पीछे कौन-सा बल था, कौन-सी दृढ़ता थी और कौन-सा निश्चय था जिससे कैनेडा की राजशक्ति और उनका इमिग्रेशन विभाग थर-थर कॉप उठे, और उन परिवारो को वही रहने दिया गया—यह

बातें तब गुलाम भारतवासी नहीं समझ सकते थे। उनकी कूपमण्डूकता, उनका संकीर्ण दृष्टिकोण नहीं समझ सकता था कि राष्ट्रों को बनाने में कैसे समय, कैसी घड़ियाँ उपस्थित हुआ करती हैं। स्वतन्त्र भारत अपने स्वातन्त्र्य संग्राम की इन अद्वितीय घटनाओं को याद किया करेगा। उसके इतिहास-लेखक ही इन सब बातों को खूब वास्तविक रूप में लिख सकने का सुअवसर पा सकेंगे। दफ़ा 124 अ आदि विकराल दानव गला दबाये, आँखें निकाले उनकी साँस बन्द नही किये रहा करेंगे। वे परिवार तो वहीं रह गये, परन्तु शेष भारतीयों के परिवार लाने की समस्या वैसे-की-वैसी खड़ी रही। दो साल तक निरन्तर झगड़ा किया, परन्तु परिणाम कुछ न निकला। आखिर तय पाया कि इंगलैण्ड की सरकार तथा जनता और भारत सरकार तथा जनता के सामने अपनी माँगे रक्खी जावें और उनकी सहायता से इस उलझन को सुलझाया जाये।

एक डेपूटेशन बनाया गया जो इंगलैण्ड भी गया और भारतवर्ष भी। उसके तीन सदस्यों में एक हमारे नायक श्री बलवन्तसिंह भी थे। इंगलैण्ड गये। सभी उच्च अधिकारियों से मिले। कहा गया—"मामला भारत सरकार द्वारा यहाँ पहुँचना चाहिए।" निराश हो भारत में आये। आन्दोलन शुरू किया। उस समय प्रमुख नेता लाला लाजपत राय जी ने भी सड़ा-सा उत्तर देकर उनसे पीछा छुड़ा लिया था। फिर क्या था? कुछेक सज्जनो की सहायता मिली। सार्वजनिक सभाएँ की गयीं। क्रोध था, घायल राष्ट्रीय भाव था, विवशता थी और थी घोर निराशा। जले दिलो से जो कुछ निकला, कहा और फिर? सर माईकेल ओडायर अपने, 'India As I Knew it' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—"At this Stage I sent a warning to the delegates that if this continued, I would be compelled to take serious action...... The delegates on this asked for an interview with me. I had a long talk with them and repeated my warning. Two of them were.. and spacious; the manner of third seemed to be that of a dangerous revolutionary. They wished to see The Viceroy, and in sending them on to him. I particularly warned him about this man."

यह तीसरे सज्जन, जिन पर हमारे लाट ने इतना कुछ कह डाला है, यह वही नायक बलवन्त थे। उस भावुक हृदय ने तो गहरे घाव खाये थे। आत्म-सम्मान का भाव बार-बार ठुकराया जा चुका था। उन्होंने धीरे-धीरे निश्चय कर लिया था कि भारत को हर सम्भव उपाय से स्वतन्त्र करवाना ही प्रत्येक भारतवासी का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। खैर!

डेपूटेशन हताश-निराश हो 1914 के आरम्भ में वापस लौट गया। इन्हीं दिनो भारतीय विद्रोही श्री भगवानसिंह तथा श्री बरकतुल्ला भी अमेरिका पहुँच गये। संयुक्त राज्य अमेरिका मे इन दिनों हिन्दुस्थान-एसोसिएशन (Hindusthan Association) का कार्य जोरो पर होने लगा। गदर-दल, गदर-प्रेस, गदर अखबार जारी हो गये। परन्तु

उपरोक्त डेपूटेशनवाले सज्जनों का उस समय तक उनसे कोई सम्बन्ध न था। किन्तु उनको सर माईकेल ओडायर ने गदर-दल के ही प्रतिनिधि लिखा है। अस्तु।

उस समय तक भारतवर्ष के अभियोग अन्य जातियो के सामने नही रक्खे गये थे। परन्तु यह डेपूटेशन जापान और चीन के राजनीतिज्ञो से मिलता हुआ ही गया था और इन्होने भारत की ओर उन लोगो की सहानुभूति आकृष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया था। वैंकोवर लौटकर अपने निष्फल प्रयत्न का इतिहास सुनाते हुए श्री बलवन्तसिंह जी ने एक बडी प्रभावशाली वक्तृता दी थी। ऐसी वक्तृताएँ राष्ट्रो के इतिहास मे विशेष मान पाती हैं। गहरे मनन के बाद आपको चारों ओर से यही सुनायी देने लगा था, उनके अन्तस्तल से यही एक ध्वनि उठने लगी थी कि 'सब रोगों की एकमात्र औषधि भारत की स्वतन्त्रता है।' आपने भाषण मे अपना अनुभव तथा गहरे मनन से जो परिणाम निकाला था, सब कह सुनाया।

वह उनकी सफाई, शान्ति, वीरता, गम्भीरता और निर्भीकता को देखकर कहा करते थे कि ''बलवन्तसिंह सिक्खो के पादरी हैं अथवा सेनापति (General), यह निश्चय करना बडा कठिन है।'' अस्तु।

शीघ्र भविष्य मे क्या किया जावे, यह तो कुछ निश्चय करने का अवसर नही मिला, कि एक और समस्या सामने आ खडी हुई—कामागाटामारू जहाज आ पहुँचा। किनारे पर लगने की आज्ञा ही नही मिली, उलटे उन पर अनेक अत्याचार ढाये जाने लगे। जितने दिनो जहाज वहाँ रहा, उतने दिन सभी भारतीय दत्तचित्त हो उसी की सहायता मे लगे रहे। नेतृत्व फिर हमारे नायक के हाथ मे था। आपने दिन-रात एक कर दिया। इतना परिश्रम और कोई कर पाता अथवा नही, सो नही कह सकते। किराये के किश्त की अदायगी मे देर लगवाकर जो अडचन गोरेशाही डालना चाहती थी, उसका भार भी आप पर पडा। 11 हजार डॉलर की आवश्यकता थी। सभा मे 11 हजार डॉलर के लिए जो अपील आपने की थी, उसमे इतना दर्द और इतना प्रभाव था कि वर्णन नहीं किया जा सकता। 11 हजार डॉलर इकट्ठे हो गये। उनकी आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी करने के बाद आप और सलाह-मशवरा करने के लिए दक्षिण की ओर बहुत दूर चले गये। अचानक वे अमेरिका की सीमा पर पहुँच गये। गोरी सरकार ने पकड लिया। कहा, ''अमेरिका से आये हो और चोरी से कैनेडा मे प्रविष्ट हुए हो।'' यह निराधार दोष भी एक लम्बे झगड़े का कारण हुआ, आखिर कुछ झगडे के बाद मामला तय हुआ और वैंकोवर पहुँचे। कुछ दिन बाद निराश होकर कामागाटामारू जहाज भी लौटने पर विवश हो गया।

कामागाटामारू के साथ भारत की जितनी आशाएं सम्बद्ध थी, सभी एकाएक मटियामेट कर दी गयीं। भारत का व्यवसाय की ओर यही तो पहला प्रयत्न था। उसी में भारत-हितकारी शासको ने पूरी तरह से ऐसा पीसने की कोशिश की कि फिर कोई ऐसी चेष्टा करने का दु:साहस न कर सके। कैनेडा मे जितने दिन जहाज ठहरा था, उतने दिन

उनके साथ जो अमानुषिक व्यवहार हुए थे, उनका रोमांचकारी वर्णन लिखने का यह स्थान नहीं। पर उनकी याद दिल को आग लगा देती है, पागल कर देती है, रुला-रुला जाती है। उन सबका उत्तरदायित्व इमिग्रेशन विभाग के वैंकोवरवाले मुख्य अध्यक्ष मि. हॉपकिन्सन पर ही था। ये लोग उनसे बहुत नाराज थे, परन्तु ज़रा और सुनिए। श्री बलवन्तसिंह, श्री भागसिंह ये दो ही सज्जन तो थे, जो पहले दिन से इमिग्रेशन विभागवालों से वीरतापूर्वक लडते चले आये थे। कामागाटामारू जहाज के मामले में भी सभी कार्य इन्हीं दो सज्जनों ने तो किये थे। वे इमिग्रेशन विभाग की आँखों के काँटे हो रहे थे। एक देशद्रोही भाड़े का टट्टू मिल गया। गुरुद्वारे में दीवान हो रहा था। उस विभीषण ने ईश्वर-भजन में तल्लीन श्री भागसिंह और श्री बलवन्तसिंह पर पिस्तौल से फायर कर दिये। श्री भागसिंह जी तो वहीं स्वर्गलोक सिधार गये, परन्तु श्री बलवन्तसिंह बच गये। गोली उनके न लगकर एक और देशभक्त श्री वतनसिंह के जा लगी। वे भी वहीं शहीद हो गये। यह हत्यारा उपस्थित लोगों के पंजे से बच गया। कैनेडा-सरकार का कानून भी उसे कुछ दण्ड न दे सका। वह आज भी जीता है। वह पंजाब-सरकार का लाड़ला बना रहा है। उस ने यह सब काण्ड क्यों किया और इसमें उसे क्या भलाई दीख पडी, यह सब वही जाने!

इसी प्रकार की सरगर्मी में कितने ही महीने गुजर गये। सन् 1914 का अन्तिम पक्ष आ गया। महायुद्ध छिड चुका था। अमेरिका-स्थित सब भारतीय देश में वापस आने की तैयारी करने लगे। फिर हमारे नायक वहाँ कैसे ठहर सकते थे। सपरिवार प्रस्थान कर दिया। आप शंघाई पहुँचे, वहीं आपके घर एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। वहाँ कार्य के सम्बन्ध मे आपको अपना घर लौटने का इरादा बदलना पडा। परिवार तो श्री करतारसिंह के साथ भारत को भेज दिया और आप वहीं ठहर गये। वहाँ जो सब कार्य करने को था, करते हुए आप 1915 में बेंकॉक (Bangkok) पहुँचे।

उन दिनों दूर पूर्व मे जो विद्रोह के प्रयत्न हो रहे थे; उन्ही के संगठन तथा नियन्त्रण में आपको कार्य करने के लिए ठहरना पड़ा था। उन सब विफल आयोजनों का रोमांचकारी इतिहास लिखने का यह स्थान नहीं। सप्ताह-भर सिंगापुर में जो रणचण्डी का ताण्डव-नृत्य हुआ था, उसमें साम्राज्यवादी जापान तथा फ्रांस की सर्व शस्त्रसुसज्जित सेनाओं की सहायता से अँगरेज विजयी हुए। भारत का स्वतन्त्रता-प्रयत्न निष्फल हो गया। Eastern Plot खत्म हो गया। ऐसी ही अवस्था में श्री बलवन्तसिंह जी बेंकॉक पहुँचे थे। दुर्भाग्यवश आप बीमार हो गये। दशा नाजुक हो गयी, अस्पताल जाना पड़ा। नासमझ डॉक्टर ने ऑपरेशन कर डाला और वह भी बिना क्लोरोफार्म सुँघाये ही। आपको कष्ट और निर्बलता बढ गयी। अभी चलने-फिरने योग्य भी न हुए थे कि अस्पतालवालों ने उन्हे चले जाने को कहा। चलने-फिरने की अयोग्यता की बात पर भी ध्यान नहीं दिया गया। अस्पताल से बाहर निकाल दिया गया। इतना उतावलापन क्यों किया गया, सो भी सुन लीजिए। बाहर पुलिस गिरफ्तार करने के लिए खड़ी थी। द्वार से

निकलते-न-निकलते आपको गिरफ्तार कर लिया गया। वहाँ रहनेवाले भारतवासियों के जमानत-अमानत के सब प्रयत्न विफल हो गये। स्याम की स्वतन्त्र सरकार ने श्री बलवन्तसिंह जी तथा उनके अन्य साथियों को चुपचाप भारत की अँगरेज-सरकार के सुपुर्द कर दिया। सो क्यों? इसका भी एकमात्र कारण यही है कि भारत गुलाम था। गुलाम जाति के लिए कौन ख्वाहमख्वाह की बला सिर पर लेता है। खैर!

श्री बलवन्तसिंह जी को सिंगापुर लाया गया। ससार-भर की धमकियाँ तथा लोभ देकर सब भेद कह देने के लिए राजी करने के प्रयत्न किये गये, परन्तु उनके पास मौन के सिवा क्या धरा था? आखिर 1916 में आपको लाहौर-षड्यन्त्र के दूसरे अभियोग में शामिल किया गया। अपराध वही था, जिसमें निष्फलता होने पर मृत्यु-दण्ड ही मिला करता है। आप पर विद्रोह का आरोप लगाया गया। 24 दिन नाटक हुआ। बेलासिंह जैण्ड आदि कई एक गवाह आपके विरुद्ध पेश हुए। नाटक दुखान्त था। अभियुक्त को साम्राज्य की बलि-वेदी पर कुर्बान करने का निश्चय हुआ। मृत्यु-दण्ड सुनते ही देवता सहम गये। इस देवता को मृत्यु-दण्ड! राक्षसों-दानवों में भीषण अट्टहास मच गया होगा।

काल कोठरी में बन्द हैं, सिक्ख होने पर टोपी नहीं पहन सकते। कम्बल ही सर पर लपेट लिया है। बदनाम करने के लिए किसी ने शरारत की—कम्बल के किसी एक कोने मे अफीम बाँध दी और कहा गया कि आप आत्महत्या करना चाहते हैं। आपने अत्यन्त शान्ति से उत्तर दिया—"मृत्यु सामने खड़ी है। उसके आलिंगन के लिए तैयार हो चुका हूँ। आत्म-हत्या कर मैं मृत्यु-सुन्दरी को कुरूपा नही बनाऊँगा। विद्रोह के अपराध मे मृत्यु-दण्ड पाने में गर्व अनुभव करता हूँ। फाँसी के तख्ते पर ही वीरतापूर्वक प्राण दूँगा।" पूछताछ करने पर भेद खुल गया। कुछ नम्बरदार क़ैदियों तथा वार्डर को कुछ सजाएँ हुई। सभी ने आपकी देशभक्ति तथा निर्भीकता की दाद दी।

सन् 1916 के दिन थे। भारतवर्ष में कालेपानी और फाँसियों का जोर था। समस्त उत्तर भारत में एकाएक खलबली मच गयी थी! अन्दर-ही-अन्दर एक विराट गुप्त विप्लव का आयोजन हो गया था, यह भारत की जनता न जानती थी। नेतागण उन लोगों की ओर ताकने तक का साहस न करते थे। बहुत-से लोग समझते थे कि सरकार ने यों ही देश को भयभीत करने के लिए ऐसे-ऐसे भीषण अभियोग चला दिये हैं। जो भी हो, उस विराट आयोजन के निष्फल हो जाने पर भी उसकी सुन्दर स्मृति बाकी है। वह सुन्दर है, इसलिए कि आदर्शवादी युवको के पवित्र रक्त से लिखी गयी है। बाकी है इसलिए कि कुर्बानियाँ कभी व्यर्थ नहीं जाया करती। इसी वर्ष में (मार्च) चैत्र की 18 तारीख को श्री बलवन्तसिंह जी की धर्मपत्नी भेंट के लिए गयी। पुस्तक तथा वस्त्र देकर बताया गया—"कल 17 चैत्र को उन्हें फाँसी दे दी गयी।" उनकी धर्मपत्नी कलेजा थामकर रह गयीं।

श्री बलवन्त की फाँसी के दिन के समाचार बाद में मिले। आपने प्रातःकाल स्नान

किया तथा अपने छः और साथियों सहित (जिन्हें उसी दिन फाँसी मिली थी) भारत-माता को अन्तिम नमस्कार किया । भारत-स्वतन्त्रता का गान गाया । हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर जा खड़े हुए । फिर क्या हुआ ? क्या पूछते हो ? वही जल्लाद, वही रस्सी ! ओह ! वही फाँसी और वही प्राणत्याग !

आज बलवन्त इस संसार में नहीं, उनका नाम है, उनका देश है, उनका विप्लव है ।

डॉक्टर मथुरासिंह

बावजूद सबसे अधिक विपत्तियाँ सहन करने के, सबसे अधिक गणना में अपने नर-रत्नों के स्वतन्त्रता-बलिवेदी पर बलिदान देने के, आज पंजाब राजनैतिक क्षेत्र में फिसड्डी (Politically backward) प्रान्त कहलाता है । बंगाल में श्री खुदीराम बसु फाँसी पर लटके । उन्हें इतना उठाया गया कि आज उनका नाम उस प्रान्त के कोने-कोने में सुनाई देता है । भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में उनका नाम सुविख्यात है । परन्तु पंजाब में कितने रत्न देश के लिए जीवन-दान दे गये, कितने ही हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गये, कितने ही लडते-लड़ते छाती में गोली खाकर शहीद हो गये, परन्तु उन्हें कौन जानता है ? और कही की तो बात ही क्या कहें, पंजाब प्रान्त में ही उन्हें कितने लोग जानते हैं ? कोई साधारण विप्लवी यों ही फाँसी पर लटक गया हो और उसे लोग यों ही भूल गये हों, सो भी तो नहीं । जिन लोगों ने अथक परिश्रम से, अदम्य उत्साह से तथा अतुल साहस से भारतोत्थान के लिए ऐसे-ऐसे यत्न कर दिये थे कि आज उन्हें सुन-सुनकर अवाक् रह जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं ! यदि ऐसे रत्न किसी और देश में जन्म धारण किये होते तो आज उनकी वाशिंगटन, गैरिबाल्डी तथा विलियम वालीस की भाँति पूजा होती । परन्तु उन्होंने एक अक्षम्य अपराध यह किया था कि वे भारत में पैदा हुए थे । इसी का दण्ड यह है कि आज उनको विस्मृति के अन्धकार में फेंक दिया गया है । न उनके कार्य की चर्चा है, न उनके त्याग की, न उनके बलिदान की ख्याति है, न उनके साहस की । परन्तु ऐसी कृतघ्नता दिखानेवाले देश की उन्नति कैसे होगी ?

कट्टर आदर्शवादी डॉक्टर मथुरासिंह जी का स्थान वास्तव में बहुत ऊँचा है । आपका जन्म सन् 1883 ई. में ढुढियाल नामक गाँव, जिला झेलम (पंजाब) में हुआ था । आपके पिता का नाम सरदार हरिसिंह था । आपने पहले अपने गाँव मे ही शिक्षा पायी, तत्पश्चात् आप चकवाल के हाई स्कूल में पढने लगे । आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी । आप सदैव अपने सहपाठियो में सबसे अच्छे रहते थे । वहाँ पर मैट्रिक पास करने के बाद आप प्राइवेट तौर पर डॉक्टरी का कार्य सीखने लगे । मैसर्स जगतसिंह एण्ड ब्रदर्स की दुकान रावलपिण्डी में थी । वहीं पर आपने यह कार्य सीखना शुरू किया । बड़ी चेष्टा से आप सब कार्य करते । तीन-चार वर्ष मे ही आप इस कार्य मे प्रवीण हो गये । फिर आपने

अपनी दुकान अलग खोल दी। वह दुकान नौशेरा छावनी में थी, आप सभी देशों से चिकित्सा सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ मँगवाया करते थे। विशेष शिक्षा ग्रहण करने के लिए आपने अमेरिका जाने का विचार किया। दुकान का झंझट अभी तय भी न हो पाया था कि आपकी सुपत्नी तथा सुपुत्री का देहान्त हो गया। परन्तु इससे क्या होता था? आपने उधर प्रस्थान कर दिया। 1913 मे आप चले थे। कुछ अधिक धन पास न होने के कारण आपको शघाई मे ही रुक जाना पडा। वहीं पर आपने चिकित्सा-कार्य शुरू कर दिया, जिसमे आपको बहुत सफलता हुई। परन्तु आपका इरादा कैनेडा जाने का था; आप कुछ और भारतीयों के साथ उधर गये। परन्तु वहाँ पर बहुत दिक्कतें पेश आयीं। पहले केवल आपको तथा एक और सज्जन को वहाँ उतरने की आज्ञा मिली, दूसरे लोगों को नही। इस पर आपने वहाँ उतरना उचित न समझा। परन्तु साथियों के आग्रह करने पर आप उतरे तो सही, परन्तु वहाँ पर इमिग्रेशन विभाग मे अन्य साथियों के लिए झगड़ा शुरू कर दिया। अभियोग तक चला। परन्तु कानून और कोर्ट शक्तिशाली लोगों के लिए होते हैं न कि पराधीन देशवालों के लिए। वहाँ से आपको तथा अन्य भारतीय यात्रियो को वापस लौटा दिया गया। बहाना वही कि कैनेडा मे किसी जहाज द्वारा सीधे नहीं आये। आप शघाई लौट आये। आकर भारतीय लोगो मे अपनी दीन-हीन दशा की मार्मिक कथा सुनायी और श्री बाबा गुरुदत्तसिह जी को एक अपना जहाज बनाने की सलाह दी, जो सीधा कैनेडा जावे। इसी सलाह पर बाबा जी ने कामागाटामारू जहाज किराये पर ले लिया और उसका नाम गुरु नानक जहाज रक्खा। आपको इधर पजाब आना पडा। जहाज जल्दी से तैयार हो गया, अत आप निश्चित दिन पर वहाँ न पहुँच सके। सिगापुर से, 35 के लगभग अन्य साथियो सहित, दूसरे जहाज से चले, ताकि शंघाई तक कामागाटामारू से मिलकर उस पर सवार हों। हांगकांग पहुँचने पर पता चला कि जहाज वहाँ से भी चल चुका है। इसलिए आप वहीं पर ठहर गये। अब तक आप भारत-स्वतन्त्रता के लिए जीवन अर्पण करने का निश्चय कर चुके थे।

हांगकांग में आपने प्रचार-कार्य शुरू कर दिया। अमेरिका से गदर-पार्टी का 'गदर' अखबार आता था। आप भी वहीं पर वैसा ही गुप्त अखबार छपवाकर लोगों मे बाँटने लगे। उधर कामागाटामारू जहाज पर जो-जो अत्याचार होने लगे उन सबके समाचार आपको मिल रहे थे। जब मालूम हुआ कि कामागाटामारू जहाज को वापिस आना ही पड़ेगा तब आपने बड़े जोरों से प्रचार शुरू किया। उस समय कैण्टन में एक सिक्ख पुलिस इन्स्पेक्टर महाशय इन सभी आन्दोलनों को दबाने की बहुत चेष्टा कर रहे थे। आपने उनसे मिलकर जो बातचीत की तो वे महाशय भी इनकी सहायता करने लगे। आप किसी कार्यवश शघाई गये। जाते समय सबसे कह गये कि अब कामागाटामारू जहाज में सवार होकर भारत को लौट चलना चाहिए। परन्तु उनका यह निश्चय जान सरकार ने जहाज को शंघाई में न ठहरने दिया। उसके दो-एक रोज बाद वे सभी लोग दूसरे जहाजों द्वारा भारत लौट आये; कामागाटामारू जहाज अभी हुगली में ही खड़ा था कि

आप लोग कलकत्ते पहुँच गये। वहाँ पर सरकार ने आपको पंजाब के टिकट देकर गाड़ी पर चढ़ा दिया। अमृतसर पहुँचते-न-पहुँचते बजबज की घटना हो गयी। सब समाचार मिला। क्रोध से विह्वल-से हो उठे। प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठी। परन्तु डॉक्टर जी ने अपने अन्य साथियों को समझा-बुझाकर कुछ शान्त किया, और उन्हें प्रचार-कार्य के लिए उद्यत किया तथा स्वयं संगठन-कार्य शुरू कर दिया। उधर इस विराट चेष्टा में आपको बम बनाने का कार्य सौंपा गया था। आप उसमें थे भी बड़े निपुण। अमेरिका से सैकड़ों मतवाले योद्धा विप्लव-अग्नि भड़काने के लिए आने लगे। झट से सारा प्रबन्ध हो गया। विप्लव-दल का इतना बृहत् संगठन खड़ा हो गया कि समस्त भारत में एक साथ विद्रोह खड़ा कर देने का विचार उठा और तिथि तक निश्चित हो गयी। देखते-देखते सब प्रयत्न, सब आयोजन विफल हो गये। कृपाल की नीचता से सब किया-धरा बीच में ही रह गया। इधर-उधर पकड़-धकड़ शुरू हो गयी। परन्तु आप पकड़े न गये। एक बार एक सरकारी जासूस द्वारा आपको कहा गया कि यदि वे सरकारी गवाह बन जायें तो उन्हें क्षमा के साथ-ही-साथ बहुत भारी पुरस्कार भी दिया जाएगा। तब आपने उस प्रस्ताव को बिलकुल उपेक्षा से ठुकरा दिया। फिर एक बार एक खुफिया ऑफिसर आपके पास तक आ पहुँचा। परन्तु वह खूब जानता था कि डॉक्टर साहब बड़े निर्भीक क्रान्तिकारी हैं, अतः उसे अकेले उनको गिरफ्तार करने का साहस न हुआ। उलटा वह उनसे कहने लगा कि सरकार ने आपके लिए क्षमा प्रदान की है तथा पुरस्कार देने का वचन दिया है, यही कहने के लिए आया हूँ। आप भी खूब समझते थे कि वह उस समय उन्हें पकड़ने का साहस न कर सकने के कारण ही ऐसी बातें करता था। इसलिए आपने कुछ रजामन्दी दिखायी और उससे पीछा छुड़ाकर बच निकले। इस तरह आपने समझा कि अब देश में बचकर रहना एकदम असम्भव है, इसलिए आपने काबुल की ओर प्रस्थान कर दिया। वजीराबाद स्टेशन पर पुलिस ने पकड़ लिया, परन्तु वहाँ पर आपने कुछ घूस दे दी और बच निकले। आप कोहाट की ओर रवाना हो गये। पुलिस को भी समाचार मिल गया। कोहाट स्टेशन पर पुलिस का बड़ा भारी दस्ता पहरे पर लगा दिया गया। उसी ट्रेन में बहुत-सी पुलिस भी चढ़ा दी गयी। मार्ग में एकाएक सब डिब्बों की तलाशी भी ले डाली गयी, परन्तु आप न पकड़े जा सके। कुछ दिन वहीं पर ठहरने के पश्चात आप काबुल जा पहुँचे। वहाँ शीघ्र ही आप बहुत प्रसिद्ध हो गये। आपकी योग्यता देखकर आपको काबुल का चीफ मेडीकल ऑफिसर नियुक्त कर दिया।

भारत के भीतर राज्य-क्रान्ति की सब चेष्टा विफल हो चुकी थी तो क्या, बाहर तो अभी बड़े जोरों में प्रयत्न हो ही रहा था। काबुल में उस समय भारत की अस्थायी सरकार (Provisional Government of India) बनी हुई थी, जो जर्मनी कमेटी से सहयोग करती हुई भारत-स्वतन्त्रता के प्रयत्न में लगी हुई थी। इस समय अरब, मिस्र, मैसोपोटेमिया और ईरान आदि सभी प्रदेशों मे भारतीय विप्लवी—जिनमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख भी सम्मिलित थे—भारत में क्रान्ति करने की चेष्टा कर रहे थे। उस

सब प्रयास में डॉक्टर जी फिर से जुट गये। उसी के सम्बन्ध में आपको जर्मनी जाना पड़ा। कुछ दिनो बाद आप फिर लौट आये। ईरान तक तो आपको बहुत बार जाना पड़ा। फिर निश्चय हुआ कि अस्थायी सरकार की ओर से एक स्वर्ण पत्र जार, रूस के पास इस आशय का भेजा जाय कि वह भारत-क्रान्ति की सहायता करे। अब की बड़ी शान से प्रस्थान किया गया। कई सेवक तथा सामान के लदे हुए कई ऊँट आपके साथ थे। परन्तु उस समय कोई नीच पुरुष आपकी यात्रा की सब खबर अंग्रेज सरकार को दे रहा था। यह वह नही जानते थे। ताशकंद नगर में आपको गिरफ्तार कर लिया गया। ईरान में लाकर शिनाख्त की गई। अभियोग चला। बहुत लोगों ने यत्न किया कि आपको भारत सरकार के सुपुर्द न किया जाय, परन्तु अब तक अन्य सभी प्रयत्नों में जो निष्फलता हुई थी, अब ही क्यों सफलता होती ?

लाहौर मे लाये गये। इधर उन दिनों ओडायरशाही का जोर था। कुछ दिन न्याय-नाटक हुआ। मृत्यु-दण्ड सुनाया गया। आपने अत्यन्त आनन्द प्रदर्शित करते हुए सुना। आपके छोटे भाई मुलाकात के लिए गये। आपने पूछा—"क्यों भाई, मेरे मरने की तुम्हे चिन्ता तो नहीं ?" बालक ने रो दिया। आपने क्रोध-मिश्रित उत्साहवर्द्धक स्वर से कहा—"वाह जी ! यह समय आनन्द मनाने का है। क्या सिक्ख लोग भी देश के लिए मरते समय रोया करते हैं ? मुझे तो अत्यन्त आनन्द है कि मैं भारतीय विप्लव को सफल बनाने के लिए जो मुझसे हो सका, कर चुका हूँ, मैं बडी शान्ति से फॉसी के तख्ते पर प्राण त्याग करूँगा।" इस तरह आपने उसका उत्साह बढ़ाया।

फिर ? फिर 27 मार्च, 1917 का दिन आ पहुँचा। उस दिन फिर वही नाटक प्रारम्भ हुआ। उस दिन के नाटक मे एक ही दृश्य हुआ करता है; और वह भी कुछेक मिनट का। ये पगले लोग न जाने कहाँ से आ गये, जिन्हे न मृत्यु का भय था, न जीने की चाह; कार्य-क्षेत्र में हँसे, युद्ध-क्षेत्र में हँसे, फाँसी के तख्ते पर भी मुस्करा दिये। उनकी महिमा अपरम्पार है।

'हों फरिश्ते भी फिदा जिन पर ये वो इन्सान हैं !'

शहीद कर्तारसिह सराभा

[शहीद कर्तारसिह सराभा का चित्र भगतसिह अपने पास रखते थे और कहा करते थे, "यह मेरा गुरु, साथी व भाई है।" उनका प्रेरणा-स्रोत समझने के लिए यह लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है। —सं.]

रणचण्डी के इस परम भक्त विद्रोही कर्तारसिंह की आयु अभी बीस वर्ष की भी नहीं हुई थी कि जब उन्होंने स्वतन्त्रता-देवी की बलिवेदी पर अपना बलिदान दे दिया। आँधी की

तरह वह अचानक कही से आये, अग्नि प्रज्वलित की और सपनों में पड़ी रणचण्डी को जगाने की कोशिश की। विद्रोह का यज्ञ रचा और आखिर वह स्वयं इसमें भस्म हो गये। वे क्या थे, किस दुनिया से अचानक आये और झट कहाँ चले गये ? हम कुछ भी न जान सके। 19 वर्ष की आयु में ही उन्होंने इतने काम कर दिखाये कि सोचकर हैरानी होती है। इतनी जुर्रत, इतना आत्मविश्वास, इतना आत्मत्याग और ऐसी लगन बहुत कम देखने को मिलती है। भारतवर्ष मे ऐसे इन्सान बहुत कम पैदा हुए हैं, जिनको सही अर्थों में विद्रोही कहा जा सकता है, परन्तु इन गिने-चुने नेताओं में कर्तारसिह का नाम सूची में सबसे ऊपर है। उनकी रग-रग में क्रान्ति का जज़्बा समाया हुआ था। उनकी जिन्दगी का एक ही लक्ष्य, एक ही इच्छा और एक ही आशा, जो भी था—क्रान्ति थी, इसीलिए उन्होंने जिन्दगी में पाँव रखा और आखिर इसीलिए इस दुनिया से कूच कर गये।

आपका जन्म 1896 में गाँव सराभा, जिला लुधियाना में हुआ था। आप माता-पिता के इकलौते बेटे थे। अभी इनकी आयु बहुत कम थी कि पिता जी का देहावसान हो गया। परन्तु आपके दादा ने बहुत प्रयत्न से आपको पाला। नवीं कक्षा पढ़ने के बाद आप अपने चाचा के यहाँ चले गये। वहाँ उन्होंने दसवीं की परीक्षा पास की और कालेज में पढ़ने लगे। यह 1910-11 के दिन थे। इधर आपको स्कूल और कालेज के पाठ्यक्रम के तंग दायरे से बाहर की बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिला। यह आन्दोलन का जमाना था। इस वातावरण मे रहकर आपकी देश-प्रेम की भावना पल्लवित हुई।

इसके बाद आपकी अमेरिका जाने की इच्छा हुई। घरवालों ने उसका कोई विरोध नहीं किया। आपको अमेरिका भेज दिया गया। सन् 1912 में आप सान्फ्रांसिस्को की बन्दरगाह पर पहुँचे। आजाद देश में पहुँचकर कदम-कदम पर आपके कोमल हृदय पर चोट पड़ने लगी। इन गोरों की जबान से Damn Hindu (तुच्छ हिन्दू) और Black man (काला आदमी) आदि सुनते ही वे पागल हो उठते थे। उनको कदम-कदम पर देश की इज्जत व सम्मान खतरे में नजर आने लगे। घर की याद आने पर जंजीरों में जकड़ा हुआ विवश भारत सामने आ जाता। उनका कोमल दिल धीरे-धीरे सख्त होने लगा और देश की आजादी के लिए जिन्दगी कुर्बान करने का निश्चय दृढ़ होता गया। उनके दिल पर उस समय क्या गुजरती थी, यह हम कैसे समझ सकते हैं।

यह असम्भव था कि वे चैन से रह पाते। हर समय उनके सामने यह प्रश्न उठने लगा कि यदि शान्ति से काम न चला तो देश आजाद किस तरह होगा ? फिर बिना अधिक सोचे उन्होंने भारतीय मजदूरों का संगठन शुरू कर दिया। उनमें आजादी की भावना उभरने लगी। हर मजदूर के पास घण्टों बैठकर वे समझाने लगे कि अपमान से भरी गुलामी की जिन्दगी से तो मौत हजार दर्जा अच्छी है। काम शुरू होने पर और लोग भी उनसे आ मिले। मई, 1912 में इन लोगों की एक खास बैठक हुई। इसमें कुछ चुनींदा हिन्दुस्तानी शामिल हुए। सभी ने देश की आजादी के लिए तन, मन, धन न्योछावर करने का प्रण लिया। इन्हीं दिनों पंजाब के जलावतन देशभक्त भगवानसिंह वहाँ

पहुँचे। धड़ाधड़ जलसे होने लगे, उपदेश होने लगे। काम से काम चलता गया। मैदान तैयार हो गया। फिर अखबार की जरूरत महसूस होने लगी। 'गदर' नामक अखबार निकाला गया। इसका प्रथम अक नवम्बर, 1913 में निकाला गया। इसके सम्पादकीय विभाग में कर्तारसिंह भी थे। आपकी कलम मे अथाह जोश था। सम्पादकीय विभाग के लोग अखबार को हैण्ड प्रेस पर छापते थे। कर्तारसिंह क्रान्तिपसन्द मतवाले नौजवान थे। प्रेस चलाते हुए थक जाने पर वे गीत गाया करते थे–

सेवा देश दी जिन्दड़िए बड़ी औखी,
गल्लाँ करनीआँ ढेर सुखल्लीयाँ ने।
जिन्नाँ देशसेवा विच पैर पाया,
उन्नाँ लक्ख मुसीबताँ झल्लियाँ ने।

(देशसेवा करनी बहुत मुश्किल है, जबकि बातें करना खूब आसान है। जिन्होंने देशसेवा के रास्ते पर कदम उठा लिया वे लाख मुसीबतें झेलते हैं।)

कर्तारसिंह जिस लगन से परिश्रम करते थे उससे सभी की हिम्मत बढ़ जाती थी। भारत को किस तरह आजाद कराया जाये, यह किसी और को पता चले या नहीं. और किसी ने इस सवाल पर सोचा हो या नहीं, लेकिन कर्तारसिंह ने इस सवाल पर बहुत कुछ सोच रखा था। इसी दौरान आप न्यूयार्क मे विमान कम्पनी में भर्ती हो गये और वहीं दिल लगाकर काम सीखने लगे।

सितम्बर, 1914 में कामागाटामारू जहाज को अत्याचारी गोरे साम्राज्यवादियों के हाथ से अवर्णनीय यातनाएं झेलने पर वैसे ही लौटना पडा। तब हमारे कर्तारसिंह, क्रान्तिप्रिय गुप्ता और एक अमेरिकी अराजकतावादी जैक को साथ लेकर जापान आये और कोबे मे बाबा गुरदित्तसिंह जी से मिलकर सब बातचीत की। युगान्तर आश्रम, सानफ्रांसिस्को के गदर प्रेस मे 'गदर और गदर की गूँज' और अन्य बहुत-सी पुस्तकें छापकर बाँटी जाती रहीं। दिनों-दिन प्रचार बढ़ता गया। जोश बढ़ता गया। फरवरी, 1914 मे स्टाकटन के पब्लिक जलसे में आजादी का झण्डा लहराया गया और आजादी और बराबरी के नाम पर कसमें खायी गयीं। इस जलसे के मुख्य वक्ताओं मे कर्तारसिंह भी थे। सभी ने घोषणा की कि वह अपने खून-पसीने की कमाई एक कर देश की आजादी के संघर्ष में लगा देंगे। इसी तरह दिन गुजरते रहे। अचानक यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने की खबर आयी। वे खुशी से फूले नहीं समाते थे। एकदम सभी गाने लगे–

चलो चले देश के लिए युद्ध करने,
यही आखिरी वचन व फरमान हो गए।

कर्तारसिंह ने देश लौटने का जोरों से प्रचार किया। फिर स्वयं जहाज पर सवार होकर कोलम्बो (श्रीलका) पहुँच गये। इन दिनों अमेरिका से पंजाब आनेवाले प्रायः

डिफेंस आफ इण्डिया कानून (डी. आई. आर.) की पकड में आ जाते थे। बहुत कम सही-सलामत पहुँच पाते थे। कर्तारसिंह सही-सलामत आ गये। बड़े जोरो से काम शुरू हुआ। सगठन की कमी थी, लेकिन किसी तरह वह पूरी की गयी। दिसम्बर, 1914 मे मराठा नौजवान विष्णु गणेश पिंगले भी आ गये। इनकी कोशिश से श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल और रास बिहारी पंजाब आये। कर्तारसिह हर समय हर जगह पहुँचते। आज मोगा मे गुप्त मीटिंग है। आप वहाँ भी हैं। कल लाहौर के विद्यार्थियों में प्रचार हो रहा है, आप फिर प्रथम पंक्ति में है। अगले दिन फिरोजपुर छावनी के सैनिकों से गठजोड़ हो रहा है। फिर हथियारो के लिए कलकत्ता जा रहे हैं। रुपये की कमी का प्रश्न उठने पर आपने डाका डालने की सलाह दी। डकैती का नाम सुनते ही बहुत-से लोग स्तम्भित रह गये, लेकिन आपने कह दिया कि कोई भय नहीं है। भाई परमानन्द भी डकैती से सहमत हैं। उनसे पुष्टि करवाने की जिम्मेदारी आप पर डाली गयी। अगले दिन बगैर उनसे मिले ही कह दिया, "पूछ आया हूँ, वे सहमत है।" वे यह सहन नही कर सकते थे कि केवल रुपये की कमी से विद्रोह की तैयारी में देरी हो।

एक दिन वे डकैती डालने एक गाँव गये। कर्तारसिंह नेता थे। डकैती चल रही थी। घर में एक बेहद खूबसूरत लडकी भी थी। उसे देखकर एक पापी आत्मा का मन डोल गया। उसने जबरदस्ती लडकी का हाथ पकड़ लिया। लडकी ने घबराकर शोर मचा दिया। कर्तारसिह एकदम रिवाल्वर तानकर उसके नजदीक पहुँच गये और उस आदमी के माथे पर पिस्तौल रखकर उसे निहत्था कर दिया। फिर कडककर बोले, "पापी! तेरा अपराध बहुत गम्भीर है। तुम्हे सजाए-मौत मिलनी चाहिए, लेकिन हालात की मजबूरी से तुम्हे माफ किया जाता है। फौरन इस लडकी के पाँवो मे गिरकर माफी माँग कि हे बहिन! मुझे माफ कर दो। और फिर इसकी माता जी के पैर छूकर कह कि माता जी, मैं इस पतन के लिए माफी चाहता हूँ। यदि वे तुम्हे माफ कर दें तो तुम्हे जिन्दा छोड दिया जायेगा वरना गोली से उडा दिया जायेगा।" उसने ऐसा ही किया। बात अभी ज्यादा नही बढी थी। यह देखकर माँ-बेटी की आँखे भर आयीं। माँ ने कर्तारसिंह को प्यार भरे लहजे मे कहा, "बेटा! ऐसे धर्मात्मा और सुशील नौजवान होकर आप इस काम मे किस तरह शामिल हुए?" कर्तारसिह का भी दिल भर आया और कहा, "माँ जी! रुपये के लालच में हमने यह काम शुरू नही किया। अपना सबकुछ दाँव पर लगाकर डकैती डालने आये है। हथियार खरीदने के लिए रुपये की जरूरत है। वह कहाँ से लायें? माँ जी, इसी महान काम के लिए आज इस काम पर मजबूर हुए है।" इस समय पर यह दृश्य बडा दर्दनाक था। माँ ने फिर कहा, "इस लड़की की शादी करनी है। इसके लिए कुछ छोड जाओ तो अच्छा है।" इसके बाद उन्होने अपना सारा धन माँ के सामने रख दिया और कहा, "जितना चाहे ले ले।" कुछ पैसा रखकर माँ ने बाकी सारा रुपया कर्तारसिह की झोली मे डाल दिया और आशीर्वाद दिया, "जाओ बेटा, तुम्हे सफलता मिले।" डकैती-जैसे भयानक काम मे शामिल होकर भी कर्तारसिंह का दिल कितना भावनामय,

पवित्र व विशाल था, यह इस घटना से जाहिर है।

फरवरी, 1915 में विद्रोह की तैयारी थी। पहले सप्ताह आप पिंगले और दूसरे दो-तीन साथियों के साथ आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, लखनऊ, मेरठ व अन्य कई स्थानों पर मत और विद्रोह के लिए उनसे मेल-मिलाप कर आये। आखिर वह दिन करीब आने लगा, जिसका बड़ी देर से इन्तजार हो रहा था। 21 फरवरी, 1915 भारत में विद्रोह का दिन नियत हुआ था। इसी के अनुसार तैयारी हो रही थी। लेकिन इसी समय उनकी आशाओं के वृक्ष की जड़ मे बैठा एक चूहा उसे कुतर रहा था। चार-पाँच दिन पहले सन्देह हुआ कि किरपालसिंह की गद्दारी से सब ध्वस्त हो जायेगा। इसी आशका से कर्तारसिंह ने रासबिहारी बोस से विद्रोह की तारीख 21 की बजाय 19 फरवरी करने के लिए कहा। ऐसा होने पर भी इसकी भनक किरपालसिंह को मिल गयी। इस क्रान्तिकारी दल में एक गद्दार का होना कितने खतरनाक परिणाम का कारण बना। रासबिहारी और कर्तारसिंह भी कोई उचित प्रबन्ध न होने से अपना भेद छिपा नहीं पाये। इसका कारण भारत के दुर्भाग्य के सिवाय और क्या हो सकता है?

कर्तारसिंह पिछले फैसले के अनुसार पचास-साठ साथियों के साथ फिरोजपुर जा पहुँचे। अपने साथी सैनिक हवलदार से मिले और विद्रोह की बात की। लेकिन किरपालसिंह ने तो पहले ही सारा मामला बिगाड दिया था। हिन्दुस्तानी सिपाही निहत्थे कर दिये गये। धडाधड गिरफ्तारियाँ होने लगी। हवलदार ने सहायता करने से इन्कार कर दिया। कर्तारसिंह की कोशिश असफल रही। निराश हो लाहौर आये। पंजाब-भर मे गिरफ्तारियो का चक्कर तेज हो गया। अब साथी भी टूटने लगे। ऐसी स्थिति मे रासबिहारी बोस मायूस होकर लाहौर के एक मकान में लेटे हुए थे। कर्तारसिंह भी वही आकर एक चारपाई पर दूसरी ओर मुँह फेर लेट गये। परस्पर कोई बात नहीं की, लेकिन चुपचाप ही एक-दूसरे के दिल की हालत समझ गये। इनकी हालत का अनुमान हम क्या लगा सकते हैं!

दरे-तदवीर पर सर फोड़ना शेव. रहा अपना,
वसीले हाथ ही ना आये किस्मत आजमाई के।

(हमारा काम भाग्य के दर पर सर फोड़ना ही रहा, लेकिन भाग्य आजमाने के साधन ही हाथ नहीं आये।)

उनकी तो यही ख्वाहिश थी कि कही लडाई हो और वे अपने देश के लिए लड़ते-लडते प्राण दे दे। फिर सरगोधा के नजदीक चक्क नम्बर पाँच में आ गये। फिर विद्रोह का चर्चा छेड़ दिया। वही पकडे गये। जजीरो मे जकडे गये। निर्भीक विद्रोही कर्तारसिंह को लाहौर स्टेशन पर लाया गया। पुलिस कप्तान से कहा, "मिस्टर टामकिन, कुछ खाना तो लाइए।" वह कितना मस्त-मौला था! इस आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर दोस्त व दुश्मन सब खुश हो जाते थे। गिरफ्तारी के समय वे बहुत खुश थे।

प्राय: कहा करते थे, ''वीरता और हिम्मत से मरने पर मुझे विद्रोही की उपाधि देना। कोई याद करे तो विद्रोही कर्तारसिंह कहकर याद करे।'' मुकदमा चला। उस समय कर्तारसिंह की आयु कुल साढ़े अठारह वर्ष थी। सबसे कम आयु के अपराधी आप ही थे, लेकिन जज ने इनके सम्बन्ध में यह लिखा—

''वह इन अपराधियो में, सबसे खतरनाक अपराधियों में एक है। अमेरिका की यात्रा के दौरान और फिर भारत में इस षड्यन्त्र का ऐसा कोई हिस्सा नहीं जिसमें उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका न निभाई हो।''

एक दिन आपके बयान देने की बारी आयी। आपने सबकुछ मान लिया। आप क्रान्तिकारी बयान देते रहे। जज कलम दाँतों के नीचे दबाये देखता रहा। एक शब्द न लिखा। बाद में इतना कहा, ''कर्तारसिंह, अभी आपका बयान लिखा नहीं गया। आप सोच-समझकर बयान दें। आप जानते हैं कि आपके बयान का क्या परिणाम हो सकता है?'' देखनेवाले कहते हैं कि जज के इन शब्दों पर कर्तारसिंह ने बड़ी मस्तानी अदा से केवल इतना कहा, ''फाँसी ही तो चढ़ा देंगे, और क्या? हम इससे नहीं डरते।'' इस दिन अदालत की कार्रवाई समाप्त हो गयी। अगले दिन फिर कर्तारसिंह का अदालत में बयान शुरू हुआ। पहले दिन जजों का कुछ ऐसा विचार था कि कर्तारसिंह भाई परमानन्द के इशारे पर ऐसा बयान दे रहे हैं, लेकिन वह विद्रोही कर्तारसिंह के दिल की गहराइयों में नहीं उतर सकते थे। कर्तारसिंह का बयान अधिक जोरदार, अधिक जोशीला और पहले दिन की तरह ही इकबालिया था। आखिर में आपने कहा, ''अपराध के लिए मुझे उम्रकैद की सजा मिलेगी या फाँसी। लेकिन मैं फाँसी को प्राथमिकता दूँगा, ताकि फिर जन्म लेकर—जब तक हिन्दुस्तान आजाद नहीं हो, तब तक मैं बार-बार जन्म लेकर—फाँसी पर लटकता रहूँगा। यही मेरी अन्तिम इच्छा है ''

आपकी वीरता से जज बहुत प्रभावित हुए, लेकिन उन्होंने विशाल दिलवाले दुश्मन की तरह आपकी वीरता को वीरता न कहकर बेशर्मी के शब्दों में याद किया। कर्तारसिंह को सिर्फ गालियाँ ही नही, मौत की सजा भी मिली। आपने मुस्कराते हुए जजों को धन्यवाद दिया। कर्तारसिंह फाँसी की कोठरी मे कैद थे। आपके दादा ने आकर कहा, ''कर्तारसिंह, जिनके लिए मर रहे हो, वे तुम्हे गालियाँ देते हैं। तुम्हारे मरने से देश को कुछ लाभ होगा, ऐसा भी दिखायी नहीं देता।'' कर्तारसिंह ने बहुत धीमे से पूछा—

''दादा जी, फलाँ रिश्तेदार कहाँ है?''

''प्लेग में मर गया।''

''फलाँ कहाँ है?''

''हैजे से मर गया।''

''तो क्या आप चाहते हैं कि कर्तारसिंह महीनों बिस्तर पर पड़ा रहे और पीड़ा से दुखी किसी रोग से मरे! क्या उस मौत से यह मौत हजार गुना अच्छी नही?'' दादा चुप हो गये।

आज फिर सवाल उठता है कि उनके मरने मे क्या लाभ हुआ ? वह किसलिए मरे ? इसका जवाब बिल्कुल स्पष्ट है । देश के लिए मरे । उनका आदर्श ही देश-सेवा के लिए लडते हुए मरना था । वे इससे ज्यादा कुछ नही चाहते थे । मरना भी गुमनाम रहकर चाहते थे ।

चमन जारे मुहब्बत मे, उसी ने बागबानी की,
जिसने मिहनत को ही मिहनत का समर जाना ।
नही होता है मुहताजे नुमाइश फैज शबनम का,
अँधेरी रात मे मोती लुटा जाती है गुलशन मे ।

डेढ साल तक मुकदमा चला । 16 नवम्बर, 1915 का दिन था, जब उन्हे फॉसी पर लटका दिया गया । उस दिन भी हमेशा की तरह खुश थे । इनका वजन दस पौण्ड बढ गया था । 'भारत माता की जय' कहते हुए वे फॉसी के तख्ते पर झूल गये ।

पंजाब में विराट विप्लव का प्रथम आयोजन

कूका विद्रोह-1

[फरवरी, 1928 मे दिल्ली से प्रकाशित 'महारथी' मे कूका-विद्रोह के इतिहास की जानकारी देनेवाला भगतसिह का यह लेख बी. एस. सिन्धू नाम से छपा था ।—स]

सिक्खों मे एक उप सम्प्रदाय है, जो 'नामधारी' या कूका कहलाता है । इसका इतिहास कुछ बहुत पुराना नहीं है । गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही इसका आविर्भाव हुआ था । आज वह एक सकुचित धार्मिक सम्प्रदाय दीख पडता है, परन्तु इसके सस्थापक श्री गुरु रामसिह एक कट्टर विप्लवी थे । एक प्रसिद्ध ईश्वरभक्त, समाज के दोष देखकर एक विद्रोही समाज-सुधारक बन गया और एक सच्चे समाज-सुधारक की भाँति, जब वह कर्मक्षेत्र मे अग्रसर हुआ तो उसने देखा कि देश की उन्नति के लिए पराधीनता की बेडियों का काटना परमावश्यक है । विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह की तैयारी का विराट आयोजन हुआ । उसकी तैयारी मे ही जो कुछ झगड़ा-फिसाद हो गया था, उसी से शासकों को समस्त आन्दोलन के कुचल डालने का सुअवसर मिल गया और उस सब प्रयास का निष्फलता के अतिरिक्त और कुछ परिणाम न निकल सका ।

कूका आन्दोलन का इतिहास, आज तक लोगों के सामने नही आया । किसी ने उन्हें महत्त्वपूर्ण नहीं समझा । कूकों को भटके हुए तथा मूर्ख कहकर हम अपने कर्त्तव्य से छुट्टी

पा जाते है। स्वार्थ के लिए अथवा लोभ के लिए यदि उन लोगों ने प्राण दिये होते तो हम उपेक्षा दिखा सकते थे, परन्तु उनकी तो 'मूर्खता' में भी 'देश-प्रेम' का भाव कूट-कूटकर भरा था। वे तो तोप के मुँह से बँधते समय हँस देते थे। वे तो आनन्द से 'सत्त श्री अकाल' के तुमुल निनाद से आकाश-पाताल को आच्छादित कर देते थे। उनके मस्तक पर व्यथा, चिन्ता अथवा पश्चात्ताप की रेखा भी नही दीख पड़ती थी। क्या वे भूल जाने योग्य हैं? उनका गुरुतर अपराध शायद विफलता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। परन्तु स्कॉट वीर विलियम वालीस भी तो विफल हो मृत्युदण्ड का भागी बना था। उसकी तो आज समस्त इंग्लैण्ड पूजा करता है। फिर हमारे असफल देशभक्त ही इस तरह क्यों भुलाकर निविड़ अन्धकार मे फेंक दिये जायें? अस्तु।

हम समझते हैं कि हमारे लिए, देश के लिए निष्काम भाव से मरनेवाले लोगों को भुला देना बड़ी भारी कृतघ्नता होगी। हम उनकी स्मृति में कोई बड़ा स्तूप नहीं खड़ा कर सकते तो क्या अपने हृदय में भी थोड़ा स्थान देने से झेंपें? इसी विचार से प्रेरित होकर आज उन 'मूर्ख' तथा 'उतावले' आशावादियो का संक्षिप्त इतिहास लिखने की यह चेष्टा है। इससे यदि लोगों को उनके सम्बन्ध में ठीक-ठीक बातो का ज्ञान हो जाये और अधिक जानने की इच्छा उत्पन्न हो जाये तो यह प्रयास सफल समझूँगा।

उनके इस छोटे-से इतिहास को हम तीन भागों मे बाँट सकते हैं–

1. गुरु जी का व्यक्तिगत चरित्र;
2. कूका विद्रोह,
3. विद्रोह के बाद।

गुरु रामसिह जी का जीवन

श्री रामसिह जी का जन्म सन् 1824 ई. में भैणी नामक गाँव, जिला लुधियाना (पंजाब) में एक बढ़ई के घर हुआ था। कहते हैं, गुरु गोविन्दसिह जी ने कभी कहा था कि "मै बारहवें वर्ष में रामसिह नाम से प्रसिद्ध अथवा प्रकट होऊँगा।" इसलिए इनके अनुयायी उन्हें उन्हीं दश गुरुओ का अवतार मानते हैं। परन्तु शेष सिक्ख समाज का विश्वास है कि गुरु गोविन्दसिह जी ने गुरु के सब अधिकार गुरु ग्रन्थ साहिब पर ही डाल दिये और गुरु-प्रथा बन्द कर दी थी। अतः गुरु रामसिह गुरु नहीं हो सकते।

हमें इन झगड़ों से कुछ काम नहीं। गुरु रामसिह युवावस्था में पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिह की सेना में भरती हो गये। वे पहले से ही ईश्वर-भक्त थे और अधिक समय ईश्वरोपासना में ही बिताते थे। इसी कारण वे शीघ्र ही सेना मे सर्वप्रिय हो गये। वो बहुधा ईश्वर-भक्ति में लीन रहने के कारण सैनिक-कर्त्तव्यों की पूर्ति में असमर्थ रहते, परन्तु उन्हें सब कर्त्तव्यों से छुट्टी दे देने पर भी सेना मे ही रखा गया। एक दिन, कहा जाता है, उन्हें स्वप्न में श्री गुरु गोविन्दसिह जी के दर्शन हुए, जिन्होंने उनसे

हजारा (सीमान्त प्रान्त) निवासी बाबा बालकनाथ से गुरु-गद्दी के अधिकार लेने को कहा। दूसरे ही दिन उन्होंने अन्य बीस-पच्चीस भक्तगण के साथ उधर प्रस्थान कर दिया। बाबा बालकनाथ जी ने उनका खूब स्वागत किया और दीक्षा दी। वहाँ से लौटकर आपने नौकरी छोड दी और गांव मे जाकर शान्त जीवन बिताने लगे।

वर्षों बीत गये। अनेक परिवर्तन हो गये। महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद गद्दी के लिए झगडा हुआ। अग्रेजो ने पजाब जीत लिया और इसे भी शेष भारत की तरह पराधीनता की बेडियों से जकड दिया। यह सबकुछ हो गया और साथ ही 1857 का सिपाही विद्रोह भी हो गया और अग्रेज शान्तिपूर्वक भारत पर शासन करने लगे, परन्तु गुरु रामसिह वही अपना शान्त जीवन बिताते रहे। हाँ, ईश्वर-भक्ति के कारण आप दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गये। प्रान्त-भर से लोग दर्शनो के लिए आते थे।

पहले तो आप केवल ईश्वर-भक्ति का ही उपदेश देते थे, परन्तु बाद मे कुछ समाज-सुधार सम्बन्धी उपदेश देने लगे। आपने कन्या-क्रय-विक्रय, मदिरा-मास-भक्षण आदि बहुत-सी कुरीतियों का बडे जोर से विरोध किया। आपके भक्तगण भी सादा जीवन बिताते और ईश्वरोपासना मे तल्लीन रहते। आपने अपने गाँव मे एक सार्वजनिक भण्डारा खोल रखा था, जहाँ पर कि सभी लोगो को बिना मूल्य भोजन मिलता था। परन्तु शीघ्र ही एक परिवर्तन हुआ।

कहा जाता है, रामदास नामक किसी अज्ञात सन्यासी ने आकर उनसे कहा—"इस समय देश को विदेशी शासन से छुटकारा दिलाना ही सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।" और उसी समय से आपने अपना कार्यक्रम राजनैतिक बना लिया। सन्यासीवाली बात केवल सुनी-सुनायी है। सम्भव है ऐसी कोई घटना घटित ही न हुई हो, परन्तु इतना तो मानना ही पडेगा कि इस समय गुरु रामसिह जी को देश की पराधीनता एकदम बरी तरह अखरी। वे समझ गये थे कि बाह्य स्वतन्त्रता के साथ-ही-साथ देशवासियो की आत्मा भी मरती जा रही है। लोग स्वाधीनता का विचार तक खो बैठे हैं। अभी कल उन्होंने सिपाही विद्रोह तथा उसकी विफलता के बाद किये गये अकथनीय अत्याचार देखे-सुने थे। उससे भी अवश्यमेव उन्हें कुछ ठेस लगी होगी। जो भी हो, उन्होंने विदेशी शासन का खोखलापन खूब अच्छी तरह देखकर एक कार्यक्रम बनाकर कार्य आरम्भ कर दिया। अब तक केवल उपदेश ही होता था, अब 'दीक्षा' तथा सगठन भी आरम्भ हुआ।

उन्होने उस समय ठीक उसी असहयोग का प्रचार प्रारम्भ कर दिया, जो 1920 मे महात्मा गाँधी जी ने किया। उनका असहयोग महात्मा जी के असहयोग से भी कई बातो मे बढ-चढ़कर था। अदालतों के बहिष्कार, अपनी पचायतो के सस्थापन, सरकारी शिक्षा के बहिष्कार, विदेशी सरकार के पूर्ण बहिष्कार के साथ-ही-साथ रेल, तार तथा डाक के बहिष्कार का प्रचार भी हुआ। उस समय देश आज की तरह निर्जीव होकर उन वस्तुओं पर इतना निर्भर नहीं हो गया था कि उनके बहिष्कार की कल्पना भी न कर पाता। प्रत्युत उन्होंने डाक का अपना प्रबन्ध इतना अच्छा कर लिया था कि 'उनकी

डाक सरकारी डाक से भी जल्दी पहुँच जाती थी।''[1] इस सबके साथ सादा वेष तथा स्वदेशी वस्त्र पहनने का जोर से उपदेश होता था। प्रचार-कार्य बहुत दिनों तक न होने पाया था कि सरकार की तीव्र दृष्टि इस आन्दोलन पर पड़ी। उन्हें इस प्रचण्ड आन्दोलन को दबा देने की चिन्ता हुई।

T. D. Forsith, जोकि सन् 1863 ई. में पंजाब सरकार के चीफ सैक्रेटरी थे और बाद में 1872 में कूका विद्रोह के समय अम्बाला डिवीजन के कमिश्नर पद पर काम करते थे, अपनी autobiography में लिखते हैं–

''1863 में ही मैं इस आन्दोलन की तह तक पहुँच गया था और समझ गया था कि यह क्या भीषण परिणाम ला सकता है। अतः मैंने उनके प्रचार पर बहुत-से बन्धन लगा दिये, जिससे उनके प्रचार-कार्य की गति कुछ हद तक रुक गयी।''

जब सरकार ने लोगों का बड़ी संख्या में भैणी आना-जाना तथा उनका वहाँ अधिक देर तक ठहरना तक भी बन्द कर दिया तब गुरु रामसिंह जी ने अपना कार्य जारी रखने के लिए एक तदबीर सोची। समस्त देश को 22 हिस्सों में विभक्त कर 22 योग्य मनुष्य उनका सगठन करने के लिए नियुक्त कर दिये। वे सभी 'सूबे' कहलाते थे। कार्य बहुत कुशलता से चलता रहा। सभी नामधारी सिक्ख अपनी आय का दशांश गुरु जी को भेंट किया करते। वह सब भैणी भेज दिया जाता था। यह सब होता ही था और साथ-ही-साथ गुप्त रूप से विद्रोह का प्रचार भी होता रहा। बाहरी जोश बहुत कम कर दिया गया। यहाँ तक कि सरकार का सन्देह बहुत हद तक दूर हो गया और सब बन्धन स्वत. 1869 में हटा लिये गये।

बन्धन-मुक्त होते ही लोगों का जोश बढ़ा। इतना बढ़ा कि सँभालना कठिन हो गया। इसी से 1872 में अपरिपक्व विद्रोह उठ खड़ा हुआ, जिसके कारण सारा विराट आन्दोलन पिस गया। परन्तु उस मुख्य घटना पर कुछ लिखने से पहले श्री गुरु जी के व्यक्तिगत चरित्र सम्बन्धी कुछ मनोरंजक बातों का उल्लेख करना अनुचित न होगा।

गुरु रामसिंह बड़े तेजस्वी तथा प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनके असाधारण आत्मबल सम्बन्धी बहुत-सी बातें प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि वे जिसके कान मे दीक्षा का मन्त्र फूँक देते थे वही उनका परम भक्त तथा शिष्य हो जाता था। जब यह बात जरा प्रसिद्ध हुई तो दो बदमाश अँगरेज उनके पास उनकी शक्ति की परीक्षा लेने गये। उन्होंने कहा था, ''देखेंगे, गुरु जी का हम पर क्या प्रभाव पड़ता है?'' परन्तु दीक्षा के बाद से वे उनके कट्टर भक्त बन गये और तब से उनके व्यक्तिगत दोष भी मिट गये। इसी तरह डॉक्टर गोकलचन्द पी-एच. डी. एक लेख मे लिखते हैं कि उनकी दादी का भाई एक बडा चरित्रहीन व्यक्ति था, और उसे हुक्के का व्यसन था। केवल एक बार ही

1. भाई परमानन्द के एक लेख के आधार पर।

गुरु राममिह जी के दर्शनो ने उनका जीवन एकदम परिवर्तित कर दिया। उनका हुक्का तो एकदम छूट गया और शेष सारा जीवन ईश्वरोपासना में ही बीता। इसी तरह एक और मनुष्य जिसने कि कभी कोई हत्या कर दी थी, वह भी गुरु जी से दीक्षित हुआ। फिर उसने अपने आपको कोर्ट मे पेश कर दिया और अपना अपराध स्वीकार कर लिया। जब जज ने अत्यन्त आश्चर्य के साथ पूछा, "तुम्हें तो कोई जानता भी न था और हत्या सम्बन्धी बात का तुम पर सन्देह भी न था, फिर तुमने एकाएक अपराध स्वीकार कर मृत्यु का आह्वान क्यों किया?" तो उसने कहा, "मेरे गुरु जी की ऐसी ही आज्ञा है।"

सरकार ने भी परीक्षा करनी चाही। एक सब-इन्स्पेक्टर को भेजा। वह भी प्रसन्न था। उसे आशा थी कि सब भेद खोलकर कुछ पुरस्कार पायेगा। गुरु जी के दर्शन किये। लौट आया। लौटते ही त्यागपत्र दे दिया। अफसरो ने पूछा, "रामसिंह क्या कहता है?" कहा, "बताने की आज्ञा नहीं।" पूछा गया, "त्यागपत्र क्यो देते हो?" उत्तर दिया, "गुरु जी की यही आज्ञा है। वे कहते हैं, विदेशी शासकों की नौकरी मत करो।"

ऐसी अनेक घटनाएँ हैं। जो भी हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि गुरु जी ईश्वर-भक्ति तथा उच्च चरित्र के कारण एक महान शक्तिशाली महापुरूष थे। अत. उपरोक्त घटनाएँ असम्भव नही। अस्तु। सरकार यह बात देखकर घबरायी और उसे सारे आन्दोलन को दबाने की चिन्ता हुई। यह भी स्वाभाविक ही था।

अपरिपक्व विप्लव का प्रारम्भ

1869 मे सब बन्धन हटा दिये गये। लोग महस्रों की सख्या मे भैणी आने लगे। सन् 1871 ई में कुछ कूके वीर अमृतसर में से गुजर रहे थे। सुना, मुसलमान बूचड़ असख्य गौओ की नित्य हिन्दुओं को चिढाने के लिए उनके सामने हत्या करते हैं। हिन्दू समाज को बहुत कष्ट होता है। कट्टर गो-भक्त कूके यह सब महन न कर सके। उन्होंने बूचड़खाने पर आक्रमण कर दिया और सभी बूचडों को वही ढेर कर दिया ओर आप भैणी की ओर चल दिये। अमृतसर के सभी प्रतिष्ठित हिन्दू गिरफ्तार कर लिये गये। उधर गुरु जी को वैसे भी मारा समाचार मिल चुका था, इधर इन कूकों ने जाते ही सब कहानी कह सुनायी। गुरु जी ने आज्ञा दी, "जाओ, जाकर अपना अपराध स्वीकार कर लो और उन निर्दोष लोगो को विपत्ति से बचाओ।" आज्ञा का पालन हुआ। निरपराध लोग छूट गये ओर ये वीर अन्यन्त आनन्द और हर्ष के साथ फॉमी पर लटक गये। ऐसी ही एक घटना रायकोट मे भी हो गयी। वहाँ पर भी कई कूकों को फॉमी पर लटका दिया गया था। परन्तु वहां पर शेष सिक्खों ने अनुभव किया कि उनके निर्दोष साथी फाँसी पर लटकाये गये हैं। प्रतिहिंसा की अग्नि प्रचण्ड हो उठी, परन्तु कोई विशेष घटना नहीं हुई।

13 जनवरी, सन् 1872 को भैणी मे माघी का मेला होनेवाला था। लोग दूर-दूर से

हजारों की संख्या में आने लगे। एक कूका नामधारी[1] वीर मलेर कोटला नामक मुसलमान रियासत की इसी नाम की राजधानी में से गुजर रहा था, वहाँ पर उसने एक मुसलमान को देखा जो एक बैल पर अत्यन्त बोझ लादे, स्वयं उस पर बैठा हुआ उसे पीटता जा रहा था। बैल बड़े कष्ट से चल रहा था। यह देखकर उस कूके ने उस मुसलमान से कहा, ''भाई ! इतना अत्याचार न करो। बोझ पहले ही ज्यादा है, तुम नीचे उतर आओ तो क्या हर्ज़ हो ?'' परन्तु उस मुसलमान ने तुरन्त उसे दो-चार गालियाँ दे दीं। कूका सिक्ख कोई भीरू या कायर तो था ही नहीं, ईंट का जवाब पत्थर से मिला। नौबत हाथा-पाई तक आ गयी। मुसलमान रियासत के मदमत्त मुसलमान कर्मचारी उसे पकड़कर कोतवाली में ले गये, जहाँ पर उस गरीब को अनेकानेक यातनाएँ तथा अपमान सहन करने पडे। और बाद में, उस बैल का, उसके पास बैठाकर, उसकी आँखों के सामने, वध कर दिया गया। यह असह्य था। छूटते ही वह वीर भैणी पहुँचा। उसने भरे दिवान में क्रूर आततायियों के उन अत्याचारों का विवरण तथा अपनी करुण कथा कह सुनायी। लोग तो रायकोट की घटना से पहिले ही उत्तेजित हो रहे थे, उस पर यह घटना हो गयी। जलती पर तेल पड़' और भभक उठी। निज बाहुबल के भरोसे बदला चुकाने का निश्चय हो गया। जोश बढ़ता देखकर गुरु जी तनिक घबराये। गले में कपडा डालकर प्रार्थना की, ''खालसा जी ! क्या अनर्थ करने जा रहे हो। ज़रा शान्ति तथा सहनशीलता से काम लीजिए। ज़रा सोचो तो सही, इस सबका क्या परिणाम होगा ? सारा बना-बनाया काम बिगड़ जायेगा।'' गुरु जी के इस प्रकार समझाने पर बहुत-से लोगों का जोश तो ठण्डा हो गया, परन्तु 150 व्यक्ति प्रतिहिंसा की उग्र मूर्तियाँ बन उठे। उनका जोश न थमा। गुरु जी ने लाख समझाने की चेष्टा की, परन्तु एक साथी का अपमान उनके लिए असह्य हो उठा था।

बड़ी विकट परिस्थिति थी। काम अधूरा ही था और कोई तैयारी भी न की गयी थी। ऐसी दशा मे इन 150 उत्तेजित लोगों का साथ देने से सारा आन्दोलन पिस जाने की सम्भावना थी।—क्या किया जाये ? किंकर्त्तव्यविमूढ़ की भाँति सभी देख रहे थे और देख रहे थे गुरु जी भी। और कोई दूसरा व्यक्ति ऐसे समय क्या करता ? अथवा ऐसे समय पर लोग क्या करने की सलाह दे सकते हैं ? इस बात का हमें पता नहीं, इसकी चिन्ता भी नहीं। दूरदर्शी गुरु रामसिंह ने उस समय यही सोचा कि यह उत्तेजित लोग तो शान्त हो नहीं रहे हैं, इनकी इच्छानुसार अभी विद्रोह खड़ा करने की तो तैयारी नहीं की गयी और

---

1. *गुरु रामसिंह के अनुयायी नामधारी तथा कूका कहलाते थे। नामधारी इसलिए कि गुरु जी के उपदेश का आधार स्तम्भ 'ईश्वर का नाम' था। उस उपदेश और दीक्षा पाने के बाद प्रत्येक मनुष्य 'नामधारी' अथवा 'ईश्वर-नाम को हृदय में धारण किये हुए' कहलाता था। कूका इसलिए कि वे भगवद्भजन में तन्मय होकर खूब शोर मचाते थे, अतः कूकनेवाले 'कूका' कहलाते थे।*

अभी तो इच्छानुसार सब संगठन भी नहीं हुआ । इस समय यदि यह जाये और हम सरकार पर यह प्रकट कर दें कि हमारा इनसे कोई सम्बन्ध नही तो शेष आन्दोलन बच जायेगा । बात तो अच्छी दीख पडती है, परन्तु राजनैतिक चालों का महत्त्व उनकी सफलता पर निर्भर हुआ करता है । गुरु जी ने यह चाल चली थी, वह निष्फल हुई । पासा उलट गया । यही उनका गुरुतर अपराध था । उन्होने उसी समय पुलिस को खबर दे दी कि 'यह लोग उत्तेजित होकर उनकी आज्ञाओं तथा प्रार्थनाओ की उपेक्षा करके झगड़े-फिसाद के लिए जा रहे हैं । मैं अभी से पुलिस को सब समाचार देकर सतर्क कर देना चाहता हूँ । वह उनसे निपट ले । मैं अनर्थ का उत्तरदायी नही हूँ ।'

लुधियाना के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर मि. Cowan अपने 15 जनवरी के पत्र में अम्बाला-कमिश्नर को इस घटना के बारे मे इस प्रकार लिखते हैं—

He (a police reporter) stated to me that Ram Singh, the leader of the kookas, went to those men, with a turban around his neck, and entreated them not to create a disturbance; and they would not listen to him; and that Ram Singh then came to the Deputy Inspector and reported to him that these men were upto mischief, and that he had no control over them.

परन्तु उस समय सरकार या पुलिस जान-बूझकर चुप रही । चुपचाप उनको अंग्रेज राज्य में से रियासत में घुसने दिया । उसी समय उन सबको गिरफ्तार क्यों नहीं कर लिया गया ? कुछ दिनों के बाद उनका जोश ठण्डा हो ही जाता । परन्तु नहीं, सरकार तो स्वयं चाहती थी कि उसे कोई अवसर मिले, जिससे वह आन्दोलन कुचला जा सके । इस समय मनोवांछित सुअवसर मिल गया । लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि उन लोगों को उत्तेजित करने में भी सरकारी आदमियों का हाथ था । खैर, उसके सम्बन्ध में कुछ न कह सकने पर भी हम सरकार पर जान-बूझकर चुप रहने का अपराध लगा सकते हैं । अस्तु, वे 150 कूके वीर पटियाला के सीमान्त स्थित रब्बू गाँव के बाहर जा ठहरे । रात-भर वहीं विश्राम किया । अगले दिन भी वहीं रहे । शायद और साथियों की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

14 जनवरी, सन् 1872 ई. को सायंकाल उन्होंने कुछ सिक्ख सरदारों के मलोध (Malodh) नामक किले पर आक्रमण कर दिया । इस किले पर आक्रमण क्यों किया गया ? इसके सम्बन्ध में डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में लिखा है कि उन्हें आशा थी कि यह सरदार विद्रोह में उनका नेतृत्व लेंगे । सम्भव है, पहिले विराट आयोजन में ऐसी ही तैयारी रही हो और इस समय उन्होंने अपरिपक्व विद्रोह उठता देख सहायता देने अथवा नेतृत्व लेने से इन्कार कर दिया हो । खैर, कूकों ने वहाँ आक्रमण कर दिया और कुछ शस्त्र, कुछ घोड़े तथा एक तोप लेकर चलते बने । वहाँ पर दोनों ओर के दो-दो व्यक्ति

मरे और कुछ घायल हुए।

अगले दिन प्रातःकाल 7 बजे वे मलेर कोटला पहुँच गये। सरकार ने पटियाला तथा मलेर कोटला दोनों राज्यों को पहले से सतर्क कर दिया था। मलेर कोटला की रक्षा के लिए विशेष तौर से तैयारी की गयी थी, परन्तु इन दुःसाहसी वीरों ने इस वेग से आक्रमण किया कि शहर में तो क्या, महल तक में जा घुसे। खजाना लूटने की कोशिश होने लगी। लूट ही तो लिया होता परन्तु दुर्भाग्यवश भूल से एक और दरवाजा तोड़ने में बहुत समय नष्ट हो गया, जहाँ कि कुछ व्यर्थ के कागजों के अतिरिक्त उनके हाथ कुछ न लगा और उधर उन्हे शीघ्र ही वहाँ से भागना पड़ा। 8 को मारकर, 15 को घायल कर और कुछ शस्त्र तथा घोडे लेकर वे वहाँ से चल निकले। उनके सात साथी मरे और पाँच पकड़े गये अथवा घायल हो गये। उनके पीछे कोटला के सशस्त्र सैनिक भी भागे और–

A sort of running fight was kept along, shots fired, and many more Kookas were wounded, till both parties reached the village of Ruir in the Patiala State; the Kookas carrying most of the wounded with them.

रड़ गाँव के निकटवर्ती जंगल में वे छिप गये। शिवपुर के नायब नाज़िम ने उन पर फिर आक्रमण किया। फिर लड़ाई छिड़ी, परन्तु कूके थके-माँदे थे, भूखे-प्यासे थे, और थे घायल बिना मरहम-पट्टी के। वे पकड़े गये। 68 व्यक्ति पकड़े गये थे जिनमें से 28 घायल हो चुके थे।

यही घटना 'विद्रोह' कहलाती है। मि. कावन अपने एक पत्र में लिखता है–

'It looks like the commencement of an insurrection....'

और एक स्थान पर लिखता है–

I propose to execute at once all who were engaged in attacks on Malodh and Malarkotla. I am sensible of great responsibility in exercising an authority which is not vested in me, but the case in an exceptional one. These men are not ordinary criminals. They are rebels, having for their immediate object the acquisition of plunder, and ulteriorly the subversion of order. It is certain that had their first attempts been crowned with success, had they succeeded in arming themselves with horses and treasures, they would have been joined by all the abondoned charities in the country and their extinction would not be effected without much trouble.

ये 68 व्यक्ति 17 जनवरी को मलेर कोटला लाये गये। उनमें से दो स्त्रियाँ भी थीं। वे पटियाला स्टेट की नागरिक थी। उन्हे तो स्टेट के सुपुर्द कर दिया गया और शेष 66 में से पचास को वही तोप से उड़ा देने का निश्चय हो चुका था। अपनी-अपनी बारी से सानन्द सत्त श्री अकाल आदि जयघोष करते हुए, तोप के मुँह से बँध जाते। एक बार धमाके की आवाज होती और वह कूका वीर इस ससार से न जाने किधर चला जाता। उन fanatics को मृत्यु का भय नहीं हुआ, वे हम 'समझदार' लोगों की तरह मृत्यु की कल्पना मात्र से ही थर-थर काँप नहीं उठे। ऐसे ही 'मूर्ख' और कहाँ कितनी सख्या में मिल सकते हैं? उस समय स्वार्थ के लिए मरनेवाले लोग इसी तरह प्रसन्न रह सकते, इसी तरह हँसते हुए मृत्यु से आलिगन कर पाते, यह असम्भव जान पड़ता है। आत्म-सम्मान, देशहित तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति आदि न जाने किन-किन उच्च भावों की प्रेरणा से वह मृत्युजय बन पाये थे। इसी से हम उनकी इस उत्तेजना तथा जल्दबाजी को भूलकर प्रणम्य समझने मे बाधित (को बाध्य) होते हैं। खैर! एक-एक करके 49 तो तोप से उडा दिये गये, परन्तु पचासवें ने, जो कि तेरह वर्षीय बालक था, वहाँ फिसाद खडा कर दिया। मि कावन एक पत्र मे लिखता है–

It was my intention to have had 50 men blown away, and to have sent the remaining 16 rebels to Malodh to be executed there tomorrow, but one escaped from the guards and made a furious attack on me, seizing me by the beard and endeavouring to strangle me, and as he was a very powerful man, I had considerable difficulty in releasing myself . The officials whom he attached drew their sword and cut him down

इसी घटना के सम्बन्ध में जो बात सुनी जाती है वह यूँ है कि 50वाँ व्यक्ति एक तेरह वर्षीय बालक था। उसे देखकर मिसेज कावन को दया आयी। उसने अपने पति से उसे छोड़ देने को कहा। पत्नी की प्रेरणा से मि. कावन ने झुककर उस बालक से कहा, "अरे, पाजी रामसिह का साथ छोड़ दो और कह दो, मैं उसका अनुयायी नहीं हूँ, तुम्हें छोड दिया जायेगा।" वीर बालक अपने गुरु के प्रति यह अपमानजनक शब्द सहन न कर सका। क्रुद्ध सिह की तरह वह झपटा और उसने कावन की दाढी से पकड लिया और तब तक न छोडा, जब तक उसके दोनों हाथ न काट दिये गये और तलवारो से कत्ल न कर दिया गया। अस्तु, इस तरह उस दुखान्त नाटक का एक और पर्व समाप्त हो गया।

बिना अभियोग चलाये 50 को तोप से उडा देना, summary execution कर देना एकदम अनुचित दीख पड़ता है। उधर मि. फार्सिथ, अम्बाला-कमिश्नर ने उन्हे एक पत्र में लिख दिया था कि बिना अभियोग चलाये किसी को मृत्यु दण्ड मत देना, परन्तु मि.

कावन ने मनमानी कर डाली और जब मि कावन पर बाद में मुकद्दमा चला तो उन्होंने कमिश्नर साहिब का अगले दिन का पत्र, जिसमें उनके इस कार्य की प्रशंसा की गयी थी, पेश किया। परन्तु उसके सम्बन्ध में मि. फार्सिथ का कहना है कि मैंने परिस्थिति नाजुक जान यह उचित समझा कि लोगों को किंचित मात्र भी सन्देह न होने पाये कि अफसरों में भी आपस में कुछ खेंचातानी हो रही है। अतः उसके पिछले कार्य की प्रशंसा कर और summary execution करने से मना कर दिया था। परन्तु शेष 16 व्यक्तियों को भी तो अगले ही दिन फाँसी पर लटका दिया गया।

उन वीरों की मृत्यु के प्रति उपेक्षा ने अफसरों को भी प्रभावित कर दिया था। Mr. E. Perkinson, Deputy Superintendent Police अपनी 17 जनवरी की रिपोर्ट में दो व्यक्तियों के सम्बन्ध में लिखते हैं–

Both Hira Singh and Lehna Singh the leaders taken. They are generally well dressed and well to do men; but have the appearance bold and determined looking fellows.

इधर तो यह सबकुछ हो रहा था, उधर डिप्टी कमिश्नर ने गुरु रामसिंह को बुलाया और घर लौटा दिया, क्योंकि वह समझता था कि वे निर्दोष हैं, क्योंकि उन्होंने उन उन्मत्त तथा उत्तेजित कूकों की खबर देकर पुलिस को चौकन्ना कर दिया था। गुरु रामसिंह की निर्दोषता के सम्बन्ध मे पंजाब सरकार ने भारत सरकार को यूँ लिखा–

No direct evidence against Ram Singh in this case is sufficient to put him on this trial.

परन्तु 17 जनवरी को कमिश्नर की आज्ञा से घुड़सवार तथा दूसरी पुलिस ने कर्नल बायली (Baille) की [के नेतृत्व में] अध्यक्षता में भैणी नगर को एकाएक घेर लिया। सब लोगों को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ, परन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि सरकार उन्हें पकड़ना चाहती है तब उन्होंने अपने आपको शान्तिपूर्वक पुलिस के हवाले कर दिया। उस समय गुरु रामसिंह के साथ चार व्यक्ति, चार विभिन्न स्थानों के सूबे श्री साहिबसिंह, श्री जवाहिरसिंह, श्री गुरुदत्तसिंह तथा श्री तन्नूसिंह भी थे। उन्हे भी गिरफ्तार कर लिया गया। इन्हें पहिले तो इलाहाबाद भेजा गया और बाद में रंगून भेज दिया गया। यह गिरफ्तारी रेगूलेशन 1818 के अनुसार हुई थी। यहीं पर गुरु रामसिंह जी की वह चाल उलटी पड़ी। यदि उस समय वे बचे रहते तो फिर शीघ्र ही सब स्थिति सँभल जाती।

इधर ज्यों-ज्यों प्रान्त-भर में विद्रोह का समाचार फैलने लगा, त्यों-त्यों ये लोग भैणी की ओर जाने लगे। सब लोगों का विचार था कि जिस दिन की प्रतीक्षा थी, वह आ गया।

इधर पुलिस भी चौकन्नी हो गयी थी। जहाँ कोई कूके मिल जाते वहीं पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता। इसी तरह 172 कूको के एक गुट से कर्नल बायली की भेंट हो गयी। उनमें से चार तो विभिन्न स्थानो के सूबे—श्री ब्रह्मासिंह, श्री काहनसिंह, श्री पहाड़ासिंह तथा श्री हुकुमसिंह तो तुरन्त पहिले लुधियाना और फिर गुरु जी के पास इलाहाबाद भेज दिये गये और 120 घरो को लौटा दिये गये और शेष पचास—

Having no homes and ostensible means of living, being in fact, a dangerous clan of this sort who having sold all they possessed, hold themselves in readiness to perform any act that their leaders may order.

—को जेल मे बन्द कर दिया गया। इस तरह कुछ ही दिनों मे सब मामला शान्त हो गया।

उसके बाद—

सबकुछ हो चुका। नाटक की मुख्य घटना हो चुकी। अब तो कथा समाप्त करने को परिशिष्ट मात्र शेष है। मि. कावन और मि. फार्सिथ पर summary execution करने का अभियोग चला। उन्होंने पजाब की भीषण स्थिति का रोमांचकारी चित्रण करने मे कोई कसर उठा न रखी और पुरस्कार पाने की आशा प्रकट की। मि. कावन को तो पदच्युत् कर इग्लैण्ड भेज दिया गया और मि फार्सिथ को पजाब से अवध उसी पद पर तब्दील कर दिया। पचास को तोप से उडाने और 16 को फाँसी दे डालने—और वह भी बिना अभियोग चलाये, बिना उन लोगो को सफाई देने का अवसर दिये—के अपराध की यह सजा दी गयी। Sir Henry Cotton के शब्दो मे तो यह दण्ड एकदम अपर्याप्त अथवा नाकाफी था परन्तु ऐंग्लो इण्डियन समाचार पत्रों ने इतना भी दण्ड देने के विरुद्ध बहुत बवेला मचाया था।

इधर शेष कूका समाज पर बहुत अत्याचार होने लगे। गुरु रामसिंह के बाद भी हरिसिंह गुरु बने। उन्हें भैणी में नजरबन्द कर दिया गया। गुरुद्वारे के बाहर पुलिस की चौकी बिठा दी गयी। छः वर्ष तक तो भैणी की ऐसी दशा रही मानो शत्रु घेरा डाले पडा हो। न कोई बाहर से भीतर आ सकता, न कोई भीतर से बाहर जा पाता। फिर धीरे-धीरे कुछ-कुछ लोगो का आना-जाना खुला। उस समय भी हरिसिंह बाहर नही आ सकते थे—इसके बावजूद कि आने-जाने की आज्ञा हो गयी थी। आनेवाले यात्रियो को बहुत तग किया जाता था। बुरी तरह अपमानित किया जाता, मुश्के कसकर धूप मे डाल दिया जाता, जहाँ बेचारो को घण्टो झुलसना पडता। चारपाई के नीचे हाथ दबाकर कई आदमी चारपाई पर बैठ जाते। उन पर हुक्के का गन्दा बदबूदार पानी डाल दिया जाता। यह सब अत्याचार करनेवाले इसी देश के निवासी होते थे और इन यातनाओं को चुपचाप

सहन करनेवाले भी इसी देश के अभागे निवासी। और अब तो यह निरा धार्मिक सम्प्रदाय रह गया था। परन्तु पंजाब प्रान्त का इतिहास बड़ा रोमांचकारी है। समाज-का-समाज Outlaw घोषित हुआ तो पंजाब में, किसी सम्प्रदाय के सभी-के-सभी लोग भीषण अत्याचारों का शिकार हुए तो पंजाब में और फिर हजारों का सारे-का-सारा आन्दोलन unlawful करार दिया गया तो पंजाब मे। इस बार भी ऐसा ही हुआ। प्रत्येक कूका अपने-अपने घर में नजरबन्द था। बिना पुलिस की आज्ञा के कही बाहर न जा सकता। आज्ञा लेने जाने के मानी होते, पुलिस के अकथनीय अत्याचार, तथा अपमान सहन करना और [कई] दिनो तक भूखे-प्यासे तड़पते रहकर बाहर जाने की आज्ञा पाये बिना चुपचाप घर आकर बैठ जाना। यह दशा बहुत दिनों तक चली और बन्दिशें तो अब 1920 मे आकर असहयोग के दिनो मे हटायी गयीं। अस्तु!

गुरु रामसिंह जी बर्मा में ही नजरबन्द रहे। डि. गजेटियर में लिखा है—"Finally he died in Burma in 1885". परन्तु 1920 में डस्का निवासी श्री आलमसिंह इन्जीनियर ने एक लेख द्वारा उपरोक्त बात का खण्डन किया था। उन्होंने लिखा था कि वे दो और साथियों सहित Lower Burma की किसी पोर्ट से लासट द्वीप जा रहे थे। उस पोर्ट का नाम भोलमीन था। वहाँ पर एक दिन एक बड़े तेजस्वी व्यक्ति को पुलिस की निगरानी मे सैर करते देखकर उनके सम्बन्ध मे कुछ पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि ये पजाब के राजा है। वह समझे शायद महाराजा दिलीपसिंह हों, परन्तु बाद को मालूम हुआ कि वह कूका गुरु रामसिंह जी है। उस समय उनके साथ उनका एक सूबा लक्खासिंह भी था। उनसे मिलने पर खूब बातचीत हुई और मालूम हुआ कि उन्हें पाँच मील तक बाहर सैर करने की आज्ञा थी। खैर! सरकार ने इस लेख का कभी प्रतिवाद भी नही किया। जो भी हो, मालूम ऐसा ही होता है कि गुरु जी अब इस संसार मे नही हैं, परन्तु कूका लोगों का विश्वास है कि वे अभी जीवित है। खैर!

आज भी पजाब मे कूका सम्प्रदाय विद्यमान है। उनमे ईश्वर-भक्ति का अभी तक प्राधान्य है। बहुत सवेरे उठकर केशी स्नान कर घण्टों तक भगवत्भजन में लीन रहना, उनका नित्य नियम है। मांस, मदिरा, आदि वस्तुओं के प्रयोग के कट्टर विरोधी हैं। एक सीधी पगडी, एक लम्बा कुर्ता और एक कच्छा—यही उनका पहनावा है। एक कम्बल और एक डोलका-सा बना हुआ बडा-सा लोटा और एक टकुआ जिसे वे सफाजंग बोलते हैं—यही उनका सामान है। गले मे सूत की बनी हुई एक सुन्दर माला रहती है। उनमें भी एक विशेष मस्ताना दल होता है। वे शब्द-कीर्तन करते हुए एकदम सुध-बुध भूल जाते हैं। इन लोगों के संकीर्तन से प्रत्येक व्यक्ति प्रफुल्लित तथा रोमांचित-सा हो जाता है। खून खौलने लगता है, आँखों में प्रेम तथा भक्ति के आँसू भर आते हैं।

ग्यारहवें और बारहवें गुरु मे विश्वास रखने के कारण तथा मांस, मदिरा के कट्टर विरोधी होने के कारण वे शेष सिक्ख समाज से जुदा हैं। उनमें समानता का भाव प्रबल

होता है । होली आदि के अवसर पर उनके विशेष उत्सव होते हैं, जहाँ पर कि खूब होम यज्ञ होता है । शेष सिक्ख इसके विरोधी हैं । कूके अपने को हिन्दू मानते हैं, शेष सिक्ख नहीं । विगत अकाली आन्दोलन के दिनो में उन्होंने अकालियो का कुछ विरोध किया था जिससे उनकी स्थिति कुछ खराब हो गयी । तथापि वे अपने ढंग के निराले लोग हैं । उन्हें देख एक उस अधखिले फूल की याद आती है जो खिलते ही मसल डाला गया हो । गुरु रामसिह जी की हसरतें दिल-की-दिल ही मे रह गयी थीं । उनके शेष सभी अनुयायियो का आत्म-बलिदान भी विस्मृत हो गया । उन अज्ञात लोगों के बलिदानो का क्या परिणाम हुआ, सो वही सर्वज्ञ भगवान जाने । परन्तु हम तो उनकी सफलता-विफलता का विचार छोड उनके निष्काम बलिदान की याद मे एक बार नमस्कार करते हैं ।

पंजाब के तख्तापलट आन्दोलनों का इतिहास

कूका विद्रोह-2

[अक्तूबर, 1928 मे 'किरती' मासिक पत्रिका मे भगतसिह ने फिर 'युग पलटने का अग्निकुण्ड' शीर्षक से पजाब के तख्तापलट आन्दोलनो के इतिहास के रूप में लेख लिखे । यह लेख उन्होंने 'विद्रोही' के नाम से लिखा था । —स]

आज हम पंजाब के तख्ता पलटने के आन्दोलन और पोलिटिकल जागृति का इतिहास पाठकों के सामने रख रहे हैं । पंजाब में सबसे पहली पोलिटिकल हलचल कूका आन्दोलन से शुरू होती है । वैसे तो वह आन्दोलन सांप्रदायिक-सा नज़र आता है, लेकिन ज़रा गौर से देखें तो वह बड़ा भारी पोलिटिकल आन्दोलन था, जिसमे धर्म भी मिला हुआ था, जिस तरह कि सिक्ख आन्दोलन मे पहले धर्म और राजनीति मिली-जुली थी । खैर, हम देखते हैं कि हमारी आपस की साम्प्रदायिकता और तंगदिली का यही परिणाम निकलता है कि हम अपने बड़े-बड़े महापुरुषों को इस तरह भूल जाते हैं जैसे कि वे हुए ही न हों । यही स्थिति हम अपने बड़े भारी महापुरुष 'गुरु' रामसिह के सम्बन्ध मे देखते हैं । हम 'गुरु' नहीं कह सकते और वे गुरु कहते है, इसीलिए हमारा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं—आदि बाते कहकर हमने उन्हे दूर फेक रखा है । यही पजाब का सबसे बडा घाटा है । बंगाल के जितने भी बड़े-बडे आदमी हुए है, उनकी हर साल बरसियाँ मनायी जाती हैं, सभी अखबारों में उन पर लेख दिये जाते है, यह समझा जाता है कि मौका मिला तो इस पर फिर विचार करेंगे और जो मसाला मिला, वह पाठको के सामने पेश करेंगे ।

पंजाब को सोये थोड़े ही दिन हुए थे, लेकिन नींद बडी गहरी आयी । हालाँकि अब फिर होश आने लगा है । बडा भारी आन्दोलन उठा । उसे दबाने की कोशिश की गयी ।

कुछ ईश्वर ने स्थिति भी ऐसी ही पैदा कर दी—वह आन्दोलन भी कुचल दिया गया। उस आन्दोलन का नाम था 'कूका आन्दोलन'। कुछ धार्मिक, कुछ सामाजिक रंग-रूप रखते हुए भी वह आन्दोलन एक तख्ता पलटने का नहीं, युग पलटने का था।

चूँकि अब इन सभी अन्दोलनों का इतिहास यह बताता है कि आजादी के लिए लड़नेवाले लोगो का एक अलग ही वर्ग बन जाता है, जिनमे न दुनिया का मोह होता है और न पाखण्डी साधुओ-जैसा दुनिया का त्याग ही। जो सिपाही तो होते थे लेकिन भाड़े के लिए लडनेवाले नही, बल्कि सिर्फ अपने फर्ज़ के लिए या किसी काम के लिए कहें; वे निष्काम भाव से लड़ते और मरते थे। सिक्ख इतिहास यही कुछ था, मराठों का आन्दोलन भी यही कुछ बताता है। राणा प्रताप के साथी राजपूत भी इसी तरह के योद्धा थे। बुन्देलखण्ड के वीर छत्रसाल के साथी भी ऐसे थे।

ऐसे ही लोगो का एक वर्ग पैदा करनेवाले बाबा रामसिह ने प्रचार और संगठन शुरू किया। बाबा रामसिह का जन्म 1824 में लुधियाना जिले के भैणी गाँव में हुआ। आपका जन्म बढई घराने में हुआ। जवानी में महाराजा रणजीतसिह की सेना में नौकरी की। ईश्वर-भक्ति अधिक होने से नौकरी-चाकरी छोड़कर गॉव जा रहे। नाम का प्रचार शुरू कर दिया।

1857 के गदर मे जो-जो जुल्म हुए, वे सब देखकर और पंजाब की गद्दारी देखकर कुछ असर जरूर हुआ होगा। किस्सा यह कि बाबा रामसिह जी ने उपदेश शुरू करवा दिया। साथ-साथ बताते गये कि 'फिरंगियों' से पंजाब की मुक्ति बहुत जरूरी है। उन्होने तब उस असहयोग का प्रचार किया, जैसे वर्षों बाद 1920 में महात्मा गाँधी ने किया। उनके कार्यक्रम में अग्रेजी राज की शिक्षा, नौकरी, अदालतों आदि का और विदेशी चीजो का बहिष्कार तो था ही, साथ में रेल और तार का भी बहिष्कार किया गया था।

पहले-पहले सिर्फ नाम का ही उपदेश होता था। हाँ, यह जरूर कहा जाता था कि शराब-मांस का प्रयोग बिल्कुल बन्द कर दिया जाये। लड़कियाँ आदि बेचने-जैसी सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ भी प्रचार होता था, लेकिन बाद में उनका प्रचार पोलिटिकल रंग में रँगा गया।

पंजाब सरकार के पुराने कागजों में एक स्वामी रामदास का जिक्र आता है, जिसे कि अग्रेजी सरकार एक पोलिटिकल आदमी समझती थी और जिस पर निगाह रखी जाती थी। 1857 के बाद जल्द ही उसके रूस की ओर जाने का पता चलता है। बाद में कोई खबर नहीं मिलती। उसी आदमी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने एक दिन बाबा रामसिह से कहा कि अब पजाब में राजनीतिक कार्यक्रम और प्रचार की जरूरत है। इस समय देश को आजाद करवाना बहुत जरूरी है। तब से आपने स्पष्ट रूप से अपने उपदेश में इस असहयोग को शामिल कर लिया।

1863 मे पजाब सरकार के मुख्य सचिव रहे टी. डी. फार्सिथ ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि 1863 में ही मैं समझ गया था कि यह धार्मिक-सा आन्दोलन किसी दिन बड़ा गदर मचा देगा। इसीलिए मैंने भैणी के उस गुरुद्वारे में ज्यादा आदमियों का आना-जाना और इकट्ठे होना बन्द कर दिया। इस पर बाबा जी ने भी अपना काम का ढंग बदल लिया। पंजाब प्रान्त को 22 जिलों मे बॉट लिया। प्रत्येक जिले में एक-एक व्यक्ति प्रमुख नियत किया गया, जिसे 'सूबा' कहा जाता था। अब उन्होंने 'सूबो' मे प्रचार और संगठन का काम शुरू कर दिया। गुप्त तरीको से आजादी का भी प्रचार जारी रखा। संगठन बढता गया, प्रत्येक नामधारी सिख आपनी आय का दसवॉ हिस्सा अपने धर्म के लिए देने लगा। बाहर का हंगामा बन्द हो जाने से सरकार का शक दूर हो गया और 1869 में सभी बंदिशे हटा ली गयी। बंदिशें हटते ही खूब जोश बढा।

एक दिन कुछ कूके अमृतसर में से जा रहे थे। पता चला कि कुछ कसाई हिन्दुओं को तग करने के लिए उनकी ऑखों के सामने गोहत्या करते हैं। गाय के तो वे बड़े भक्त थे। रातो-रात सभी कसाइयों को मार डाला और भैणी का रास्ता पकड़ा। बहुत-से हिन्दू पकडे गये। गुरु जी ने पूरी कहानी सुनी। सबको लौटा दिया कि निर्दोष व्यक्तियो को छुडाये और अपना अपराध मान लें। यही हुआ और वे लोग फॉसी चढ़ गये। ऐसी ही कोई घटना फिरोजपुर जिले में भी हो गयी। फॉसियों से जोश और बढ़ गया। उस समय उन लोगों के सामने आदर्श था पजाब में सिख-राज स्थापित करना और गोरक्षा को वे अपना सबसे बड़ा धर्म मानते थे। इसी आदर्श की पूर्ति के लिए वे प्रयत्न करते रहे।

13 जनवरी, 1872 को भैणी मे माघी का मेला लगनेवाला था। दूर-दूर से लोग आ रहे थे। एक कूका मलेर कोटला से गुजर रहा था। एक मुसलमान से झगडा हो जाने से [वे] उसे पकड़कर कोतवाली में ले गये और उसे बहुत मारा-पीटा व एक बैल की हत्या उसके सामने की गयी। वह बेचारा दुखी हुआ भैणी पहुँचा। वहाँ जाकर उसने अपनी व्यथा सुनायी। लोगो को बहुत जोश आ गया। बदला लेने का विचार जोर पकड़ गया। जिस विद्रोह का भीतर-ही-भीतर प्रचार किया गया था, उसे कर देने का विचार जोर पकड़ने लगा, लेकिन अभी मनचाही तैयारी भी नहीं हुई थी। बाबा रामसिंह ऐसी स्थिति मे क्या करते? यदि उन्हे मना करते हैं तो वे मानते नहीं और यदि उनका साथ देते हैं तो सारा किया-धरा तबाह होता है। क्या करें? आखिर जब 150 आदमी चल ही पड़े तो आपने पुलिस को खबर भेज दी कि यह व्यक्ति हंगामा कर रहे हैं और शायद कुछ खराबी करें, मैं जिम्मेदार नहीं हूँ। ख्याल था कि हजारो आदमियों के संगठन में से सौ-डेढ़ सौ आदमी मारे गये [जाये] और बाकी सगठन बचा रहा तो यह कमी जोर पकड़कर पूरी हो जायेगी और जल्द ही फिर पूरी तैयारी होने से विद्रोह हो सकेगा। लेकिन हम यह देखते हैं कि दुनिया मे 'end Justifies the means' (परिणाम से ही तय होता है कि तरीके जायज थे या नाजायज) का सिद्धान्त राजनीति के मैदान मे प्राय लागू होता है। अर्थात यदि सफलता मिल जाये तब तो चालें नेकनियती से भरी और सोच-समझकर चली गयी

कहलाती हैं और यदि कभी मिले असफलता तो बस फिर कुछ भी नहीं। नेताओं को बेवकूफ, बदनीयत आदि खिताब मिलते हैं। यही बात यहाँ हम देखते हैं। जो चाल बाबा रामसिह ने अपने आन्दोलन से बचने के लिए चली, वह क्योंकि सफल नहीं हुई, इसीलिए अब कोई उन्हें कायर और बुजदिल कहता है और कोई बदनीयत व कमजोर बताता है। खैर।

हम तो समझते है कि वह राजनीति की एक चाल थी। उन्होने पुलिस को खबर कर दी ताकि वे कोई ऐसा इलाज कर ले जिससे कोई बड़ी खराबी पैदा न हो, लेकिन सरकार उनके इस बडे भारी आन्दोलन से बहुत डरती थी और उसे पीस देने का अवसर खोज रही थी। उसने कोई खास कार्यवाही न की और उन्हे मर्जी अनुसार जाने दिया।

लेकिन 11 जनवरी के पत्र मे डिप्टी कमिश्नर लुधियाना मि. कॉवन ने यह बात कमिश्नर को लिख भेजी कि रामसिह ने उन लोगो से अपने सम्बन्ध न होने की बात जाहिर की है और उनके सम्बन्ध में हमे सावधान भी कर दिया है। खैर! वे 150 नामधारी सिह बडे जोश-खरोश में चल पड़े।

जब वे 150 व्यक्ति वहाँ से बदला लेने के विचार से चल पड़े, तो पुलिस को पहले से बताया जा चुका था, लेकिन सरकार ने कोई इन्तजाम नही किया। क्यों? क्योंकि वे चाहते थे कि कोई छोटी-मोटी गडबड हो जाये और बहाना मिल जाये, जिससे कि वे उस आन्दोलन को पीस दे। सो वह अब मिल गया।

वे कूके वीर उस दिन तो पटियाला राज्य की सीमा पर एक गाँव रब्बों मे पडे रहे। अगले दिन भी वे वही टिके रहे। 14 जनवरी, 1872 की शाम को उन्होंने मलोध के किले पर धावा बोल दिया। यह किला कुछ सिख सरदारों का था, लेकिन इन्होंने इस पर हमला क्यो किया? इस सम्बन्ध मे डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में लिखा है कि उन्हे उम्मीद थी कि मलोध सरकार उनके विद्रोह की नेता बनेगी, लेकिन उन्होने मना कर दिया और इन्होंने हमला कर दिया। बहुत सम्भव है कि बाबा रामसिह की बड़ी भारी तैयारी में मलोध सरकार ने मदद देने का वायदा किया हो, लेकिन जब उन्होने देखा कि विद्रोह तो पहले ही हो गया है और बाबा रामसिह भी साथ नहीं हैं और पूरी संगत भी नहीं बुलाई गयी है तो उन्होने मना कर दिया होगा। खैर! जो भी हो, वहाँ लडाई हुई। कुछ घोड़े, हथियार और तोपे ले वे वहाँ से चले गये। दोनो ओर के दो-दो आदमी मारे गये और कुछ घायल हुए।

अगले दिन सवेरे 7 बजे वे मलेर कोटला पहुँच गये। अंग्रेजी सरकार ने मलेर कोटला सरकार को पहले ही सूचित कर रखा था। उधर बड़ी तैयारियाँ की गयी थीं। सेना हथियार लिये खड़ी थी, लेकिन इन लोगों ने इतनी बहादुरी से हमला किया कि सेना और पुलिस के कुछ वश में न रहा। हमला कर वे शहर में घुस गये और जाकर महल पर हमला कर दिया। वहाँ भी सेना उन्हे रोक न सकी। वे जाकर खजाना लूटने की कोशिश करने लगे। लूट ही लिया जाता, लेकिन दुर्भाग्य से वे एक और दरवाजा तोड़ते रहे,

जिससे कि उनका बहुत-सा समय नष्ट हो गया और भीतर से कुछ भी न मिला।

उधर से सेना ने बड़े जोर से धावा बोला। आखिर लड़ते-लड़ते वहाँ से लौटना पड़ा। उस लड़ाई में उन्होंने 8 सिपाही मारे और 15 को घायल किया। उनके सात आदमी मारे गये। वहाँ से भी कुछ हथियार और घोड़े लेकर भाग निकले। आगे-आगे वे और पीछे-पीछे मलेर कोटला की सेना और—

"A sort of running fight was kept along. Shots fired and many more Kookas were wounded till both the parties reached the village of Rur in the Patiala State, the Kookas carrying most of the wounded with them."

यानी भागते जा रहे थे। और लड़ते जा रहे थे। उनके और कई आदमी घायल हो गये और वे उन्हें भी साथ ही उठा ले जाते थे। आखिर पटियाला राज्य के रुड़ गाँव में ये पहुँचे और जंगल में छिप गये। कुछ घण्टों के बाद शिवपुर के नाज़िम ने फिर हमला बोल दिया। लड़ाई छिड़ गयी पर बेचारे कूके थके-हारे थे। आखिर 68 व्यक्ति पकड़ लिये गये। उनमें से दो औरतें थीं, वे पटियाला राज को दे दी गयीं।

इसी बात को विद्रोह कहा जाता है। डिप्टी कमिश्नर लुधियाना मि. कॉवन ने एक पत्र में कहा था—

"It looks like the commencement of an insurrection..."

यानी यह एक विद्रोह की तरह नजर आता है।

अगले दिन मलेर कोटला लाकर तोप गाड़ दी गयी और एक-एक कर 50 कूके वीर तोप के आगे बाँध-बाँधकर उड़ा दिये गये। हरेक बहादुरी से अपनी-अपनी बारी पर तोप के आगे झुक जाता और सत्त श्री अकाल कहता हुआ तोप से उड़ जाता। फिर कुछ पता नहीं चलता कि वह किस संसार में चला गया। इस तरह 49 व्यक्ति उड़ा दिये गये। पचासवाँ एक तेरह वर्ष का लड़का था। उसके पास झुककर डिप्टी कमिश्नर ने कहा कि बेवकूफ रामसिंह का साथ छोड़ दे, तुम्हें माफ कर दिया जायेगा। लेकिन वह बालक यह बात सहन नहीं कर सका और उछलकर उसने कॉवन की दाढ़ी पकड़ ली और तब तक न छोड़ी जब तक उसके दोनों हाथ न काट दिये गये। बाकी 16 आदमी अगले दिन मलोध जाकर फाँसी पर लटका दिये गये। उधर बाबा रामसिंह को उनके चार सूबों के साथ गिरफ्तार करके पहले इलाहाबाद और बाद में रंगून भेज दिया गया। यह गिरफ्तारी [रेगूलेशन] 1818 के अनुसार हुई थी।

जब यह खबर देश में फैली तो और लोग बहुत हैरान हुए कि यह क्या बना। विद्रोह शुरू करके बाबाजी ने हमें भी क्यों न बुलाया और सैकड़ों लोग घर-बार छोड़कर भैणी की ओर चल पड़े। एक गिरोह जिसमें कि 172 आदमी थे, कर्नल वायली से मिला। वह

अधीक्षक था। उसने झट उन्हें गिरफ्तार करवा लिया। उनमें से 120 को तो घरों को लौटा दिया, लेकिन 50 ऐसे थे कि जिनका कोई घरबार नहीं था। वे सब सम्पत्ति आदि बेच-बाचकर लड़ने-मरने के लिए तैयार होकर निकले थे। उन्हें जेल में डाल दिया गया। इस तरह वह आन्दोलन दबा दिया गया और बाबा रामसिंह का पूरा यत्न निष्फल हो गया। बाद में देश में जितने कूके थे, वे सभी एक तरह से नजरबंद कर दिये गये। उनकी हाजिरी ली जाती थी। भैणी साहिब में आम लोगों का आना-जाना बन्द कर दिया गया। ये बंदिशें 1920 में आकर हटाई गयीं।

यही पंजाब की आजादी के लिए दी गयी सबसे पहली कोशिश का संक्षिप्त इतिहास है।

चित्र-परिचय

[मार्च, 1928 के 'महारथी' में कूका आन्दोलन पर एक लेख छपा था। उसी के साथ दो चित्रों का चित्र-परिचय भगतसिंह ने लिखा था। यह परिचय 'महारथी' से लिया गया है। —सं.]

इस बार बहुरंग चित्र गुरु रामसिंह जी का है। उनका परिचय विस्तारपूर्वक गत अंक और इस अंक में दिया जा चुका है। वही पर्याप्त है। हाँ, विशेष उल्लेखनीय दो रंगीन चित्र हैं। एक तो इटली के नवयुवकों का—प्रत्येक बालक मुसोलिनी बनने का प्रयत्न कर रहा है। भारत में भी चार दिन के लिए स्काउट दल, महावीर दल और स्वयं-सेवक दल बने थे, अखाड़े स्थापित हुए थे परन्तु वह सब दूध का उफान रहा। नेताओं को चाहिए कि कौन्सिलों में स्पीचें झाड़ने की अपेक्षा इन भावी नेताओं को कुछ बनायें।

दूसरा चित्र हुनर-नगर का है जो एक विशेष [आयोजन के] रूप में बम्बई में हुआ था। हमें विस्मय होता है, जब हम इस विशाल हुनर-नगर की और गरीब, गँवार कारीगरों की दशा की तुलना करते हैं। इन हुनर-प्रदर्शनियों पर जितना रुपया उजाड़ा जाता है उसका शतांश भी तो कारीगरी की वास्तविक उन्नति में नहीं लगाया जाता। हम पूछते हैं—कितने कारीगरों को धन एवं अधिकार से सहायता देकर समाज अथवा सरकार अपना काम बढ़ाने का अवसर देती है? कितने मुहल्लों, बाजारों, नगरों अथवा शहरों में हुनर-शालाएँ खोली जा रही हैं? कितने कारीगरों की प्रतियोगिता कराई जाती है? और कितने नवयुवकों को भिन्न-भिन्न हुनर सीखने की छात्रवृत्ति देकर हुनर सीखने को प्रोत्साहित किया जाता है? हिन्दू सभाएँ और कांग्रेस मण्डल खोलने की अपेक्षा हुनर-शालाएँ स्थापित करने में हमें अपनी सब शक्तियों को लगा देना चाहिए। कारीगरी ही हमको बेकारी, पराधीनता और निर्धनता से बचा सकती है।

पंजाब के पहले विद्रोही शहीद

श्री मदनलाल ढींगरा !

[शहीद भगतसिंह ने 'आजादी की भेंट शहादतें' शीर्षक से एक लेखमाला 'किरती' में मार्च, 1928 से अक्तूबर, 1928 तक लिखी । इन लेखों के माध्यम से जहाँ पंजाब के लोगों को भारतीय शहीदों के बलिदान से परिचित करवाया गया, वहीं भगतसिंह और उनके साथियों के दिलों में उठते सवाल भी इनमें पढ़े जा सकते हैं। लेखमाला 'विद्रोही' नाम से लिखी गयी थी। अगस्त, 1928 के 'किरती' में इस लेखमाला का उद्देश्य इस रूप में बताया गया– "हमारा इरादा है कि उन जीवनियों को उसी तरह छापते हुए भी उनके आन्दोलनों का क्रमश: हाल लिखें ताकि हमारे पाठक यह समझ सकें कि पंजाब में जागृति कैसे पैदा हुई और फिर काम कैसे होता रहा और किन कामों के लिए, किन विचारों के लिए उन शहीदों ने अपने प्राण तक अर्पित कर दिये ।"–सं.]

अब फिर यह बताने की जरूरत नहीं कि भारतवर्ष की आजादी के लिए जितनी कुर्बानी पंजाब प्रान्त ने की है, उतनी किसी और प्रान्त ने नहीं की । बीसवीं सदी के शुरू होने के साथ ही भारत में एक बार नयी अशान्ति की लहर दौड़ गयी, जिसका परिणाम स्वदेशी-आन्दोलन की शक्ल में प्रकट हुआ । तब भी पंजाब ही बंगाल का साथ दे सका था। गुलामी की जंजीरें दिनों-दिन जकडी देखकर जब दर्द शुरू हुआ तब बहुत-से नौजवान अपने देशप्रेम में पागल हुए दिलों को केवल लेक्चरबाजी और प्रस्तावबाजी मात्र से सन्तोष न दे सके और कुछ दिल-जले लोगों ने युग पलट आन्दोलन चलाया । यह आन्दोलन उन देशप्रेमी युवकों को अपनी ओर खींचने में सफल हो गया और इन परवानों ने स्वतन्त्रता-देवी के चरणों में अपने जीवन तक बलिदान कर दिये और मुर्दा देश को फिर मृत्यु के प्रति निर्भयता दिखाकर पुराने बुजुर्गों की याद ताजा कर दी ।

यह युग पलटनेवाले या विद्रोही लोग कैसे विचित्र होते हैं, इसका कुछ वर्णन बंगाल के विद्रोही कवि नज़रुल इस्लाम ने अपनी 'विद्रोही' कविता में किया है । मौत के हाथ में हाथ डालकर खेल करनेवाले, गरीबों के सहायक, आजादी के रक्षक, गुलामी के दुश्मन, जालिमों, अत्याचारियों और मनमानी करनेवाले शासकों के शत्रु इन विद्रोही वीरों के दिल का, मन का, स्वभाव का, इच्छा का बडा सुन्दर चित्र उन्होंने अपनी कविता में खींचा है । पहले ही वे कहते हैं–

बोलो बीर–
चिर उन्नत मम शीर

शिर नेहारि आमारि
नत शिर ओई शिखर हिमाद्रीर!

यानी हे विद्रोही वीर! तुम एकदम यह कहते हो कि मैं कब से सिर उठाये खड़ा हूँ। मेरा ऊँचा सिर देखकर हिमालय ने भी अपना सिर शर्म के मारे झुका दिया।

आगे जाकर उसकी सख्ती और नरमी का वर्णन किया है। कहीं वह मौत से [के साथ] नाच कर रहा है, कहीं वह संसार का एक ही बार सर्वनाश करने पर तुला हुआ है। वह बिजली की तरह चमकता है। वह संगीत की तरह मीठा है। विधवा, गुलाम, मजलूम, गरीब, भूखे और पीड़ित लोगों में बैठकर वह लगातार रोता रहता है। ऐसे विचित्र जीव की विचित्र महिमा का वर्णन करते हुए अन्त में वे विद्रोही के मुँह से कहलवाते हैं–

महा बिद्रोही रणक्लान्त
आमि शेई दिन हॅबो शान्त,
जॅबे उत्पीड़ितेर क्रन्दन-रोल
आकाशे बातासे ध्वनिबे ना
अत्याचारीर खड्ग कृपाण
भीम रणभूम रणिबे ना
बिद्रोही रणक्लान्त
आमि शेई दिन हॅबो शान्त!

अर्थात, मैं विद्रोही अब लड़ाई मे थक गया हूँ। और मैं भी उसी दिन शान्त हो जाऊँगा जिस दिन किसी दुखी की आह या चीत्कार आकाश में जाकर आग न लगा सकेगा, यानी कोई दुखी न रहेगा, और जब जालिमों, अत्याचारियों की भयानक तलवार मैदान में चलनी बन्द हो जायेगी, यानी बाकी ही न रहेंगी. तब, और तभी मैं शान्त हो सकूँगा और हो भी जाऊँगा।

ऐसे विचित्र विद्रोही जीव जो पूरे विश्व से टकरा जाते हैं और स्वयं को जलती आग में झोंक देते हैं, अपना ऐशो-आराम सब भूल जाते हैं और दुनिया की सुन्दरता, शृंगार में कुछ वृद्धि कर देते हैं और उनके बलिदानों से ही विश्व में कुछ प्रगति होती है। ऐसे ही वीर हर देश में हर समय होते हैं। हिन्दुस्तान में भी यही पूजनीय देवते जन्म लेते रहे हैं, ले रहे हैं और लेते रहेंगे। हिन्दुस्तान में से भी पंजाब ने ऐसे रत्न अधिक दिये हैं, बीसवीं शती के ऐसे ही सबसे पहले शहीद श्री मदनलाल जी ढींगरा हैं।

वे कोई लीडर तो थे नहीं कि उनके जीते-जी उनका जीवन-चरित्र छापकर दो-दो आने में बिक जाता। वे अवतार भी नहीं थे कि ज्योतिष से बताकर शोर मचा दिया जाता कि हम तो पहले ही समझ गये थे कि वे बहुत 'बड़े' आदमी थे। उनकी किन्हीं ऐसी बातों

का भी हमें पता नहीं कि हम लिख सकें कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।'

वह गरीब और एक बदकिस्मत विद्रोही था। उसके पिता ने उसे अपना पुत्र मानने से इन्कार कर दिया था। देशभक्त और खुशामदी सभी अखबारों में और उस समय के गर्म नेता विपिनचन्द्र पाल तक ने उन्हें कोस-कोसकर गालियाँ दीं। तो फिर बताओ इन हालात में, आज बीस साल बाद उनके बारे में तथ्यों को फिर से इकट्ठा करने की कोशिश में किसी को कितनी सफलता मिल पायेगी?

इन कठिनाइयों में हम आज उनका जीवन-वृत्तान्त लिखने बैठ गये हैं। धीरे-धीरे हम लोग, उनका नाम भी न भूल जायें, यही सोचकर आज उनके बारे में जैसे भी तथ्य मिल सकते हैं, यह वृत्तान्त पाठकों के सामने रख रहे हैं।

आप शायद अमृतसर के रहनेवाले थे। घर से अच्छे थे। बी. ए. पास कर पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड चले गये। कहा जाता है कि वहाँ आप कुछ ऐय्याशी में फँस गये। यह बात यकीन से नहीं कही जा सकती, लेकिन यह कोई अनहोनी बात भी नहीं है। उनका मन बड़ा रसिक व भावुक था, इस बात का प्रमाण भी मिलता है। इंग्लैण्ड के खुफिया विभाग (Scotland yard) के एक प्रसिद्ध जासूस श्री ई. टी. वुडहाल ने (Union Jack) यूनियन जैक नामक साप्ताहिक अखबार में अपनी डायरी छापी थी। मार्च, 1925 के अंक में उन्होंने श्री मदनलाल ढींगरा का हाल लिखा है। यह जासूस उनके पीछे लगाया गया था। वह लिखता है—

"Dhingra was an extraordinary man. Dhingra's passion for flowers was remarkable."

यानी ढींगरा एक असाधारण व्यक्ति था। ढींगरा का फूलों के प्रति जबरदस्त लगाव था। आगे जाकर उन्होंने लिखा है कि वे बाग के किसी सुन्दर कोने में जाकर बैठ जाते थे और घण्टो तक फूलों को एक कवि की तरह मस्त होकर निहारते रहते और कभी उनकी आँखों से बड़ी तेज चमक कौंध उठती थी। उसी चमक को देखकर ई. टी. वुडहाल उस्ताद सिकलाहिन आगे लिखता है—

"There is a man to keep an eye on. He will do something desperate someday."

यानी उस व्यक्ति पर आँख रखनी चाहिए। किसी-न-किसी दिन वह कुछ धमाका करेगा। खैर।

हम बात कर रहे थे कि वे शायद ऐय्याशी में फँस गये। उस कहानी के आगे यों कि फिर स्वदेशी आन्दोलन का असर इंग्लैण्ड तक भी पहुँचा और जाते ही श्री सावरकर ने इण्डियन हाउस नामक सभा खोल दी। मदनलाल भी उसके सदस्य बने।

इधर हिन्दुस्तान में खुले आन्दोलन को दबाने के कारण युग-पलट लोगों ने खुफिया सोसाइटियाँ स्थापित कर लीं। यहाँ तक कि 1908 में अलीपुर की साजिश का मुकदमा बन गया। श्री कन्हाई और श्री सतेन्द्रनाथ को फाँसी मिल गयी। धीरेन्द्र और उल्लासकार दत्त को भी उसी समय फाँसी की सजा सुनायी गयी थी। ये खबरें इंग्लैण्ड में भी पहुँचीं और इन गरम नौजवानों में आग लग गयी। कहते हैं कि एक दिन रात को श्री सावरकर और मदनलाल ढींगरा बहुत देर तक मशविरा करते रहे। अपनी जान तक दे देने की हिम्मत दिखाने की परीक्षा में मदनलाल को जमीन पर हाथ रखने के लिए कहकर सावरकर ने हाथ पर सुआ गाड़ दिया, लेकिन पंजाबी वीर ने आह तक न भरी। सुआ निकाल लिया गया। दोनों की आँखों में आँसू भर आये। दोनों एक-दूसरे के गले लग गये। आहा, वह समय कैसा सुन्दर था! वह अश्रु कितने अमूल्य व अलभ्य थे। वह मिलाप कितना सुन्दर, कितना महिमामय था! हम दुनियादार क्या जानें, मौत के विचार तक से डरनेवाले हम कायर लोग क्या जानें कि देश की खातिर कौम के लिए प्राण दे देनेवाले वे लोग कितने ऊँचे कितने पवित्र और कितने पूजनीय होते हैं।

अगले दिन से ढींगरा फि·र इण्डियन हाउस, सावरकरवाली सभा में नहीं गये और भारतीय विद्यार्थियों और विश।ष खुफिया पुलिस का प्रबन्ध करनेवाले और उनकी छोटी-मोटी आजादी को कुचलनेवाले सर कर्जन वायली, जो कि Secretary of State for India के एड. डी. कांप Aid-de-Camp थे, द्वारा चलायी हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की सभा में जा शामिल हुए। यह देखकर इण्डियन हाउसवाले लड़कों को बड़ा जोश आया और उन्होंने उन्हें देशघातक, देशद्रोही तक कहना शुरू कर दिया, लेकिन उनका गुस्सा भी तो सावरकर ने यह कहकर शान्त किया कि आखिर उन्होंने हमारी सभा को चलाने के लिए भी तो सर तोड़ प्रयत्न किया था और उनकी मेहनत के फलस्वरूप ही हमारी सभा चल रही है, इसलिए हमें उनका धन्यवाद करना चाहिए। खैर। कुछ दिन तो चुपचाप गुजर गये।

1 जुलाई, 1909 को इम्पीरियल इंस्टीच्यूट के जहाँगीर हॉल में एक बैठक थी। सर कर्जन वायली भी वहाँ गये हुए थे। वे दो और लोगों से बातें कर रहे थे कि अचानक ढींगरा ने पिस्तौल निकालकर उनके मुँह की ओर तान दी। कर्जन साहिब की डर के मारे चीख निकल गयी, लेकिन कोई इन्तजाम होने से पहले ही मदनलाल ने दो गोलियाँ उनके सीने में मारकर उन्हें सदा की नींद सुला दिया। फिर कुछ संघर्ष के बाद वे पकड़े गये। बस फिर क्या था, दुनिया-भर में सनसनी मच गयी। सब लोग उन्हें जी-भरकर गालियाँ देने लगे। उनके पिता ने पंजाब से तार भेजकर कहा कि ऐसे बागी, विद्रोही और हत्यारे आदमी को मैं अपना पुत्र मानने से इन्कार करता हूँ। भारतवासियों ने बड़ी बैठकें कीं। बड़े-बड़े भाषण हुए। बड़े-बड़े प्रस्ताव पास हुए। सब उनकी निन्दा में। पर उस समय भी एक सावरकर वीर थे, जिन्होंने खुल्लमखुल्ला उनका पक्ष लिया। पहले तो उनके

खिलाफ प्रस्ताव न पास होने देने के लिए यह बहाना पेश किया कि अभी तक उन पर मुकदमा चल रहा है और हम उन्हें दोषी नहीं कह सकते। आखिर में जब इस प्रस्ताव पर वोट लेने लगे तो सभा के अध्यक्ष श्री विपिनचन्द्र पाल यह कह ही रहे थे कि क्या यह सभी की सर्वसम्मति से पास समझा जाये, तो सावरकर साहब उठ खडे हुए और आपने व्याख्यान शुरू कर दिया। इतने में ही एक अग्रेज ने इनके मुँह पर घूँसा मार दिया और कहा–"Look ! how straight the English fist goes. [यानी] देखा, अग्रेजी घूँसा कैसे ठिकाने पर पड़ता है !" अभी वह कह ही रहा था कि [एक] हिन्दुस्तानी नौजवान ने उस अग्रेज के सिर पर एक लाठी जड़ दी और कहा–"Look ! how straight the Indian club goes ! [यानी] देखा, यारों का हिन्दुस्तानी डण्डा कैसे ठिकाने पर पड़ता है !" शोर मच गया। बैठक बीच में ही छूट गयी। प्रस्ताव भी ऐसे ही रह गया। खैर।

मुकदमा चल रहा था। मदनलाल बड़े खुश थे। बड़े शान्त थे। सामने दर पर मौत खड़ी देखकर भी वे मुस्करा रहे थे। वह निर्भय थे। आहा ! वे वीर विद्रोही थे। आपने अन्त में जो बयान दिया वह आपकी नेक-दिली, आपकी देशभक्ति और योग्यता का बड़ा भारी सबूत है। हम उनके ही शब्दों में देते हैं। यह 12 अगस्त के 'Daily News' (डेली न्यूज) मे छपा था–

"I admit the other day, I attempted to shed blood as an humble revenge for the inhuman hangings and deportations of patriotic Indian youth. In the attempt I have consulted none but my own conscience, I have conspired with none but my duty."

"I believe that a nation held down by foreign baynot is in a perpetual state of war. Since open battle is rendered impossible to disarmed races, I attacked by surprise, since guns were denied to me I drew forth my pistol and fired."

"As an Hindu, I fell that wrong to my country is insult to God. Her cause is the cause of Shri Rama, her service is the service of Shri Krishna. Poor in wealth and intellect, a son like myself has nothing else to offer but his own blood, and so I have sacrificed the same on her alter."

"The only lesson required in India at present is to learn how to die, and the only way to teach it is by dying ourselves. Therefore I die and I glory in my martyrdom."

"This war will continue, as long as the Hindu and English races last if this present unnatural relation does not cease."

My only prayer to God is—"May I be reborn of the same mother and may I redie in the same sacred cause, till the cause is successful, and she stands free for the good of humanity and to the glory of God,—*Bande Matram.*"

अर्थात्, मैं मानता हूँ कि मैंने उस दिन एक अंग्रेज का खून किया और कहता हूँ कि यह उन निर्दयता भरी सजाओं का मामूली-सा बदला है जो कि हिन्दुस्तानी देशभक्त नौजवानों को फाँसी और काले पानी की दी गयी हैं। मैंने इस काम में अपने जमीर के सिवा किसी और की सलाह नहीं ली। अपने फर्ज़ के सिवाय किसी से साजिश नहीं की।

मेरा यह विश्वास है कि एक राष्ट्र, जिसे विदेशी लोगों ने बन्दूकों से दबाया हो, वह हमेशा युद्ध की स्थिति में होता है और चूँकि हथियार छीनकर खुली लड़ाई असम्भव बना दी जाती है, मैंने छिपकर बिना बताये हमला किया है। क्योंकि हमें बन्दूकें रखने से मना किया जाता है, इसीलिए मैंने पिस्तौल खींच लिया और चला दिया।

मैं एक हिन्दू के रूप में समझता हूँ कि मेरे देश के साथ किया गया अन्याय ईश्वर का अपमान है, क्योंकि देश की पूजा श्री रामचन्द्र जी की पूजा है और देश की सेवा श्रीकृष्ण जी की सेवा है।

एक गरीब और मूर्ख, मेरे-जैसे नौजवान के पास अपनी माता की सेवा में भेंट करने के लिए अपने रक्त के सिवाय और क्या हो सकता है ? सो मैंने अपना रक्त माता के चरणों पर चढ़ाया है।

इस समय यदि हिन्दुस्तान को किसी सबक की जरूरत है तो यह कि मरना कैसे चाहिए। और इसे सिखाने का तरीका है कि हम खुद मरकर दिखायें। इसीलिए मैं मर रहा हूँ। इसीलिए मुबारक हो शहीदाना मौत।

यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक हिन्दुस्तानी और अंग्रेज दो राष्ट्र रहेंगे और इनका यह अस्वाभाविक गठबन्धन बना रहेगा। मेरी ईश्वर के आगे यही प्रार्थना है कि मैं फिर इसी माँ की गोद से जन्म लूँ और जब तक वह स्वतन्त्र न हो जाये और मानव-समाज की पूर्ण सेवा और उन्नति योग्य न बन जाये, मैं यहीं जन्मता रहूँ और मरता रहूँ। —बन्देमातरम !

16 अगस्त, 1909 का दिन भी इतिहास में याद रहेगा। उस दिन इंग्लैण्ड में हिन्दुस्तानी युग-पलट पार्टी की आवाज गुँजानेवाला ढींगरा वीर अपनी मतवाली चाल चलता हुआ तख्ते पर जा चढ़ा था। श्रीमती एग्निस स्मेडले एक जगह इस घटना का जिक्र करती हुई लिखती हैं—

"He walked to the scaffoled with his head high and shook of hands of those who offered to support him, saying that he was not afraid of death."

आहा ! सहारा देकर ले जानेवाले व्यक्तियों के हाथ पीछे झटककर वह कहने लगा मैं मौत से नहीं डरता ।' आहा ! धन्य हैं मृत्युंजय !

"As he stood on the scaffoled he was asked if he had a last word to say. He answered,—*Bande Matram.*"

माँ से इतना प्यार ! फाँसी के तख्ते पर खड़े हुए से पूछा जाता है—कुछ कहना चाहते हो ? तो उत्तर मिलता है, 'बन्देमातरम !' माँ ! भारत माँ ! तुम्हें नमस्कार ! वह वीर फाँसी पर लटक गया और उनकी लाश भी भीतर ही दफना दी गयी और हिन्दुस्तानियों को उनकी दाह-क्रिया आदि कराने की इजाजत नहीं दी गयी । धन्य था वह वीर ! धन्य है उसकी याद ! मुर्दा देश के अमूल्य हीरे को बारम्बार नमस्कार !

मार्च, 1928 / 'किरती'

आजादी की पहली जंग के बारे में

दस मई का शुभ दिन

[अप्रैल, 1928 में 'किरती' के 1857 के गदर सम्बन्धी अंक मे '10 मई का शुभ दिन' नाम से लेख छपा । इसके लेखक का नाम तो नहीं दिया गया, लेकिन यह शहीद भगतसिंह के साथियों का ही लेख है । संभवत: भगवतीचरण वोहरा का । वे बहुत अच्छे लेखक थे और 'किरती' से गहरे रूप में जुड़े हुए थे । मार्च, 1925 से लेकर जुलाई 1928 तक भगतसिंह ने 'किरती' के सम्पादकीय विभाग में बहुत ही लगन से काम किया था । यह लेख उसी समय छपा था ।—सं.]

"ओ दर्दवाले दिल, दर्द हों चाहे हजार
दस मई का दिन भुलाना नही,
इसी रोज छिड़ी 'आजादी की जंग'
वक्त खुशी का गमी लाना नहीं ।"

दस मई वह शुभ दिन है जिस दिन कि 'आजादी की जंग' शुरू हुई थी । भारतवासियों का गुलामी की जंजीरें तोड़ने के लिए यह प्रथम प्रयास था । यह प्रयास भारत के दुर्भाग्य से सफल नहीं हुआ, इसीलिए हमारे दुश्मन इस 'आजादी की जंग' को 'गदर' और बगावत के नाम से याद करते हैं और इस 'आजादी की जंग' में लडनेवाले नायकों को कई तरह की गालियाँ देते हैं । विश्व के इतिहास में ऐसी कई घटनाएँ मिलती हैं, जहाँ आजादी की जंग

को कई बुरे शब्दों में याद किया जाता है। कारण यही है कि वह जंग जीती न जा सकी। यदि विजय हासिल होती तो उन जंगों के नायकों को बुरा-भला न कहा जाता, बल्कि वे विश्व के महापुरुषों में माने जाते और संसार उनकी पूजा करता।

आज दुनिया गैरिबाल्डी और वाशिंगटन की क्यों बड़ाई व इज्जत करती है, इसलिए कि उन्होंने आजादी की जग लड़ी और उसमें सफल हुए। यदि वे सफल न होते तो वे भी 'बागी' और 'गदरी' आदि भद्दे शब्दों में याद किये जाते। लेकिन वे सफल हुए, इसलिए वे महापुरुषों में माने जाने लगे। इसी तरह यदि 1857 की आजादी की जंग में तांत्या टोपे, नाना साहिब, झाँसी की महारानी, कुमारसिंह [कुँवर सिंह], और मौलवी अहमद साहिब आदि वीर जीत हासिल कर लेते तो आज वे हिन्दुस्तान की आजादी के देवता माने जाते और सारे हिन्दुस्तान में उनके सम्मान में राष्ट्रीय त्यौहार मनाया जाता।

हिन्दुस्तान के मौजूदा इतिहासों को, जो कि हमारे हाथों में दिये जाते हैं, पढ़कर हिन्दुस्तानियों के दिलों में उन शूर-वीरों के लिए कोई अच्छी भावनाएँ पैदा नहीं होतीं, क्योंकि उन 'आजादी की जंग' के नायकों को कातिल, डाकू, खूनी, धार्मिक जनूनी व अन्य कई बुरे-बुरे शब्दों में याद किया गया है और उनके विरोधियों को राष्ट्रीय नायक बनाया गया है। कारण यह है कि 1857 की 'आजादी की जंग' के जितने इतिहास लिखे गये हैं, वे सारे-के-सारे ही या तो अंग्रेजों ने लिखे हैं जो कि जबर्दस्ती तलवार के जोर पर, लोगों की मर्जी के खिलाफ हिन्दुस्तान पर कब्जा जमाये बैठे हैं और या अंग्रेजों के चाटुकारों ने। जहाँ तक हमें पता है, इस आजादी की जंग का एकमात्र स्वतन्त्र इतिहास लिखा गया, जो कि बैरिस्टर सावरकर ने लिखा था और जिसका नाम '1857 की आजादी की जंग का इतिहास' (The history of the Indian war of Independence 1857) था। यह इतिहास बड़े परिश्रम से लिखा गया था और इण्डिया आफिस की लायब्रेरी से छान-बीनकर, कई उद्धरण दे-देकर सिद्ध किया गया था कि यह राष्ट्रीय संग्राम था और अंग्रेजों के राज से आजाद होने के लिए लड़ा गया था। लेकिन अत्याचारी सरकार ने इसे छपने ही नहीं दिया और अग्रिम रूप से जब्त कर लिया। इस तरह लोग सच्चे हालात पढ़ने से वंचित रह गये।

इस जंग की असफलता के बाद जो जुल्म और अत्याचार निर्दोष हिन्दुस्तानियों पर किया गया, उसे लिखने की न तो हमारे में हिम्मत है और न ही किसी और में। यह सबकुछ हिन्दुस्तान के आजाद होने पर ही लिखा जायेगा। हाँ, यदि किसी को इस जुल्म, अत्याचार और अन्याय का थोड़ा-सा नमूना देखना हो तो उन्हें मिस्टर एडवर्ड थामसन की पुस्तक, 'तस्वीर का दूसरा पहलू' (The other side of the medal) पढ़नी चाहिए, जिसमें उसने सभ्य अंग्रेजों की करतूतों को उघाड़ा है और जिसमें बताया गया है कि किस तरह नील हेवलाक, हडसन कूपर और लारेंस ने निर्दोष हिन्दुस्तानी स्त्री-बच्चों तक पर ऐसे-ऐसे कहर ढाये थे कि सुनकर रोएँ खड़े हो जाते हैं और शरीर काँपने लगता है!

लेकिन इस बात का ख्याल करके स्वतन्त्र व्यक्तियो को शर्म आयेगी कि वे लोग भी, जिनके बुजुर्ग इस जंग में लड़े थे, जिन्होने हिन्दुस्तान की आजादी की बाजी पर सबकुछ लगा दिया था और जिन्हें इस पर गर्व होना चाहिए था, वे भी, इस जग को आजादी की जंग कहने से डरते हैं। कारण यह कि अंग्रेजी अत्याचार ने उन्हें इस कद्र दबा दिया था कि वे सर छुपाकर ही दिन काटते थे। इसलिए उन बुजुर्गों की यादगार मनानी या स्थापित करनी तो दूर, उनका नाम लेना भी गुनाह समझा जाता था।

लेकिन हालात कुछ ऐसे बन गये कि जिनसे विदेशों में बसे हिन्दुस्तानी नौजवान 10 मई के दिन को राष्ट्रीय त्यौहार बनाकर मनाने लगे। और कुछ हिन्दी (हिन्दुस्तानी) नौजवान यहाँ भारत में भी यही त्यौहार मनाने की कुछ कोशिशें करते रहे हैं। सबसे पहले, जहाँ तक पता चलता है, यह त्यौहार इंग्लैण्ड में 'अभिनव भारत' ने बैरिस्टर सावरकर के नेतृत्व में सन् 1907 में मनाया। इस त्यौहार को मनाने का ख्याल कैसे आया, वह कथा इस तरह है (गुलामों में खुद तो ऐसे यादगारी-दिन मनाने के ख्याल कम ही पैदा होते हैं)–

''1907 मे अंग्रेजों ने विचार किया कि 1857 के गदरियों पर जीत हासिल करने की पचासवीं वर्षगाँठ मनानी चाहिए। 1857 की याद ताजा करने के लिए हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध अंग्रेजों के अखबारों ने अपने-अपने विशेषांक निकाले, ड्रामे किये गये और लैक्चर दिये गये और हर तरह से इन कथित गदरियो को बुरी तरह कोसा गया। यहाँ तक कि जो कुछ भी इनके मन मे आया, सब ऊल-जलूल इन्होंने गदरियों के खिलाफ कहा और कई कुफ्र किये। इन गालियो और बदनाम करनेवाली कार्रवाई के विपरीत सावरकर ने 1857 के हिन्दुस्तानी नेताओं—नाना साहिब, महारानी झाँसी, तांत्या टोपे, कुँवरसिंह, मौलवी अहमद साहिब की याद मनाने के लिए काम शुरू कर दिया, ताकि राष्ट्रीय जंग के सच्चे-सच्चे हालात बताये जायें। यह बड़ी बहादुरी का काम था और शुरू भी अंग्रेजी राजधानी में किया गया। आम अंग्रेज नाना साहिब और तांत्या टोपे को शैतान के वर्ग में समझते थे, इसलिए लगभग सभी हिन्दुस्तानी नेताओं ने इस आजादी की जंग को मनानेवाले दिन मे कोई हिस्सा न लिया। लेकिन मि. सावरकर के साथ सभी नौजवान थे। हिन्दुस्तानी घर में एक बड़ी भारी यादगारी मीटिंग बुलायी गयी। उपवास किये गये और कसमें ली गयीं कि उन बुजुर्गों की याद में एक हफ्ते तक कोई ऐयाशी की चीज इस्तेमाल नही की जायेगी। छोटे-छोटे पैंफलेट 'ओह शहीदो' (Oh! Martyrs) नाम से इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान में बाँटे गये। छात्रों ने आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज और उच्चकोटि के कालेजों में छातियों पर बड़े-बड़े, सुन्दर-सुन्दर बैज लगाये जिन पर लिखा था, '1857 के शहीदों की इज्जत के लिए।' गलियों-बाजारों में कई जगह झगड़े हो गये। एक कालेज में एक प्रोफेसर आपे से बाहर हो गया और हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों ने माँग की कि वह माफी माँगे, क्योंकि उसने उन विद्यार्थियो के राष्ट्रीय नेताओं का अपमान किया है और विरोध में सारे-के-सारे विद्यार्थी कालेज से निकल आये। कई की

छात्रवृत्तियाँ मारी गयीं, कइयों ने इन्हें खुद ही छोड़ दिया। कइयों को उनके माँ-बाप ने बुलवा लिया। इग्लिस्तान में राजनीतिक वायुमण्डल बड़ा गर्म हो गया और हिन्दुस्तानी सरकार बड़ी हैरान व बेचैन हो गयी।''

(बैरिस्टर सावरकर का जीवन, पृ. 45-46 चित्रगुप्त रचित)

इन हालात की खबर जहाँ भी पहुँची, विदेशों में वहाँ-वहाँ दस मई का दिन बड़ी सज-धज से मनाया गया और लोगों में बड़ा जोश आ गया कि अंग्रेज किस प्रकार हमारे राष्ट्रीय वीरों को बदनाम करते हैं। उन्होंने रोष के रूप में मीटिंगें कीं और उनकी याद में 10 मई का दिन हर वर्ष मनाना शुरू कर दिया। काफी समय बाद अभिनव भारत सोसायटी टूट गयी और इंग्लैण्ड में यह दिन मनाना बन्द हो गया, लेकिन कुछ समय बाद अमेरिका में हिन्दुस्तान गदर पार्टी स्थापित हो गयी और उसने उसे हर बरस मनाना शुरू कर दिया। गदर पार्टी के स्थापित होने के दिन से लेकर अब तक अमेरिका में यह दिन सज-धज से मनाया जाता है। बड़ी भारी मीटिंग होती है, जिसमें सब हिन्दुस्तानी एकत्र होते हैं। उसमें इन 1857 के शूर-वीरों के जीवन और कारनामे बताये जाते हैं। इस तरह इन शहीदों की याद साल-दर-साल ताजा की जाती है और ऐसी कविताएँ—

'ओ दर्द-मंद दिल, दर्द दे चाहे हजार
दस मई का दिन भुलाना नहीं।
इस रोज छिड़ी जंग आजादी की
बात खुशी की गमी लाना नहीं।'

आदि पढ़ी जाती हैं। विशेषत: 1914-15 में यह पंक्तियाँ प्रत्येक पुरुष की जीभ पर चढ़ी हुई थीं, क्योंकि उस समय वे एक और आजादी की जंग लड़कर हिन्दुस्तान को आजाद करवाना चाहते थे। लेकिन वह प्रयास भी असफल हुआ, जिसमें हजारों नौजवानों ने भारत माता पर शीश वार दिये, लेकिन हमारी गुलामी को न काटा जा सका।

दस मई का दिन क्यों मनाया जाता है? इसका कारण यह है कि दस मई के दिन ही असली जंग शुरू हुई थी। 10 मई को मेरठ छावनी के 85 वीरों ने चर्बीवाले कारतूस इस्तेमाल करने से इन्कार कर दिया था। उनका कोर्ट मार्शल किया गया और प्रत्येक जवान को 10 साल सख्त कैद की सजा दी गयी। बाद में ग्यारह सिपाहियों की कैद कम कर पाँच साल कर दी गयी थी। लेकिन यह सारी कार्रवाई ही इस तरीके से की गयी थी कि जिसमें हिन्दुस्तानी सिपाहियों के गर्व और मान को भारी चोट पहुँचती थी, वह दृश्य बड़ा दर्दनाक था। देखनेवालों की आँखों से टपटप आँसू गिरते थे। सारे-के-सारे बुत बने हुए थे। वे 85 सिपाही जो उनके भाई थे, सब दुखों-सुखों में शरीक थे, उनके पैरों में बेड़ियाँ डाली हुई थीं। उनका अपमान सहन करना मुश्किल था, लेकिन कुछ बन नहीं सकता था।

अगले दिन ''घुड़सवार और पैदल सेना ने जाकर जेल तोड़ दी, अपने साथियों को

छुड़ा लिया, अफसरों के घरों को फूँक डाला। जिस यूरोपीय को पकड़ सके, उसे मार डाला और दिल्ली की ओर चढ़ाई कर दी। गदर का आरम्भ इसी दिन हुआ और 10 मई से ही गिना जाता है।"

(ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 715)

सो पाठकों ने ऊपर लिखी घटनाओं से देख लिया है कि दस मई का दिन क्यों और कब से मनाना शुरू किया गया। पाठक यह सब हाल पढ़कर देख सकते हैं कि उनका क्या फर्ज़ है। क्या उन्होंने उस आजादी के लिए, जिसलिए कि हजारों-लाखो हिन्दुस्तानियों ने सर लगा दिये थे और हजारों लगाने के लिए तैयार बैठे थे, आज तक कुछ किया है या नहीं? यदि आज तक उन्होंने कुछ नहीं किया तो वे कौन-सा मुहूर्त देख रहे हैं? आजादी की जंग में शामिल होने के लिए तो साल के 365 दिनों में से 365 ही पवित्र हैं। हर पल भारत माता तुम्हारा इन्तजार कर रही है कि तुम उसकी जंजीरें तोड़ने के लिए अपना फर्ज़ पूरा करते हो या नहीं। क्या इन्सान बनकर आजादी हासिल करोगे? इसी सवाल के जवाब से भारत का भविष्य निर्भर करता है।

भाई बालमुकुन्द जी

अब तक हम पंजाबी शहीदों के जीवन 'किरती' में बिना क्रम के ही छापते रहे हैं। कभी बब्बर अकाली शहीदों के जीवन छापे तो कभी 1914-15 वाले गदर पार्टी के शहीदों के। कभी 1908 वाले मदनलाल जी का ही जीवन छापा। अब हमारा इरादा है कि उनके जीवन-वृत्तान्त को उसी तरह छापते हुए भी उन आन्दोलनों का क्रमशः हाल लिखें ताकि हमारे पाठक समझ सकें कि पंजाब में जागृति कैसे पैदा हुई और फिर काम कैसे होता रहा और किन कामों के लिए, किन विचारों के लिए, उन शहीदों ने अपने प्राण तक उत्सर्ग कर दिये।

वास्तव में अब का आन्दोलन 1907 से ही चलता है और फिर वह कभी किसी रंग में और कभी किसी ढंग से चलता चला गया। 1907 में बड़ा भारी आन्दोलन हुआ। जोश में आये लोगों ने कई जगह दंगे, झगड़े किये, उनकी कुछ बातें सरकार ने मान लीं और फिर आन्दोलन को कुचल डाला। बाद में 1908-09 में लिटरेचर पैदा करने और अच्छे-अच्छे विचारों को पक्का करने का काम होता रहा। बाद में एक खुफिया सोसायटी बन गयी, जिसका परिणाम दिल्ली बम केस से प्रकट हुआ। इसमें चार सज्जनों—श्री अमीरचन्द जी, श्री अवध बिहारी, श्री बालमुकुन्द जी और श्री बसन्त कुमार बिस्वास को फाँसी हुई। बाद में कामागाटामारू की बजबज घटना हो गयी और 1914-15 यानी अगले ही वर्ष गदर-लहर की रौनक हुई और तीन-चार साल तक यही हंगामा रहा।

1919 मे विद्रोह हुए और मार्शल लॉ लगा। फिर असहयोग आन्दोलन चला और अकाली आन्दोलन चले और आखिर में बब्बर अकाली आन्दोलन चला, जिसमें 10-12 लोग फॉमी पर लटकाये गये या लड़ते-लडते शहीद हो गये। पजाब में बलिदानों और आन्दोलनो का इतिहास हिन्दुस्तान में सब प्रान्तों से अधिक सुन्दर और गर्व योग्य है, लेकिन अफसोस है कि उसे अभी तक किसी ने क्रमिक रूप मे लिखा ही नहीं।

आज हम दिल्ली-षड्यन्त्र के शहीद, शहीद भाई बालमुकुन्द जी का जीवन लिख रहे है। अगली बार हम दिल्ली-षड्यन्त्र का इतिहास भी देंगे और हम उनके साथ के और शहीदो के हालात भी लिखेगे।

श्री गुरु तेगबहादुर साहब की जब औरगजेब ने दिल्ली मे हत्या करवायी थी तब उनके साथ एक ब्राह्मण भाई मतिदास भी थे और उन्हें भी आरे से चीरकर शहीद किया गया था। तब से इनके खानदान को भाई का खिताब मिला हुआ है। भाई बालमुकुन्द जी इसी खानदान मे से थे। आप करियाला जिला झेलम के रहनेवाले थे। भाई परमानन्द जी के चाचा के लड़के थे। आपने बी ए तक शिक्षा प्राप्त की थी।

आप तब जोधपुर के राजा के लडकों को पढ़ाते थे, जब आपको गिरफ्तार किया गया था। वहाँ आपके घर की तलाशी ली गयी। आपके गाँव मे भी घर की तलाशी हुई, लेकिन कोई चीज ऐसी न मिली जिससे कि आपके खिलाफ कुछ साबित किया जा सके।

वास्तव मे 1907 मे जो आन्दोलन चला था उसके साथ ही कुछ आदमियों में जोश भर गया था। 1908 की भारत माता बुक सोसायटी और लाला हरदयाल के प्रचार ने भी कुछ और रंग चढा दिया। उसके बाद बगाल के एक-दो आदमी इधर आये। उन्होने इनमें बहुत-से नौजवानो को एक खुफिया पार्टी में शामिल किया। 1910 मे श्री रासबिहारी बोस ने आकर पजाब का काम स्वयं संगठित किया, जिसमे कि भाई बालमुकुन्द को ही लाहौर का जत्थेदार नियत किया गया।

दिसम्बर, 1912 मे दिल्ली में वाइसराय का जुलूस निकल रहा था। बड़ी शानो-शौकत, बड़ी रौनक और हो-हल्ला मचा हुआ था। चाँदनी चौक में से जुलूस जा रहा था। वाइसराय लाड हार्डिग चौकी पर सवार थे। अचानक एक ओर से बम गिरा। वाइसराय घायल हो गया और एक नौकर मर गया। बड़ा शोर हुआ। बड़े हाथ-पाँव मारे गये, लेकिन कुछ पेश न चली। कुछ पता न चला कि यह काम किसने किया। पाँच-छह महीने गुजर गये। लाहौर के लारेस गार्डन के मिटगुमरी हॉल में गोरों का नाच हो रहा था। हॉल से बाहर एक बम फट गया। इससे एक हिन्दुस्तानी चपरासी मर गया। उस समय कोई गिरफ्तारी न हो सकी। फिर कहा जाता है कि एक बम लाहौर के किले मे चला, उसका भी कुछ पता न चल सका।

लारेस बाग के बम चलने से कोई सात-आठ महीने बाद बंगाल मे किसी जगह तलाशी थी। अवधबिहारी का दिल्ली का पता हाथ लग गया। उनकी तलाशी हुई और एक पत्र लाहौर से आया पकड़ा गया। उस पर मेहरसिह के दस्तखत थे। पूछने पर

उन्होंने बता दिया कि यह पत्र दीनानाथ का लिखा हुआ है। कई दीनानाथ लाहौर में पकड़े गये। आखिर में असली दीनानाथ भी मिल गया, जिसने कुछ दिनों में पूरा भेद खोल दिया और सरकारी वायदा-माफ गवाह बन गया। उसके बयान से कोई बारह आदमी और पकड़े गये। जोधपुर से भाई बालमुकुन्द जी भी पकडे गये।

दिल्ली में मुकदमा चला। सबसे बड़ा आरोप था, 'लारेस गार्डन का बम और तख्ता पलटने के पर्चों की योजना।' भाई बालमुकुन्द चूँकि लाहौर के जत्थेदार थे और बड़े योग्य व कट्टर देशभक्त थे, इसलिए आपके खिलाफ कुछ भी सबूत न होने के बावजूद फाँसी की सजा दे दी गयी।

चीफ कोर्ट का जज अपील के फैसले मे स्वयं लिखता है–

"Firstly, it is pointed out rightly enough that in search of his houses at Jodhpur and Karyala, his home in the Jhelum district, failed to reveal anything in his possession any conditions literature. Secondly admittedly he had no direct connection with the Lahore bomb outrage or that July leaflets."

यानी, यह तर्क पेश किया गया है कि उनके घरों की तलाशी से कोई कागज ऐसा नही निकला जो कि विद्रोह का प्रचार करनेवाला हो। और दूसरी बात यह भी ठीक है कि लाहौर बम से और जुलाई में बाँटे गये तख्ता पलट पर्चो से भी उनका कोई सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता और इस मुकदमे में और किसी बम का जिक्र भी नही, फिर भी उन्हे मौत की सजा क्यो दी गयी ? जज लिखता है कि क्या हुआ यदि उनसे लाहौर मे बम चलाने से पहले नहीं पूछा गया, क्या हुआ कि यदि वे उन दिनों लाहौर मे नहीं थे, क्या हुआ यदि इस बात का भी प्रमाण नही कि बाद में भी उन्हें बम चलाने की खबर दी गयी। आखिर वह षड्यन्त्र का सदस्य तो था ही, वह साजिश में शामिल तो हो ही चुका था। बस, इसी से वह हत्या का जिम्मेदार है और कानून के अनुसार उसे फाँसी की सजा मिलनी चाहिए। कानून की विशेषताओं का अब क्या जिक्र करें ? हद ही हो गयी है। आपको फाँसी की सजा दी गयी, क्योंकि आप बड़े कट्टर तख्ता पलटनेवाले थे और बड़े योग्य थे। देशभक्ति की भावना बड़े जोरों से भरी हुई थी और दूसरी बात यह थी कि दिल्ली बम के चल जाने के बाद भी उसके चलानेवालों का पता न चल सकने से सरकार का रोब खत्म हो गया था। O-Dyer (ओडायर) नया-नया लाट बनकर आया था, वह यह बर्दाश्त नहीं कर सका। वह सारा क्रोध इसी मुकदमे में निकाला गया। एक सज्जन बड़े सुन्दर शब्दों में ओडायर की पालिसी का जिक्र करते थे। वे कहते हैं कि ओडायर की पालिसी थी–

"Guilty or not guilty, a few must be punished to maintain the

prestige of the Govt."

यानी, चाहे अपराधी हों या निर्दोष कुछ आदमियों को सज़ा जरूर दी जाये, ताकि सरकार के रोब में कमी न हो।

खैर! आपको फाँसी की सजा हुई। आपने बड़ी प्रसन्नता से सुनी। अपील खारिज हो चुकने के बाद आपको 1915 में फाँसी पर लटका दिया गया। लोग बताते हैं कि आप बड़े चाव से दौड़े-दौड़े गये। फाँसी के तख्ते पर चढ़ गये और अपने हाथों से ही फाँसी की रस्सी को गले में डाल लिया।

भाई बालमुकुन्द जी की अपनी शहादत बड़ी ऊँची और पूजा योग्य है, लेकिन उनके बलिदान को उनकी धर्मपत्नी के अतुलनीय प्रेम से, सती होने से और भी चार चाँद लग गये।

भाई बालमुकुन्द जी जेल में बन्द थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरखी उनसे मिलने आयीं। पूछा, "रोटी कैसी मिलती है?" उत्तर मिला, "आधी रेत और आधे आटे की जली हुई और बिल्कुल कच्ची रोटी मिलती है।" नमूना ले लिया। घर जाकर वैसा ही आटा तैयार किया, वैसी ही रोटी पकाई। कहा—"जब मेरे प्रीतम आप ऐसी रोटी खाते हैं तो मैं इससे अच्छी कैसे खा सकती हूँ।" वैसी ही रोटी खाती रहीं। फिर एक बार मुलाकात हुई। पूछा, "इतनी सख्त गर्मी में सोते कहाँ हैं?" जवाब मिला, "अँधेरी कोठरी में, सख्त गर्मी में दो कम्बल मिलते हैं।" घर आ गयीं। घर की सबसे पिछली कोठरी में जाकर सो गयीं। मच्छर काट-काटकर खाते थे। क्या करतीं? वहीं सोना था। सखी-सहेलियों ने कहा, "पगली, यह भी कोई जिन्दा रहनेवालों का तरीका है?" श्रीमती रामरखी ने पूछा, "तो क्या ऐसे रहनेवाले बचते नहीं?" सखियो ने कहा, "और क्या। इस तरह करनेवाले भी क्या बचे हैं?" उनकी आँखे भर आयीं। सहेलियाँ चुप होकर बैठ गयी, वह वहीं सोती रही। एक दिन वे भीतर निढाल पड़ी थीं कि बाहर से औरतों के रोने-चिल्लाने की आवाजें आयीं। सब समझ लिया कि उनके प्रीतम भाई बालमुकुन्द जी को फाँसी हो चुकी है। उनकी लाश भी नहीं दी गयी। उठीं। नहायीं-धोयीं, सुन्दर-सुन्दर कपड़े और आभूषण पहनकर फर्श पर उनके ध्यान में मग्न होकर बैठ गयीं। फिर वे उठीं नहीं। धन्य थे भाई बालमुकुन्द और धन्य श्रीमती रामरखी। उन्होंने हिन्दुस्तानी क्रान्ति को कितना सुन्दर बना दिया।

अगस्त, 1928 / 'किरती'

आजादी की भेंट, शहादतें!!

दिल्ली-केस के शहीद!

पिछली बार हमने दिल्ली-साजिश का कुछ हाल भाई बालमुकुन्द जी के जीवन से दिया। भाई बालमुकुन्द जी, जैसा कि पिछली बार बताया गया था, गिरफ्तारी के समय महाराजा जोधपुर के लड़कों को पढ़ाते थे। एक दिन मोटर में राजकुमार के साथ बैठे सैर को जा रहे थे कि अंग्रेज अधिकारी उनके गिरफ्तारी के वारण्ट लेकर पहुँच गया। वहीं गिरफ्तार कर लिये गये। वही आपके घर की तलाशी ली गयी। सरकारी गवाह दीनानाथ ने पहले ही जो बयान दिया था, उसके मुताबिक भाई बालमुकुन्द जी पंजाब के नेता चुने गये थे और उन्हें दो बम दिये गये थे। दीनानाथ के कथनानुसार वे दो बम भाई बालमुकुन्द जी के पास ही थे। कहीं लौटाये नहीं गये। इसी खयाल में घर की तलाशी हुई। सारा घर कमर तक खोद डाला गया। छतें उधेड़ दी गयीं, लेकिन बम नही मिले। खैर! उनके पास से कोई कागज-पत्र भी ऐसा-वैसा नहीं मिला, जिससे कोई खास सबूत मिल सकता, लेकिन फिर भी उन्हें फाँसी की सजा मिली। भाई बालमुकुन्द जी पहले लाला लाजपतराय के अछूतों के कार्यक्रम में काम करते रहे थे और पहाड़ों में जहाँ कि छूतछात बहुत मानी जाती है, वहीं वे प्रचार के लिए निकल गये थे। वहाँ के उनके साथी उनकी योग्यता की बड़ी प्रशसा करते है।

मास्टर अमीरचन्द जी

इस केस में चार आदमियों को फाँसी की सजा हुई थी। उनमें से मास्टर अमीरचन्द जी कोई 50 साल की उम्र के थे। वे बड़े लायक और योग्य आदमी थे। आप दिल्ली के रहनेवाले थे। उच्च शिक्षा प्राप्त थे। बड़े धर्मात्मा थे। मिशन स्कूल, दिल्ली में पढ़ाते थे। आपके दिल में हिन्दुस्तान की उन्नति का बहुत ख्याल था। आप उर्दू और अंग्रेजी के बड़े अच्छे लेखक थे। पहले जब स्वामी रामतीर्थ पंजाब में आये तब आपने उनके धार्मिक और देशभक्तिपूर्ण विचारों का प्रचार बड़े जोरों से किया। आपने 'खतूते राम' आदि कई पुस्तकें छपवायीं। बाद में लाला हरदयाल जी एम. ए. अपनी छात्रवृत्ति छोड़ विलायत से अंग्रेजी शिक्षा का बहिष्कार कर भारत लौट आये। आपने यहाँ आकर एक तरह के संन्यासी वालंटियर पैदा करने का विचार किया और उन्होंने बहुत-से विद्यार्थियों को शिक्षा से हटाया और उन्हें साथ लेकर संन्यासी जीवन व्यतीत करने लगे। 1908 के आखिर में ही लाला हरदयाल को हिन्दुस्तान छोड़कर चले जाना पड़ा। सरकार कहती है कि जब वे जाने लगे तो उन्होंने अपनी सम्पत्ति मा. अमीरचन्द जी के हवाले कर दी,

जिन्होंने कि उनकी शिक्षा जारी रखी। पहले-पहल दीनानाथ और जितेन्द्रनाथ चटर्जी उनके पास गये। बाद में अवधबिहारी आदि से उनका परिचय हुआ। लेकिन असल में तो अवधबिहारी पहले ही दिल्ली के रहनेवाले थे और पहले से ही परिचित थे। खैर!

मास्टर अमीरचन्द बड़े जिन्दादिल, बड़े नेकदिल और कट्टर आजादी-परस्त थे। आप कहा करते थे कि दिल्ली में 'बन्दर मास्टर' का घर पूछते ही मेरा घर मिल जायेगा।

दिल्ली में वाइसराय पर बम चल गया, लेकिन सरकार हाथ मलती रह गयी। कुछ भी पता न चला। बाद में एक बम लाहौर लारेंस गार्डन में चल गया, लेकिन उसका भी कुछ पता न चला। आखिर राजा बाजार, कलकत्ता की तलाशी में श्री अवधबिहारी का नाम व पता निकल आया। मा. अमीरचन्द को पहले ही शक की निगाह से देखा जाता था। अवधबिहारी उन्हीं के पास रहते थे।

एक दिन अवधबिहारी की तलाशी हुई। बम की टोपी मिल गयी और लाहौर का एक पत्र मिल गया, जिस पर कि मेहरसिंह की ओर से एम. एस. आई. दस्तखत किये गये थे। पूछने पर आपने बता दिया कि यह खत दीनानाथ की ओर से है। दीनानाथ की गिरफ्तारी की गयी। वह फूट पड़ा और उसने वह सारा भेद खोल दिया। उसने बताया कि लारेंस गार्डन का बम श्री अवधबिहारी और वसन्तकुमार ने रखा था। खैर, मुकदमा चला।

मास्टर अमीरचन्द ने अपने भतीजे सुल्तानचन्द को उत्तराधिकारी बनाया था और उससे अपने पुत्रों-जैसा प्यार करते थे। उसे अपनी इच्छानुसार शिक्षा देते थे। देशभक्त बनाना चाहते थे। आप पर मुकदमा चला। वही पुत्र आपके खिलाफ गवाह बन गया। जरा सोचो बेचारे मास्टर अमीरचन्द जी के बारे में, जिसे अपना पुत्र बनाया था वही सरकारी गवाह बनकर आपके खिलाफ गवाही दे रहा है! कैसी दर्दनाक स्थिति है। आज जब मुसीबत का समय आया तो अपने दिल का टुकड़ा अपना पुत्र भी साथ न दे सका। उर्दू के एक शायर ने क्या खूब कहा है—

बागबाँ ने आग दी जब आशियाने को मेरे,
जिनपे तकिया था, वही पत्ते हवा देने लगे!

मुकदमा चलता रहा। गवाह भुगतते रहे। सबूत मिला कि वह एक साजिश के सदस्य भी हैं और चूँकि वह बड़े लायक और बुद्धिमान हैं, इसलिए हत्या आदि करने की साजिश के लिए नौजवानों को बरगला सकते हैं और—

"One who spent his life furthering murderous schemes which he was too timid to carry out himself."

[यानी] हत्या का प्रचार करने में जिसने अपनी पूरी ज़िन्दगी लगा दी, उसके बारे में वह स्वयं साहसहीन था।

उन्हीं दिनों तख्ता पलट पार्टी की ओर से Liberty (आजादी) नाम का एक पर्चा बाँटा जाता था। एक पर्चे का मसौदा मास्टर जी के हाथ का लिखा उनके घर में मिल गया। उसमें ऐसे वाक्य आपत्तिजनक माने गये—

We are so many that we can seize and snatch from them their cannon.

Reforms will not do. Revolution and a general massacre of all the foreigners specially the English will and alone can serve our purpose.

यानी, हम संख्या में इतने हैं कि हम उनकी तोपें छीन सकते हैं। यह सड़े सुधार या योजनाएँ किसी काम नहीं आयेंगी। एक बार तख्ता पलट दो और फिरंगी को मार खत्म करो। खैर, इन्हीं वाक्यों के कारण ही उन्हें बड़ा खूँखार कातिल समझा गया और कहा गया।

आपके चरित्र सम्बन्धी कैनन आलनट और मिस्टर एस. के. रुद्र आदि बतौर गवाह पेश हुए। उन्होंने आपकी बहुत तारीफ की, लेकिन जज लिखता है कि मास्टर अमीरचन्द लामिसाल देशभक्त, बड़े नेक, दर्दमन्द और ऊँचे चरित्र के थे।

मतलब यह है कि आपको उस केस में फाँसी की सजा दी गयी। आपने हँसते हुए सुनी और आखिर में बड़ी हँसी-खुशी से फाँसी पर लटककर जान दे दी।

मि. अवधबिहारी

आप बड़े होनहार नौजवान थे। बी. ए. पास कर सेण्ट्रल ट्रेनिग कालेज, लाहौर से बी. टी. पास की। आप पर कई लिबर्टी पर्चे लिखने का आरोप था। आपको यू. पी. और पंजाब की पार्टी का प्रमुख नियत किया गया था। 'बन्दी जीवन' के लेखक श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने आपकी बड़ी तारीफ की है। कहते हैं कि आप बड़े जिन्दादिल थे और आमतौर पर गुनगुनाते रहते थे—

एहसान नाखुदा का उठाये मेरी बला,
किश्ती खुदा पे छोड़ दूँ लंगर को तोड़ दूँ।

इस शेर से ही पता चलता है कि वे कितने मस्ताने वीर थे। आप पर पर्चे लिखने और लारेंस गार्डन में बम चलाने का आरोप था। आपको भी फाँसी की सजा हुई। आपने बड़ी खुशी से सुनी। कहते हैं कि फाँसी लगने के दिन आपसे पूछा गया, "आखिरी इच्छा क्या है?"

जवाब दिया, "यही कि अंग्रेजों का बेड़ा गर्क हो।"

कहा गया, "शान्त रहो। आज तो शान्ति से प्राण दो।" कहनेवाला एक अंग्रेज

था। उससे आपने कहा, "देखो जी! आज शान्ति कैसी? मैं तो चाहता हूँ कि आग भड़के। चारों ओर आग भड़के। तुम भी जलो, हम भी जलें। हमारी गुलामी भी जले। आखिर में हिन्दुस्तान कुन्दन बनकर रहे।" आपने झट उछलकर स्वयं गले में फाँसी का फन्दा डाल लिया। इस तरह वह वीर भी आजादी-देवी के चरणों में अपने प्राण बलिदान कर गया।

जज आपके बारे में लिखता है—

"Awadh Behari is a youngman of great intellectual ability. He stood second in the Ist division of the Punjab University B. T. Examination."

कि अवधबिहारी (25 वर्ष का) नौजवान है और बहुत ही योग्य है। वह पंजाब विश्वविद्यालय की बी. टी. की परीक्षा में पंजाब-भर में दूसरे स्थान पर रहा है। उनके खिलाफ यह सबूत भी पेश हुआ कि आपके साथ मास्टर अमीरचन्द का बहुत प्रेम भी इस बात का प्रमाण है कि वे साजिश के सदस्य थे और प्रेम का सबूत यह है कि आपको मास्टर अमीरचन्द जी [ने] 'Dear Awadhji' (प्यारे अवध जी) लिखा था।

श्री बसन्तकुमार बिस्वास

आप नदिया जिला (बंगाल) के रहनेवाले नौजवान थे। आपकी उम्र 23 वर्ष थी। अच्छे पढ़े-लिखे सज्जन थे। पहले आपको रासबिहारी अपने साथ ले आये व अपने घर में कर्मचारी बनाकर रखा। बाद में आपको लाहौर भेज दिया गया और वहाँ वह पापुलर डिस्पेन्सरी में कम्पाउण्डर भरती हो गये। दिल्ली में बम के दिनों आप लाहौर से कई दिन गायब रहे।

कहा जाता है कि लारेंस गार्डन का बम आपने ही अवधबिहारी के साथ मिलकर रखा था। बाद में आप दो और बम लाये, जोकि दीनानाथ के कथनानुसार भाई बालमुकुन्द के पास थे। दिसम्बर, 1913 में आप बंगाल लौट गयें और 1914 में वहीं से पकड़कर लाहौर लाये गये। ओडायर को दिल्ली में बम चलानेवालों का पता न चलने से बड़ा गुस्सा आ रहा था, इसीलिए जब आपको उम्रकैद की सजा हुई तो उन्होंने सजा बढ़ाने की अपील की। ओडायर ने खुद माना है कि उसने भी सजा बढ़ाने की सिफारिश की। चीफ कोर्ट के जज ने लिखा है कि कहा जाता है, वह कोई बहुत बुद्धिमान आदमी नहीं था। साधारण बुद्धि का आदमी था, इसलिए उसे टूल बनाकर उससे काम लिया जाता था और वह रासबिहारी के हाथों में खेलता था। यह गलत है। वह लिखता है—

"He is not a boy, for at 23 an Indian has long reached maturity...... He looked to me a man of some force of character, without the familiar marks of weakness in his face."

यानी वह लड़का नहीं, 23 वर्ष की उम्र में हिन्दुस्तानी पूरा आदमी हो जाता है। वह बड़ा दिलेर, समझदार और दिल का मजबूत आदमी है। उसके चेहरे पर कोई कमजोरी के निशान नजर नहीं आते।

और इस सवाल पर कि आपका केन्द्रीय कमेटी में कोई जिक्र नहीं है, इसलिए उन्हें बड़ा मामूली आदमी समझकर टूल बनाया गया था, जज कहता है—

"Basant Kumar Biswas had a long training and was quite ready for anything, though he was kept purposely outside of the inner circle, so that, if caught, he would not be able to give much information to his captors."

यानी, बसन्त कुमार को चूँकि बहुत दिनों से सारा काम सिखाया गया था, इसलिए उसे सिर्फ किसी खतरनाक काम के लिए ही अलग रखा गया था, ताकि यदि कहीं पकड़ा भी जाये तो ज्यादा खबरें न दे सके।

खैर! चीफ कोर्ट के जज ने आपको फाँसी की सजा सुना दी, और आपने बड़ी खुशी से सुनी। एक बात खास काबिले-गौर है कि आपके मुकदमे के लिए बंगाल से एक वकील मि. सेन आया था, जबकि हमारे लोगों का यह हाल था कि महात्मा हंसराज को एक और आदमी, जिसका पुत्र इनके लड़के बलराज के साथ इसी मामले में पकड़ा हुआ था, मिलने आया ताकि मुकदमे सम्बन्धी सलाह कर सके। महात्मा जी के मकान से उसे धक्के मार बाहर निकाल दिया गया और आर्यसमाज के लाईफ मेम्बर या जिन्होंने अपनी पूरी उम्र आर्यसमाज को दे दी थी, ने भी उनकी कोई मदद न की। यह बात जरा खास काबिले-गौर है।

सर माइकल ओडायर कहता है कि फाँसी लगने से एक दिन पहले बसन्त कुमार ने मान लिया था कि दिल्ली में वाइसराय के ऊपर बम उसने ही फेंका था। क्या जाने सच है या नहीं। जो भी हो, आखिर इनमें से ही किसी का काम था।

आपने भी बड़ी वीरता से फाँसी पर लटककर अपने प्राण देश और कौम की आजादी के लिए बलिदान कर दिये।

सितम्बर, 1928 / 'किरती'

मार्शल लॉ के बहादुर शहीद

शहीद खुशीराम !

1919 का वर्ष भी हिन्दुस्तान के इतिहास में हमेशा ही याद रहेगा। ताजी-ताजी लड़ाई खत्म हुई थी। हिन्दुस्तानियों और विशेषतः पंजाबियों ने प्राणों पर खेलकर अंग्रेजों को जीत हासिल करवाई थी, लेकिन अहंकारी अंग्रेजों ने अहसान का खूब बदला चुकाया। रोल्ट-एक्ट पास कर दिया। तूफान मच गया। पंजाब में तो खासतौर पर जोश बढ़ गया। पंजाब में तो अभी पिछले युद्ध की याद ताजा थी, उन्हें रोल्ट-एक्ट देखकर हद दर्जे की हैरानी हुई। हड़तालें, जुलूस व मीटिंगें होने लगीं। जोश बहुत बढ़ा। नौबत जलियाँवाला और मार्शल लॉ तक की आ गयी।

लोग डर गये। कौन कहता था कि निहत्थों पर भी गोली चलायी जा सकती है। आम लोगों ने गिरते-पड़ते पीठ में ही गोलियाँ खायीं। लेकिन उनमें भी श्री खुशीराम जी शहीद ने छाती पर गोलियाँ खा-खाकर कदम आगे ही बढ़ाया और बहादुरी की लाजवाब मिसाल कायम कर दी।

आपका जन्म 27 सावन, संवत् 1957 में गाँव सैदपुर, जिला झेलम में लाल भगवानदास के घर हुआ था। आपकी जाति अरोड़ा थी। पैदा होने पर आपकी जन्म-पत्री बनायी गयी और बताया गया कि यह बालक बड़ा बहादुर और तगड़ा होगा और इसका नाम भी खूब प्रसिद्ध होगा। इसलिए उस समय आपका नाम श्री भीमसेन रखा गया, लेकिन बाद में आप श्री खुशीराम के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। आप अभी बहुत छोटे ही थे, जब आपके पिता का देहान्त हो गया। आपका खानदान बहुत गरीब था और आपका पालन-पोषण लाहौर नवाँकोट अनाथालय में हुआ था। वहीं पहले-पहल आपकी शिक्षा शुरू हुई। वक्त गुजरता चला गया। आप फिर डी. ए. वी. कालिज, लाहौर में पढ़ने लगे। 1919 में 19 वर्ष की आयु में आपने पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा दी थी और छुट्टियाँ बिताने जम्मू चले गये।

सुना कि तीस मार्च के बाद महात्मा गाँधी जी ने आदेश दिया कि 3 अप्रैल को देश-भर में हड़ताल की जाय और जलसे-जलूस निकाले जायें। आप भी लाहौर पहुँचे। आकर पूरी तरह काम को सफल बनाने का प्रयत्न करने लगे। कालेजों के लड़कों ने नंगे सिर बड़े-बड़े जुलूस 'हाय-हाय रोल्ट एक्ट' कहते हुए निकाले थे। यह सब आपके ही यत्नों का फल था। दो-चार दिन बड़ी रौनक रही। 12 अप्रैल को बादशाही मस्जिद, लाहौर में जलसा हुआ। भीड़ का कोई शुमार न था। हजारों आदमी थे। गर्मागर्म भाषण हुए। धुआँधार भाषणों के बाद जलूस बनाकर लोग शहर को चल पड़े। हीरामण्डी जब पहुँचे और शहर में घुसने लगे, उसी समय नवाब मुहम्मद अली सेना के साथ आगे तैनात था। उसने हुक्म दिया कि जुलूस भंग कर दो। लेकिन वे दिन बड़े

अजीब थे। श्री खुशीराम आगे-आगे झण्डा उठाये जा रहे थे। कहा, ''यह जुलूस कभी वापस नहीं लिया जा सकता और जुलूस की शक्ल में ही शहर में घुसेगा।'' नवाब ने हवा में गोली चला दी। लोग भाग छूटे। शेरमर्द लाला खुशीराम ने गरजकर एक बार तो लोगों को खूब लानत दी। कहा, ''तुम्हें शर्म नहीं आती इस तरह गीदड़ों की तरह भागते हो।'' लोग एकत्र हो गये। लाला खुशीराम आगे जा रहे थे। नवाब ने फिर गोली चलायी। इस बार गोली हवा में नहीं, बल्कि सीधे महाशय खुशीराम की छाती में लगी। गोली लगी, आप जख्मी शेर की तरह झपटकर आगे बढ़े। और गोली लगी तो आप और आगे बढ़े। एक-एक कर सात गोलियाँ छाती में लगीं, लेकिन खुशीराम का कदम आगे-ही-आगे बढ़ता चला गया। आखिर आठवीं गोली माथे के दायीं ओर और नवीं बायीं ओर आ लगी। शेर तड़पकर गिर पड़ा। खुशीरान सदा की नींद सो गये, लेकिन आज उनका नाम जिन्दा है। उनकी बहादुरी व हिम्मत आज भी उसी तरह ताजा है। खैर!

आपकी लाश का बड़ा भारी जुलूस निकला। आम ख्याल किया जाता है कि कम-से-कम पचास हजार लोग इस जुलूस में शामिल थे।

इस तरह उस वीर ने अपने और अपने राष्ट्र के गौरव के लिए प्राणों की बाजी लगा दी और अपना नाम अमर कर गया। कुछ वर्षों बाद एक कवि ने एक बड़ी दर्द-भरी कविता लिखी थी, जिसका एक मिसरा यों है—

हाय! खुशीराम की बरसी मनाई न गयी!
क्या खुशीराम की मौत को हम भूल गये?
उसके मकसद पे चढ़ाने को हम भूल गये।

अक्तूबर, 1928 / 'किरती'

स्वाधीनता के आन्दोलन में पंजाब का पहला उभार

[भगतसिंह ने जेल में बहुत कुछ लिखा था। मैं नास्तिक क्यों?, समाजवाद का आदर्श, दि डोर टु डेथ आदि। उनमें से एक पंजाब की राजनीतिक जागृति का इतिहास भी था, जिसका निम्नलिखित अंश 1931 में लाहौर के साप्ताहिक 'बंदेमातरम्' में क्रमशः छपा था। यह उर्दू अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर है।—सं.]

पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर सर माइकेल ओडायर ने अपनी पुस्तक 'India as I saw' में एक अप्रिय किन्तु साथ ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सच्चाई को प्रकट किया है। उन्होंने कहा है कि पंजाब राजनैतिक हलचलों में सबसे पीछे है। पंजाब के राजनैतिक आन्दोलनों का

जिन्हे थोड़ा-सा भी ज्ञान है, वह इस सच्चाई को भली प्रकार समझ सकते हैं।

आज तक का इतिहास देखिए। भारत को स्वाधीन करने के लिए सर्वाधिक बलिदान इस प्रा त ने किया है। इसके लिए बड़े भारी-भारी संकट इस प्रान्त की जनता को सहन करने प ; हैं। राजनैतिक, धार्मिक आदि आन्दोलनों में पंजाब भारत के अन्य प्रान्तों से आगे रहा है, और देश के लिए जानो-माल की कुर्बानी सबसे ज्यादा इसी सूबे के लोगों ने दी है, किन्तु इस पर भी हमें सिर झुकाकर यह स्वीकार करना पड़ता है कि राजनैतिक क्षेत्र में पंजाब सबसे पीछे है।

इसका कारण केवल यह है कि राजनैतिक आन्दोलन यहाँ की जनता के व्यक्तिगत जीवन का एक आवश्यक अंग नहीं बन सका। साहित्यिक क्षेत्र में भी इस प्रान्त ने यथायोग्य स्थान प्राप्त नहीं किया। शिक्षित वर्ग के लिए उस समय तक—ओडायर के इस पुस्तक के लिखने तक—स्वदेश की स्वाधीनता का प्रश्न सबसे अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण नहीं बना था, इसलिए बहुधा कहा जाता है कि यह सूबा बहुत पीछे है। हिन्दुस्तान में और भी बहुत-से ऐसे सूबे हैं जो पंजाब से बहुत पीछे हैं, किन्तु खेद है कि यह अभागा सूबा इस प्रका के आरोप सहकर भी पीछे ही है।

पंजाब की विशेष अपनी कोई भाषा नहीं। भाषा न होने के कारण साहित्य-सृजन के क्षेत्र में भी कोई प्रगति नहीं हो सकी। अतः शिक्षित समुदाय को पश्चिमी साहित्य पर ही निर्भर रहना पड़ा। इसका खेदजनक परिणाम यह हुआ कि पंजाब का शिक्षित वर्ग अपने प्रान्त की राजनैतिक हलचलों से अलग-थलग-सा रहता रहा। इसी कारण पंजाब के साहित्य और कला-क्षेत्र में राजनीति को स्थान नहीं मिल सका। यही कारण है कि पंजाब में ऐसे कार्यकर्ता इने-गिने ही हैं, जो अपना सम्पूर्ण जीवन राजनीति को दे सके हैं। इसी आधार पर इस प्रान्त पर ऐसे आरोप लगाये जाते हैं। अपने प्रान्त की इस कमी की ओर प्रान्तीय नेताओं और पुरुष समाज का ध्यान आकर्षित करना ही इन लेखों का उद्देश्य है।

गुरु रामसिंह जी के नेतृत्व में हुए कूका विद्रोह से लेकर आज तक पंजाब में जो भी आन्दोलन हुए और जिस प्रकार जनता में चेतना आयी, उससे वह स्वतन्त्रता की वेदी पर अपना सर्वसुख न्यौछावर करने के लिए तैयार हो गयी। इनमें जिन व्यक्तियों ने अपने प्राणों का बलिदान दिया, उनका जीवन-चरित्र तथा इतिहास प्रत्येक स्त्री-पुरुष के साहस को बढ़ानेवाला है जिससे वह अपने अध्ययन और अनुभवों के प्रकाश में भावी आन्दोलनों को भी भली प्रकार चला सकेंगे। इस इतिहास को लेखबद्ध करने में मेरा यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि भविष्य में भी ठीक इसी प्रकार के आन्दोलन सफल हो सकेंगे। मेरा उद्देश्य तो केवल यह है कि जनता उन शहीदों की कुर्बानियों और उनके आजीवन देश-सेवा में लगे रहने से प्रेरणा प्राप्त करे और उनका अनुकरण करे। समय आने पर किस तरह कार्य करना होगा, इसका फैसला देश की तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए

कार्यकर्ता स्वयं कर सकते हैं।

पंजाब में राजनैतिक हलचलें कैसे प्रारम्भ हुईं?

सन् 1907 से पूर्व पंजाब में बिल्कुल ही खामोशी थी। विद्रोह (कूका विद्रोह) के बाद कोई ऐसा राजनैतिक आन्दोलन नहीं उठा जो शासकों की नींद खोल सकता। 1908 में पंजाब में पहली बार कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। किन्तु उस समय कांग्रेस के कार्य का आधार शासकों के प्रति वफादारी प्रकट करना था। इसलिए राजनैतिक क्षेत्र में उसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा। सन् 1905-6 में बंगाल-विभाजन के विरुद्ध जो शक्तिशाली आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था और स्वदेशी के प्रचार तथा विदेशी के बहिष्कार की जो हलचल प्रारम्भ हुई थी, इसका पंजाब के औद्योगिक जीवन तथा साधारण जनता पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। उन दिनों यहाँ भी (पंजाब) स्वदेशी वस्तुएँ, विशेषतः खांड तैयार करने का सवाल पैदा हुआ और देखते-देखते एक-दो मिलें भी खुल गयीं। यद्यपि सूबे के राजनैतिक जीवन पर इसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा, किन्तु सरकार ने इस उद्योग को नष्ट करने के लिए गन्ने की खेती का लगान तीन गुना कर दिया। पहले एक बीघे का लगान केवल 2.50 रुपये था, जबकि अब साढ़े सात रुपये देने पड़ते थे। इससे किसानों पर एक भारी बोझ आ पड़ा और वह एकदम हतबुद्धि-से रह गये।

नया कलोनी एक्ट

दूसरी ओर सरकार ने लायलपुर इत्यादि में कई नहरें खुदवाकर और जालन्धर, अमृतसर, होशियारपुर के निवासियों को बहुत-सी सुविधाओं का लालच देकर इस क्षेत्र में बुला लिया था। ये लोग अपनी पुरानी जमीन-जायदाद छोड़कर आये और कई वर्ष तक अपना खून-पसीना एक करके इन्होंने इस जंगल को गुलजार कर दिया। लेकिन अभी ये चैन भी न ले पाये थे कि नया कलोनी एक्ट इनके सर पर आ गया। यह एक्ट क्या था, किसानों के अस्तित्व को ही मिटा देने का एक तरीका था। इस एक्ट के अनुसार हर व्यक्ति की जायदाद का वारिस केवल उसका बड़ा लड़का ही हो सकता था। छोटे पुत्रों का उसमें कोई हिस्सा नहीं रखा गया था। बड़े लड़के के मरने पर वह जमीन या अन्य जायदाद छोटे लड़कों को नहीं मिल सकती थी, जिससे उस पर सरकार का अधिकार हो जाता था।

कोई आदमी अपनी जमीन पर खड़े वृक्षों को नहीं काट सकता था। उनसे वह एक दातुन तक नहीं तोड़ सकता था। जो जमीनें उनको मिली थीं उन पर वह केवल खेती कर सकते थे। किसी प्रकार का मकान या झोंपड़ा, यहाँ तक कि पशुओं को चारा डालने के

लिए खुरली तक नहीं बना सकते थे। कानून का थोड़ा-सा भी उल्लंघन करने पर 24 घण्टे का नोटिस देकर तथाकथित अपराधी की जमीन जप्त की जा सकती थी। कहा जाता है कि ऐसा कानून बनाकर सरकार चाहती थी कि थोड़े-से विदेशियों को तमाम जमीन का मालिक बना दिया जाये और जमीन के हिन्दोस्तानी काश्तकार उनके सहारे पर रहें। इसके अतिरिक्त सरकार यह भी चाहती थी कि अन्य प्रान्तों की भाँति पंजाब में थोड़े-से बड़े-बड़े जमींदार हों और बाकी निहायत गरीब काश्तकार हों। इस प्रकार जनता दो वर्गों में विभक्त हो जाये। मालदार कभी भी और किसी भी हालत में सरकार-विरोधियो का साथ देने का साहस नहीं कर सकेंगे और निर्धन कृषकों को, जो दिन-रात मेहनत करके भी पेट नहीं भर सकेंगे, इसका अवसर ही नहीं मिलेगा। इस प्रकार सरकार खुले हाथों जो चाहेगी, करेगी।

अशान्ति के बीज

उन दिनों उत्तर प्रदेश और बिहार वगैरह सूबों में किसानों की हालत ऐसी ही है [थी] लेकिन पंजाब के लोग जल्द ही सँभल गये। सरकार की इस नीति के विरुद्ध उन्होंने जबरदस्त आन्दोलन प्रारम्भ किया। रावलपिण्डी की तरफ भी इन दिनों ही नया बन्दोबस्त खत्म हुआ था और लगान बढ़ाया गया था। इस प्रकार सन् 1907 के शुरू में ही अशान्ति के समस्त कारण उपस्थित थे। इस वर्ष के शुरू में ही पंजाब के गवर्नर सर डाँकिज़ल ऐबिटसन ने कहा भी था कि इस समय यद्यपि प्रकट रूप से तो शान्ति है, किन्तु जनता के हृदय में असन्तोष बढ़ता जा रहा है।

इन दिनों देश-भर में एक खामोशी छायी हुई थी। 'ठहरो और देखो' की मनःस्थिति में जनता थी। यह खामोशी तूफान आने से पहले की शान्ति थी। बेचैनी पैदा होने के सभी कारण उपस्थित थे, विशेषतः पंजाब में तो ऐसी परिस्थितियाँ थीं कि अशान्ति उत्पन्न हो जाना सर्वथा उचित और आवश्यक ही था।

सन् 1906 की कांग्रेस

1906 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। दादा भाई नौरोजी उसके सभापति थे। इस अधिवेशन में उन्होंने सर्वप्रथम अपने भाषण में 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण किया। British Parliament के अपने निजी अनुभवों के आधार पर स्व. दादा भाई ने कहा था कि यदि हम कुछ प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपने अन्दर ताकत पैदा करनी होगी। अपने पाँवों के बल पर ही हमें खड़ा होना होगा, पत्थरों की तरह स्थिर दृष्टि से देखते-भर रहने से ही काम नहीं चलेगा।

लाला लाजपत राय

ठीक यही बात एक वर्ष पूर्व बनारस के कांग्रेस अधिवेशन में पंजाब केसरी लाला लाजपत राय जी ने कही थी। पूज्य लाला जी कांग्रेस के प्रधान स्वर्गीय गोखले के साथ एक डेपूटेशन में इंग्लैण्ड भेजे गये थे। वहाँ से लौटकर उन्होंने एक बहुत ही गरम भाषण दिया था।

लोकमान्य तिलक

1906 के कांग्रेस अधिवेशन में लोकमान्य तिलक का बोलबाला था, नवयुवक समुदाय उनकी खरी और स्पष्ट बातों के कारण उनका भक्त बन गया था। उनकी निर्भीकता, कुछ कर गुजरने की भावना और बड़े-से-बड़े कष्ट सहने के लिए हर क्षण तैयार रहने के कारण नवयुवक उनकी ओर खिचे चले आ रहे थे। कांग्रेस अधिवेशन के अतिरिक्त कांग्रेस के पण्डाल से बाहर भी लोकमान्य के अनेक भाषण इस अवसर पर हुए थे।

सरदार किशनसिंह और स. अजीतसिंह

जो युवक लोकमान्य के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुए थे, उनमें कुछ पंजाबी नौजवान भी थे। ऐसे ही दो पंजाबी जवान किशनसिंह और मेरे आदरणीय चाचा स. अजीतसिंह जी थे।

'भारत माता' अखबार तथा मेहता नन्दकिशोर

स. किशनसिंह तथा स. अजीतसिंह ने वापस लाहौर आकर 'भारत माता' नामक एक मासिक पत्र का प्रकाशन करना आरम्भ किया और आदरणीय मेहता नन्दकिशोर को साथ लेकर अपने विचारों का प्रचार करना शुरू कर दिया। इनके पास न धन था और न धनी वर्ग से सम्पर्क ही था। किसी सम्प्रदाय के नेता या महन्त भी नहीं थे। अतः प्रचार-कार्य के लिए अपेक्षित सभी साधन स्वयं ही जुटाने पड़े। एक दिन घण्टी बजाकर बाजार में कुछ लोगों को जमा कर लिया और इस विषय पर भाषण देने लगे कि विदेशियों ने भारतीय उद्योग एवं व्यवसाय को किस प्रकार नष्ट किया है। वहीं यह भी एलान कर दिया कि आगामी रविवार को एक महत्त्वपूर्ण सभा 'भारत माता' के कार्यालय के पास, जो लाहौरी और शालामारी दरवाजे के मध्य स्थित है, होगी। पहली सभा पापड़ मण्डी में, दूसरी लाहौरी मण्डी में हुई। तीसरी सभा में भाषणों से पूर्व एक पंजाबी नवयुवक ने बड़ी ही मर्मस्पर्शी तथा देशभक्तिपूर्ण भावनाओं से सराबोर एक नज्म पढ़ी, जिसकी श्रोताओं ने बहुत प्रशंसा की। अब यह नौजवान भी

इसी दल में सम्मिलित हो गये। यह नौजवान पंजाब के प्रसिद्ध राष्ट्रकवि लाला लालचन्द 'फलक' थे, जो आज तक अपनी उत्साहपूर्ण कविताओं से देश को जगाते रहे हैं। इसी सप्ताह लाला पिण्डीदास जी तथा डा. ईश्वरी प्रसाद जी इत्यादि कुछ और सज्जन भी इस दल में सम्मिलित हो गये। इन सबके दल में आने से 'अंजुमन मुहिब्बताने वतन' के नाम से एक संस्था बनायी गयी, जो बाद में 'भारत माता सोसाइटी' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

आगामी रविवार को फिर एक सार्वजनिक सभा होनेवाली थी। उसी दिन लाहौर में श्रीमती ऐनी बीसेण्ट के भाषण का भी आयोजन था। कुछ मित्रों ने परामर्श दिया कि इस अवसर पर भारत माता सोसाइटी भंग कर दी जावे, किन्तु यह परामर्श स्वीकार नहीं किया गया और न अपनी सभा को ही स्थगित करना उचित समझा। आखिर सभा हुई तो उपस्थिति पर्याप्त थी। इसी सभा में यह घोषणा कर दी गयी कि प्रत्येक रविवार को सभा हुआ करेगी और इस संस्था के प्रधान स. अजीतसिंह तथा सेक्रेट्री मेहता नन्दकिशोर चुने गये हैं।

जाटों की सभा

एक-दो मास तक इसी प्रकार प्रचार होता रहा। एक दिन लाहौर और अमृतसर क्षेत्र के जाट कृषकों ने लगान बढ़ाये जाने के विरुद्ध एक सभा करने का निश्चय किया। अजमेरी दरवाजे के बाहर रतनचन्द की सराय में यह सभा आयोजित की गयी थी, किन्तु जब जाट लोग जमा हो गये तो डी. सी. ने रतनचन्द के लड़के को बुलाकर जायदाद जब्त कर लेने की धमकी दी। इस पर रतनचन्द के लड़के ने वहाँ एकत्र हुए किसानों को अपनी सराय से बाहर निकाल दिया। इस स्थिति में किसानों ने नगर के नेता माने जानेवाले सज्जनों से सम्पर्क स्थापित किया, किन्तु वहाँ से भी उन्हें साफ जवाब मिला। हर ओर से मायूस होकर वे बेचारे म्युनिसिपल गार्डन में जा बैठे। इसी बीच 'भारत माता सोसाइटी' के सदस्यों को इसकी सूचना मिली और वह इन लोगों को अपने स्थान पर ले आये। सोसाइटी के पास एक कमरे के अतिरिक्त एक विशाल मैदान भी था। इस मैदान में दरियाँ बिछाकर शामियाना लगवा दिया गया और एक ओर उन किसानों के भोजन के लिए लंगर का प्रबन्ध कर दिया गया। इससे किसानों का उत्साह बहुत बढ़ गया और फिर पूरे एक सप्ताह प्रतिदिन वहीं सभाएँ हुईं, जिनमें निर्भीक भाषण दिये गये। इस सभा में आम किसानों का उत्साह देखकर 'भारत माता सोसाइटी' के सदस्यों का हौसला और भी बढ़ गया।

इसके बाद देहातों के दौरे का कार्यक्रम बनाया गया, जिससे किसानों को लगानबन्दी के लिए तैयार किया जा सके। यह सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा थी और जनता में जोश इतना था कि इस संघर्ष में वह अपना सर्वस्व दाँव पर लगा देने के लिए तत्पर रहती थी।

सूफी अम्बाप्रसाद

ठीक इन्हीं दिनों भारत माता सोसाइटी में एक उच्च कोटि के देशभक्त, राजनीतिक और लेखक प्रविष्ट हुए। आपका नाम श्री सूफी अम्बाप्रसाद था। सूफी जी का जन्म सन् 1858 में मुरादाबाद में हुआ था। उर्दू के प्रभावशाली लेखक, हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक तथा स्वतन्त्रता के एक निर्भीक पुजारी थे। आपने एक साप्ताहिक निकाला था और इसके वर्ष-भर बाद ही राज-विद्रोह के अपराध में सवा दो वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। यह सजा काटकर आये तो साल-भर के भीतर-भीतर आपके खिलाफ दूसरा मुकदमा खड़ा कर दिया गया और इस बार आपको 6 वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। उन दिनों राज-विद्रोह में दण्ड पाये हुए कैदियों को बहुत खतरनाक माना जाता था और उनके साथ जेल में व्यवहार भी बहुत बुरा होता था। सन् 1906 में आप जेल से रिहा हुए और पंजाब में यह नयी राजनैतिक जागृति देखकर पंजाब चले आये। यहीं आकर आप 'हिन्दुस्तान' साप्ताहिक के सहकारी सम्पादक बनाये गये। आपके गर्मागर्म लेखों और सम्पादकियों में आपका नाम दिये जाने से अखबार के मालिकों को बड़ी घबराहट रहती थी। इस पर आपको उक्त अखबार से त्यागपत्र देना पड़ा। सबसे पहले आप जाटों की सभा में आये थे और फिर यहीं रह गये। बाद में तो सरदार अजीतसिंह से आपकी ऐसी घनिष्ठता हो गयी थी कि एक-दूसरे से अलग होना सर्वथा असम्भव हो गया।

इन्हीं दिनों लायलपुर में एक बहुत बड़ा मेला होनेवाला था। यह मेला 'मण्डी मवेशियाँ' के नाम से प्रसिद्ध था। इस मेले में लोग हजारों मवेशियों को खरीदने-बेचने के लिए सम्मिलित हुआ करते थे। इस वर्ष दैनिक 'जिमींदार' के मालिक मियाँ सिराजुद्दीन तथा एक-दो अन्य सज्जनों ने इस अवसर पर एक सभा करने का निश्चय किया। इसमें नये कलोनी एक्ट के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने थे। इस सभा में भाषण देने के लिए लाला जी को विशेष रूप से बुलाया गया था। भारत माता सोसाइटी के सदस्यों ने भी इस अवसर पर सभा करने का निश्चय किया। भारत माता सोसाइटी के सदस्य गरमदली थे, अतः वैधानिक रूप से आन्दोलन चलाने का विचार रखनेवाले सज्जन इससे थोड़े घबरा गये। भारत माता सोसाइटी की ओर से दो कार्यकर्ता वहाँ इस उद्देश्य से भेजे गये कि वे वहाँ पहुँचकर अपने अनुकूल परिस्थिति बना लें, जिससे एक-दो दिन बाद सरदार अजीतसिंह जी अपने अन्य साथियों के साथ पहुँचकर सफलता के साथ प्रचार कर सकें।

जिमींदार-सभा की ओर से जो पण्डाल लगा था उसमें ही दो-एक दिन भाषण देकर 'भारत माता सोसाइटी' के कार्यकर्ताओं ने जन-साधारण की सहानुभूति प्राप्त कर ली। उधर जिस दिन स्वर्गीय लाला जी लाहौर से रवाना हुए, उसी दिन स. अजीतसिंह जी ने भी वहाँ के लिए प्रस्थान किया। लाला जी ने स. अजीतसिंह से पुछवाया कि आपका भावी

कार्यक्रम क्या है ? अपने कार्यक्रम की सूचना भी लाला जी ने दी कि सरकार ने कलोनी एक्ट में जो थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया है उसके लिए सरकार का धन्यवाद देते हुए ये कानून को रद्द करने की माँग करेंगे ।

सरदार जी ने उत्तर में कहा—हमारा कार्यक्रम तो यह है कि जनता को लगानबन्दी के लिए तैयार किया जाय । साथ ही हमारे कार्यक्रम में सरकार के प्रति धन्यवाद को तो कोई स्थान मिल ही नहीं सकता ।

लाला जी और सरदार जी दोनों ही लायलपुर पहुँचे । स्वर्गीय लाला जी का विशाल जुलूस निकाला गया, जिसके कारण लगभग दो घण्टे में लाला जी पण्डाल में पहुँच पाये । लेकिन हमारे ऐसे भी लोग थे जो जुलूस में सम्मिलित न होकर सीधे पण्डाल में ही पहुँच गये थे और वहाँ भाषण आरम्भ हो गये थे । एक-दो छोटे-छोटे भाषणों के पश्चात स. अजीतसिंह जी ने भाषण दिया । आप बहुत ही प्रभावशाली व्याख्यानदाता थे । आपकी निर्भीक भाषण-शैली ने जनता को आपका भक्त बना दिया और श्रोतागण भी जोश में आ चुके थे । जिस समय इस सभा के आयोजक जुलूस को लेकर पण्डाल में पहुँचे, जनता 'भारत माता सोसायटी' के साथ हो चुकी थी । एक-दो नर्मदली नेताओं ने स. अजीतसिंह को बोलने से रोकने की कोशिश की थी, लेकिन श्रोताओं ने उनको ऐसी फटकार लगायी कि वह अपना-सा मुँह लेकर रह गये । इससे जनता के जोश में और भी वृद्धि हो गयी । एक किसान ने उठकर एलान कर दिया कि मेरे पास 10 मुरब्बे जमीन है, जिसे मैं आपकी सेवा में अर्पित करता हूँ, और अपनी पत्नी सहित देशसेवा के लिए तैयार हूँ ।

स. अजीतसिंह के पश्चात लाला लाजपतराय भाषण देने के लिए उठे । लाला जी पंजाब के बेजोड़ भाषणकर्ता थे, किन्तु उस दिन के वातावरण में वे जिस शान, जिस निर्भीकता तथा निश्चयात्मक भावनाओं के साथ बोले, उसकी बात ही कुछ निराली थी । लाला जी के भाषण की एक-एक लाइन पर तालियाँ बजती थीं और जय के नारे बुलन्द होते थे । सभा के पश्चात बहुत-से व्यक्तियों ने अपने को देश का कार्य करने हेतु अर्पित करने की घोषणा की ।

लायलपुर के डी. सी. भी वहाँ उपस्थित थे । सभा की कार्यवाही देखकर उन्होंने यह परिणाम निकाला कि यह सारा आयोजन एक षड्यन्त्र था । लाला लाजपत राय इन सबके गुरु हैं और नवयुवक स. अजीतसिंह उनका शिष्य है । सरकार का यह विचार बहुत दिनों तक बना रहा । सम्भवत: लाला जी और अजीतसिंह जी को नजरबन्द करने का भी यही कारण था ।

लाला जी के भाषण के बाद श्री बाँकेदयाल जी ने एक बहुत ही प्रभावशाली नज़्म पढ़ी, जो बाद मे अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी । यह नज़्म 'पगड़ी सँभाल ओ जट्टा' थी ।

लाला बाँकेदयाल पुलिस में सब-इंस्पेक्टर थे, और सरकारी नौकरी छोड़कर इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये थे । इस दिन नज़्म पढ़कर जब वह मंच से उतरे तो भारत

माता सोसायटी के कार्यकताओं ने उनको गले से लगा लिया।

लाहौर में हुए दंगे के बाद म्युनिसिपल बोर्ड ने एक प्रस्ताव पास किया था कि शहर में सभी कालेजों के प्रिंसिपलों से कहा जाय कि वे विद्यार्थियों को राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेने से रोकें और उन्हें छात्रावास से बाहर न जाने दें। जो विद्यार्थी उनकी आज्ञा का पालन न करे उसे कड़ा-से-कड़ा दण्ड दिया जाय।

इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक ने अपने मराठी पत्र 'केसरी' में एक जबरदस्त लेख लिखा था। लोकमान्य ने लिखा था कि इस दंगे पर किसे खेद और दुख न होगा? कौन चाहता है कि युवक थोड़े धैर्य से काम न लें? लेकिन म्युनिसिपल बोर्ड के इस प्रस्ताव का क्या आशय है? पचास वर्ष बाद आज देश के युवकों में थोड़ी-सी जागृति दिखायी दी है। उसे एक साधारण-से बलवे के कारण नष्ट करने का प्रस्ताव क्यों किया जाये? आज जब युवकों में देश-भक्ति की भावनाएँ उमड़ रही हैं और वे स्वाधीनता के लिए बेचैन हैं तो उनको प्रेम के साथ समझाना चाहिए कि वे अपनी शक्ति का इस प्रकार अपव्यय न करें।

जनता जोश में आकर जब कुछ कर गुजरती थी तो गरम दल की यही नीति होती थी। गरम दल के नेता जानते थे कि जब जनता में जागृति होती है, तो उसके साथ जोश और बेचैनी होना भी अवश्यम्भावी है। वे यह भी जानते थे कि फूँक-फूँककर कदम रखनेवाले महानुभाव स्वतन्त्रता के संघर्ष में अधिक समय तक नहीं टिक सकते। राष्ट्र के निर्माता तो नवयुवक ही हुआ करते हैं। किसी ने सच कहा है—

"सुधार बूढ़े आदमी नहीं कर सकते, क्योंकि वह बहुत ही बुद्धिमान और समझदार होते हैं। सुधार तो होते हैं युवक के परिश्रम, साहस, बलिदान और निष्ठा से, जिन्हे भयभीत होना आता ही नहीं और जो विचार कम तथा अनुभव अधिक करते हैं।"

ऐसा लगता है कि उस समय इस प्रान्त (पंजाब) के युवक इन भावनाओं से प्रभावित होकर ही स्वतन्त्रता संघर्ष में कूद पड़ते थे। तीन मास पहले जहाँ बिल्कुल खामोशी थी, वहाँ अब स्वदेशी और स्वराज्य का आन्दोलन इतना बलशाली हो गया कि नौकरशाही घबरा उठी। उधर लायलपुर इत्यादि जिलों में नये कलोनी एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था। वहाँ किसानों की हमदर्दी में रेलवे के मजदूरों ने भी हड़ताल की और उनकी सहायता के लिए धन भी एकत्रित किया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि अप्रैल के अन्त तक पंजाब सरकार घबरा गयी। पजाब के तत्कालीन गवर्नर ने भारत सरकार को अपने एक पत्र में यह सम्पूर्ण स्थिति बताते हुए लिखा था—"प्रान्त के उत्तरी जिलों में केवल शिक्षित वर्ग, और उनमें भी खासकर वकील तथा विद्यार्थी तबके तक ही नये विचार सीमित हैं, किन्तु प्रान्त के केन्द्र की ओर बढ़ते ही यह साफ नजर आता है कि असन्तोष और अशान्ति तेजी से बढ़ती जा रही है।" इसी पत्र में आगे चलकर उन्होंने लिखा था, "इन लोगों को (आन्दोलन के

नेताओं को) अमृतसर और फिरोजपुर में विशेष रूप से सफलता मिली है। रावलपिण्डी तथा लायलपुर की तरफ भी वे बेचैनी फैलाने में कामयाब हो रहे हैं। लाहौर का तो कहना ही क्या है।" पत्र के अन्त में कहा गया है, "कुछ नेता तो अंग्रेजों को देश से निकाल देने के मंसूबे बाँध रहे हैं। कम-से-कम वे हमें शासन से हटा देने की चेष्टा में अवश्य हैं। वे या तो शक्ति के द्वारा ऐसा करना चाहते हैं, या जनता और शासन के बीच असहयोग द्वारा! ऐसा वातावरण उत्पन्न करने के लिए वे उत्तरदायित्वहीन ढंग से अंग्रेजों के प्रति घृणा तथा द्वेष उत्पन्न कर देना चाहते हैं। वर्तमान स्थिति बहुत ही नाजुक है और शीघ्र ही हमें इसका कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करना चाहिए।"

4

अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास

[भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के अध्ययन के साथ-साथ भगतसिंह ने अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का भी पर्याप्त अध्ययन किया व उस पर मनन किया। इसी सिलसिले में 'किरती' में 'अराजकतावाद क्या है' आदि लेख व कुछ अनुवाद छपे थे। डेनब्रिन की आत्मकथा का भी उन्होंने अनुवाद किया था और यह अलग से पुस्तक रूप में छपा था। दुर्भाग्य से यह पुस्तक अब अनुपलब्ध है, लेकिन सम्भव है, भगतसिंह से सम्पर्क रखनेवाले, क्रान्तिकारी आन्दोलन के किसी बुजुर्ग समर्थक के पास इसकी कोई प्रति हो।

मई 1928 से 'किरती' में भगतसिंह ने अराजकतावाद पर यह लेखमाला शुरू की, जो अगस्त तक चलती रही। —सं.]

अराजकतावाद : एक

संसार में आज बहुत हलचल मची है। जाने-माने विद्वान दुनिया में शान्ति-स्थापना के कार्य में उलझे हैं लेकिन जिस शान्ति-स्थापना के प्रयास किये जा रहे हैं, वह अस्थायी नहीं वरन स्थिर, हमेशा स्थापित रहनेवाली शान्ति है। उस तक पहुँचने के लिए बड़े-बड़े महापुरुष अपना जीवन अर्पित कर गये और कर रहे हैं। लेकिन आज हम गुलाम हैं। हमारी निगाहें कमजोर हैं, हमारे दिमाग कुन्द हैं। हमारा मन कमजोर होकर रो रहा है। हम दुनिया की शान्ति के लिए क्या चिन्ता करें, अपने देश के लिए ही कुछ

नहीं कर पा रहे हैं। इसे अपनी बदकिस्मती ही कहें। हमें तो अपने दकियानूसी विचार ही तबाह कर रहे हैं। हम भगवान और स्वर्ग पाने के लिए आत्मा-परमात्मा के विलाप में फँसे हैं। यूरोप को हम तुरन्त ही भौतिकवादी कह देते हैं। उनके जो विचार हैं, उनकी ओर ध्यान ही नहीं देते। हम आध्यात्मिक रुझानवाले जो हैं! हम बड़े त्यागी जो हैं! हमें इस संसार की बातें ही नहीं करनी चाहिए! हमारी ऐसी दुरावस्था हो गयी है कि रोने को मन करता है। बीसवीं सदी में हालात सुधर रहे हैं। नौजवानों के सोच-विचार पर यूरोप के विचारों का कुछ-कुछ असर पड़ रहा है। और जो नौजवान दुनिया में कुछ तरक्की करना चाहते हैं उन्हें वर्तमान युग के महान तथा उच्च विचारों का अध्ययन करना चाहिए।

आज समाज में होनेवाले दमन के विरुद्ध कौन-सी आवाज उठ रही है और स्थायी शान्ति-स्थापना के लिए कैसे विचार उठ रहे हैं, उन्हें ठीक से समझे बिना इन्सान का ज्ञान अधूरा रह जाता है। आज हम संक्षेप में साम्यवाद और समाजवाद आदि अनेक विचारों के बारे में सुन रहे हैं। इन सबसे ऊँचा आदर्श अराजकतावाद ही समझा जाता है। यह लेख उसी अराजकतावाद के सम्बन्ध में लिखा जा रहा है।

जनता 'अराजकता' शब्द से बहुत डरती है। जब कोई व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता के लिए कहीं से पिस्तौल या बम लेकर निकलता है तो सभी नौकरशाह और उनके पिट्ठू 'अनार्किस्ट-अनार्किस्ट' कहकर दुनिया को डराते हैं। अनार्किस्ट एक बड़ा खूँखार व्यक्ति समझा जाता है, जिसके दिल में कि जरा भी दया न हो, जो रक्तपिपासु हो, नाश-महानाश देखकर जो झूम उठता हो। अनार्किस्ट शब्द इतना बदनाम किया जा चुका है कि भारत में राज-परिवर्तनकारियों को भी—जनता में घृणा पैदा करने के लिए—अनार्किस्ट कहा जाता है। डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त ने बंगला में लिखी पुस्तक 'अप्रकाशित राजनैतिक इतिहास' के प्रथम भाग में इसका जिक्र किया है कि हमें बदनाम करने के लिए सरकार भले ही अनार्किस्ट-अनार्किस्ट कहती रहे, वास्तव में वह राज-परिवर्तनकारियों की टोली थी। और अराजकतावाद तो एक बहुत ऊँचा आदर्श है। उस ऊँचे आदर्श तक तो हमारी साधारण जनता क्या सोचती, क्योंकि वह तो राज-परिवर्तनकारियों से आगे युगान्तकारी भी नहीं थे। वह लोग मात्र राज-परिवर्तनकारी ही थे। खैर।

हम चर्चा कर रहे थे कि अराजकतावादी शब्द बहुत बदनाम किया गया है। और स्वार्थी पूँजीपतियों ने जिस तरह 'बोल्शेविक', 'कम्युनिस्ट', 'सोशलिस्ट' आदि शब्द बदनाम किये हैं, उसी प्रकार इस शब्द को भी बदनाम किया। हालाँकि अराजकतावादी सर्वाधिक संवेदनशील मनवाले, सारी दुनिया का भला चाहनेवाले होते हैं। उनके विचारों के साथ भिन्नता रखते हुए भी उनकी गम्भीरता, जनता से स्नेह, त्याग और उनकी सच्चाई आदि पर किसी प्रकार की शंका नहीं हो सकती।

'अनार्किस्ट', जिसके लिए हिन्दी में 'अराजकतावादी' शब्द ही प्रयोग में लाया जाता

है, यूनानी भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है—एन = नॉट, आर्की = रूल, अर्थात शासनविहीन—किसी भी प्रकार से शासित न होना। इन्सान में पहले से ही अधिक-से-अधिक स्वाधीनता पाने की चाह रही है और बीच-बीच में पूर्ण स्वतन्त्रता, जोकि अराजकतावादी आदर्श है, से मिलता-जुलता विचार प्रकट हुआ। उदाहरण-स्वरूप काफी पहले एक यूनानी दार्शनिक ने कहा था—

We wish neither to belong to the governing class nor to the governed. [अर्थात] हम न शासक बनना चाहते हैं और न ही प्रजा।

मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान में विश्व-भ्रातृत्व और संस्कृत के वाक्य 'वसुधैव कुटुम्बकम् आदि में भी यही भाव है। अगर हम बहुत पुरानी मान्यताओं से किसी खास नतीजे तक न भी पहुँच सकें तो भी यह तो स्वीकारना पड़ेगा कि यह विचार उन्नीसवीं अर्थात पिछली सदी के आरम्भ में एक फ्रान्सीसी दार्शनिक प्रूद्धोन् ने स्पष्ट तौर पर जनता के समक्ष रखा और उसका खुलेआम प्रचार किया। इसलिए उन्हें अराजकतावाद का जन्मदाता कहा जाता है। उन्होंने इसका प्रचार आरम्भ किया। बाद में एक रूसी बहादुर, बैकुनिन ने इसके प्रसार और सफलता के लिए काफी काम किया। बाद में जॉन मास्ट प्रिंस क्रॉपाटकिन-जैसे अनेक अराजकतावादियों ने जन्म लिया। आजकल अमेरिका में श्रीमती एमा गोल्डमैन और अलेक्जेण्डर ब्रैकमैन आदि इसके प्रचारक हैं।

अराजकतावाद के सन्दर्भ में श्रीमती गोल्डमैन ने लिखा है—

Anarchism—The philosophy of a new social order based on liberty unrestricted by man-made law. The theory that all forms of Government rest on violence, and are therefore wrong and harmful, as well as unnecessary. [अर्थात—]

अराजकतावाद एक नया दर्शन है जिसके अनुसार एक नया समाज बनेगा। जनता का रहन-सहन या भ्रातृत्व ऐसा होगा जिसमें कि मनुष्य के बनाये नियम कोई अवरोध न पैदा कर सकेंगे। उनके अनुसार किसी भी शासन की जरूरत नहीं महसूस होती, क्योंकि प्रत्येक सरकार दमन पर टिकी होती है। इसलिए यह अनावश्यक है।

इससे पता चलता है कि अराजकतावादी किसी भी प्रकार की सरकार नहीं चाहते और यह बात सत्य है। लेकिन यह सुनकर हम भयभीत होते हैं। हमारे मनों में कई प्रकार के हौवे पैदा किये जाते हैं। हम अंग्रेजी सरकार के बाद अपनी सरकार बनाकर भी भूत देख-देखकर डरें और हमेशा थर-थर काँपते रहें, यही हमारे शासकों की नीयत होती है। ऐसी हालत में हम कैसे एक मिनट के लिए भी सोच सकते हैं कि ऐसा भी कोई समय आयेगा कि जब सरकार के बिना भी हम सुखी और स्वतन्त्र रह सकेंगे। लेकिन इसमें हमारी स्वयं की दुर्बलताएँ हैं। आदर्श या भावना का कोई कसूर नहीं है।

अराजकतावाद के अनुसार जिस आदर्श स्वतन्त्रता की कल्पना की जाती है वह पूर्ण स्वतन्त्रता है, जिसके अनुसार न तो मन पर भगवान या धर्म का भूत सवार हो, न माया या सम्पत्ति के लालच का जनून समाया हुआ हो और न ही शरीर पर किसी प्रकार की या सरकारी जंजीरें कसी हुई हों। इसका अर्थ यह है कि वह [निम्नोक्त] तीनों मोटी-मोटी बातों को दुनिया से पूरी तरह खत्म कर देना चाहते हैं : 1. चर्च, भगवान और धर्म, 2. स्टेट (सरकार), 3. प्राइवेट प्रापर्टी (निजी सम्पत्ति)।

यों तो यह विषय बहुत रोचक और विस्तृत है जिसके लिए काफी कुछ लिखा जा सकता है लेकिन अब यह लेख हम बहुत अधिक बढ़ा नहीं सकते, क्योंकि स्थानाभाव है। इसलिए हम मोटी-मोटी बातों का ही उल्लेख करेंगे।

भगवान और धर्म

सबसे पहले हम भगवान और धर्म को लेते हैं। हिन्दुस्तान में भी अब इन दोनों भूतों के विरुद्ध आवाज उठ रही है, लेकिन यूरोप में तो पिछली सदी से ही इसके विरुद्ध विद्रोह उठ खड़ा हुआ था। वह तो आरम्भ ही उस युग से करते हैं जबकि जनता का ज्ञान बहुत ही कम था। उस समय वह प्रत्येक चीज से, विशेषकर दैवी शक्तियों से डरते थे। उनमें आत्मविश्वास कतई न था। वे स्वयं को 'खाक का पुतला' कहते थे। वह कहते हैं कि धर्म और दैवी शक्तियाँ ईश्वर और अज्ञानता का परिणाम हैं, इसलिए उनके अस्तित्व का भ्रम मिटा देना चाहिए। साथ ही यह भी कि हम छुटपन से बच्चों को यह बताना शुरू कर देते हैं कि सबकुछ भगवान है, मनुष्य तो कुछ भी नहीं। अर्थात मिट्टी का पुतला है। इस तरह के विचार मन में आने से मनुष्य में आत्मविश्वास की भावना मर जाती है। उसे मालूम होने लगता है कि वह बहुत निर्बल है। इस तरह वह भयभीत रहता है। जितने समय यह भय मौजूद रहेगा उतनी देर पूर्ण सुख और शान्ति नहीं हो सकती।

हिन्दुस्तान में महात्मा बुद्ध ने पहले भगवान के अस्तित्व से इन्कार किया था। उनकी ईश्वर में आस्था नहीं थी। अब भी कुछ साधु ऐसे हैं जो भगवान के अस्तित्व को नहीं मानते। बंगाल के सोहमा स्वामी भी उनमें हैं। आजकल निरालम्ब स्वामी सोहमा स्वामी की एक पुस्तक 'कामन सेन्स' अंग्रेजी में प्रकाशित हुई है। उन्होंने भगवान के अस्तित्व के विरुद्ध बहुत जमकर लिखते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है, लेकिन वे अराजकतावादी नहीं हो गये। 'त्याग' एवं 'योग' के बहाने वे अब यों ही नहीं भटकते। इस प्रकार वैज्ञानिक युग में ईश्वर के अस्तित्व को समाप्त किया जा रहा है जिससे धर्म का भी नामोनिशान मिट जायेगा। वास्तव में अराजकतावादियों के सिरमौर बैकुनिन ने अपनी किताब 'गॉड एण्ड स्टेट' (ईश्वर और राज्य) में ईश्वर को अच्छा लताड़ा है। उन्होंने एंजील की कहानी सामने रखी और कहा कि ईश्वर ने दुनिया बनायी और मनुष्य को अपने-जैसा बनाया। बहुत मेहरबानी की। लेकिन साथ ही यह भी कह दिया कि

देखो, बुद्धि के पेड़ का फल मत खाना। असल में ईश्वर ने अपने मन-बहलाव के लिए मनुष्य और वायु को बना तो दिया मगर वह चाहता था कि वे सदा उसके गुलाम बने रहें और उसके विरुद्ध सर ऊँचा न कर सकें। इसलिए उन्हें विश्व के समस्त फल तो दिये लेकिन अक्ल नहीं दी। यह स्थिति देखकर शैतान आगे बढ़ा। But here steps in Satan, the eternal rebel, the first free thinker and the emancipator of the world [यानी] दुनिया के चिर विद्रोही, प्रथम स्वतन्त्रचेता और दुनिया को स्वतन्त्र करनेवाले शैतान—आदि आगे बढ़े, आदमी को बगावत सिखायी और बुद्धि का फल खिला दिया। बस, फिर सर्वशक्तिभान, सर्वज्ञाता परमात्मा किसी निम्न दर्जे की कमीनी मानसिकता की भाँति क्रोध में आ गया और स्वनिर्मित दुनिया को स्वयं ही बद्दुआएँ देने लग पड़ा। खूब!

प्रश्न उठता है कि ईश्वर ने यह दुख-भरी दुनिया क्यों बनायी? क्या तमाशा देखने के लिए? तब तो वह रोम के क्रूर शहंशाह नीरो से भी अधिक जालिम हुआ। क्या यह उसका चमत्कार है? इस चमत्कारी ईश्वर की क्या आवश्यकता है? बहस लम्बी हो रही है। इसलिए इसे यहीं समाप्त करते हुए इतना ही कहेंगे कि हमेशा से स्वार्थियों ने, पूँजीपतियों ने धर्म को अपनी-अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए इस्तेमाल किया है। इतिहास इसका साक्षी है। 'धैर्य धारण करो! अपने कर्मों को देखो!' ऐसे दर्शन ने जो यातनाएँ दी हैं, वे सबको मालूम ही हैं।

लोग कहते हैं कि ईश्वर के अस्तित्व को अगर नकारा जाये तो क्या होगा? दुनिया में पाप बढ़ जायेगा। अंधेरगर्दी मच जायेगी। लेकिन अराजकतावादी कहते हैं कि उस समय मनुष्य इतना अधिक ऊँचा हो जायेगा कि स्वर्ग का लालच और नरक का भय बताये बिना ही वह बुरे कार्यों से दूर हो जायेगा और नेक काम करने लगेगा। वास्तव में बात यह है कि हिन्दुस्तान में श्रीकृष्ण निष्काम कर्म करने का बहुत उपदेश दे गये हैं। गीता दुनिया की एक प्रमुख पुस्तक मानी जाती है, लेकिन श्रीकृष्ण निष्काम भाव के साथ कर्म की प्रेरणा देते हुए भी अर्जुन को मृत्येपरान्त स्वर्ग और विजय प्राप्त कर राजभोग का लालच देने से पीछे न रहे। लेकिन आज हम अराजकतावादियों के बलिदान देखते हैं तो मन में आता है कि उनके पैर चूम लें। साको और वेंजरी की कहानियाँ हमारे पाठक पढ़ ही चुके हैं। न ईश्वर को प्रसन्न करने का कोई लालच है और न स्वर्ग में जाकर मौज मारने का लोभ, न पुनर्जन्म में ही सुख मिलने की आशा। लेकिन फिर भी हँसते-हँसते लोगों के लिए, सत्य के लिए जीवन न्यौछावर कर देना क्या कोई मामूली बात है! अराजकतावादी तो कहते हैं कि एक बार मनुष्य स्वतन्त्र हुआ तो उसका जीवन बहुत ऊँचा हो जायेगा। खैर, एक-एक प्रश्न पर लम्बी बहसें हो सकती हैं, लेकिन यहाँ स्थानाभाव है।

अराजकतावाद : दो

स्टेट या सरकार

इससे आगे की बात जो वे सामने नहीं लाना चाहते, वह है राजसत्ता। अगर हम राजसत्ता का मूल खोजें तो दो परिणामों पर पहुँचते हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि जंगली मनुष्य की अक्ल विकसित होती रही, और लोगों ने मिल-जुलकर रहना आरम्भ कर दिया। इस तरह राजसत्ता का जन्म हुआ। इसे उद्‍भव कहते हैं। दूसरे यह कि लोगों को जंगली जानवरों से मुकाबले के लिए तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मिलना और एकजुट होना पड़ा। फिर गुटों में लड़ाइयाँ हुईं और प्रत्येक को ताकतवर शत्रु का भय सताने लगा। इस प्रकार मिल-जुलकर राज कायम किये गये। उसके पश्चात आवश्यकता या यूटीलिटेरियन थ्योरी यही है। हम चाहे दोनों को ही लें। उद्‍भववालों से पूछा जा सकता है कि अब ही क्यों उद्‍भव रुक गया? पंचायती राज के बाद अराजकतावाद ही आता है और अन्यों को यह उत्तर है कि अब शासन की कोई जरूरत ही नहीं। यह बहस तो पहले हो चुकी है। अगर इन या अन्य ऐसी बातों की ओर अधिक ध्यान न भी दें तो भी यह स्वीकारना होगा कि लोगों ने वास्तव में सौदा किया था, जिसे फ्रांस के प्रसिद्ध युगान्तकारी रूसो ने सामाजिक सौदा कहा है। सौदा यह कि मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता का एक विशेष भाग अर्थात् अपनी आय का एक हिस्सा, बलिदान करेगा जिसके एवज में उसे सुरक्षा और शान्ति उपलब्ध करायेंगे। इस सबके पश्चात विचारणीय है कि क्या वह सौदा पूरी तरह ठीक रहा? शासन कायम हो जाने के पश्चात राजसत्ता और ईश्वर ने साजिश रच ली। लोगों से कहा कि हम ईश्वर की ओर से भेजे गये हैं। लोग ईश्वर से भयभीत रहे और राजा मनमाने जुल्म करते रहे। ज़ार (रूस) और लुई (फ्रांस) के उदाहरण बहुत अच्छे ढंग से सब ढोल की पोल खोल देते हैं। क्योंकि वह साजिश बहुत समय तक चल नहीं सकी, पोप गेगोरी और किंग हैनरी में फूट पड़ गयी। पोप ने लोगों को हैनरी शासन के विरुद्ध भड़काया। इसी तरह हैनरी ने ईश्वर का हौवा दूर करते हुए लोगों को पोप के विरुद्ध भड़काया। कहने का आशय यह है कि स्वार्थी लोग लड़े और वे आडम्बर टूटे। खैर, पुनः लोग उठे और जुल्मी लुई को मार डाला। दुनिया में भगदड़ मच गयी। पंचायती राज स्थापित हुए, लेकिन पूर्ण स्वतन्त्रता तब भी न मिली। उधर जिस वक्त आस्ट्रिया का मन्त्री मैटरनिक एकतन्त्र शासन की तरफ से दमन कर लोगों को उसका विरोधी बना रहा था, उधर अमेरिका के पंचायती राज में बेचारे गुलामों की बुरी स्थिति हो गयी थी। तब फ्रांस के गरीब लोग भी अनेक बार कोशिशें करके उठ और गिर रहे थे। आज भी फ्रांस में पंचायती राज है, लेकिन लोग पूरी तरह स्वतन्त्र नहीं हैं। इसलिए अराजकतावादी कहते हैं कि कोई भी राज नहीं चाहिए। बाकी सब बातों में वे साम्यवादियों के समान हैं लेकिन इन दोनों बातों का अन्तर है। प्रख्यात साम्यवादी

कार्लमार्क्स के प्रख्यात साथी फ्रेडरिक एंगेल्स ने भी अपने और मार्क्स के साम्यवाद के सम्बन्ध में लिखा है कि हमारा भी यही आदर्श है : Communism also looks forward to a period in the evolution of the society when the State will become superfluous and having no longer any function to perform, will die away. अर्थात वह भी समझते हैं कि अंत में राजसत्ता की कोई जरूरत नहीं रहेगी ।

खैर, तात्पर्य तो यह है कि वे चाहते हैं कि राजसत्ता न रहे और लोग भ्रातृत्व से रहें । मैकियावली इटली का राजनीतिज्ञ था । वह कहता था कि राज कोई-न-कोई जरूर होना चाहिए । चाहे वह पंचायती हो या एक राजा का । उसकी यह मान्यता थी कि राज हो और मजबूत लोहे के हाथ-सा हो । लेकिन अराजकतावादी कहते हैं कि नरम और गरम क्या ? हमें न पंचायती राज चाहिए और न कोई अन्य । वे कहते हैं : "Undermine the whole conception of a State and then and then only we have Liberty worth having" अर्थात राजसत्ता का विचार भी दुनिया में खत्म किया जाये, तभी कोई स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकेगी ।

लोग कहेंगे कि भला यह कोई बात हुई, राजसत्ता न होगी, कानून न होगा, कानून मनवानेवाली पुलिस न होगी तो अंधेरगर्दी मच जायेगी । राजनीति के प्रख्यात दार्शनिक डेविड थोरियन ने कहा है कि "Law never made man a whit more just, and by means of their respect for it even the well disposed are daily made gents of injustic."

इसमें तो कोई असत्यता नजर नहीं आती । हमें नजर आता है कि ज्यों-ज्यों कानून सख्त होते हैं त्यों-त्यों भ्रष्टाचार भी बढ़ता है । यह तो आम शिकायत है कि पहले किसी प्रकार की लिखा-पढ़ी के बिना हजारों रुपयों का लेन-देन होता था और कोई बेईमानी नहीं करता था । अब हस्ताक्षर, अँगूठे, साक्ष्य और रजिस्ट्रियाँ होती हैं । लेकिन बेईमानी बढ़ रही है। फिर वे तो इसका निदान यही सुझाते हैं कि प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे, सभी कार्य उसकी इच्छानुसार होते रहें, तब कोई पाप या जुर्म न होगा ।

"Crime is naught but misdirected energy. So long as every institution of today, economic, political, social and moral conspires to misdirect human energy into wrong channels, so long as most people are out of place doing the things they want to do, living a life they want to live, crime will be inevitable and all the laws on the statues can only increase but never do away with crime."

अर्थात् मनुष्य को अगर पूर्ण स्वतन्त्रता हो तो वह अपनी इच्छानुसार काम-काज कर

सके। अन्याय न हों। अगर इस तरह पूँजीपतियों द्वारा शोषण जारी रहेगा तो बड़े-बड़े कानून भी कुछ नहीं कर सकते। लोग कहते हैं कि मनुष्य का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि बिना शासन के रह ही नहीं सकता। बेलगाम होगा तो बहुत नुकसान पहुँचायेगा। इस मानव-स्वभाव के सम्बन्ध में लार्ड ने अपनी किताब 'प्रिंसिपल्स ऑफ पालिटिक्स' में लिखा है कि चींटियाँ एकजुट रह सकती हैं, जानवर एकजुट रह सकते हैं, लेकिन मनुष्य नहीं रह सकते। मनुष्य ईश्वर की ओर से ही लालची, अमानवीय और सुस्त बना है। ऐसी बातें सुनकर एमा गोल्डमैन गुस्से में आ गयीं और उन्होंने 'अनार्किज्म एण्ड अदर एसेज' किताब में लिखा है : "Every fool from king to policeman, from the flat headed person to the visionless dausier in science presumes to speak authoritatively of human nature." यानी जो भी गधा उठता है वही बढ़कर मानव स्वभाव पर अधिक जोरदार राय देता है। वह कहती हैं कि जो जितना बड़ा मूर्ख हो उतना ही वह इस सम्बन्ध में अपनी राय को बहुमूल्य समझता है। आज तक किसी मनुष्य को पूर्ण स्वतन्त्रता देकर भी देखी है जो हमेशा उसकी बुराइयों का रोना रोया जाता है। वे कहती हैं कि छोटी पंचायतें बनें और स्वतन्त्रता से काम हो।

निजी सम्पत्ति

तीसरी सबसे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण बात है निजी सम्पत्ति। वास्तव में दुनिया को पेट का सवाल ही चला रहा है। इसके लिए ही धैर्य, सन्तोष आदि उपदेश गढ़े गये। सभी कुछ इसके लिए किया जाता रहा। अब अराजकतावादी, साम्यवादी, समाजवादी सभी सम्पत्ति के विरुद्ध हो गये हैं। वे कहते हैं : "Property is robbery". (Proudhon) but without risk or danger to the robber.—Emma Goldman.

सम्पत्ति बनाने का विचार मनुष्यों को लालची बना देता है। वह फिर पत्थर-दिल होता चला जाता है। दयालुता और मानवता उसके मन से मिट जाती है। सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए राजसत्ता की आवश्यकता होती है। इससे फिर लालच बढ़ता है और अन्त में परिणाम—पहले साम्राज्यवाद, फिर युद्ध होता है। खून-खराबा और अन्य बहुत नुकसान होता है। अगर सबकुछ संयुक्त हो जाये तो कोई लालच न रहे। मिल-जुलकर सभी काम करने लगें। चोरी, डाके की कोई चिन्ता न रहे। पुलिस, जेल, कचहरी, फौज की जरूरत न रहे। और मोटे पेटवाले, हराम की खानेवाले भी काम करें। थोड़ा समय काम करके पैदावार अधिक होने लगे। सभी लोग आराम से पढ़-लिख भी सकें। अपने आप शान्ति भी रहे, खुशहाली भी बढ़े। अर्थात वह इस बात पर जोर देते हैं कि संसार से अज्ञानता दूर करना बहुत आवश्यक है।

असल में सम्पत्ति सबसे बड़ा प्रश्न है, इसलिए इस पर विचार के लिए एक अन्य लेख आवश्यक है। इसी वास्तविक प्रश्न पर कार्ल मैनिंग ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया था—'Ask for work and if they don't give you work ask for bread

and if they do not give you work or bread, then take bread.' अर्थात काम भी न मिले और रोटी भी प्राप्त न हो तो रोटी छीनकर खा लो। क्योंकि किसी को क्या अधिकार है कि वह केक खाते हुए मौज उड़ाये जबकि दूसरे को रोटी के सूखे टुकड़े भी न जुटें। इसी मसले पर उन्होंने कहा कि विपन्न के घर जन्म लेने से कोई उम्र-भर घिसटते गुजारे एवं सम्पन्न के घर जन्मने से ही किसी को हराम की खाने का अवसर क्यों प्राप्त हो? 'माया से माया मिले' वाली बात भी रोकी जाये। इन्हीं कारणों से सभी के लिए समान अवसरवाले सिद्धान्त के समक्ष उन्होंने निजी सम्पत्ति की पवित्रता का भ्रम तोडा। वे कहते हैं कि सम्पत्ति भ्रष्टाचार से जुटती है और उसकी रक्षा के लिए कानून की आवश्यकता पड़ती है जिससे कि राजसत्ता की आवश्यकता होती है। दरअसल यही सारी गड़बड़ियों की जड़ है। इसे समाप्त करते ही सारी गड़बड़ियाँ दूर हो जायेंगी। आखिर वे क्या चाहते हैं, काम कैसे चलेगा? यही काफी विस्तृत प्रश्न है।

लेख में ऊपर यह बताया गया है कि अराजकतावादी पहले तो ईश्वर और धर्म के विरुद्ध हैं, क्योंकि वह मानसिक गुलामी के कारण हैं। दूसरे राजसत्ता के विरुद्ध हैं, क्योंकि यह शारीरिक गुलामी है। वे कहते हैं कि मनुष्य को स्वर्ग का लालच, नरक का भय या कानून का डण्डा दिखाकर भले काम की प्रेरणा देना गलत है। वैसे भी मनुष्य जैसे उच्च जीव का अपमान है। स्वतन्त्रता से ज्ञान प्राप्त करके अपनी इच्छा अनुसार काम करें और प्रसन्नता से जीवन व्यतीत करें। लोग कहते हैं कि इसका अर्थ यह हुआ कि हम उसे पहले की जंगली स्थितियों में रखना चाहते हैं, जिस प्रकार हम आरम्भ में थे। लेकिन यह गलत है। उस समय अज्ञानता थी। मनुष्य अधिक दूर तक नहीं जा सकता था। लेकिन अब पूर्ण ज्ञान से दुनिया में सम्पर्क स्थापित करते हुए भी वह स्वतन्त्र रहे। धन का लोभ न हो। और धन का प्रश्न भी समाप्त कर दिया जाये।

अगले लेख में हम इस दर्शन के सम्बन्ध में कुछ अन्य बातें, अनेक प्रकार के विचार, इतिहास और इसके बदनाम होने के कारण और इसमें हिंसा भी शामिल होने के बारे में लिखेंगे।

अराजकतावाद : तीन

पिछले दो लेखों में हमने अराजकतावाद के सम्बन्ध में सर्वसाधारण तथ्य लिखे थे। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर जो कि दुनिया के पुराने विचारों एवं परम्पराओं के विरुद्ध नया-नया ही सामने आये, इतने छोटे लेख से पाठकों की जिज्ञासा को शान्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार अनेक शंकाएँ जन्म लेती हैं। फिर भी हम उनके मोटे-मोटे सिद्धान्त पाठकों के सामने रख रहे हैं जिनसे कि वे इनकी मोटी-मोटी बातें समझ चुके होंगे। अब हम इसी

तरह साम्यवाद, समाजवाद और नाशवाद-जैसे सिद्धान्तों पर लिखेंगे, ताकि हिन्दुस्तान भी समझ सके कि विदेशों में कौन-कौन-सी विचारधाराएँ चलन में हैं। मगर किसी अन्य विषय पर लिखने से पूर्व अराजकतावाद के सम्बन्ध में बहुत-सी महत्वपूर्ण एवं रोचक बातें लिखने का विचार है जिसमें नाशवाद का इतिहास भी है, अर्थात अराजकतावादियों ने अब तक क्या किया ? वे किस प्रकार बदनाम किये गये ?

ऊपर हमने उनके विचार बताये हैं। अब हम यह बताना चाहते हैं कि उन्होंने इन विचारों को अमली जामा पहनाने के लिए क्या किया और किस प्रकार वह बल-प्रयोग से बहुत मजबूत सरकारों से भिड़ जाते थे और उन मुठभेड़ों में जान की बाजी तक लगा देते थे।

दरअसल जब दमन और शोषण सीमा से अधिक हो जाये, जब शान्तिमय और खुले काम को कुचल दिया जाये, तब कुछ करनेवाले हमेशा गुप्त रूप से काम करना शुरू कर देते हैं और दमन देखते ही प्रतिशोध के लिए तैयार हो जाते हैं। यूरोप में जब गरीब मजदूरों का भारी दमन हो रहा था, उनके हर तरह के कार्य को कुचल डाला गया था या कुचला जा रहा था, उस समय रूस के सम्पन्न परिवार से माईकल बैकुनिन को जो रूस के तोपखाने में एक बड़े अधिकारी थे, पोलैण्ड के विद्रोह से निबटने के लिए भेजा गया था। वहाँ विद्रोहियों को जिस प्रकार जुल्म करके दबाया जा रहा था, उसे देखकर उनका मन एकदम बदल गया और वे युगान्तकारी बन बैठे। अन्त में उनके विचार अराजकतावाद की ओर झुक गये। उन्होंने सन् 1834 में नौकरी त्याग दी। उसके पश्चात् बर्लिन और स्विट्जरलैण्ड के रास्ते पेरिस पहुँचे। उस समय आमतौर पर सरकारें इनके विचारों के कारण इनके विरुद्ध थीं। 1864 तक वह अपने विचार पुख्ता करते रहे और मजदूरों में प्रचार करते रहे।

बाद में उन्होंने राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस पर कब्जा कर लिया और 1860 से 1870 तक आप अपने दल को संगठित करते रहे। 4 सितम्बर, 1870 में पेरिस में तीसरा पंचायती राज कायम करने की घोषणा की गयी। फ्रांस में कई स्थानों पर पूँजीपति सरकार के विरुद्ध लड़ाइयाँ व विद्रोह हुए। लियोन शहर में विद्रोह भड़का। उसमें बैकुनिन शामिल हुए। इनका पलड़ा ही भारी रहा। कुछ ही दिनों बाद वहाँ उनकी हार हो गयी और वे वहाँ से लौट आये।

1873 में हसपानिया में बगावत खड़ी हो गयी। उसमें शामिल होकर ये लड़े। कुछ दिन तक तो मामला खूब गरम रहा लेकिन अन्त में वहाँ भी हार हो गयी। वहाँ से लौटे तो इटली में बगावत जारी थी। वहाँ जाकर इन्होंने युद्ध की बागडोर हाथ में ले ली। गैरीबाल्डी भी कुछ विरोध के बाद उनके साथ मिल गये थे। कुछ दिनों के दंगों के बाद वहाँ भी हार हो गयी। इस तरह उनका सारा जवीन लड़ने-भिड़ने में गुजर गया। अन्त में जब वह बूढ़े हो गये तो उन्होंने अपने साथियों को खत लिखे कि अब मैं अपने हाथों से नेतृत्व की बागडोर छोड़ता हूँ ताकि काम में रुकावट न पड़े। अन्त में जुलाई, 1876 में

बीमारी की हालत में उनका निधन हो गया।

बाद में बहुत ताकतवर चार व्यक्ति इस कार्य के लिए कमर कसकर तैयार हुए। वे थे कारलो केफियर्स, इटली के रहनेवाले, काफी सम्पन्न परिवार से थे। दूसरे, माला टेम्टा। आप बड़े विद्वान डाक्टर थे। लेकिन आप सभी कुछ छोड़कर युगान्तकारी बन गये। तीसरे, पाल ब्रसी भी बड़े मशहूर डाक्टर थे। आप भी इसी कार्य में लग गये। चौथे थे पीटर क्रोपाटकिन। आप रूसी परिवार से थे। कई बार मजाक में कहा जाता था कि असल में आपको ही ज़ार बनना था। आप सभी बैकुनिन के अनुयायी थे। आपने कहा कि हम जबान से बहुत प्रचार कर चुके लेकिन कोई असर नहीं होता। नयी-नयी विचारधाराएँ सुनाकर थक गये हैं। जनता पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए अब व्यावहारिक प्रचार आरम्भ किया जाये। क्रोपाटकिन ने कहा—

"A single deed makes more propaganda in a few days than a thousand pamphlets. The Government defends itself. It rages pitilessly, but by this it only caused further deeds to be committed by one or more persons and drives the insurgents to heroism. One deed bringsforth another, opponents join the mutiny, the Govt. splits into factions, harshness intesifies the conflict, concessions come too late, the revolution breaks out."

अर्थात् एक भी व्यावहारिक काम हजारों किताबों और पत्रिकाओं से अधिक प्रचार कर देता है। सरकार स्वयं अपनी रक्षा करती है। उसे गुस्सा आता है। जलन होती है और वह दमन करती है। कई लोग थककर प्रतिशोध के लिए तैयार हो जाते हैं। फिर कभी ठीक उसी तरह के काम होते हैं तो उन्हें शहीद कर दिया जाता है। विरोधी भी आकर शामिल हो जाते हैं। सरकार तड़पती है। आपस में उनकी नोक-झोंक होने लगती है। जनता की शर्तें स्वीकारने मे बेवजह देर की जाती है और इन्कलाब की जंग शुरू हो जाती है। यह विचारों का दृश्य आपके सामने रखा गया है। पीटर क्रोपाटकिन रूसी युगान्तकारियों में से थे। पकड़े जाने के बाद पीटर पाल नामक किले में बन्दी बनाये गये थे। उस सख्त जेल में से ये भाग गये और यूरोप में जाकर अपने विचारों का प्रचार करने लगे। उपरोक्त बातों से पता चलता है कि उस समय उनकी मनःस्थिति क्या थी।

सबसे पहले उन्होंने बर्न नामक शहर में (फ्रांस में) मजदूरों के शासन की स्थापनावाले दिन की बरसी मनायी। यह बात 18 मार्च, 1876 की है। उस दिन उन्होंने मजदूरों का जुलूस निकाला और बाजार में पुलिस से हाथापाई भी कर बैठे। जब सिपाहियों ने उनके लाल झण्डे को उखाड़ने का प्रयास किया, तब बहुत तगड़ा फसाद खड़ा हो गया। अनेक सिपाही बुरी तरह घायल हुए। अन्त में ये सभी पकड़े गये और 10 से 40 दिनों तक कैद की सजा हुई।

उधर अप्रैल माह में इटली में किसानों को उकसाकर अनेक स्थानों पर बगावतें खड़ी कर दीं। वहाँ भी इनके साथी पकड़े गये, जिनमें से काफी बरी हो गये। उनका विचार अब इसी तरह से प्रचार का था। इसलिए वे कहा करते थे—Neither money nor organizations nor literature was needed any longer (for their propaganda work). One human being in revolt with torch or dynamite was off to instruct the world. अर्थात प्रचार-कार्य के लिए न तो धन की आवश्यकता है, न बड़े पोथों की और न बड़े भारी संगठन की। कोई भी एक आदमी—जिसने हाथ में मशाल पकड़ी हुई हो, जिससे वह आग लगा सके या डाइनामाइट हो जिससे वह एक बार मकानों और ऐसे इंसानों को उड़ा सके—सारी दुनिया को अपनी इच्छानुसार शिक्षा दे सकता है।

अगले बरस, 1868 से बस ऐसे कामों ने जोर पकड़ लिया। बर्लिन में इटली का बादशाह हम्बर्ट जब अपनी बेटी के साथ मोटरकार में जा रहा था, तब उसे मारने का प्रयास किया गया। शहंशाह विलियम को एक साधारण नवयुवक ने गोली मार दी। तीन हफ्ते बाद डाक्टर कार्ल नौवर्लिग ने एक बार खिड़की में से शहंशाह पर गोली चला दी। जर्मनी में उस समय गरीब मजदूरों के भाषणों को निर्मम ढंग से कुचला जा रहा था। उसके बाद एक दिन गोष्ठी करके फैसला लिया गया था कि जिस प्रकार भी सम्भव हो, इस भ्रष्ट पूँजीवादी वर्ग और उसकी मददगार सरकार एवं पुलिस आदि को भयभीत किया जाये।

15 दिसम्बर, 1883 को विलीरिड फ्लोडसोर्फ में उलुबैक नाम के कुख्यात पुलिस अफसर को मार डाला गया। 23 जून, 1884 को रुजेट को इसी अपराध में फाँसी दे दी गयी। अगले ही दिन इसके बदले में ब्लेटिक, पुलिस अधिकारी की हत्या कर दी गयी। आस्ट्रिया की सरकार गुस्से में आ गयी और वियना में पुलिस ने जबरदस्त घेराबन्दी करके अनेक व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये और दो को फाँसी पर टाँग दिया।

उधर लियुन में हड़तालें हुईं। एक हड़ताली फुरनियर ने अपने पूँजीपति मालिक को गोली मार दी। उसके अभिनन्दन समारोह में एक पिस्तौल उपहार-स्वरूप दी गयी। 1888 में वहाँ बहुत गड़बड़ी मची हुई थी और रेशम के मजदूर भूखों मर रहे थे। पूँजीपतियों के समाचारपत्र मालिक और उनके दूसरे धनी मित्र एक जगह ऐश उड़ाने में मसरूफ थे। वहीं एक बम फेंक दिया गया। अमीर लोग काँप उठे। 60 अराजकतावादी पकड़े गये। उनमें से केवल तीन ही बरी किये गये। लेकिन फिर भी असली बम फेंकनेवाले की बहुत तलाश की जाती रही। अन्त में वह पकड़ा गया और फाँसी पर लटका दिया गया। बस इस तरह ही उनके विचारों की लाइन पर काम चल पड़ा। फिर तो जहाँ भी हड़ताल होती, वहीं कत्ल भी हो जाता। इन बातों का जिम्मेदार भी अराजकतावादियों को ही ठहराया जाता, इसलिए इस नाम से ही लोग थर-थर काँपने लगे।

उधर एक जर्मन अराजकतावादी जहानमोस्ट, जो पहले दफ्तरी का काम करता था, 1882 में अमेरिका जा पहुँचा। उसने भी यह विचार जनता के समक्ष रखने आरम्भ किये। वह भाषण बड़ा सुन्दर देता था और उसका अमेरिका में बहुत प्रभाव पड़ा। 1886 में शिकागो आदि में बहुत-सी हड़तालें हो रही थीं। एक कागज-कारखाने के मजदूरों में एक अराजकतावादी स्पाईज उपदेश दे रहा था। कारखाना-मालिकों ने इसे बन्द करने की कोशिश की। वहाँ लड़ाई हो गयी। पुलिस बुलायी गयी, जिसने आते ही गोली चला दी। छः आदमी मारे गये और कई जख्मी हो गये। स्पाईज को गुस्सा आया। उसने स्वयं जाकर एक नोटिस कम्पोज करके मुद्रित कर दिया कि मजदूरों को मिलकर अपने निरपराध भाइयों के खून का बदला लेना चाहिए। अगले दिन 4 मई, 1886 को 'हे मार्केट' में जलसा था। शहर का अध्यक्ष इसे देखने आया था। उसने देखा कि वहाँ कोई आपत्तिजनक बातें नहीं हो रही हैं। वह चला गया। बाद में पुलिस ने आकर बिना आगा-पीछा देखे मारपीट करनी शुरू कर दी और कहा कि जलसा बन्द करो। तभी एक बम पुलिसवालों पर फेंका गया जिसके साथ ही बहुत से पुलिसवाले मारे गये। कई व्यक्तियों को पकड़कर फाँसी की सजा दे दी गयी। जाते-जाते उनमें से एक शख्स कहने लगा—"मैं फिर कहता हूँ, मैं वर्तमान व्यवस्था का कट्टर दुश्मन हूँ। मैं चाहता हूँ कि हम इस राजसत्ता को मिटा दें और खुद राजसत्ता का इस्तेमाल करें। आप शायद हँसे कि मैं तो अब बम नहीं फेंक सकूँगा लेकिन मैं बताता हूँ कि तुम्हारे जुल्मों ने सभी मजदूरों को बम सम्भालने और चलाने पर मजबूर कर दिया है। यह जान लो कि मैं सच कह रहा हूँ कि मेरे फाँसी लगने पर और भी कई आदमी पैदा हो जायेंगे। मैं तुम्हें घृणित दृष्टि से देखता हूँ और तुम्हारी राजसत्ता को मटियामेट कर देना चाहता हूँ। मुझे फाँसी चढ़ा दो।" खैर, इस तरह बहुत-सी घटनायें होती रहीं। लेकिन एक-दो प्रसिद्ध घटनाएँ और हुईं। अमेरिका के अध्यक्ष मैकनिल पर गोली चलायी गई और फिर स्टील कम्पनी में हड़ताल हुई। यहाँ मजदूरों पर जुल्म ढाये जा रहे थे। उसके मालिक हैनरी-सी फ्रिक को अलैक्जैण्डर नामक अराजकतावादी ने गोली मारकर जख्मी कर दिया, जिसे आजीवन कैद हो गयी। खैर, इसी तरह अमेरिका में भी अराजकतावादियों के इस विचार का प्रचार और उस पर अमल होने लगा।

इधर यूरोप में भी अन्धेर चल रहा था। पुलिस और सरकार के साथ इन अराजकतावादियों का झगड़ा बढ़ गया। अन्त में एक दिन वैलेण्ट नाम के एक नवयुवक ने असेम्बली में बम फेंक दिया, लेकिन एक औरत ने उसका हाथ पकड़कर उसे बाधा दी, परिणामस्वरूप कुछ डिप्टियों के घायल होने के अलावा कुछ और विशेष न हुआ। उसने बड़ी बुलन्द आवाज में स्पष्टीकरण देते हुए कहा—'It takes a loud voice to make the deaf hear." यानी बहरों को सुनाने के लिए बड़ी बुलन्द आवाज की जरूरत है। अब तुम मुझे सजा दोगे, पर मुझे इसका कोई भय नहीं क्योंकि मैंने तुम्हारे दिल को चोट पहुँचायी है। तुम जो कि गरीबों के साथ अत्याचार करते हो और मेहनत करनेवाले भूखे

मरते हैं और तुम उनका खून चूस-चूसकर ऐश कर रहे हो। मैंने तुम्हें चोट मारी है। अब तुम्हारी बारी है।

उसके लिए बहुत-सी अपीलें की गयीं। सबसे ज्यादा जख्मी हुए असेम्बली के सदस्य ने भी जूरी से कहा कि इस पर दया की जाय, लेकिन कार्नेट नामक अध्यक्ष की जूरी ने उनकी बातों को अस्वीकारते हुए उसे फाँसी की सजा दे दी। बाद में एक इटैलियन लड़के ने एक छुरी कार्नेट के पार कर दी, जिस पर वैलेण्ट का नाम लिखा हुआ था।

इसी तरह हद दर्जे के अत्याचारों से तंग आकर स्पेन में भी बम चले और अन्ततः एक इटैलियन ने वजीर को मार डाला। इसी तरह यूनान के बादशाह, आस्ट्रिया की मलिका पर भी हमले किये गये। 1900 में गैटाने ब्रैसी ने इटली के बादशाद हर्बर्ट को मार डाला। इसी प्रकार वे लोग गरीबों की खातिर अपनी जिन्दगियों से खेलते रहे और हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ते रहे··· इसलिए उनके विरोधी भी उनके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते। उनके अन्तिम शहीदों साको और वैल्ज़ेटी को अभी पिछले साल फाँसी हुई। वे जिस दिलेरी से फाँसी पर लटके, सब जानते हैं। बस यही संक्षिप्त इतिहास है—अराजकतावाद और उसके कार्यों का। अगली बार साम्यवाद के बारे में लेख लिखेंगे।

रूस के युगान्तकारी नाशवादी (निहिलिस्ट)

रूस में एक बहुत बड़े नाशवादी हुए हैं इवान तुर्गनेव। उन्होंने 1862 में एक उपन्यास लिखा 'पिता और पुत्र'। इस उपन्यास के प्रकाशन पर बहुत शोर-शराबा हुआ, क्योंकि उसमें नवयुवकों के आधुनिक विचारों का चित्रण किया गया था। पहले-पहल तुर्गनेव ने ही नाशवाद शब्द इस्तेमाल किया था। नाशवाद का अर्थ है कुछ भी न माननेवाला (निहिल—कुछ भी नहीं); शाब्दिक अर्थ है—जो कुछ भी न माने। लेकिन वास्तव में ये लोग जनता के पुराने रस्मो-रिवाज और कुरीतियों के विरोधी थे। ये लोग देश की मानसिक गुलामी से थक गये थे, इसलिए उन्होंने इसके विरुद्ध विद्रोह किया। इन्होंने सिर्फ कहा ही नहीं बल्कि व्यवहार में कर भी दिखाया। तुर्गनेव कहते हैं कि मेरे उपन्यास का नायक कोई काल्पनिक जीव नहीं है, वरन वह वास्तव में ही ऐसे विचारों का था और ऐसे विचारों का प्रचार साधारणतया होने लगा था। वे कहते हैं कि एक दिन धूप सेंकते हुए मुझे इस उपन्यास का विचार सूझा। और उसको थोड़ा-सा विस्तार देकर किताब लिख दी। उसका नायक बजारोव है। वह नास्तिक-सा है। पुरानी बातों का बहुत विरोधी है। उसे मुँह-जुबानी बहुत लम्बी-चौड़ी जी-हजूरी नहीं आती। बहुत मुँहफट है। और जो कहता है वह करता है। वह हर बात मुँह पर तुरन्त और स्पष्ट कह देता है। इसलिए कई बार वह बड़ा अक्खड़-सा लगता है। वह कविता का विरोधी है। संगीत तक को पसन्द नहीं करता। लेकिन वह स्वतन्त्रता-प्रेमी है। आम लोगों की स्वतन्त्रता

का बड़ा समर्थक है। वह जो उन दिनों में इन्सानी फितरत बनी हुई थी, उसके विरुद्ध लड़ने का यत्न करता है।

असली नाशवादी इस तस्वीर से थोड़ा भिन्न है, अर्थात् उनमें थोड़ा-सा अन्तर है, क्योंकि उपन्यास का नायक थोड़ी-सी वास्तविकता के साथ काल्पनिकता से बनाया गया हैं। वास्तविक नाशवादी का चित्र कुछ और तरह का बनता है।

"The Nihilism of 1861—a philosophical system especially dealing with what Mr. Herbert Spencer would call religious, governmental and social fetishism."

रूसी युगान्तकारी प्रिन्स क्रोपाटकिन से 1861 में ऊपर लिखे शब्दों में नाशवादिता का जिक्र किया है, जिसका अर्थ है कि नाशवाद उस समय केवल एक दर्शन था जो कि धार्मिक अन्धविश्वास, सामाजिक अन्याय, संकीर्णता और सरकार की अन्धेरगर्दी के सन्दर्भ में था और इन चीजों के लिए जो अन्धविश्वास पैदा हो गया था उसके विरुद्ध प्रचार करता था। असल में उस समय की स्थितियों से तंग आकर वह नवयुवक मैदान में कूद पड़े थे। उनका कहना था कि हमें पिछली सभी बातों का पूरी तरह नाश कर देना है। आगे क्या होना चाहिए या क्या होगा, इसका ठीक-ठीक उत्तर न देते हुए भी वे विश्वास करते थे कि एक बड़ी सुन्दर दुनिया का निर्माण करेंगे। 'Nihilism was destructive because it wanted a wholesale destruction but with a pleasure of building up.' अर्थात् नाशवाद विनाशकारी या ध्वंसात्मक विचार थे, क्योंकि वे पिछली या पुरानी बातों के विरोधी और उनका नाश चाहनेवाले थे। परन्तु फिर भी उस विनाश के बाद बड़ी सुन्दर चीजों के निर्माण होने की आशा थी।

धीरे-धीरे इन बातों का प्रचार बढ़ता गया और आम नवयुवकों में भी यह विचार घर करने लगे। वे चाहते थे—'To liberate the people from the chains of tradition and autocracy of the Czar.' अर्थात् जनता को पुरानी चली आ रही रस्मों और ज़ारशाही से मुक्त कराया जाये।

उन दिनों उनका कार्यक्रम इन बातों का प्रचार ही था। स्थितियाँ परिवर्तित हो गयीं। उन्हीं दिनों अभी गुलाम आजाद किये ही गये थे लेकिन उनमें से अधिकांश को जमीनें नहीं दी गयी थीं जिस पर कि वे मेहनत करके कुछ लाभ उठा सकते या कम-से-कम भुखमरी से बच सकते।

जो थोड़ी-बहुत जमीन उन्हें मिली थी उसी पर टैक्स इतना अधिक लग गया कि लोग भूखों मरने लगे और 1867 में बहुत भयानक अकाल पड़ा। उस समय सरकार का इन्तजाम अत्यधिक बुरा था। इतना दमन होता था कि जनता तंग आ गयी थी। सरकारी जुल्म से तंग आकर बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी युगान्तकारी बन गये। ऐसिस्की और किआटकोवस्की, जिन्हें 1880 में फाँसी दी गयी थी, पहले सरकारी

कर्मचारी थे। इस तरह दूसरे अनेक जाने-माने अधिकारी, यहाँ तक कि न्यायाधीश भी तंग आकर युगान्तकारी बन गये।

इधर इन पर भी जुल्म की हद हो गयी। लड़कों में अच्छी-अच्छी बातों का प्रचार नहीं होने दिया जाता था। कुछ ऐसी सभाएँ बनी हुई थीं जो कि सभी अच्छी-अच्छी किताबें प्रकाशकों से लेकर मुफ्त बाँट देते या केवल लागत मूल्य पर बेच देते। ये सभी किताबें सरकारी सदस्य से स्वीकृत होती थीं। लेकिन जब सरकार ने देखा कि यह तो प्रचार के लिए इस्तेमाल होती हैं तो उन्होंने उन किताबों के प्रकाशक और वितरक को तबाह करने का निश्चय किया और उन पर हर तरह के जुल्म करने शुरू कर दिये। 1861 से 1870 तक हर सम्भव और जायज ढंग से जनता की स्थिति सुधारने और सरकार को सही रास्ते पर लाने की कोशिश की गयी, लेकिन कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

ऐसी स्थिति में काफी व्यक्ति तो हाथ पर हाथ धरे किसी ऐसे समय की प्रतीक्षा में बैठ गये कि स्वयं ही हालात सुधरेंगे। कैसे सुधरेंगे? यह कोई नहीं जानता था। वे ईश्वर का ही भरोसा रखकर बैठ गये। लेकिन नवयुवकों के दिलों में आग भड़क उठी। उनके दिलों में ईश्वर का भरोसा शेष नहीं बचा था। चुपचाप, बिना कुछ किये खाली बैठना उन्हें मुश्किल हो गया।

प्रिंस क्रोपाटकिन अपने एक लेख में लिखते हैं–

'There are periods when some generations are penetrated with the noblest feelings of altruism and self sacrifice, when life becomes utterly impossible—morally and physically impossible—for the man or woman who feels that he is not doing duty; and so it was with the youth in Russia'.

अर्थात् कभी-कभी ऐसा वक्त आ जाता है जब आम जनता में जनसेवा का भाव जोर पकड़ता है, तब उन नर-नारियों के लिए जीना दूभर हो जाता है जो यह समझने लगते हैं कि वे अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं कर रहे हैं। यह स्थिति उस समय रूस की हो गयी थी। वृद्ध व्यक्ति तो हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे लेकिन नवयुवकों के दिलों मे आग भड़क उठी।

1871 में बहुत-से युवक-युवतियाँ पश्चिमी यूरोप में भाग गये थे। वहाँ वे पढ़ते थे। ज्यादातर स्विट्जरलैण्ड में थे। उन्हें स्वदेश आने की इजाजत मिल गयी थी। वे लोग नये साम्यवाद या एकसुरता के विचार लेकर आये थे। उन्होंने आते ही जो प्रचार शुरू किया, तो जार ने तुरन्त सबको पकड़ लिया और वे अन्धाधुन्ध साइबेरिया में जलावतन कर दिये गये। काम ने खुफिया रूप धारण कर लिया।

उस समय तीन पार्टियाँ काम कर रही थीं। इनके नेता चेर्नी शेवस्की, हशुटिन और नेचाइफ थे। पहले आवाज सुनायी देती थी कि जनता के साथ होना चाहिए अर्थात् जनता से सहानुभूति करनी चाहिए और उन्हें ऊपर उठाने का यत्न करना चहिए। लेकिन अब

नयी आवाज उठी कि स्वयं ही जनता बन जाओ। अर्थात् जनता के साथ शामिल हो जाओ। इस आवाज के उठते ही बलिदान के ऐसे-ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि अभी तक दुनिया के तख्ते से उनकी कोई मिसाल नहीं मिलेगी।

लेकिन पहले यह बता देना आवश्यक है कि यह आवाज आखिर क्यों उठी? प्रिंस क्रोपाटकिन ने लिखा है–'Unitil of late—however the peasant has always regarded the man who wears broad cloth and neither ploughs nor hews nor hammers nor digs side by side with him as an enemy. We wanted faith and love from him; and to obtain them it was necessary to live their life.'

अर्थात् उस समय तक रूसी किसान किसी भी ऐसे आदमी को, जिसने ढीले-ढाले कपड़े पहने हों और जिन्हें न तो हल चलाना आता हो और न कुल्हाड़ा, जिनके हाथों में हथौड़ा, चलाने से कभी छाले न पड़े हों, और जिसने कभी फसल उगाई व काटी न हो, उसे अपना दुश्मन समझते थे। लेकिन हमें उनकी सहानुभूति और विश्वास चाहिए था। इसलिए उनके पास रहने की जरूरत थी। उनके साथ श्रम करने और रहने की आवश्यकता थी।

आहा! आज हम हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र कराने की बहुत लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, लेकिन कितने आदमी इस तरह कुर्बानी करने को तैयार हैं? कितने अपने शहरों को छोड़कर गाँवों में किसानों की तरह गन्दे-गन्दे रहने के लिए तैयार होंगे? वहाँ तो अजीब स्थिति बन गयी थी।

Youngmen left their classrooms, their regiments and their desks, learned the smith's trade or the cashier's; or the ploughman's and went to work among the villages. Highborn and wealthy ladies also took themselves to the factories, worked fifteen and sixteen hours a day at the machine, slept in doghols with peasants, went barefoot as our working women go, bringing water from the river for the house.

युवक अपने कालेज, अपने स्कूल, अपनी प्लाटून और कुर्सियों को छोड़ आये और किसान लोहार के काम सीखकर गाँवों की ओर चल पड़े। यह कितना बड़ा त्याग है। बड़े-बडे समृद्ध परिवारों की पली बहुत नाजुक युवतियाँ कारखानों में मजदूरी करने के लिए चल पड़ीं। अन्य मजदूरों की भाँति अँधेरी कोठरियों में सोतीं, सोलह-सोलह घण्टे मशीन पर काम करतीं, नंगे पैर नदी से घर के लिए पानी लातीं।

बस, एक ही लगन। एक ही धुन में मस्त। उन गरीब मजदूरों को उनके बुरे हालात का ज्ञान कराना और इसका इलाज बताना है। यह कितना बड़ा बलिदान है। युवतियों ने तो हद दर्जे का काम किया। रूसी युगान्तकारियों की दादी अम्मा

कहलानेवाली श्रीमती कैथराईन एक समृद्ध और सुन्दर महिला थीं। वह भी उनमें शामिल हो गयीं। पहले अपनी खूबसूरती को तेजाब डालकर जला डाला और दागदार चेहरा बनाकर बदसूरत बन गयीं ताकि बाह्य सौन्दर्य जनता में काम के दौरान कोई रुकावट न बने। ओह! आज ऐसा बलिदान कर सकने का साहस करनेवाले कितने व्यक्ति हिन्दुस्तान मे मौजूद हैं। रूस में नौजवान युवक-युवतियाँ घरों से भाग जाते और इन्हीं कार्यों में ज़िन्दगी बिता देते थे। लेकिन आज हिन्दुस्तान मे कितने नौजवान हैं जो देश को स्वतन्त्र कराने के उद्देश्य से पागल हुए फिर रहे हों? चारों ओर काफी समझदार आदमी नजर आते हैं, लेकिन प्रत्येक को अपना जीवन सुखपूर्वक गुजारने की चिन्ता हो रही है। तब हम अपने हालात, देश के हालात सुधारने की क्या उम्मीद रखें? पिछली सदी का अन्तिम भाग रूसी नौजवानो ने इस तरह प्रचार-कार्य में बिताया। युवतियों को घरों से निकाल लाने के अनेक बहुत सुन्दर किस्से मौजूद हैं।

सोनिया एक पादरी की लडकी थी। उसके स्कूल में युगान्तकारी महिलाएँ पढ़ानेवालों में अभी शामिल हुई थीं। उनके उपदेश सुनकर सोनिया के दिल में भी देशसेवा के भाव ने जोर पकड़ा। एक दिन वह घर से भाग गयी। लेकिन कुछ दिनों बाद पिता ने आकर पकड़ लिया। तब पादरी के घर से उसे मुक्ति दिलाने का बन्दोबस्त किया गया। एक नौजवान उसका प्रेमी बनकर उसके घर गया और उसके पिता को मनाकर उससे शादी कर ली। कहानी बहुत रोचक है और 'रूस के नायक और नायिकाएँ' किताब मे प्रकाशित हैं। कभी अवसर मिला तो वह कहानी भी पाठकों के समक्ष रखेंगे। खैर, फिलहाल पाठक संक्षेप मे ही समझ लें कि किस प्रकार रूस में कार्य चल रहे थे।

पहले तो काम खुले रूप में आरम्भ किया गया, लेकिन फिर सरकार ने जुल्म ढाकर धर-पकड़ करके हजारों की संख्या मे लोग साइबेरिया में भेज दिये। बिना वारण्ट हजारों व्यक्तियों को पकड़ लिया। चार-पाँच बरस तक वे अँधेरी कोठरियों में बन्द रखे गये। बाद में लगभग सौ व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया गया जिनमें से कुछ को सजा दी गयी। हजारों मुकदमों में से एक 'ट्रायल आफ द हंड्रेड नाइण्टी थ्री' नाम से प्रसिद्ध है। संक्षेप में, सरकारी संख्या के अनुसार हजारों लोग पकड़े गये और उन्हें जेलों की तंग अँधेरी सीलन-भरी कोठरियों में चार-चार पाँच-पाँच साल बन्द करके रखा गया। इनमें से तीन सौ व्यक्तियों को तो बहुत दिनों तक बन्दी रखा गया। इसी प्रकार अन्य अनेकों ने भी मरने की कोशिश की। 193 पर मुकदमा चला। अत्यन्त अन्यायकारी न्यायालय ने सामान्य सबूत के आधार पर ही दस-दस वर्षों की सजा सिर्फ इस बात के लिए दी कि वे प्रचारक थे। उनमें से नब्बे को बरी कर दिया और शेष को सात से दस साल तक की सख्त सजाएँ हुईं तथा बाद में उम्र-भर के लिए साइबेरिया की जलावतनी। एक अन्य मुकदमे में एक महिला को नौ-दस वर्ष की सख्त सजा मात्र इस आरोप में हुई कि उसने एक मजदूर को साम्यवादी विचारधारा का एक पर्चा दिया था।

इस तरह जुल्म होता देखकर काम पहले से भी अधिक गुप्त और सोच-समझकर होने लगा। साथ ही प्रतिशोध की भावना भी सक्रिय हो उठी। साधारणतया एक-आध कमीना खुफिया अधिकारी जिसे भी चाहता, पकड़ता और जलावतन कर देता। इससे उसे तो इनाम मिल जाता लेकिन नौजवानों का जीवन खतरे में पड़ जाता।

कहा तो यह जाता है कि 16 अप्रैल, 1899 में जिस काराकोज्फ ने जार पर गोली चलाई थी, वह भी नाशवादियों का ही काम था। और एक पोलिश नौजवान बेरेजोवस्की भी जिसने अगले वर्ष जार पर पेरिस में गोली चलाई थी, उस पार्टी का सदस्य था। लेकिन वर्तमान स्थिति पर क्रोपाटकिन ने लिखा है कि हमारे शुरू-शुरू के काम में जार जितना सुरक्षित था उतना कभी नहीं रहा होगा। यह तो हारकर अन्त में शक्ति के इस्तेमाल के क्षेत्र में उतरे। उन्होंने पहले हमेशा जार को बचाने की कोशिशें कीं। एक बार जब कोई नौजवान जार को मारने सैण्टपीटर्सबर्ग पहुँचा तो इस पार्टीवालों ने उसे इस काम से रोक दिया।

लेकिन बाद में तो काम जोरों से चल पड़ा। 1879 में मुलजिम बन्दियों में से एक को, जिन पर अभी मुकदमा चलना था, बेंत लगाये गये क्योंकि उसने उठकर पुलिस अधिकारी को सलाम नहीं किया था और शेष बन्दियों को जिन्होंने उसकी हिमायत की, जनरल ट्रेपोफ के आदेशानुसार बुरी तरह पीटा गया। इस पर एक बहादुर युवती वीरा जसुलिच ने जनरल ट्रेपोफ पर गोली चला दी। वह मरा तो नहीं लेकिन युवती पर मुकदमा चला। वह बरी कर दी गयी। पुलिस ने फिर उसे पकड़ना चाहा लेकिन जनता उसे छीनकर ले गयी।

जब से रूसी क्रान्तिकारियों ने देखा कि उनकी कोई मदद नही करता, उनकी रक्षा के लिए कोई कानून नहीं है, तब से उन्होंने स्वयं ही अपनी रक्षा करनी आरम्भ कर दी। पुलिस सुबह-सुबह लोगों के घर घेर लेती, महिलाओं तक के कपड़े उतारकर सिपाही उनकी तलाशी लेते। लोग बहुत तंग आ गये। कुछ यह भी कहने लगे कि अन्य देशों मे तो ऐसा नहीं हो सकता। हम भी यह नहीं होने देंगे। सबसे पहले ओडेसा में कोवल्सकी ने यह काम किया। उसने पुलिस के साथ टक्कर ली। दमन और भी बढ़ा। लेकिन फिर क्या था, प्रतिरोध का काम चल पड़ा। सुरक्षा के लिए शक्ति का इस्तेमाल उचित समझा जाने लगा। पहले पाँच, फिर तीन खुफिया अधिकारी कत्ल किये गये, जिनके बदले में सत्रह नौजवानों को फाँसी दी गयी। फिर तो बस प्रतिशोध लेने, फाँसियाँ देने का यही क्रम चल पड़ा।

1879 में तो पुनः नाशवाद का अर्थ बम और पिस्तौल चलाना ही हो गया। तंग आकर जार ने भी उन्हें ठिकाने लगाने का निर्णय कर लिया।

बस फिर क्या था, सभी इस काम में लग गये। 14 अप्रैल, 1879 को शोलोवियूफ ने जार पर गोली चला दी, लेकिन जार बच गया। उसी बरस जार के विंटरप्लेस अर्थात्

शरद महल को डाइनामाइट से उड़ा दिया गया, लेकिन तब भी जार बच गया। अगले बरस जब जार पीट्र्सबर्ग से मास्को जा रहा था, उसकी गाड़ी उड़ा दी गयी। गाड़ी के कई डिब्बे उड़ गये, लेकिन जार तब भी बच गया। 13 मार्च, 1881 को जार अपनी विशेष पल्टन और घोड़ों की परेड देखकर वापस आ रहा था कि उस पर एक बम फेंका गया। बम से गाड़ी टूट गयी और जार उतरकर नौकर के पास उसे देखने के लिए झुककर कहने लगा, "ईश्वर की कृपा से मैं बच गया।" तुरन्त एक अन्य नौजवान गरीटंजक ने आगे बढ़कर दूसरा बम फेंकते हुए कहा, "जार, इतनी जल्दी खुदा का शुक्रिया अदा न कर।" तभी बम फटा और जार मर गया। हजारों व्यक्तियों की गिरफ्तारियाँ हुईं। अनेकों फाँसी चढ़ गये। पाँच व्यक्तियों को विशेष रूप से जनता के समक्ष फाँसी दी गयी। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध एक महिला थी, जिसका नाम सोफिया प्रोवस्किया था।

उस समय पार्टी दब गयी। फिर कई अन्य पार्टियाँ उठीं। लेकिन नाशवादी पार्टी का इतिहास इतना-सा है। नाशवादियों को लोगों ने गलत आँका और अराजकतावादियों की तरह इन्हें भी बदनाम किया गया। एक अंग्रेजी समाचार-पत्र ने एक कार्टून बनाया जिसमें तबाह हुई चीजों में निहलिस्ट बम और डाइनामाइट लिये खड़े थे। एक पूछता है, "क्यों बन्धु, कुछ बाकी तो नहीं है?" दूसरा कहता है, "दुनिया का गोला ही बाकी है।" पहला कहता है, "लगा देता हूँ डाइनामाइट तुम्हारे उसमें भी!" यह बड़ा गलत बयान है। आस्कर वाइल्ड ने एक नाटक 'वीरा दि निहलिस्ट' लिखा था। उसमें नाशवादियों का अच्छा चित्र बनाने का प्रयास किया गया है। लेकिन उसमें बहुत अशुद्धियाँ हैं। एक अन्य किताब 'कैरियर आफ ए निहलिस्ट' भी प्रकाशित हुई थी। यह पठनीय है। इसमें नाशवादियों के बारे में ठीक लिखा है। हिन्दी में 'बोल्शेविक के काम' तथा 'निहलिस्ट-रहस्य' प्रकाशित हो चुके हैं। पहला काकोरी के शहीद श्री रामप्रसाद बिस्मिल का लिखा है। उसमें उन्होंने निहलिस्टों की बहुत दर्दनाक तस्वीर खींची है। मगर उन्हें मात्र विनाश चाहनेवाले ही दिखाया गया है, जो कि ठीक नहीं है। वे अच्छे जनसेवक थे। वे बहुत बलिदानी और जनता से प्यार करनेवाले थे। वे धन्य थे।

अन्यायी प्रबन्ध

वे लोग जो महल बनाते और झोंपड़ियों में रहते हैं, वे लोग जो सुन्दर-सुन्दर आरामदायक चीजें बनाते हैं, स्वयं पुरानी और गन्दी चटाइयों पर सोते हैं। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए? ऐसी स्थितियाँ यदि भूतकाल में रही हैं तो भविष्य में क्यों नहीं बदलाव आना चाहिए? यदि हम चाहते हैं कि देश की जनता की हालत आज से अच्छी हो तो यह स्थितियाँ बदलनी होंगी। हमें परिवर्तनकारी होना होगा।

अगस्त, 1928

रूस की जेलें भी स्वर्ग हैं

[डब्ल्यू. जे. ब्राउन लिखित यह लेख 'किरती' सितम्बर, 1928 में प्रकाशित हुआ था, जिस पर एक सम्पादकीय टिप्पणी भी थी। यहाँ यह लेख 'किरती' के सम्पादकीय नोट सहित दिया गया है। –सं.]

(रूसी क्रान्ति केवल राजनीतिक क्रान्ति ही नही थी, बल्कि उसने राष्ट्र के जीवन के हर पहलू मे क्रान्ति पैदा कर दी। जहाँ राजनीतिक सत्ता एक जालिम बादशाह जार से छीनकर देश की आम जनता के हाथो मे सौप दी गई वहाँ आर्थिक मैदान मे 'कमाए कोई, और मौज उडाए कोई' वाली बात भी समाप्त कर दी गयी। आज वहाँ न तो लाखों और करोड़ो श्रमिक भूखे नज़र आते हैं और न ही चंद हरामखोरी करनेवाले मोटे पेटवाले पूँजीपाति ही नज़र आते हैं। सामाजिक जीवन में कोई ऊँच-नीच बाकी नहीं रही। स्त्रियों के भी समान अधिकार हैं। आज रूस ही ऐसा देश है जहाँ अधिक से-अधिक लोग खुश व प्रसन्न हैं। उनकी क्रांति वांकई सच्ची क्रान्ति है।

और-तो-और, उन्होंने जेलों संबंधी भी एक बड़ी भारी क्रान्ति कर दी है। पहले भी कई बार वहाँ की जेलों का हाल पढ चुके हैं। वहाँ की जेलें हमारे देश से हजार दर्जा अच्छी है। और-तो-और, उनके कैदी हमारे आजाद आदमियों से हजार दर्जा बेहतर हैं। यहाँ रोटी का सवाल इतना मुश्किल होता जा रहा है कि खामखाह दिल करता है कि यहाँ से तो रूस मे जाकर जेलों में ही रहें। बड़ा शानदार रहन-सहन, बहुत अच्छा खाना-पीना और साथ में पढाई भी होती है। कौशल सिखाये जाते है, काम करने का वेतन दिया जाता है। आज हम एक ताजा लेख पाठकों की सेवा में भेंट कर रहे हैं ताकि वे देख लें कि रूस की और बातो के साथ-साथ जेल-विभाग में भी क्या परिवर्तन हो गये हैं? यह ध्यान रहे कि समाजवाद मे अपराध रोकने के लिए दण्ड ही पर्याप्त नहीं माना जाता, बल्कि वे अपराधियों को अच्छी शिक्षा देकर उन्हें हमेशा के लिए अपराध से रोकने की कोशिश करते हैं। सजा के दिनों में वे कैदी को काम सिखाते है। बाहर आते ही काम पर लगा देते हैं, ताकि बेकार रह भूखा मरता वह फिर अपराध न करने लगे। यही अपराध को जड़ से मिटाने का ढंग है। – एडीटर)

मैं रूस गया। बड़ी-बड़ी चीजें देखकर हैरान रह गया। सबसे ज्यादा हैरानी हुई वहाँ की जेलें देखकर। मेरी इच्छा थी कि देखूँ यहाँ जेलों की क्या हालत है। 'जार्जिया' की जेल देखने का मौका मिला। वहाँ पहुँचने पर पता चला कि जेलर को मुझे जेल देखने की अनुमति मिलने की सूचना नहीं थी। इससे पहले थोड़ी मुश्किल हुई। लेकिन फिर यह

निर्णय हुआ कि मैं उसके साथ जाऊँ व घूमकर सब देख लूँ। खैर! मैं, जेलर व एक-दो और आदमी जेलयात्रा को निकले। सबसे पहले मुझे जेल के लंगर (खाद्य-भंडार) का वार्डर मिला। वह आदमी जार के समय भी जेल में नौकरी करता था और क्रेंसकी की अस्थायी पूँजीपति सरकार के अधीन भी जेल कर्मचारी रहा। वह दोनों सरकारों की बड़ी निन्दा करता था। वह कहता था कि उन दोनों सरकारों के अधीन कैदियों और वार्डरों को पशुओं की खुराक दी जाती थी और बेचारे कैदियों पर बेहद अत्याचार होते थे। लेकिन सुनता कौन था। जार के बाद अस्थायी सरकार भी कुछ अच्छी नहीं थी। हाँ, तब जार की सरकार से एक बात अच्छी थी कि व्यक्ति अपनी तकलीफों की शिकायत कर सकता था। पर इससे कोई व्यावहारिक लाभ नहीं होता था, क्योंकि कोई शिकायत दूर करने की कोशिश नहीं करता था। और सबसे अधिक क्रोध उसे इस बात पर था कि अस्थायी सरकार ने उनका तीन महीने का वेतन नहीं दिया। इस बात का अब तक बहुत प्रभाव है।

उससे पूछा कि अब क्या स्थिति है? तो उसने कहा, अब तो कमाल हो गया, अब तो खूब मजे हैं। अब कैदियों और वार्डरों को बहुत अच्छा भोजन मिलता है। सबको सही समय पर वेतन मिलता है। बहुत खुशी से कहता था, "अब तो मैं भी आदमी बन गया हूँ, भले ही अभी तक जेल का वार्डर हूँ।"

जेल में घुसते ही मैंने एक कमरा देखा, जिसमें बहुत-से आदमी कैदियों से मिल रहे थे। वहाँ कैदियों और दूसरे आदमियों के बीच सिर्फ एक लोहे का डण्डा था। वे बड़ी खुली तरह बातचीत कर सकते, हाथ मिला सकते और अपने प्रियजनों को चूम सकते थे। मैंने उस समय एक आदमी को अपने बच्चे को चूमते देखा, जिसे उसकी पत्नी साथ ले आयी थी। पता चला कि सप्ताह में तीन बार प्रत्येक कैदी के दोस्त, रिश्तेदार मुलाकात करने आ सकते थे और मुलाकात आधे घण्टे तक चल सकती है। मिलनेवालों की संख्या पर भी कुछ खास पाबन्दी नहीं, जितने लोग चाहें, मिलने आ जायें। यह देखकर मैं बहुत हैरान हुआ।

फिर यह जानकर बहुत हैरानी हुई कि अब अकेली कोठरी में कैदियों को बन्द नहीं रखा जाता। बड़ी-बड़ी बैरकें बनी हुई थीं, जिनमें 20-20 आदमी रहते हैं। उन बैरकों को न रात में और न दिन में ही ताला लगाया जाता है। हाँ, रात को निचली छत और ऊपरी छत के बीच की सीढ़ियों को ताला लगा दिया जाता है। दिन में उसे भी खोल दिया जाता है। प्रत्येक कैदी किसी भी कमरे में जा सकता है। वे चाहे सिगरेट पियें या पढ़ें या खेलें, जो चाहे करें, उन्हें पूरी छूट रहती है।

दिन में चार बार उन्हें कसरत के लिए बाहर निकाला जाता है। कसरत भी बन्द अहातों में बन्दूकों के पहरे में नहीं, बल्कि बाहर के खेल के मैदानों में बिना किसी खास पहरे के। यह देखकर मेरी हैरानी की हद न रही।

पता चला कि शरीफ कैदियों को सप्ताह में एक दिन जेल से छुट्टी दी जाती है, तब वे अपने घर जा सकते हैं और घरवालों के साथ पूरा दिन बिता सकते हैं या सैर कर सकते हैं। मैंने पूछा—इस तरह कैदी भागते नहीं ? उन्होंने कहा कि ऐसा अवसर कम ही आता है। कभी कोई कैदी इस तरह नहीं भागा। गर्मियों में शरीफ कैदियों को पन्द्रह दिन की छुट्टी मिल जाती है। तब वे जहाँ चाहे जा सकते हैं। इन छुट्टियों में भी कैदी भागते नहीं, समय पूरा होने पर लौट आते हैं।

कई कैदी हमारे साथ चल पड़े। एक कैदी थोड़ी-सी अंग्रेजी सीख गया था। उससे मैंने बात की। वह कहने लगा, जेल बड़ी अच्छी जगह है। कैदी आठ घण्टे काम करते हैं। खुराक बहुत अच्छी मिलती है। कोई सख्ती और जुल्म नहीं होता। उनकी अपनी अध्ययन-सभा, लाइब्रेरी, संगीत-पार्टी आदि बने हुए हैं, जिनका प्रबन्ध उन्हीं की एक समिति करती है। सारी जेल देखकर कोई उसे जेल नहीं कह सकता। वह तो एक सभा या क्लब लगता है।

इमारत जेल की ही लगती थी और अन्य सामान भी जेल का ही नजर आता था, लेकिन स्थिति बहुत-से परिश्रम करनेवाले स्वतन्त्र लोगों से अच्छी थी। वहाँ सप्ताह में तीन बार सिनेमा और थियेटर भी दिखाये जाते हैं।

कैदियों के कपड़े देख बहुत हैरानी हुई। करीब चालीस कैदी, जेल-दारोगा व कुछ वार्डर खड़े थे। मजिस्ट्रेट साहिब आये। बातचीत में अंग्रेजी जेलों पर बात चल पड़ी। सभी लोग, क्या कैदी और क्या अधिकारी, एक समान हिस्सा ले रहे थे। यदि कोई अनजान आदमी वहाँ आ जाता तो बिल्कुल न पहचान पाता कि कौन कैदी है और कौन दारोगा और कौन मजिस्ट्रेट।

कैदियों की अपनी दुकानें हैं। वे स्वयं ही उन्हें चलाते हैं। वहाँ वे तम्बाकू, सिगरेट, मिठाई व ब्रुश आदि हजारों आवश्यक चीजें खरीद सकते हैं और जो मुनाफा हो वह रिहा होने पर कैदियों में बाँट दिया जाता है। सवाल उठेगा कि बिना पैसे कैदी चीजें खरीदते कैसे हैं ? लेकिन रूस में प्रत्येक कैदी को महीना परिश्रम करने के बाद वेतन मिलता है। वे जैसे चाहें, उस रकम को खर्च कर सकते हैं। कैदियों के अपराध अधिकारियो के पास नहीं जाते। कैदियों की समिति स्वयं ही सारी समस्याएँ हल करती है।

कैदियों की अपनी एक समिति बनी हुई है ताकि जो तकलीफ हो, वह दूर की जा सके। यह समिति अधिकारियों द्वारा मान्य है, वे फौरन दारोगा को अपनी सब तकलीफें बता देते हैं। और यदि कोई फैसला न हो पाये तो स्वयं मजिस्ट्रेट के सामने अदालत मे मामला पेश कर सकते हैं। इनका अपना अखबार भी होता है। हाथ से ही लिखा जाता है। लेखक का नाम नहीं दिया जाता, लेकिन उन्हें जेल-व्यवस्था की आलोचना करने का पूरा अधिकार है। जेलर का एक बड़ा मजेदार कार्टून बना हुआ मैंने स्वयं देखा था।

कई कमरों में मैंने देखा कि कैदी अलग-अलग काम सीख रहे हैं। कहीं कपड़े सीने

का काम, कहीं जूता सिलने का काम और कहीं बढ़ई का काम सिखाया जा रहा था।

और कई कमरों में पढ़ाई हो रही थी। कई मास्टर बाहर से पढ़ाने आते थे और कई कैदियों में से ही थे। कैदी अध्यापक को प्रत्येक दो दिन की कैद के बदले एक दिन का कैद माफ की जाती है।

मैं एक कैदी को एकान्त में ले गया। अधिकारी बड़ी खुशी से अलग हो गये। उसने भी यही कहा कि सभी कैदी खुश हैं और यह जगह बहुत अच्छी है। मुझसे पूछा गया कि इंग्लैण्ड में कैदियों से कैसा व्यवहार किया जाता है? उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता था कि इंग्लैण्ड में कैदियों को अलग-अंलग कोठरियों में बन्द किया जाता है और बातचीत करने की भी अनुमति नहीं होती।

वे पूछने लगे, फिर कैदियां की समिति क्या करती है? वह यह शिकायत दूर क्यो नहीं करती? मैंने उन्हें बताया कि वहाँ कोई समिति नहीं बनायी जा सकती, नहीं तो जेलर क्रोध से ही मर जायें। वे हैरान रह गये। वे विश्वास नहीं करते थे कि जेल में कैदियों की समिति के बगैर कैदियो की गुजर होती होगी।

उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि मुझे अंग्रेजों की जेलों सम्बन्धी कुछ भी जानकारी नहीं है। वे मुझे अपने नहाने के कमरे मे ले गये। ज़ार के समय ये अँधेरी कोठरियाँ थीं। अब वहाँ फव्वारे लगा दिये गये हैं और नहाने की बहुत अच्छी व्यवस्था की गयी थी।

आखिर में मैं उनके साथ लंगर (मेस) में गया। खाना बहुत सादा, बहुत बढ़िया व स्वादिष्ट था। ऐसा बढ़िया खाना हमारे बहुत-से परिश्रम कर खानेवाले स्वतन्त्र मजदूर भी नहीं पा सकते। मेरे जाने से उन्हें बहुत दुख हुआ। उन्होंने मुझसे इंग्लैड के कैदियों तक उनकी दुआ-सलाम पहुँचाने को कहा। मुझे उन्होंने अपने बगीचे का गुलदस्ता भेंट किया और बड़े सम्मान के साथ विदा किया और कहा कि उम्मीद है आप फिर आयेंगे।

मेरी रूस यात्रा

लेखक-भाई शौकत उस्मानी। प्रताप कार्यालय, कानपुर से प्रकाशित। 144 पृष्ठ, मूल्य-।। =

हिन्दुस्तान के वर्तमान जन-आन्दोलन में विदेशों की यात्रा का काफी प्रभाव है। पाठक जानते हैं कि 1914-15 के जन-आन्दोलन में अमेरिका से लौटे हुए भाइयों ने ही अपने प्राणो की बाजी लगाकर एक बार हिन्दुस्तान की किस्मत को बदलने का यत्न किया था।

1918 में जब 'खिलाफत' का मामला खड़ा हुआ तभी मुसलमान भाइयों मे हिजरत की लहर चली—कि हमें अंग्रेजी मुल्क ही छोड़कर चले जाना है। इस सिलसिले में सैंकड़ों आदमी गये और बाहर जाकर उनकी आँखें खुलीं। धर्मान्ध मुसलमानो ने देखा कि कोई भी उनका बोझ उठाने को तैयार नहीं। आखिर बहुत-से तो अनेक झंझट उठाकर उसी

समय वापस लौट आये । कई आगे चले गये । रूस जा पहुँचे । जिन [illegible] वे लोग गये थे वह किस्सा बहुत उत्साहवर्धक है और दर्दनाक भी है। शौकत उस्मानी उन्हीं व्यक्तियों में से हैं। तुर्किस्तान की लड़ाइयों में से वे किस तरह जान बचाकर निकले और किस तरह रूस पहुँचे और वहाँ की हालत देखकर अचम्भित हो उठे । ये सब बातें किताब पढने से ही सम्बन्ध रखती हैं। नौजवानों को इस किताब की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए और बाहर जाकर दुनिया देखने का शौक पैदा करना चाहिए। रूस का बहुत अच्छा हाल लिखा हुआ है । प्रत्येक हिन्दी पढ़े सज्जन को यह किताब मँगवाकर पढनी चाहिए ।

आयरिश स्वतन्त्रता युद्ध

'आयरिश स्वतन्त्रता युद्ध' : हिन्दी में। प्रताप कार्यालय, कानपुर से प्रकाशित । पृष्ठ 100, मूल्य-।=)

यह किताब आयरलैण्ड के बहादुर युगान्तकारी श्री डेनब्रिल की अंग्रेजी पुस्तक 'माई फाइट फार आयरिश फ्रीडम' का हिन्दी अनुवाद है । पाठक जानते होंगे कि सौ अरसों से आयरलैण्ड अंग्रेजों के पंजे से रिहा होने की कोशिश करता रहा था । पिछली सदी में 1848, 68, 98 की बगावतें प्रसिद्ध हैं । पिछले संघर्ष के दिनों में 1916 में ईस्टर के दिनों में उन्होंने फिर विद्रोह कर दिया था । उसमें भी उनकी हार ही हुई थी । अब तक वह ईस्टर विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध है ।

बाद में लड़ाई समाप्त हो जाने पर पार्लियामेण्ट के लिए सदस्यों का चुनाव हुआ और आयरलैण्ड के 'सिनफिनरा' के सदस्य ही ज्यादा चुने गये । उन्होंने अलग ही आयरिश पार्लियामेण्ट स्थापित कर ली और दूसरी तरह युगान्तकारी गुरिल्ला युद्ध, अर्थात् लुकाछिपीवाली लड़ाई आरम्भ कर दी । सबसे पहले लड़ाई छेड़कर देश, देशवासियों और सरकार की नींद भंग करनेवाले लोगों में से डेनब्रिल थे । पहले ही दिन सिपाहियों से लड़कर उनसे उनका बारूद छीनकर वे भाग गये थे । बाद में उनके वारण्ट निकाले गये और पकड़वाने के लिए ईनाम की भी घोषणाएँ हुईं । रात-दिन अपना सिर हथेली पर रखे वे जनता के बीच बब्बर अकालियों की तरह दौड़ते-फिरते रहे ।

उनसे कहा गया कि तुम अमेरिका चले जाओ, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया और कहा कि हमें तो आयरलैण्ड में ही लड़ते हुए मरना है । किस प्रकार लोग उन्हें गालियाँ बकते और पास न फटकने देते और किस प्रकार वे बार-बार पुलिस के पजे में फँसते-फँसते बचते, ये सब बातें पढ़ने योग्य हैं । श्री डेनब्रिल का लिखने का ढंग बहुत अद्भुत है और व्यंगात्मक भी है । इसलिए उन्होंने सारा किस्सा ऐसी तरतीब से लिखा है कि पढ़ने में बहुत ही आनन्द आता है ।

उन्होंने पहली लडाई में अपने घबराने की तथा बाद की लड़ाइयों में अपने धैर्य की स्पष्ट और सच्ची कथा लिखी, जो कि बिल्कुल ही स्वाभाविक नजर आती है। साथियों के गिरफ्तार किये जाने पर वह किस तरह तड़प उठे और उन्हें छुड़ाने के लिए कोशिशें करने लगे, यह सब पढ़नेवाली कहानी है।

एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात है श्री डेनब्रिल की। हमारे देश के नौजवान विवाह कराने के लिए दौड़ते फिरते हैं। बाप ने कभी सवारी नहीं की होती लेकिन वर बना बेटा तलवार बाँधकर मरियल घोड़ी पर चढ़कर निकल पड़ता है। उसकी उस चाल को भी काबू में रखने के लिए दो व्यक्ति आगे से उसे पकड़े रहते हैं। और फिर जाकर कपड़ों की गाँठ की तरह बँधी लड़की के साथ [वर महोदय का] गठबन्धन हो जाता है। सर्वत्र खुशियाँ मनायी जाती है। लड़का ब्याहा गया! लानत है ऐसे विवाह पर और ऐसे वर पर।

डेनब्रिल के वारण्ट निकले हुए हैं। आदेश हुआ कि देखते ही गोली मारकर खत्म कर दिया जाये। लडाई मे वे जख्मी हो जाते है। तब एक युवती उनकी सेवा करती है और अपनी जान हथेली पर रखकर उनकी हर प्रकार से मदद करती है। आखिरकार दोनों मे प्रेम हो जाता है और बिल्कुल घमासान युद्ध के दिनों में एक जगह फौजें इकट्ठी करके यह शादी की जाती है। हर पल खतरा है कि दुश्मनों ने हमला कर दिया तो खैर नही। नौजवानो, यह असल विवाह है या मुरदोंवाला [वह] विवाह ? नौजवान इस किताब को जरूर पढें और ध्यान से पढ़ें।

अंग्रेजो के बेइन्तहा जुल्मो की भी यह दर्दनाक कहानी है। साथ ही यह भी रोचक ढग से बताया गया है कि 'लातो के भूत बातो से नही मानते।'

5
अलग-अलग सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर विचार

ट्रेड यूनियन बिल

[1927 मे साम्राज्य आर्थिक मन्दी की ओर धकेला जा रहा था, इसलिए मजदूर वर्ग के जनवादी अधिकारो पर हमले शुरू हो गये थे। इंग्लैण्ड मे जब ट्रेड यूनियन बिल पास हो रहा था तो 'किरती' ने (मई, 1927 में) एक लेख इस सम्बन्ध मे प्रकाशित किया। लेख के लेखक के सम्बन्ध मे जानकारी हासिल नहीं है, लेकिन उस समय की विचारधारा के प्रतीक रूप मे वह यहाँ प्रस्तुत है। 1929 मे जब ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल को भारत मे लागू करने की कोशिश की गयी थी तो भगतसिंह और बी. के दत्त ने असेम्बली हॉल, दिल्ली में बम फेंका था।—स]

इग्लिस्तान के एक जगह टिके (Conservative) गुट के लोग कब से इस बात की ताक में थे कि कैसे मजदूरो मे बढती हुई ताकत को रोका जाय। उनको यह बात स्पष्ट नजर आती थी कि यदि मजदूरो की बढत को अभी न रोका गया तो मजदूर देखते-ही-देखते राज के मालिक बन जायेंगे और इस तरह उन्हें राज की बागडोर छोडनी पड़ेगी। उन्हें यह स्पष्ट पता था कि नाम मात्र स्वतन्त्र (Liberal) गुट तो किसी काम का नहीं है और न ही अभी जल्दी उनके ताकत में आने की उम्मीद है। इसलिए यदि उन्हें खतरा था तो मजदूरो से ही था और मजदूरो की मुश्के बाँधना ही उन्होने सबसे पहले ठीक समझा।

इस काम के लिए उन्होंने ट्रेड यूनियन बिल का आविष्कार किया, जिसके सम्बन्ध में पिछले अक में बताया गया था। वह मजदूरों के सब करे-धरे को यह बिल पास कर कुएँ में डालना चाहते हैं।

मजदूरों ने इस बिल के खिलाफ बड़ी जोरदार आवाज बुलन्द की है । उन्होंने कहा है कि यह बिल एक वर्ग के द्वारा दूसरे वर्ग को मटियामेट करने के लिए ल.या गया वर्ग-बिल है । मि. रामज़े मैकडानल्ड-जैसे मजदूर भी इस बिल को वर्ग-युद्ध की घोषणा समझते हैं और श्रमिक-संसार में सब जगह इस बिल से तूफान मच गया है । मजदूर फिर एक दिन के लिए बड़ी आम हड़ताल करने की सोच रहे हैं । वे विरोध में मीटिंग कर रहे है । ख्याल किया जाता है कि संसद में इस बिल पर घमासान बहस होगी, और मजदूर-नेता यदि खरीद न लिये गये तो जी-तोड़कर लड़ेंगे ।

आजकल जो लोग अंग्रेजी अखबार पढ़ते है उन्हें पता है कि इस बिल का किस तरह अंग्रेजी श्रमिक प्रेस में विरोध हो रहा है । इस बिल को वर्ग-कानून कहा जाता है । मजदूर समझते हैं कि बाल्डविन की सरकार ने उनके बुनियादी अधिकारों पर धावा बोल दिया है । इस बिल से उनके संगठन के बिखर जाने की भारी खतरा है । मजदूरों का अपना दैनिक अखबार 'डेली हेराल्ड' (Daily Herald) लिखता है कि यह बिल मजदूरों को मानसिक रोगी समझता है और सख्त अपराधियों के लिए इसने सज़ा भी नियत कर दी है । एक और मजदूर नेता ने इसे मुसोलिनी-जैसा कानून कहा है ।

बड़ी हडताल के समय से ही एक जगह खड़े (अनुदार) गुट के लोग यह माँग कर रहे थे कि सरकार कोई ऐसा बिल संसद में पेश करे, जिससे कि सबके सब मजदूर हड़ताल ही न कर सकें । और यदि एक यूनियन के मजदूर किसी दूसरी यूनियन की हमदर्दी मे हडताल कर दें तो वह हड़ताल गैरकानूनी मानी जाये । इस समय यदि कोई यूनियन हड़ताल करती है तो वे मजदूर जो हड़ताल में शामिल नहीं होंगे, उन्हें यह समझाया नहीं जा सकेगा कि वे भी इसमें शामिल हों, क्योंकि यदि मजदूर पिकेटिंग आदि के जरिए ऐसा करेगे तो उन्हे सजा दी जा सकेगी । इस बिल से सिविल सर्विस के कर्मचारियों के लिए किसी पार्टी में शामिल होना मना हो गया है और सबसे बड़ी चोट मजदूरों की राजनीतिक पार्टी पर की गयी है । वह यह है कि कोई मजदूर राजनीतिक कामों के लिए तब तक चन्दा नहीं दे सकता, जब तक कि वह लिखकर न दे कि वह राजनीतिक कामों के लिए चन्दा देना चाहता है । इससे पहले यह कानून था कि राजनीतिक कामों के लिए मजदूर चन्दा इकट्ठा कर सकते हैं, लेकिन जो लोग चन्दा नहीं देना चाहते, वे लिखकर दें कि वे चन्दा नहीं देना चाहते । अब स्थिति उलटी हो गयी है ।

इस आखिरी अंक से श्रमिकों के सगठन को बड़ी भारी चोट पड़ेगी और इस जमाने में जब कि कोई पार्टी रुपयों के बगैर चल ही नहीं सकती तो यह स्पष्ट है कि श्रमिक पार्टी का रुपयों के बगैर गला दबाने के लिए यह चाल चली गयी है । अन्य पार्टियों की तरह लेबर पार्टी को भी ससद में अपने उम्मीदवार खड़े करने और उन्हें सफल बनाने के लिए रुपयो की जरूरत है । जब दूसरी पार्टियाँ जैसे चाहे रुपये इकट्ठे कर सकती हैं और उन्हे कभी पूछा तक नहीं गया है तो कोई वजह नहीं कि मजदूरों की पार्टी के भीतरी कामों में खामखाह टाँग अड़ायी जाये ।

इस समय तक मजदूरों की राजनीतिक पार्टी अपने फण्ड ट्रेड यूनियनों से इकट्ठे करती रही है। अनुदारवादी गुटा का यह विचार है कि इस तरह यदि मजदूर पार्टी के फण्ड ही बन्द कर दिये गये तो मजदूरों का संगठन स्वयं ही दोफाड हो जायेगा और इनके घरों में घी के दिये जल जायेंगे। इस तरह श्रमिक संगठन के टूट जाने से ये सदा ही इंग्लिस्तान के राज पर कब्जा जमाये रखेंगे। पर कौन-सी पार्टी टूटेगी और कौन-सी सत्ता में आयेगी, इस बात का पता तो अनुभव और भविष्य ही बतायेगा।

यदि यह बिल पास हो गया तो मजदूर फिर उन्हीं जंजीरो में जकड़े जायेंगे जिनमें से कि यत्न से अभी वे निकले ही थे। फिर उन जंजीरों को तोड़ना आसान नहीं होगा। इसलिए श्रमिकों को अब वक्त सँभालना चाहिए और ऐसा जोरदार आन्दोलन करना चाहिए कि इस पूँजीपति गुट को, जो अभी मजदूरों को गुलामी से छूटने नहीं देना चाहता, नानी याद आ जाये। पर यह नानी भी तभी याद आ सकती है, यदि आनेवाली संसद में इनकी ऐसी हार हो कि याद कर-कर आँखें मला करें। इस समय संसद में इन पूँजीपतियो का बहुमत है। इस बहुमत के अभियान में ही यह लोग अकड़े फिर रहे हैं और मजदूरों को नजरों में भी नहीं लाते।

हम चाहते हैं कि मजदूर नाम मात्र स्वतन्त्र (उदार) गुट में भी प्रचार करें और उनमें से बहुत-से सदस्यो को अपनी ओर कर लें, ताकि यह बिल पास ही न हो सके। और न सिर्फ यह बिल ही असफल करा दें वरन् इस मौजूदा सरकार को भी उलट दें। इसने यह कानून पेश कर राज करने के सभी अधिकार गवाँ दिये हैं।

इस समय जरूरत है कि मजदूरों के अपने घर में भी किसी तरह की फूट न हो और मजदूरों के नरम और गरम गुटों के सब लोग एकजुट हो जायें ताकि साझे जोर से इस मौजूदा सरकार का डटकर मुकाबला किया जा सके और इसे ऐसे चने चबाये जायें कि सारी उम्र ही इस वक्त को याद कर-कर हाथ मला करें।

गदर आन्दोलन की कुछ व्यथा

[सितम्बर, 1927 के 'किरती' में एक और बहुत महत्त्वपूर्ण लेख 'गदर लहर की कुछ व्यथा' छपा था। यह एक अखबार से लेकर छापा गया था। लेखन-शैली और विचारों से यह लेख शहीद भगवतीचरण वोहरा का हो सकता है। —सं]

पहले मैं यह बता दूँ कि विप्लववाद का क्या अर्थ है। फिर मैं आगे चलूँगा। हर गिरी हुई कौम हमेशा गिरी नहीं रहती और उस कौम के वीर उसकी उन्नति का यत्न करते हैं और कुर्बानियाँ देते हैं, और अब यह सोचना है कि कुर्बानियाँ कई तरह से दी जाती हैं। कौमों

को उठाने का यत्न भी कई-कई तरीकों और हिम्मत से किया जाता है। एक तो देश में शिक्षा का प्रचार करना। यह भी कोई छोटी-सी बात नहीं। दूसरे, लोगों को उनके हक बताने और उन्हें हासिल करने के लिए सरकार के आगे प्रार्थना करना। उसे [ऐसे दल को] हम माडरेट कहते हैं। यह शब्द उस समय इस्तेमाल होता है, जब देश उस स्थिति से कुछ ऊपर उठ जाता है। दूसरा दर्जा होता है गर्म दल का, जिस तरह 1907 में लोकमान्य तिलकजी की पार्टी थी या आजकल महात्मा गाँधीजी का प्रचार कहा जा सकता है। लेकिन जिस समय इन दोनों रास्तों पर चलने से भी सफलता नहीं मिलती तो तेज नौजवानों का एक दल कुछ और आगे बढ़ता है। वह हाथों-हाथ काम करना चाहता है, मरना और मारना चाहता है और इस ढंग से ही जीत प्राप्त करना चाहता है। उसे [ऐसे लोगों को] अंग्रेजी भाषा में रिव्ल्यूशनरीज़ (Revolutionaries) कहते हैं। इस आरोप में वे गुप्त काम करते हैं और बाद में बदलकर खुल्लमखुल्ला लड़ाई करने को तैयार हो जाते हैं, जिस तरह कि आयरलैण्डवाले अब तक लड़ते रहे हैं। यह काम जब तक गुप्त रहता है, तब तक उसे दबाने का यत्न किया जाता है। उस स्थिति में उन्हें हिन्दुस्तानी भाषा में विप्लववादी कहते हैं, उर्दू में **इन्कलाबी** कहा जाता है। यह शब्द इज्जत और निन्दा, दोनों के लिए इस्तेमाल हो सकता है, अर्थात् जब तक देश कमजोर है, जब तक वहाँ खुशामदी अधिक होते हैं, तब तक वहाँ उन्हें सभी लोग बुरा कहते हैं और शासक तो उनके दुश्मन होते ही हैं, लेकिन बाद में उन्हें ही देशभक्त कहा जाता है।

हम किसी डर के कारण चाहे उन्हें बुरा कहे, लेकिन वास्तव में वे किसी से भी कम 'देशभक्त' नहीं होते, बल्कि हम यह कह सकते हैं कि वे दूसरे शोर मचानेवालों से देश का अधिक दर्द रखनेवाले होते हैं। उनकी कोई सहायता नहीं करता। अपने-पराये सभी बुरा-भला कहते हैं और शासक तो जो करते हैं उसका पूछना ही क्या है। वे वीर फिर भी डटे रहते हैं और जरा भी घबराते नही। तो क्या वे किसी से कम देशभक्त होते हैं? मैं तो कहूँगा कि दुनिया में 'End Justifies the means' अर्थात् परिणाम से ही पता चल जाता है कि उनके द्वारा इस्तेमाल किये तरीके अच्छे थे या बुरे? यदि परिणाम अच्छा हो तो झूठ बोला हुआ, हत्या किया गया भी ठीक ही होता है, और यदि असफलता हो तो शान्ति से होनेवाला काम भी बुरा ही कहा जाता है।

क्या वाशिंगटन को उस समय बागी कहकर दबाने की कोशिश नहीं की गयी थी? क्या यदि वह उस समय दुश्मनों के हाथ आ जाता तो उसे फाँसी न मिलती? क्या स्काटलैण्ड का वीर वालीस सच्चा देशभक्त नहीं था? क्या उसे फाँसी नहीं दी गयी? इस देश में काम ऐसे ही होता है। इटली की हालत देख लो, मैजिनी-जैसों ने भी तो गुप्त सोसायटियाँ बनायीं, उनके परिश्रम का ही यह फल हुआ कि गैरीबाल्डी-जैसे वीर ने दो-दो हाथ कर दिखाये। दूर क्या जाना है, अभी कल की बात है कि रूस उठा है। कितने आदमी फाँसी पर चढ़े और बागी ठहराये गये। क्या ये सच्चे देशभक्त नहीं थे? इस बात

का जवाब आज रूसवालों से पूछिए तो। इन बेचारों को 'निहिलिस्ट' और 'अनार्किस्ट' अर्थात् दुनिया में 'अराजकता फैलानेवाले' और 'खून-खराबा करनेवाले' कहा जाता था। उनके परिश्रम के फलस्वरूप ही आज वहाँ पंचायती सरकार बनी हुई है।

हाँ, यह लोग जो निराश होने से खून-खराबे पर उतारू हो जाते हैं वे पहले गुप्त सोसायटियाँ बना लेते हैं। उन्हें अंग्रेजी में Revolutionaries और हिन्दी में 'विप्लववादी' कहा जाता है।

यदि संसार में देखा जाये तो यह बात कि जोरावर की सात कौड़ी सौ हुआ करती हैं, ठीक लगती है, क्योंकि जितनी देर एक पक्ष का जोर रहा उतनी देर तो कमजोर बागी, अनार्किस्ट, निहिलिस्ट, विप्लववादी, इन्क्लाब-पसन्द कहलाते हैं, लेकिन जब दूसरा पक्ष ताकतवर हो जाता है तो वे सच्चे देशभक्त, कौम के परवाने हो जाते हैं और दूसरे ज़ालिम, अत्याचारी, लालची आदि बन जाते हैं।

शिवाजी मराठा यदि राज कायम न कर पाता और ज़ालिम औरंगजेब के दाँत खट्टे न कर पाता तो वह डाकू ही कहलाता, लेकिन आज हम भी उसे महापुरुष कहते हैं। खैर!

यह ख्याल कि कोई इन्कलाब करे और खून-खराबे से न डरे, झटपट नहीं आ जाता। धीरे-धीरे शासक लोग जुल्म करते हैं और लोग दरख्वास्तें देते हैं, लेकिन अहंकारी शासक उस तरफ ध्यान नहीं देते। फिर लोग कुछ हल्ला करते हैं, लेकिन कुछ नहीं बनता। उस समय फिर आगे बढ़े हुए नौजवान इस काम को सँभालते हैं। यदि किसी देश में शान्ति हो और लोग सुख-चैन से बैठे हों तो वहाँ उतनी देर इन विचारों का प्रचार नहीं हो सकता, जब तक कि उन्हें कोई ऐसा बड़ा भारी नया विचार न दिया जाये, जिस पर कि वे परवानों की तरह कुर्बान हो जायें। या 'जुल्म' इस बात के लिए लोगों को तैयार करते हैं।

यदि हम अपने देश की ओर ध्यान दें तो इस बात का स्पष्ट पता चल जाता है।

सबसे पहले यह विचार महाराष्ट्र अर्थात् मराठों में किसी महापुरुष को सूझा, लेकिन इसका प्रचार नहीं हो सका। फिर बंगाल में यह विचार आया। वीर वीरेंद्रयश सबसे पहले इस बात का प्रचार करने लगा। यह बात 1903 की है। लेकिन लोग पूरे आराम में रहते थे तो खामखाह कोई दुख में पड़े, किसी ने भी उनकी बात न मानी। वे अपना जोर लगाकर असफल होकर बैठ गये। यह पूरा विवरण रोल्ट कमेटी की रिपोर्ट में दिया है।

फिर 1905 में बंगभंग हो गया। लोगों ने दरख्वास्तें दीं, लेकिन लार्ड कर्जन ने कहा, 'सूरज पश्चिम से उग जाये लेकिन मैं बंगाल का विभाजन ऐसे ही रखूँगा।' फिर स्वदेशी का प्रचार हुआ। कई बेचारे निर्दोष ही जेलों में ठूँस दिये गये। कर्जन ने अपनी 'टें' नहीं छोड़ी। बताओ उस समय जब लोग दुखी बैठे हों, तब उनमें इन बातों का प्रचार झटपट हो जाना ही हुआ कि नहीं? बस बम बनने लगे। खैर, 1908 में अलीपुर षड्यन्त्र केस चला। फिर तो काम और भी जोरों पर हो गया और 1916 तक होता रहा। फिर लोगों

को डकैतियाँ डालनी पड़ीं। कुछ दिन पहले एक बंगाली सज्जन ने भाषण दिया था कि लोग उन्हें डाकू कहते हैं। लेकिन आप यह तो बताओ कि तुम उन्हें एक पैसा भी देते हो। वे बेचारे अपना तो सबकुछ छोड़ बैठे हैं और आप उनकी सहायता नहीं करते तो आप सोचो कि वे क्या करें, क्या अपना काम रोक दें? मैं बहुतों से मिला हूँ, वे सच्चे संन्यासी हैं, देशभक्त हैं। खैर, अब हम अपने प्रदेश की ओर आते हैं। पहले-पहले यह हल्ला सरदार अजीतसिंह जी के समय हुआ था। सन् 1907 की बात है। दो कानूनों के खिलाफ आवाज उठायी गयी। जोश बढ़ता देखकर सरकार ने उनकी बात झटपट मान ली और शोर-शराबा रुक गया। वह जमाना चला गया। कहा जाता है कि 1909 में सरकार को चिन्ता हुई कि बंगाल की बीमारी कहीं पंजाब में भी न आ फैले। उन्होंने सरदार अजीतसिंह को पकड़ने की कोशिश की, लेकिन वे बचकर निकल गये। उसके बाद पंजाब में सिवाय दिल्लीवाले बम केस के और कोई शिगूफ़ा नहीं दीखता। वहाँ वह विचार भी बंगाल ने ही दिया था। लेकिन उन्होंने कितने लोगों को अपने साथ मिलाया था? कुल दस-बारह आदमी होंगे। साधारण लोग जलती आग में क्यों जाने लगे। चार को फाँसी मिली, कुछ को कैद कर दिया और बात खत्म हुई।

लेकिन झटपट अगले ही बरस 1915 में फिर पंजाब में गदर की तैयारियाँ नजर आती थीं। तब दो बातें थीं—एक तो लड़ाई छिड़ गयी (प्रथम महायुद्ध—अनु.); दूसरे, सरकार ने कामागाटामारुवालों पर अत्याचार किया। वे भी अमेरिका से, बेचारे विचार ही लेकर आये थे। लेकिन पंजाब में रहनेवाले कितने लोगों ने उनका साथ दिया? सिवाय 1907 के कुछ आदमियों के कितने लोग थे उनके साथ? खैर, मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार संक्षेप में क्रान्तिकारी विचारों के विकास व प्रसार का कुछ वर्णन करने का यत्न किया है और यदि मुझे समय मिला तो एक लम्बा लेख लिखकर अन्य देशों के विस्तृत हाल समेत इसका वर्णन करने का यत्न करूँगा।

(एक अखबार से)

तख्ता पलट गुप्त षड्यन्त्र

[जनवरी, 1928 में जब शहीद भगतसिंह के दो लेख 'किरती' में छपे तो उनके साथ एक लेख 'तख्ता पलट गुप्त षड्यन्त्र' नाम से भी छपा। इसके लेखक का नाम नहीं दिया गया, लेकिन अंग्रेज सरकार किस तरह के तरीके इस्तेमाल कर क्रान्तिकारी आन्दोलन के खिलाफ प्रचार करती थी, यह लेख इस सम्बन्ध में अच्छी जानकारी देता है।—स.]

अखबार पढ़ने-सुननेवाले लोग इस बात से परिचित हैं कि ऐसी खबरें अक्सर छपती ही रहती हैं कि हिन्द में आज फलाँ जगह अंग्रेजी सरकार के खिलाफ षड्यन्त्र का पता पुलिस

ने लगाया है। और आज फलाँ स्थान पर षड्यन्त्र का मुकदमा चलाया गया है। आज फलाँ जगह षड्यन्त्रकारियों को फाँसी दी गयी है। अभी ही एक खबर छपी है कि एक ऐसे षड्यन्त्र का मुकदमा चलनेवाला है जिसमें चारों उत्तरी प्रान्त लपेटे जायेंगे। ऐसी खबरें पढ़कर आम भोले-भाले लोग इन षड्यन्त्रों सम्बन्धी अपने दिल में बड़े बुरे विचार रखने लगते हैं। वास्तव में उन्हें इन षड्यन्त्रों सम्बन्धी कोई जानकारी नहीं होती, जिससे इस विषय पर प्रकाश डालना जरूरी है। जिस तरह रात के बाद दिन और दिन के बाद रात आने की वास्तविकता से कोई इन्कार नहीं कर सकता, उसी तरह की वास्तविकता इस कथन में है कि हिन्दुस्तान इस गुलामी को उतारकर आजाद हो जायेगा। यह बात अलग है कि इस मनोरथ को पूरा करने में समय कम या ज्यादा लगे, और मूल्य भी महँगा ही देना पड़े। यही वास्तविकता मजदूर वर्ग सम्बन्धी है कि आज वह भी पूँजीपतियों की गुलामी का जुआ उतारकर ही रहेगा।

आजादी के आन्दोलन दुनिया में न कभी रुके हैं और न रुक सकते हैं, लेकिन इन्हें रोकने के लिए कौमों और मजूदर वर्ग के आन्दोलन के विरोधियों ने जो-जो हथियार इस्तेमाल किये हैं, वह साक्षात रूप में इतिहास में मौजूद हैं और इन्हें अच्छी तरह समझने के लिए हिन्दुस्तान का मौजूदा इतिहास ही काफी है।

जब आजादी का कोई आन्दोलन सफ़ल तरीकों पर चलता दिखायी दे तो इसे असफल करने के लिए इसके सेवकों पर सबसे बड़े आरोप जो लगाये जाते हैं, वह यह होते है—1. कि यह षड्यन्त्र कर रहे हैं, और 2. यह धर्म-विरोधी हैं। इस लेख में इन दोनों विषयों पर विचार करने का यत्न करना है ताकि आम जनता को इनकी तह तक पहुँचने का अवसर मिले और यह पता चल सके कि सही मायनों में षड्यन्त्र करनेवाला और धर्मों का विरोधी कौन होता है और किस तरह दुनिया का भला करनेवालों को षड्यन्त्रकारी और अधर्मी कहा जाता है। वास्तव में षड्यन्त्रकारी और अधर्मी तो यह स्वयं होते हैं।

गुप्त तख्ता पलट आन्दोलन

वर्तमान सरकार यह हल्ला करती नहीं थकती कि हिन्दुस्तान में गुप्त तख्ता पलट आन्दोलन कायम है। इस आन्दोलन के अस्तित्व को प्रकट करने के लिए कहीं-न-कहीं से टूटे-फूटे पिस्तौल और बम आदि अपने खुशामदियों के माध्यम से पकड़ने का ढोंग रच लेती है और कहीं किसी अधिकारी पर कोई खाली जानेवाला हमला ही करवाया जाता है और कभी रेलपटरी के पेंच ढीले किये जाते हैं, जबकि लाट साहिब आदि को गुजरना हो। यह सब ऐसी बातें हैं, जिन्हें गुप्त तख्ता पलट षड्यन्त्र या आन्दोलन आमतौर पर इस्तेमाल करते हैं। लेकिन इस समय यह सबकुछ पुलिस की ओर से हो रहा है, जिसका सबूत इस बात से मिलता है कि बताये गये तख्ता पलटनेवालो की इस कार्रवाई से नुकसान कहाँ तक होता है? बंगाल को इस समय सरकार इस आन्दोलन का घर बता

रही है। पिछले कुछ सालों में चाहे बंगाल में पुलिस ने कितनी ही जगहों से टूटे-फूटे हथियार आदि पकड़े और कई बार सरकारी अधिकारियों पर हमलों की साजिश का अस्तित्व भी बताया, लेकिन आज तक वहाँ किसी भी सरकारी अधिकारी की या कोई राजनीतिक मृत्यु नहीं हुई, जिससे यह सिद्ध होता है कि यह सबकुछ पुलिस के आदमी ही करते हैं। यदि तख्ता पलटनेवाले किसी सरकारी अधिकारी की जान लेने के लिए तैयार हो जायें तो क्या वे उसे सूखा जाने देंगे ? यदि तख्ता पलटनेवाले हथियार आदि रखें तो क्या इस तरह के टूटे-फूटे ही रखें, जिनके बारे में बंगाल पुलिस भी अपनी गवाहियों में बता चुकी है कि ये हथियार चलानेवालों के लिए ही ज्यादा खतरनाक हैं और जिस पर चलाये जाते हैं उसके लिए कम ! यदि तख्ता पलटनेवाले गाड़ियाँ उलटने का यत्न करें तो क्या इसमें सफल न हों ? यह सब ऐसी बातें हैं जो सिद्ध करती हैं कि यह सबकुछ आजादी के उपासकों को कुचलने के लिए पुलिस-कर्मचारियों की ओर से किया जाता है।

हमें इस बात से इन्कार नहीं कि हिन्दुस्तान में तख्ता पलटने का आन्दोलन है, लेकिन हमारा कहना है कि इस समय जो हो रहा है वह पुलिस की ओर से है और इतिहास बताता है कि जब भी कोई तख्ता पलटने का काम शुरू करते हैं, वे अपने वार कम ही खाली जाने देते हैं। और सरकार को भी यह निश्चय रखना चाहिए कि ऐसे लोगों को (जिनका धर्म-ईमान ही देश की आजादी हो और जो बाकी सब तरीकों से निराश होकर आजादी के लिए इस तरीके पर भरोसा रखने लगें) दबाने में वह कभी भी सफल नहीं हो सकती, चाहे वे कितनी ही सख्तियाँ करे और कितनी ही चालें चले और न ही आज तक कोई सरकार इसमें सफल हुई है। इन आन्दोलनों को समाप्त करने का सही तरीका तो यही है कि उन लोगों की माँग पूरी की जाये, ताकि वे शान्त हों।

ऊपर जो बताया गया है यह केवल हमारा अपना ही ख्याल नहीं, बल्कि इसकी पुष्टि बंगाल आर्डिनेन्स सम्बन्धी कई जिम्मेदार सज्जनों के भाषणों और उनके बयानों से होती है। इन्हीं सज्जनों के सवालों का उत्तर सरकार की ओर से सिवाय चुप के कुछ नहीं मिला। नीचे हम अपने विचारों की पुष्टि के लिए कुछ उद्धरण दे रहे हैं जिनसे स्पष्ट सिद्ध हो जायेगा कि सरकार कैसे हिन्दुस्तान को गुलाम रखने के लिए कमीनी चालें चल रही है।

श्रीयुत् सुभाषचन्द्र बोस को, जो कि कलकत्ता नगर सभा के चीफ एग्ज्यूक्टिव आफिसर थे और जिन्हें तख्ता पलट करने का अपराधी कहकर बंगाल आर्डिनेन्स के अनुसार जेल में बन्द किया गया था, अब खराब सेहत के कारण रिहा किया गया है। आपने बंगाल आर्डिनेन्स के सम्बन्ध में अभी एक बयान प्रकाशित करवाया है, जिसमें आप लिखते हैं—

''बंगाली राजनीतिक नजरबंदों को और देर तक जेलों में बन्द रखने की कोई सन्तोषजनक वजह न होने के कारण पुलिस ने अब बम और टूटे हुए पिस्तौल पकडने शुरू कर दिये हैं, ताकि सिद्ध किया जा सके कि तख्ता पलट आन्दोलन अभी तक मौजूद

है। वास्तव में पिछले कुछ सालों में जब भी कभी बंगाली राजबन्दियों की रिहाई की चर्चा चली है और जब भी कभी असेम्बली या बंगाल कौन्सिल में नजरबन्दों के सवाल पर विचार करने के लिए बैठक हुई है तो पुलिस के हाथों में खेलनेवाले कुछ लोग अपने पास से हथियार लेकर झट गिरफ्तारी के लिए पुलिस के आगे पेश हो जाते रहे हैं और फौरन ही कथित बम-कारखानों का पता पुलिस को लग जाता है। इन कारखानों में आमतौर पर कुछ मसाला होता है, जो हर जगह मिल सकता है। फिर टूटे हुए पिस्तौल, जो कि जिस पर निशाना साधा जाये उससे ज्यादा खतरनाक उसे चलानेवालों के लिए हो सकते हैं, जैसा कि दक्षिणेश्वर बम केस में पुलिस के गवाहों ने अपने मुँह से माना कि यह दोनों चीजें चाहे इस्तेमाल में किसी काम की न हों, लेकिन किसी को अपराधी ठहराने के लिए काफी होती हैं।

तख्ता पलट षड्यन्त्र साबित करने के लिए शस्त्र कानून के अन्तर्गत चलाये गये साधारण मुकदमों को पुलिस और एंग्लो-इण्डियन अखबारों की ओर से पोलिटिकल मुकदमे सिद्ध किया जाता है। अभी एक ऐसे पोलिटिकल मुकदमे में जो वायदा माफ गवाह बना, वह एक पुराना पुलिस एजेण्ट है।

पिछले कुछ सालों में निःसन्देह पुलिस की ओर से मनगढ़न्त तख्ता पलट आन्दोलन बनाने के लिए दलाल (Agent Provocateuors) रखे जाते हैं ताकि खुफिया पुलिस के खास हिस्से (Intelligence Branch) को कायम रखने की जरूरत सिद्ध की जा सके, जिन्हें कुछ साल पहले बंगाल की सरकारी खर्च कम करनेवाली समिति (Bengal Retrenchment Committee) ने हटाने की सिफारिश की थी। मैं यह बयान अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह अनुभव कर लिख रहा हूँ और जो आरोप मैं पुलिस पर लगा रहा हूँ, इनकी जाँच के लिए यदि कोई निष्पक्ष समिति बनायी जाय और नजरबन्दों और पब्लिक को यदि इसके सामने गवाहियाँ देने में कोई बाधा न दी जाय और पूरी छूट हो तो इसके प्रमाण देने को भी मैं प्रस्तुत हूँ ।"

स्वर्गवासी श्रीयुत् देशबन्धुदास जी ने भी बंगाल कौन्सिल में भाषण देते हुए 23 जनवरी, 1924 को साफ-साफ बताया कि कैसे ऊल-जलूल [सबूत] इकट्ठा कर बंगाली देशभक्तों को जेल में डाल दिया गया है और किस प्रकार के निराधार आरोप लगाये गये हैं। आपने यह भी जाहिर किया कि इस तरह के आन्दोलन दमनकारी तरीकों से दबाये नहीं जा सकते। नीचे आपके द्वारा कौन्सिल में दिया गया भाषण पूरे-का-पूरा दर्ज है–

"हमें यह शिकायत नहीं है कि सरकार ने इन व्यक्तियों को बगैर कोई सूचना एकत्र किये ही गिरफ्तार कर लिया है, लेकिन हमारी शिकायत यह है कि इन सूचनाओं की अच्छी तरह जाँच नहीं की गयी और हमारी इस शिकायत के उत्तर में एक शब्द भी नहीं कहा। हमें यह बताया गया है कि इस सम्बन्ध में कई आदमियों ने बयान दिये हैं और यह भी बताया गया है कि जो रिपोर्टें मिली हैं, सरकार ने उन पर विचार किया है। लेकिन जो

कुछ मैं पूछना चाहता हूँ वह यह है कि कोई सरकारी अधिकारी चाहे कितना भी योग्य क्यों न हो, किसी बयान के ठीक होने का अनुमान कैसे कर सकता है, जब तक कि बयान देनेवाले को सामने बुलाकर उससे सवाल न किये जायें?''

[जब भगतसिंह और उनके साथी भारतीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की समीक्षा करते हुए लोगों से उसे सांझा कर रहे थे तो भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के ढंग और स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दरपेश पैदा रुकावटों के बारे में चर्चा भी पूरे जोर से चल रही थी। मई, 1928 से सितम्बर, 1928 तक जब भगतसिंह पूरी तरह 'किरती' अखबार चलाने में व्यस्त थे, उस समय के यह लेख यहाँ दिये जा रहे हैं। चाहे इनके लेखकों के नामों का पता नहीं, लेकिन ये लेख शहीद भगतसिंह और उनके साथियों के तत्कालीन विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसीलिए इन्हें यहाँ दिया जा रहा है। शहीद भगवतीचरण वोहरा 'किरती' अखबार से गहरे रूप से जुड़े हुए थे। —सं.]

हर सम्भव तरीके से पूर्ण स्वतन्त्रता

अमृतसर कान्फ्रेंस में जिन बातों पर बहुत झगड़ा हुआ और बहस हुई, उनमें से एक सबसे अधिक जरूरी और महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि कांग्रेस का उद्देश्य हर सम्भव तरीके से 'अंग्रेजी राज से बाहर पूर्ण स्वतन्त्रता' प्राप्त करना हो।

प्रस्ताव पास हो गया और बड़े-बड़े नेताओं ने कांग्रेस से इस्तीफे दे दिये और धमकियाँ देनी शुरू कर दीं और प्रस्ताव पास करनेवालों को षड्यन्त्रकारी, नेतागिरी के भूखे लोग कहा गया। पंजाब-भर के अखबारों ने आसमान सर पर उठा लिया और हाय-तौबा मचा दी। हमें समझ नहीं आ रहा कि क्या कहर टूट पड़ा।

मद्रास कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता (Complete Independence) का प्रस्ताव पास कर दिया था। यहाँ उसे स्पष्ट कर दिया कि आजादी, पूर्ण आजादी अंग्रेजी राज से बाहर ही हो सकती है। हाँ, यह बात साफ है कि मद्रास के प्रस्ताव को [अब] ज्यादा जोरदार और निश्चित बना दिया गया है। उस प्रस्ताव पर तो किसी को कोई खास शिकायत हुई नजर नही आयी थी। झगड़ा सिर्फ 'हर सम्भव तरीके से' (By all possible means) [आजादी] प्राप्त करने का है। अब तो कांग्रेस कोड में लिखा हुआ था कि—By all peaceful and legitimate means— सभी शान्तिपूर्ण और न्यायिक तरीकों से स्वराज लिया जाये।

पूरा देश तैयार था। नौजवानों ने गाँव-गाँव में सिविल नाफरमानी की तैयारी कर दी

थी। चौरा-चौरी में एक-दो भाड़े के टट्टुओं ने अत्याचार कर दिया या यों कहो कि कुछ लोगों से करवा दिया। बस पूर्ण शान्तिवाली बात खत्म। फिर क्या था, पूरे देश का बेड़ा गर्क कर दिया। क्या खूब फिलासफी है कि शान्तिपूर्ण शब्द का बहाना लेकर हरामखोर जमींदारों और ताल्लुकेदारों का पक्ष लिया गया। और बारदौली रैदलीफन में साफ कह दिया गया कि हे किसानो, तुम अपने मालिकों को लगान दे दो।

बस शान्तिपूर्ण के बहाने देश का बेड़ा गर्क कर दिया गया। यातनाओं के झूठे आरोपों में फँसाये गये लोगों का पक्ष लेने की हिम्मत तक हमें न हुई और कई गरीब वहाँ फाँसी पर चढ़ गये। यह तो अत्याचार हुआ न? इस पूर्वाग्रह को मिटाना बहुत जरूरी था। इस प्रस्ताव के पास होने से लोगों के देखने का दायरा कुछ बढ़ गया है।

दूसरी बात यह है कि क्या हमने कसम खा रखी है कि यदि शान्तिपूर्ण तरीके से स्वराज मिलेगा तो लेंगे, अन्यथा हम अंग्रेजी राज में ही रहना पसन्द करेंगे? 'हाँ' कहनेवाले अन्धे आदर्शवादी लोगों के साथ हम बात नहीं करना चाहते। जिस स्वराज के बारे मे दुनिया का सबकुछ कुर्बान किया जा सकता है, उसके बारे में ऐसी बेकार बातों की क्या जरूरत है?

हाँ, तीसरा सवाल उठा है कि क्या विद्रोह करके, लड़ाई करके हम स्वराज ले सकते हैं? आज तो एक ही जवाब मिल सकता है कि नही। आज हम इतने संगठित, सशस्त्र और ताकतवर नहीं हैं, इसीलिए यह तरीका अभी असम्भव है। फिर झगड़ा किस बात का? सवाल यह है कि क्या हर कौम को कभी भी बल-प्रयोग का अधिकार है या नहीं? डाक्टर सत्यपाल जी के शब्दों में—Have we not a right to employ all possible means to attain our goal. उसके जवाब में 'ट्रिब्यून' कहता है कि नहीं। (Not a right can either be legal or moral right) बहुत अच्छा जी! कानूनी अधिकार तो नहीं हो सकता, क्योंकि कानून परायों के हाथ में है। पर क्यों जी, सिविल नाफरमानी-सिविल नाफरमानी करके आसमान सर पर उठा लेनेवाले सज्जन यह नहीं जानते कि सिविल नाफरमानी भी कोई कानूनी तौर पर जायज (legal right) नहीं कहला सकती। वह भी स्पष्टत: समय के कानून (law) को तोड़ना और उसका विरोध करना है। किसी भी राज (State) के खिलाफ किसी तरह की आवाज उठानी कभी भी legal right नहीं कहला सकती। यहाँ नैतिक अधिकार (Moral right) होता है। यदि सम्भव होने और अत्यन्त जरूरी होने पर भी बल-प्रयोग को Moral right नहीं समझा जाता तो अमेरिका के वीर वाशिंगटन और पैट्रिक हेनरी, इटली के मैजिनी और गैरीबाल्डी, रूस के लेनिन आदि आजादी दिलानेवालों और अपने सभी बुजुर्गों श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, श्री शिवाजी, श्री प्रताप और गुरु गोविन्दसिंह जी ने कुकर्म किये और वे सम्माननीय न हुए! यह फिलासफी भी कमाल है! सवाल सिर्फ यह उठता है कि जब आज विद्रोह करना भी नहीं और है भी असम्भव तब All possible

means पास करने की जरूरत क्यों पड़ गयी? लेकिन जब आज पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास करते हैं तो क्या आज ही स्वतन्त्रता ले लेते हैं? यह सिर्फ ऊँचा आदर्श सामने रखा गया है। इस तरह 'हर सम्भव तरीके से' पास करने से लोगों की तंगदिली दूर कर दी गयी और उनके सामने बड़ा भारी आदर्श रख दिया गया है।

साथ ही एक और बात भी है। आज कई साल हो गये हैं, जब से कितने ही वीर 'पूर्ण स्वतन्त्रता, पूर्ण स्वतन्त्रता' की रट लगाये फाँसी पर लटक गये। आज हमारे समझदार नेताओं को पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा करने की जरूरत पड़ी और वे सबसे गर्म नेता कहाने लगे। और हम किसी भी नौजवान को ताकत में विश्वास रखने पर दुत्कारना शुरू कर देते हैं और उन बेचारे देशभक्तों पर कहर बरपा करते हैं और कोई परवाह नहीं करते। 1914-15 के मुकदमों में जो अंधेरगर्दी हुई, क्या वे साथी अपनी ही लापरवाही का परिणाम नहीं थे? तब गला फाड़-फाड़कर काँव-काँव। यह बड़े खतरनाक हैं, खूँखार हैं। और जब उन बेचारों का फाँसी लग जाना, तब भीतर घुस-घुस बातें करना। वे सच्चे देशभक्त थे। 1908 से लोग फाँसी पर चढ़ते रहे, पर सब अक्लमन्द लोग उन्हें गालियाँ देते रहे। 1925 में विपिनचन्द्र पाल ने एक लेख लिखा कि It were political assasins who passed their way to Minto morley scheme. यानी राजनीतिक हत्यारों की कृपा से ही मिंटो-मारले स्कीम मिली थी। और आज काकोरीवाले शहीदों के घरवालों से सहानुभूति प्रकट करने पर बिगड़ जानेवाला Modern Review भी विपिनचन्द्र पाल की उपरोक्त बात की ताईद करता हुआ एक बड़े माडरेट एस. आर. दास के एक पत्र में लिखता है कि इंग्लिस्तान को जगाने के लिए और यह बताने के लिए कि हिन्दुस्तान की स्थिति अच्छी नहीं है, एक बम की जरूरत थी—'A bomb was necessary to awaken England from lber sweet dream that all was well with India.'

यदि उन गरीबों की ओर, जो कि शांति में विश्वास नहीं करते, लेकिन आजादी के लिए हम लोगों से अधिक बलिदान कर सकते हैं, समय पर ध्यान दिया जाय तो कम-से-कम उनके साथ अंधेरगर्दी और जुल्म तो न हुआ करें और उनकी मुसीबत में कुछ तो कमी हो जाया करे।

एक और भी बात है कि माडरेटों को सदस्य बनाने के लिए खद्दर की शर्त लगाने पर जोर देनेवाले सज्जन यह तो बतायें कि क्या माडरेटों से अधिक बलिदान करनेवाले नौजवानों के लिए कांग्रेस का दर खोलना पाप है? उनको आगे नहीं आने देना? यह तो हम जानते हैं कि आजादी की जंग में इस्तेमाल के लिए हमारे पास केवल एक ही हथियार है 'सिविल नाफरमानी' और वैसा आन्दोलन अधिक शान्तिपूर्ण होगा ही, लेकिन 'सम्भव' शब्द के आ जाने से किसी को भी कोई शिकायत नहीं रह जानी चाहिए।

और यदि शब्द कहने से डरते हो कि सरकार आ गला पकड़ेगी तो सुन लो—"Freedom has to be won inch by inch and whether peaceful or

other methods are employed, the Government of the day will not spare any pains to crush the movement of independence," यानी सरकार तो शान्तिपूर्ण या अशान्तिपूर्ण, सभी आन्दोलनों को दबाने की कोशिश करेगी। इसलिए हमें उस प्रस्ताव से डरना नहीं चाहिए जिसने हमारे काम के दायरे को ज्यादा खुला कर दिया और हमारी तंगनजर को खोल दिया है, बल्कि उसका तो स्वागत करना चाहिए।

किरती/मई, 1928

आतंक के असली अर्थ

[अपने समय की विचारधारात्मक बहस में हिस्सा लेते हुए भगतसिंह और उनके साथियों ने 'आतंक' शब्द के अर्थ समझने की कोशिश की। मई, 1928 के 'किरती' में यह लेख इसी विषय पर छपा जो बम्बई के अखबार 'श्रद्धानन्द' से अनूदित था तथा भगतसिंह और उनके साथियों के उस समय के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है।—सं.]

पिछले सात-आठ सालों में जिन कुछ शब्दों ने हमारे राजनीतिक जीवन में तूफान खड़ा किया है और जिनके बारे में बहुत लोगों को गलतफहमी रही है उनमें सबसे जरूरी शब्द 'आतंक' है। अब तक किसी ने भी गहन विचार कर इस शब्द के अर्थ समझने के यत्न नहीं किये। इसीलिए आज तक इस शब्द का गलत इस्तेमाल होता रहा है। पूरी कौम अपने लक्ष्य को ठीक न समझ पाने के कारण दिन को रात और रात को दिन समझती हुई ठोकरें खा रही है।

आतंक पर बोलते ही अनुभव होने लगता है कि वह त्याज्य और बुरा शब्द है। सुनते ही यह विचार पैदा होता है कि वह दुख देनेवाला, अत्याचारी, जोर-जबरदस्ती और अन्यायपूर्ण है। जिस काम के साथ 'आतंक' शब्द लग जाये वही काम पलीत, हानिकर और त्याज्य लगने लगता है। इस हालत में कोई शरीफ और नेकदिल इन्सान इससे हमेशा के लिए परे रहने का यत्न करे तो यह एक स्वाभाविक बात है। आतंक और जुल्म से आशय ताकत का अयोग्य ढंग से प्रयोग है। इन दोनों शब्दों से ताकत के इस्तेमाल की बू तो आती है, लेकिन ताकत के इस्तेमाल की एक सीमा है। उसी सीमा का ख्याल न रखते हुए कुछ हंगामाबाज लोगों ने 'आतंक' नाम दे दिया है और हिन्दी भाषा में इसकी तुलना में 'अहिंसा' शब्द ठोंक दिया गया है। इसी कारण आज एक बड़ी खतरनाक गलतफहमी फैली हुई है।

आतंक में ताकत का इस्तेमाल भी होता है। इसलिए कुछ घटिया दिमागवालों ने ताकत के इस्तेमाल को ही आतंक का नाम दे डाला। किसी आदमी को बुरे काम से रोकने के लिए यही कह देना काफी होता है कि वह काम बहुत बुरा और घृणित है। ऐसे ही शब्दों में आतंक भी एक है। कांग्रेस के आदेशानुसार हजारों इन्सान बिना किसी न-नकार के शान्ति की कसमें उठाते चले गये। बात तो ठीक थी। आतंक का अर्थ जुल्म और जबरदस्ती करना है। ऐसा बुरा काम न करने की कसम खाने में किसी को क्या उज्र हो सकता है, लेकिन असली बात यह है कि जुल्म को नहीं, बल्कि ताकत के इस्तेमाल को ही आतंक का नाम देकर लोगों में गलतफहमी फैला दी गयी है। बहुत-से लोग जो कि ताकत के इस्तेमाल के हक में थे, वे आतंक का पक्ष लेने की हिम्मत न दिखा सके और उन्होंने भी चुपचाप शान्तिपूर्ण [आन्दोलन] के पक्ष में होने की कसम उठा ली। इसीलिए अहिंसा (Non-violence) जैसे शब्दों ने बहुत गड़बड़ी मचा दी। हजारों ही काम जो आज तक न सिर्फ जायज, बल्कि अच्छे माने जाते थे, वह पलक झपकने में ही घृणित माने जाने लगे। वीरता, हिम्मत शहादत, बलिदान, सैनिक-कर्त्तव्य, शस्त्र चलाने की योग्यता, दिलेरी और अत्याचारियों का सर कुचलनेवाली बहादुरी आदि गुण बल-प्रयोग पर निर्भर थे। अब ये गुण अयोग्यता और नीचता समझे जाने लगे! आतंक शब्द के इन भ्रामक अर्थों ने कौम की समझ पर पानी फेर दिया। नौबत यहाँ तक पहुँची कि हथौड़े से पत्थर का बुत तोड़ना भी आतंक के दायरे में मान लिया गया और लाठी पकड़ने तक को आतंक माना गया। तो क्या बुत को हाथों से तोड़ा जाये?

किसी भी शब्द के सुनते ही हर इन्सान के दिल में एक विचित्र ढंग की भावनाएँ पैदा हो जाती हैं और उसके बाद झटपट एक प्रकार के अर्थ समझ चुकने के कारण इन्सान उसकी तह तक जाने के लिए अधिक दिमाग नहीं लड़ाता। किसी अजनबी इन्सान के आते ही यदि यह कह दिया जाय कि वह बड़ा पापी है, लुच्चा है, तो सुननेवाले के दिल में उसके खिलाफ स्वभावत: ही एक तरह के घृणित ख्याल उत्पन्न हो जाते हैं। उस आदमी के सम्बन्ध में अधिक जाँच किये बगैर ही राय बना ली जाती है। इसी तरह शब्दों के प्रयोग सम्बन्धी मामले में कहा जा सकता है। वेदों और पुराणों में इस बात पर जोर दिया गया है कि जो भी शब्द बोले जायें, उनका सही प्रयोग होना चाहिए, क्योंकि शाब्दिक भ्रम से देवताओं तक में बड़े-बड़े दंगे हो गये थे और बड़ा भारी नुकसान हो गया था। ठीक वही दशा पिछले सात साल से हमारी हो रही है। ताकत के योग्य और अयोग्य इस्तेमाल को बिना किसी सोच-विचार के फौरन आतंक का फतवा देकर घृणित होने की घोषणा कर दी गयी है।

यदि कोई डाकू कुल्हाड़ी लेकर किसी के घर में आ घुसे तो उसे आतंक [की कार्यवाही] कहा गया, लेकिन यदि घरवालों ने छुरी का इस्तेमाल कर डाकू को मार डाला तो उसे भी आतंक [का काम] माना गया। अर्थात् जब अपने और अपने परिवार की रक्षा के लिए ताकत का योग्य और नेक इरादों से इस्तेमाल किया गया तब भी उसे आतंक ही

कहा गया। रावण जोर-जबदस्ती सीता को उठा ले गया तो वह आतंक। और सीता को छुड़ाने गये राम ने रावण का सिर काट दिया तो वह भी आतंक! इटली, अमेरिका, आयरलैण्ड आदि देशों पर कई प्रकार के जुल्म करनेवाले अत्याचारी भी आतंक फैलानेवाले समझे गये और नंगी तलवार पकड़े इन विदेशी डकैतों का छिपी हुई शमशीर से इलाज करनेवालों को भी आतंक [फैलानेवाले] की उपाधि दी जाती है। गैरीबाल्डी, वाशिंगटन, एमट और डी वलेरा आदि सभी इसी सूची में डाल दिये गये। क्या इसे इन्साफ कहा जा सकता है? आभूषण चुराने के लिए मासूम बच्चे की गर्दन काट देनेवाला चोर भी घृणित और उस पत्थर-दिल चोर को फाँसी पर लटका देनेवाला न्यायकारी सम्राट भी आतंककारी और घृणित! कृष्ण भी उतना ही पापी, जितना कंस! शूरवीर भीम भी उतना ही गुनहगार, जितना कि उसकी धर्मात्मा पत्नी का अपमान करनेवाला दुःशासन! आह! कितनी गलतफहमी है। कितना बड़ा अन्याय है। इसीलिए कुछ सीधे-सादे लोगों ने अच्छे कामों को भी केवल बल-प्रयोग के कारण अयोग्य और आतंकवादी कह दिया। साँप डँसता है, आदमी उसे मार डालता है। पर दोनों बराबर-बराबर नहीं। डँसना तो साँप की आदत थी और वह इस आदत से मजबूर था, लेकिन इन्सान ने यह काम जानबूझकर किया, इसलिए उसे अधिक नीच समझा जाना चाहिए! नौबत यहाँ तक पहुँची कि देश और कौम के लिए सशस्त्र हो मैदाने-जंग में शहीद हो जानेवाले बहादुर भी पापी समझे जाने लगे। शिवाजी, राणा प्रताप और रणजीतसिंह जी को आतंक फैलानेवाले कहा गया और वे पूजनीय व्यक्तित्व भी घृणा का शिकार हो गये।

उधर दुनिया के सारे देश शस्त्रधारी हैं। प्रत्येक अपने हथियारों की ताकत को बढाता चला जा रहा है। इधर हमारा यह भारतवर्ष है, जिसमें रहनेवालों का शस्त्र पकड़ना पाप समझा जाता है। 'लाठी मत पकड़ो'—यह शिक्षा देनेवाले लाठी देखते ही डरपोक और कायर लोगों की पीठ ठोंकने लगे। देश को गिरी हुई अवस्था से उठाकर उन्नति के रास्ते पर खड़ा करनेवाली शूर-वीरता मटियामेट होने लगी और ताकत से डरनेवाले दुश्मन राजी-खुशी दिखायी देने लगे। कुछ बिरले ही लोग थे जो यह दुखद स्थिति न देख सके और उन्होंने इसका खण्डन करना शुरू कर दिया। लेकिन हैरानी की बात तो यह है कि वे स्वयं भी इसी गड़बड़ी का शिकार हो गये और ठोस तर्कों से विरोध प्रकट करना उनके लिए कठिन हो गया। बस इसी से युग पलटनेवाले लोगों ने चिढ़कर यह कहना शुरू कर दिया—हाँ, हाँ, हम आतंक फैलायेंगे, हम Violence ही करेंगे! जैसे कोई शरीफ आदमी अपने अच्छे काम को गुनाह ठहराये जाते देखकर और फिर तर्कसम्मत उत्तर न दे पाने के कारण हड़बड़ाकर यही कहना शुरू कर दे—हाँ, हाँ, मैं गुनाह ही करूँगा। ठीक यही स्थिति इन बेचारे युग पलटनेवालों की हो रही है। मद्रास कांग्रेस के अध्यक्ष तक ने यह कह दिया कि आज यदि हम शान्तिपूर्ण [तरीके] के पक्षधर हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हम हमेशा ऐसे ही रहेगे। हो सकता है कि हमें कल ही

आतंक (Violence) के लिए तैयार होना पड़े। दुख तो इस बात का है कि यह 'आतंक' शब्द घृणित है। यह अपने गुणों व ठीक अर्थों में व्याख्यायित न होने के कारण दूसरों को अपने पक्ष में नहीं कर सका—अर्थात वे लोग जोकि बल-प्रयोग के पक्ष में भी हैं, वे भी ज़ालिम या आतंकवादी कहलवाना पसन्द नहीं कर सकते। इस एक शब्द 'आतंक' के अर्थों के अनर्थ होने के कारण ही कितना भारी नुकसान हो रहा है।

पूरी गलतफहमी की जड़ तो इस एक शब्द 'आतंक' की गलत व्याख्या है; क्योंकि आतंक व जुल्म भी बल-प्रयोग से ही होते हैं, इसलिए बल-प्रयोग से बहुत सारे अच्छे व बुरे काम होते हैं। जुल्म इनमें से एक है। एक पुरुष चोरी से किसी के घर में आग लगाता है, वह भी आग लगानेवाला है और दूसरी ओर रसोइया भी आग जलाता है, लेकिन रसोइया अपराधी नहीं कहला सकता और न ही आग लगाने का काम बुरा कहा जा सकता है। इसी तरह अपने देश की रक्षा के लिए या देश की आजादी की प्राप्ति के लिए शस्त्र लेकर मैदान में उतरनेवाला देशभक्त जब ज़ालिम और बलशाली की गर्दन तलवार से उतार देता है या जालिम से किसी मज़लूम का बदला लेता हुआ फाँसी पर चढ़ जाता है, वह या कोई और शूरवीर, जोकि अपने सगे-सम्बन्धियों, अपनी पत्नी या घर-बार की रक्षा के लिए हथियार लेकर लुच्चे ज़ालिमों का मुकाबला करने के लिए निकलता है, वह बल-प्रयोग तो जरूर करता है, लेकिन आतंक नहीं फैलाता, अर्थात् इनके किये काम, आतंक के कामों में नहीं गिने जा सकते, बल्कि वे अच्छे और नेक कहे जाते हैं।

वह बल-प्रयोग जिससे निर्दोषों को बिना किसी कारण से सताया जाये या दूसरों को किसी नीच इच्छा से नुकसान पहुँचाया जाये, केवल ऐसे ही बेहूदा कामों के लिए [किये गये] बल-प्रयोग को आतंक कहा जा सकता है, लेकिन जब इसी ताकत को किसी गरीब अनाथ की मदद के लिए या ऐसे ही किसी और काम के लिए इस्तेमाल किया जाये तो वह आतंक नहीं, बल्कि पुण्य और परोपकार कहलाता है। या फिर इससे सिद्ध हुआ कि बल-प्रयोग करना कोई ज़ुल्म, अत्याचार या आतंक नहीं, बल्कि यह बल-प्रयोग करनेवाले की नीयत पर निर्भर रहता है। यदि उसने किसी भले व नेक काम के लिए बल-प्रयोग किया है तो उसे आतंक का दोषी नहीं ठहराया जा सकता, लेकिन यदि उसने अपने व्यक्तिगत हित या निर्दोषों को दुख देने की खातिर अपने बल का गलत प्रयोग किया है तो उसे निःसन्देह, निर्भय होकर 'आतंकवादी' कहा जा सकता है। आतंक हमेशा ही घृणा योग्य है। आतंक ताकत का ऐसा इस्तेमाल है, जिससे बिना अपराध के किसी को दुख दिया जाये। लेकिन जहाँ जालिमों और गुण्डों की गुण्डई रोकने के लिए बल-प्रयोग किया जाये, वह आतंक नहीं बल्कि अच्छा व भला काम होता है, क्योंकि दुनिया के अच्छे कामों की परख की एक ही कसौटी है—यह कि वे काम दुनिया को सुख व आराम देनेवाले हों। किसी को दुख देना आतंक है, लेकिन दुख देनेवाले ज़ालिम का खुरा-खोज मिटाना

पुण्य है। ज़ालिम कंस जब जुल्म की तलवार पकड़ देवकी के घर में जा घुसता है, उसका उस समय का काम घृणित आतंक है, लेकिन जब इसी ज़ालिम के पंजे से जनता को छुटकारा दिलाने के लिए श्रीकृष्ण तलवार लेकर उसके दरबार में घुस जाते हैं और तलवार से उसका सिर गर्दन से अलग कर देते हैं, उस समय की उनकी यह कार्यवाई अभिनन्दनीय है। दोनों तलवारें हैं, दोनों हथियार हैं, दोनों कामों में बल-प्रयोग किया गया है, लेकिन एक काम जुल्मों से भरा है, इसलिए उसे आतंक कहा जायेगा और दूसरा काम नेक है, वह एक ज़ालिम और अत्याचारी की हस्ती को, गलत अक्षर की तरह, मिटाकर लोगों पर परोपकार करना है, इसलिए वह नेक काम सम्माननीय है ! पर यदि हमारी मौजूदा फिलासफी के हिसाब से देखा जाये तो दोनों ही काम आतंककारी और घृणित हैं। लोगों को दुख देनेवाला जालिम भी आतंककारी, और लोगों को ज़ालिम के पंजे से छुटकारा दिलानेवाला भी आतंककारी ! यदि हमारे देश में यही स्थिति रही तो अच्छे-बुरे की पहचान कैसे होगी और सम्माननीय कामों और घृणित कामों के फर्क का कैसे पता चलेगा ?

यदि इतना जान लिया जाये कि ताकत का गलत इस्तेमाल अर्थात् गरीबों, अनाथों को सताना आतक कहलाता है और इन सबको रोकना अच्छे काम समझा जाता है तो सारे भ्रम दूर हो सकते हैं। चोर, डाकू और हत्यारे जब हथियारों का इस्तेमाल करते हैं तो वे आतंक करते है (That force being aggressıvely used become violence), लेकिन जब घर का मालिक समय पाकर उस डाकू या हत्यारे की छाती में छुरी घोप देता है या उस डाकू को कोई न्यायप्रिय शासक फाँसी की सजा देता है तो वह अच्छा काम होता है। इसीलिए हिन्दू धर्मशास्त्र के कर्ता मनु जी लिखते है–

ज़ालिम, हत्यारे, अपराधी को खुफिया ढंग से या खुले मैदान चुनौती देकर या किसी और ढंग से छापा मारकर जान से मार डालनेवाला दिलेर इन्सान पापी या गुनाहगार नहीं, बल्कि सम्माननीय इन्सान कहलाता है। पुराने-से-पुराने और नये-से-नये कानून के अनुसार आत्म-रक्षा में किये बल-प्रयोग को कभी भी आतंक के नाम से नहीं पुकारा गया। यहाँ तक कि हिन्दू दण्ड-विधान में भी उसे आतंक (Vıolence) नहीं कहा गया। आतंक फैलाना दण्डनीय है, लेकिन आत्म-रक्षा में बल-प्रयोग कानूनी ताकत समझी जाती है।

ठीक वही बात राजनीति की है। इटली पर इस देश की इच्छा के विरुद्ध आस्ट्रिया सिर्फ तलवार के जोर से राज करता था, इसलिए इटली को जबरदस्ती अधीन रखने का उसका काम आतंक था, घृणित था और खतम करने योग्य था। लेकिन जब गैरीबाल्डी और मैजिनी ने इसके खिलाफ तलवार उठायी और उस ज़ालिम बादशाहत को उलटा दिया तब उनका यह काम घृणा लायक नहीं, बल्कि पूजनीय माना गया। ठीक यही बात हम 1857 में हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़ी लड़ाई के सम्बन्ध मे कह सकते हैं,

क्योंकि वह हमारे पहले बताये अनुसार जुल्म या आतंक नहीं था। इस लेख से यह अर्थ निकालना कि हम एक हथियारबन्द बगावत करने की प्रेरणा दे रहे हैं, बिल्कुल झूठ और बेकार होगा। आज हम हथियारबन्द बगावत करने या न करने सम्बन्धी कुछ नहीं लिखते। हथियारबन्द बगावत की प्रौढ़ता या विरोध अलग-अलग देशों के अलग-अलग समाचारों के कारण होते हैं। जो लोग इस समय हथियारबन्द बगावत को कठिन या समयपूर्व मानते हों, वे 'आतक' शब्द की ओट लेकर उस विचार को ही त्याज्य न बनायें। इस विचार से ही आतंक शब्द की उक्त व्याख्या की गयी है, ताकि लोग फिर वैसी ही खतरनाक और ठीक न हो सकनेवाली भूल न करें।

('श्रद्धानन्द', बम्बई से) किरती/मई, 1928

धर्म और हमारा स्वतन्त्रता संग्राम

[मई, 1928 के 'किरती' में यह लेख छपा। अमृतसर में अप्रैल में राजनीतिक कान्फ्रेंस और नौजवान सभा की कान्फ्रेंस हुई थी, जिसमें धर्म की समस्या पर शहीद भगतसिंह और उनके साथियों में जमकर विचार-विमर्श हुआ। यह लेख उसी मसले पर प्रकाश डालता है।

स्वतन्त्र भारत के संकल्प की रूपरेखा तब कुछ निखरनी शुरू हो गयी थी। इस लेख में जन-एकता स्थापित करने सम्बन्धी कुछ ठोस सुझाव दिये गये हैं।

अप्रैल, 1928 में नौजवान भारत सभा के घोषणा-पत्र में जिसकी रचना भगतसिह और भगवतीचरण वोहरा ने की थी, साम्प्रदायिकता सम्बन्धी कुछ ठोस विचार रखे गये हैं। यह घोषणा-पत्र छठे अध्याय में संकलित है। —सं.]

अमृतसर में 11-12-13 अप्रैल को राजनीतिक कान्फ्रेंस हुई और साथ ही युवकों की भी कान्फ्रेंस हुई। दो-तीन सवालों पर इसमें बड़ा झगड़ा और बहस हुई। उनमें से एक सवाल धर्म का भी था। वैसे तो धर्म का प्रश्न कोई न उठाता, किन्तु साम्प्रदायिक संगठनों के विरुद्ध प्रस्ताव पेश हुआ और धर्म की आड़ लेकर उन संगठनों का पक्ष लेनेवालों ने स्वय को बचाना चाहा। वैसे तो यह प्रश्न और कुछ देर दबा रहता, लेकिन इस तरह सामने आ जाने से स्पष्ट बातचीत हो गयी और धर्म की समस्या को हल करने का प्रश्न भी उठा। प्रान्तीय कान्फ्रेंस की विषय समिति में भी मौलाना जफर अली साहब के पाँच-सात बार खुदा-खुदा करने पर अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल ने कहा कि इस मंच पर आकर खुदा-खुदा न कहे। आप धर्म के मिशनरी हैं तो मैं धर्महीनता (Irreligion) का प्रचारक हूँ। बाद में लाहौर में भी इसी विषय पर नौजवान सभा ने एक मीटिंग की। कई

भाषण हुए और धर्म के नाम का लाभ उठानेवाले और यह सवाल उठ जाने पर झगड़ा हो जाने से डर जानेवाले कई सज्जनों ने कई तरह की नेक सलाहें दीं।

सबसे जरूरी बात जो बार-बार कही गयी और जिस पर श्रीमान भाई अमरसिंह जी झबाल ने विशेष जोर दिया, वह यह थी कि धर्म के सवाल को छेड़ा ही न जाये। बड़ी नेक सलाह है। यदि किसी का धर्म बाहर लोगों की सुख-शान्ति में कोई विघ्न न डालता हो तो किसी को भी उसके विरुद्ध आवाज उठाने की क्या जरूरत हो सकती है? लेकिन सवाल तो यह है कि अब तक का अनुभव क्या बताता है? पिछले आन्दोलन में भी धर्म का यही सवाल उठा और सभी को पूरी आजादी दे दी गयी। यहाँ तक कि कांग्रेस के मंच से भी आयतें और मन्त्र पढ़े जाने लगे। उन दिनों धर्म में पीछे रहनेवाला कोई भी आदमी अच्छा नहीं समझा जाता था। फलस्वरूप संकीर्णता बढ़ने लगी।

जो दुष्परिणाम हुआ, वह किससे छिपा है? अब राष्ट्रवादी या स्वतन्त्रता प्रेमी लोग धर्म की असलियत समझ गये हैं और वही उसे अपने रास्ते का रोड़ा समझते हैं।

बात यह है कि क्या धर्म घर में रखते हुए भी, लोगों के दिलों में भेदभाव नहीं बढ़ता? क्या उसका देश के पूर्ण स्वतन्त्रता हासिल करने तक पहुँचने में कोई असर नहीं पड़ता? इस समय पूर्ण स्वतन्त्रता के उपासक सज्जन धर्म को दिमागी गुलामी का नाम देते हैं। वे यह भी कहते हैं कि बच्चे से यह कहना कि—ईश्वर ही सर्वशक्तिमान है, मनुष्य कुछ भी नहीं, मिट्टी का पुतला है—बच्चे को हमेशा के लिए कमजोर बनाना है। उसके दिल की ताकत और उसके आत्मविश्वास की भावना को ही नष्ट कर देना है। लेकिन इस बात पर बहस न भी करें और सीधे अपने सामने रखे दो प्रश्नों पर ही विचार करें तो भी हमें नज़र आता है कि धर्म हमारे रास्ते में एक रोड़ा है। मसलन हम चाहते हैं कि सभी लोग एक-से हों। उनमें पूँजीपतियों के ऊँच-नीच की छूत-अछूत का कोई विभाजन न रहे। लेकिन सनातन धर्म इस भेदभाव के पक्ष में है। बीसवीं सदी में भी पण्डित, मौलवी जी जैसे लोग भंगी के लड़के के हार पहनाने पर कपड़ों सहित स्नान करते हैं और अछूतों को जनेऊ तक देने से इन्कारी है। यदि इस धर्म के विरुद्ध कुछ न कहने की कसम ले लें तो चुप कर घर बैठ जाना चाहिए, नहीं तो धर्म का विरोध करना होगा। लोग यह भी कहते हैं कि इन बुराइयों का सुधार किया जाये। बहुत खूब! छूत-अछूत को स्वामी दयानन्द ने जो मिटाया तो वे भी चार वर्णों से आगे नहीं जा पाये। भेदभाव तो फिर भी रहा ही। गुरुद्वारे जाकर जो सिख 'राज करेगा खालसा' गाएँ और बाहर आकर पंचायती राज की बातें करें, तो इसका मतलब क्या है?

धर्म तो यह कहता है कि इस्लाम पर विश्वास न करनेवाले काफिर तलवार के घाट उतार देने चाहिए और यदि इधर एकता की दुहाई दी जाये तो परिणाम क्या होगा? हम जानते हैं कि अभी कई और बड़े ऊँचे भाव के आयतें और मन्त्र पढ़कर खींचतान करने की कोशिश की जा सकती है, लेकिन सवाल यह है कि इस सारे झगड़े से छुटकारा ही क्यों न पाया जाये? धर्म का पहाड़ तो हमें हमारे सामने खड़ा नज़र आता है। मान लें कि भारत

में स्वतन्त्रता-संग्राम छिड़ जाये। सेनाएँ आमने-सामने बन्दूकें ताने खड़ी हों, गोली चलने ही वाली हो और यदि उस समय कोई मुहम्मद गौरी की तरह—जैसी कि कहावत बतायी जाती है—आज भी हमारे सामने गायें, सूअर, ग्रन्थ साहिब, वेद-कुरान आदि चीजें खड़ी कर दी जायें, तो हम क्या करेंगे? यदि पक्के धार्मिक होंगे तो अपना बोरिया-बिस्तर लपेटकर घर बैठ जायेंगे। धर्म के होते हुए हिन्दू-सिख गाय पर और मुसलमान सूअर पर गोली नहीं चला सकते। धर्म के बड़े पक्के इन्सान तो उस समय सोमनाथ के कई हजार पण्डों की तरह ठाकुरों के आगे लोटते रहेंगे और दूसरे लोग धर्महीन या अधर्मी—काम कर जायेंगे। तो हम किस निष्कर्ष पर पहुँचे? धर्म के विरुद्ध सोचना ही पड़ता है। लेकिन यदि धर्म के पक्षवालों के तर्क भी सोचे जायें तो वे यह कहते हैं कि दुनिया में अंधेर हो जायेगा, पाप बढ़ जायेगा। बहुत अच्छा, इसी बात को ले लें।

रूसी महात्मा टॉल्स्टॉय ने अपनी पुस्तक (Essay and Letters) में धर्म पर बहस करते हुए उसके तीन हिस्से किये हैं—

1. Essentials of Religion, यानी धर्म की जरूरी बातें अर्थात् सच बोलना, चोरी न करना, गरीबों की सहायता करना, प्यार से रहना, वगैरा।

2. Philosophy of Religion, यानी जन्म-मृत्यु, पुनर्जन्म, संसार-रचना आदि का दर्शन। इसमें आदमी अपनी मर्जी के अनुसार सोचने और समझने का यत्न करता है।

3. Rituals of Religion, यानी रस्मो-रिवाज वगैरा। मतलब यह कि पहले हिस्से में सभी धर्म एक हैं। सभी कहते हैं कि सच बोलो, झूठ न बोलो, प्यार से रहो। इन बातों को कुछ सज्जनों ने Individual Religion कहा है। इसमें तो झगड़े का प्रश्न ही नही उठता। वरन् यह कि ऐसे नेक विचार हर आदमी में होने चाहिए। दूसरा फिलासफी का प्रश्न है। असल में कहना पड़ता है कि Philosophy is the out come of Human weakness, यानी फिलासफी आदमी की कमजोरी का फल है। जहाँ भी आदमी देख सकते हैं वहाँ कोई झगडा नहीं। जहाँ कुछ नज़र न आया, वहीं दिमाग लड़ाना शुरू कर दिया और खास-खास निष्कर्ष निकाल लिये। वैसे तो फिलासफी बड़ी जरूरी चीज है, क्योंकि इसके बगैर उन्नति नहीं हो सकती, लेकिन इसके साथ-साथ शान्ति होनी भी बड़ी जरूरी है। हमारे बुजुर्ग कह गये हैं कि मरने के बाद पुनर्जन्म भी होता है, ईसाई और मुसलमान इस बात को नहीं मानते। बहुत अच्छा, अपना-अपना विचार है। आइए, प्यार के साथ बैठकर बहस करें। एक-दूसरे के विचार जानें। लेकिन 'मसला-ए-तनासुक' पर बहस होती है तो आर्यसमाजियों व मुसलमानों में लाठियाँ चल जाती हैं। बात यह कि दोनों पक्ष दिमाग को, बुद्धि को, सोचने-समझने की शक्ति को ताला लगाकर घर रख आते हैं। वे समझते हैं कि वेद भगवान मे ईश्वर ने इसी तरह लिखा है और वही सच्चा है। वे कहते हैं कि कुरान शरीफ में खुदा ने ऐसे लिखा है और यही सच है। अपने सोचने की शक्ति (Power of Reasoning) को छुट्टी दी हुई होती

है। सो जो फिलासफी हर व्यक्ति की निजी राय से अधिक महत्त्व न रखती हो तो एक खास फिलासफी मानने के कारण भिन्न गुट न बनें, तो इसमें क्या शिकायत हो सकती है।

अब आती है तीसरी बात–रस्मो-रिवाज। सरस्वती-पूजावाले दिन, सरस्वती की मूर्ति का जुलूस निकलना जरूरी है और उसमें आगे-आगे बैण्ड-बाजा बजना भी जरूरी है। लेकिन हैरीमन रोड के रास्ते में एक मस्जिद भी आती है। इस्लाम धर्म कहता है कि मस्जिद के आगे बाजा न बजे। अब क्या होना चाहिए? नागरिक आजादी का हक (Civil rights of citizen) कहता है कि बाजार में बाजा बजाते हुए भी जाया जा सकता है। लेकिन धर्म कहता है कि नहीं। इनके धर्म में गाय का बलिदान जरूरी है और दूसरे में गाय की पूजा लिखी हुई है। अब क्या हो? पीपल की शाखा कटते ही धर्म में अन्तर आ जाता है तो क्या किया जाये? तो यही फिलासफी व रस्मो-रिवाज़ के छोटे-छोटे भेद बाद में जाकर (National Religion) बन जाते हैं और अलग-अलग संगठन बनने का कारण बनते हैं। परिणाम हमारे सामने है।

सो यदि धर्म पीछे लिखी तीसरी और दूसरी बात के साथ अन्धविश्वास को मिलाने का नाम है, तो धर्म की कोई जरूरत नहीं। इसे आज ही उड़ा देना चाहिए। यदि पहली और दूसरी बात में स्वतन्त्र विचार मिलाकर धर्म बनता हो, तो धर्म मुबारक है।

लेकिन अलग-अलग संगठन और खाने-पीने का भेदभाव मिटाना जरूरी है। छूत-अछूत शब्दों को जड से निकालना होगा। जब तक हम अपनी तंगदिली छोड़कर एक न होंगे, तब तक हममें वास्तविक एकता नहीं हो सकती। इसलिए ऊपर लिखी बातों के अनुसार चलकर ही हम आजादी की ओर बढ़ सकते हैं। हमारी आजादी का अर्थ केवल अंग्रेजी चंगुल से छुटकारा पाने का नाम नहीं, वह पूर्ण स्वतन्त्रता का नाम है–जब लोग परस्पर घुल-मिलकर रहेंगे और दिमागी गुलामी से भी आजाद हो जायेंगे।

सत्याग्रह और हड़तालें

[जून, 1928 'किरती' में इन दो विषयों पर टिप्पणियाँ छपी। भगत सिंह 'किरती' के सम्पादक मण्डल मे थे। उस समय उनके विचारों सम्बन्धी कुछ झलक इनसे भी मिल सकती है।–सं।]

सत्याग्रह

1928 में हिन्दुस्तान में फिर प्राण धडकते नज़र आने लगे हैं। एक ओर हड़तालों का जोर है और दूसरी ओर सत्याग्रह की तैयारियाँ शुरू हो रही हैं। यह लक्षण बड़े अच्छे हैं। सबसे बड़ा सत्याग्रह बारदोली (गुजरात प्रान्त) के किसान कर रहे हैं। तीस सालों के बाद नया बन्दोबस्त किया जाता है और हर बार जमीन का लगान बढ़ा दिया जाता है। इसी तरह इस बार भी बन्दोबस्त हुआ और मामला बढ़ा दिया गया। लोग बेचारे क्या करें? गरीब किसान तो पहले ही पेट भरकर रोटी नहीं खा सकते और वे पहले से 22 प्रतिशत लगान कहाँ से दें। सत्याग्रह की तैयारियाँ की गयीं। महात्मा गाँधी ने लाट पंजाब के

साथ पत्र-व्यवहार कर लगान कम करवाने का यत्न किया था, लेकिन जनाब, सिर्फ पत्र-व्यवहार से सर झुकानेवाली सरकार यह नहीं है। कुछ असर न हुआ। सत्याग्रह करना ही पड़ा। गुजरात में पहले भी किसान एक-दो बार बड़ा भारी सत्याग्रह करके सरकार को हरा चुके हैं। पहले-पहल 1917-18 में बारिश अधिक होने से फसलें खराब हो गयी थीं और रुपये में चार आना भी नहीं हुईं। कानून यह था कि रुपये में छह आने से कम फसल होने से उस साल लगान न लिया जाये, अगले वर्ष एक साथ ले लिया जाये। उस साल लोगों ने जब कहा कि चार आने भी फसल नहीं हुई तो सरकार नहीं मानी। फिर महात्मा गाँधी जी ने काम हाथ में ले लिया। एक सभा की। लोगों को बताया कि यदि आप लगान देने से इन्कार करोगे तो आपकी जायदाद जब्त हो जायेगी, क्या आप तैयार हैं? लोग चुपचाप बैठे रहे तो बम्बई के सत्याग्रही नेता इस बात पर बड़े नाराज हुए और चल दिये। लेकिन फिर एक बुढ्ढा किसान उठा और उसने कहा कि हम सबकुछ सहन करेंगे और बाद में सभी लोग यही कहने लगे। सत्याग्रह शुरू हुआ। सरकार ने भी जायदाद और जमीनें जब्त करना शुरू कर दिया, लेकिन दो महीने बाद सरकार ने सिर झुका दिया और जमींदारों (?) की शर्त मान ली।

दूसरी बार जब महात्मा जी 1923-24 में जेल में थे तब सत्याग्रह हुआ। पहली बार 600 गाँवों ने हिस्सा लिया था। इस बार 94 गाँवों का लगान बढ़ाया और इन गाँवों ने सत्याग्रह किया। उन पर ताजीरी टैक्स लगाया गया था। वहाँ नियम था कि सूर्यास्त होने पर जायदाद कुर्क नहीं हो सकती थी और किसान सवेरे ही अपने-अपने घरों को ताले लगाकर चले जाते और पुलिस को कोई गवाह तक न मिलता। अधिक तंग आकर सरकार ने टैक्स वापस ले लिया। इस बार बारदोली में सत्याग्रह शुरू हुआ है। बारदोली में 1921-22 में आजादी के लिए बड़ा भारी सत्याग्रह करने की तैयारियाँ की गयी थीं। सब किस्मत के खेल! बना-बनाया खेल बिगड़ गया। खैर, उन पिछली बातों का क्या करना। अब उस इलाके का बन्दोबस्त सरकार ने किया। बेचारे किसानों की मुसीबत, अच्छा बन्दोबस्त हुआ, 22 प्रतिशत लगान बढ़ गया! बहुत कहा गया लेकिन सरकार कब मानती है। श्री बल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में काम शुरू हो गया और किसानों ने लगान देने से मना कर दिया। अब जब्ती अधिकारी और सारे ही अफसर बारदोली ताल्लुके की ओर इकट्ठे हुए हैं। जो उनसे हो सकता है, लोगों को गलत रास्ते पर डालने के लिए कर रहे हैं। जायदाद जब्त की जा रही है, जमीनें जब्त करने के हुक्म जारी हो रहे हैं। लेकिन माल, सामान उठाने के लिए आदमी नहीं मिलते। इस समय काम वहाँ जोरों पर है, लेकिन एक मजे की बात यह है कि सारा काम बड़ी शान्ति से हो रहा है। वे अफसर जो लोगों को तंग करने आये थे, उनके साथ बड़े प्यार का व्यवहार किया जाता है। पहले उन्हें रोटी-पानी नहीं मिलता था, अब पटेल ने कहा कि उन्हें रोटी-पानी जरूर दे दिया करो। एक दिन शराब की दुकान से चार टिन कुर्क किये गये, लेकिन उठानेवाला कोई न मिला। जब अधिकारी ने कहा, 'बड़ी प्यास लगी है, पानी तो दो,' तो झट एक

सेवादार सत्याग्रही ने सोडे की बोतल लाकर पिलायी। इस तरह काम बड़े जोरों से, पूरी शान्ति से चल रहा है। बड़ी उम्मीद है कि सरकार को अधिक झुकना पड़ेगा।

दूसरी जगह कानपुर है जहाँ सत्याग्रह होनेवाला है। पिछले दिनों कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। बाद में ताजीरी पुलिस बिठायी गयी। कुछ दिन हुए कि कानपुर के कौंसिल सदस्य श्री गणेशशंकर जी विद्यार्थी सम्पादक 'प्रताप', कानपुर को एक पत्र मजिस्ट्रेट से मिला कि अपने दफ्तर के सभी कर्मचारियों की सूची और उनका वेतन या पद लिखकर भेजें, क्योंकि तारी ताजीरी टैक्स वसूल किया जाना है। लेकिन विद्यार्थी जी ने लिख भेजा कि मैं कोई टैक्स देने को तैयार नहीं हूँ और न ही इस काम में कोई सहायता ही करूँगा, क्योंकि दंगा पुलिस ने करवाया था। हमें उसका दण्ड नहीं मिलना चाहिए। लोगों ने विद्यार्थी जी से पूछा कि हम क्या करें? आपने कहा कि मुसीबत आयेगी, नुकसान अधिक होगा, लेकिन यह अत्याचारी टैक्स नहीं देना चाहिए। जलसे हुए। 7000 व्यक्तियों ने टैक्स न देने के कागजों पर हस्ताक्षर कर सरकार को भेज दिये। तैयारियाँ हो रही हैं।

तीसरी जगह मेरठ है। वहाँ भी बन्दोबस्त हुआ और लगान बढ़ गया। वहाँ भी सत्याग्रह की घोषणा कर दी गयी है।

पंजाब में भी कुछ ऐसी ही बातें नजर आ रही हैं। शेखूपुर और लाहौर जिलों में ओले गिरने से फसले नष्ट हो गयी थीं। अनाज कुछ भी नहीं हुआ, फिर लगान कैसे दिया जाये? लेकिन यहाँ के सयाने-सयाने आदमी और ही तरह की बातें करते हैं—''कांग्रेस के 'बदनाम' आदमी उन किसानों मे भाषण न दें, कहीं सरकार नाराज न हो जाये!'' ऐसी-ऐसी बातें हो रही हैं, लेकिन उन्हें अच्छी तरह याद रखना चाहिए कि लातों के भूत बातों से नहीं मानते। अंग्रेज पैसे के पीर और उम्मीद यह की जाये कि वे लगान अपने आप माफ कर देंगे। यह भ्रम अभी कब तक चलेगा?

हड़तालें

उधर सत्याग्रह की धूम है और इधर हड़तालों का भी कुछ कम जोर नहीं। बड़ी खुशी इस बात की है कि देश में फिर प्राण जगे हैं और पहले-पहल ही किसानों और श्रमिकों का युद्ध छिड़ा है। इस बात का भी आनेवाले बड़े भारी आन्दोलन पर असर रहेगा। वास्तव में तो यही लोग हैं कि जिन्हें आजादी की जरूरत है। किसान और मजदूर रोटी चाहते हैं और उनकी रोटी का सवाल तब तक हल नहीं हो सकता जब तक यहाँ पूर्ण आजादी न मिल जाये। वे गोलमेज कान्फ्रेंस या अन्य ऐसी किसी बात पर रुक नहीं सकते। खैर।

आजकल लिलुआ रेलवे वर्कशाप, टाटा की जमशेदपुर मिलों, जमशेदपुर शहर के भंगियों और बम्बई की कपड़ा-मिलों में हड़ताल हो गयी है। वास्तव में तो मोटी-मोटी शिकायते सबकी एक-सी होती हैं। वेतन कम, काम ज्यादा और व्यवहार बुरा। इस

स्थिति में गरीब मजदूर जैसे-तैसे गुजारा करते हैं, लेकिन आखिर असहनीय हो जाता है। आज बम्बई में डेढ़-दो लाख व्यक्ति हड़ताल किये बैठे हैं। सिर्फ एक मिल चलती है। बात यह कि नये हथकरघे आये हैं, जिनमें एक आदमी को दो हथकरघों पर काम करना पड़ता है और मेहनत ज्यादा करनी पड़ती है। यही काम करनेवालों का वेतन खासतौर से बढ़ाने, बाकी आम मजदूरों का वेतन बढ़ाने और 8 घण्टे से अधिक काम न ले सकने और कुछ व्यवहार सम्बन्धी शर्तें पेश की गयी हैं। इस समय हड़ताल का बड़ा जोर है। जमशेदपुर मिल के श्रमिकों की भी कुछ ऐसी ही माँगें हैं। वहाँ भी हड़ताल बढ़ती जा रही है। भंगी अपनी हड़ताल किये हुए हैं और शहर की नाक में दम हुआ है। सबसे अधिक सेवा करनेवाले भाइयों को हम भंगी-भंगी कहकर पास न फटकने दें और उनकी गरीबी का लाभ उठाकर थोडे-से पैसे देकर काम कराते रहें और बेगार भी खूब घसीटें। खूब! आखिर उन्हें भी उठना ही था। वे तो लोगों को, विशेषतः शहरों में, दो दिन में सीधे रास्ते पर ला सकते हैं। उनका उठना बड़ी खुशी की बात है। लिलुआ वर्कशाप से कुछ आदमी निकाल दिये गये थे और वेतन के भी कुछ झंझट थे, इसलिए हड़ताल हो गयी। बाद में ऐलान हो गया कि कई हजार व्यक्तियों का काम बिल्कुल ही बन्द कर दिया जायेगा और हड़ताल खत्म होने पर भी उन्हें काम में नहीं लिया जायेगा। इससे बड़ी सनसनी फैली। लेकिन हडताल जोरों पर है। श्री स्प्रैट आदि सज्जन खूब काम कर रहे हैं। लोगों को चाहिए कि वे उनकी हर तरह से सहायता करें और उनकी हड़ताल तुड़वाने की जो तैयारी हो रही है, वह बन्द करायी जाये। हम चाहते हैं कि सभी किसान और मजदूर संगठित हो और अपने अधिकारों के लिए यत्न करें।

साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज

[1919 के जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक दंगो का खूब प्रचार शुरू किया। इसके असर से 1924 में कोहाट में बहुत ही अमानवीय ढंग से हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। इसके बाद राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना में साम्प्रदायिक दंगों पर लम्बी बहस चली। इन्हें समाप्त करने की जरूरत तो सबने महसूस की, लेकिन कांग्रेसी नेताओं ने हिन्दू-मुस्लिम नेताओ में सुलहनामा लिखाकर दगों को रोकने के यत्न किये।

जैसा कि पीछे कहा गया है, इस समस्या के निश्चित हल के लिए क्रान्तिकारी आन्दोलन ने अपने विचार प्रस्तुत किये। प्रस्तुत लेख जून, 1928 के 'किरती' में छपा। यह लेख इस समस्या पर शहीद भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों का सार है। —स.]

भारतवर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म के होना ही दूसरे धर्म के कट्टर शत्रु होना है। यदि इस बात का अभी यकीन न हो तो लाहौर के ताजा दंगे ही देख लें। किस प्रकार मुसलमानों ने निर्दोष सिखों, हिन्दुओं को मारा है और किस प्रकार सिखों ने भी वश चलते कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह मार-काट इसलिए नहीं की गयी कि फलाँ आदमी दोषी है, वरन इसलिए कि फलाँ आदमी हिन्दू है या सिख है या मुसलमान है। बस किसी व्यक्ति का सिख या हिन्दू होना मुसलमानों द्वारा मारे जाने के लिए काफी था और इसी तरह किसी व्यक्ति का मुसलमान होना ही उसकी जान लेने के लिए पर्याप्त तर्क था। जब स्थिति ऐसी हो तो हिन्दुस्तान का ईश्वर ही मालिक है।

ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान का भविष्य बहुत अन्धकारमय नज़र आता है। इन 'धर्मों' ने हिन्दुस्तान का बेड़ा गर्क कर दिया है। और अभी पता नहीं कि यह धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नज़रों में भारत को बदनाम कर दिया है। और हमने देखा है कि इस अन्धविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं। कोई विरला ही हिन्दू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपना दिमाग ठण्डा रखता है, बाकी सबके सब धर्म के यह नामलेवा अपने नामलेवा धर्म के रोब को कायम रखने के लिए डण्डे-लाठियाँ, तलवारें-छुरे हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सर फोड़-फोड़कर मर जाते हैं। बाकी बचे कुछ तो फाँसी चढ़ जाते हैं और कुछ जेलो में फेंक दिये जाते हैं। इतना रक्तपात होने पर इन 'धर्मजनों' पर अंग्रेजी सरकार का डण्डा बरसता है और फिर इनके दिमाग का कीड़ा ठिकाने पर आ जाता है।

जहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे साम्प्रदायिक नेताओ और अखबारो का हाथ है। इस समय हिन्दुस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा अपने सिरों पर उठाया हुआ था और जो 'समान राष्ट्रीयता' और 'स्वराज-स्वराज' के दमगज़े मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाये चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मान्धता के बहाव में बह चले हैं। सिर छिपाकर बैठनेवालों की संख्या भी क्या कम है? लेकिन ऐसे नेता जो साम्प्रदायिक आन्दोलन में जा मिले हैं, वैसे तो जमीन खोदने से सैकड़ों निकल आते हैं। जो नेता हृदय से सबका भला चाहते हैं, ऐसे बहुत ही कम हैं, और साम्प्रदायिकता की ऐसी-प्रबल बाढ़ आयी हुई है कि वे भी इसे रोक नहीं पा रहे। ऐसा लग रहा है कि भारत में नेतृत्व का दिवाला पिट गया है।

दूसरे सज्जन जो साम्प्रदायिक दंगो को भड़काने में विशेष हिस्सा लेते रहे हैं, वे अखबारवाले हैं।

पत्रकारिता का व्यवसाय, जो किसी समय बहुत ऊँचा समझा जाता था, आज बहुत ही गन्दा हो गया है। यह लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर-फुटौव्वल करवाते हैं। एक-दो जगह ही नहीं,

कितनी ही जगहो पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अखबारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक, जिनका दिल व दिमाग ऐसे दिनो में भी शान्त रहा हो, बहुत कम हैं।

अखबारो का असली कर्त्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, साम्प्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था; लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्त्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, साम्प्रदायिक बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आँखों मे रक्त के आँसू बहने लगते हैं और दिल में सवाल उठता है कि 'भारत का बनेगा क्या ?'

जो लोग असहयोग के दिनों के जोश व उभार को जानते हैं, उन्हें यह स्थिति देख रोना आता है। कहाँ थे वे दिन कि स्वतन्त्रता की झलक सामने दिखायी देती थी और कहाँ आज यह दिन कि स्वराज्य एक सपना मात्र बन गया है। बस यही तीसरा लाभ है, जो इन दंगों से अत्याचारियो को मिला है। वही नौकरशाही—जिसके अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया था, कि आज गयी, कल गयी—आज अपनी जडे इतनी मजबूत कर चुकी है कि उसे हिलाना कोई मामूली काम नही है।

यदि इन साम्प्रदायिक दंगों की जड़ खोजें तो हमें इसका कारण आर्थिक ही जान पड़ता है। असहयोग के दिनों मे नेताओं व पत्रकारों ने ढेरों कुर्बानियाँ दीं। उनकी आर्थिक दशा बिगड़ गयी थी। असहयोग आन्दोलन के धीमा पड़ने पर नेताओं पर अविश्वास-सा हो गया, जिससे आजकल के बहुत-से साम्प्रदायिक नेताओं के धन्धे चौपट हो गये। विश्व में जो भी काम होता है, उसकी तह में पेट का सवाल जरूर होता है। कार्ल मार्क्स के तीन बड़े सिद्धातों में से यह एक मुख्य सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के कारण ही तबलीग, तनकीम, शुद्धि आदि संगठन शुरू हुए और इसी कारण से आज हमारी ऐसी दुर्दशा हुई, जो अवर्णनीय है।

बस, सभी दंगों का इलाज यदि कोई हो सकता है तो वह भारत की आर्थिक दशा में सुधार से ही हो सकता है, क्योंकि भारत के आम लोगों की आर्थिक दशा इतनी खराब है कि एक व्यक्ति दूसरे को चवन्नी देकर किसी और को अपमानित करवा सकता है। भूख और दुख से आतुर होकर मनुष्य सभी सिद्धान्त ताक पर रख देता है। सच है, मरता क्या न करता।

लेकिन वर्तमान स्थिति में आर्थिक सुधार होना अत्यन्त कठिन है क्योंकि सरकार विदेशी है और यही लोगों की स्थिति को सुधरने नहीं देती। इसीलिए लोगों को हाथ धोकर इसके पीछे पड़ जाना चाहिए और जब तक सरकार बदल न जाये, चैन की साँस न लेना चाहिए।

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब

मिहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि जार के समय वहाँ भी ऐसी ही स्थितियाँ थीं, वहाँ भी कितने ही समुदाय थे जो परस्पर जूत-पतांग करते रहते थे। लेकिन जिस दिन से वहाँ श्रमिक-शासन हुआ है, वहाँ नक्शा ही बदल गया है। अब वहाँ कभी दंगे नहीं हुए। अब वहाँ सभी को 'इन्सान' समझा जाता है, 'धर्मजन' नहीं। जार के समय लोगों की आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी, इसलिए सब दंगे-फसाद होते थे। लेकिन अब रूसियों की आर्थिक दशा सुधर गयी है और उनमें वर्ग-चेतना आ गयी है, इसलिए अब वहाँ से कभी किसी दंगे की खबर नही आयी।

इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत खुशी की सुनने में आयी। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियनों के मजदूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन सभी हिन्दू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारखानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्ग-चेतना का यही सुन्दर रास्ता है, जो साम्प्रदायिक दंगे रोक सकता है।

यह खुशी का समाचार हमारे कानों को मिला है कि भारत के नवयुवक अब वैसे धर्मों से जो परस्पर लड़ाना व घृणा करना सिखाते हैं, तंग आकर हाथ धो रहे हैं और उनमें इतना खुलापन आ गया है कि वे भारत के लोगों को धर्म की नज़र से—हिन्दू, मुसलमान या सिख-रूप में नहीं, वरन सभी को पहले इन्सान समझते हैं, फिर भारतवासी। भारत के युवकों में इन विचारों के पैदा होने से पता चलता है कि भारत का भविष्य सुनहला है और भारतवासियों को इन दंगों आदि को देखकर घबराना नहीं चाहिए, बल्कि तैयार-बर-तैयार हो यत्न करना चाहिए कि ऐसा वातावरण ही न बने, ताकि दंगे हों ही नहीं।

1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है, इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए, क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसीलिए गदर पार्टी-जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिख बढ़-चढ़कर फाँसियों पर चढ़े और हिन्दू-मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।

इस समय कुछ भारतीय नेता भी मैदान में उतरे हैं, जो धर्म को राजनीति से अलग

करना चाहते हैं। झगड़ा मिटाने का यह भी एक सुन्दर इलाज है और हम इसका समर्थन करते हैं।

यदि धर्म को अलग कर दिया जाये तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते हैं। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें।

हमारा ख्याल है कि भारत के सच्चे हमदर्द हमारे बताये इलाज पर जरूर विचार करेंगे और भारत का इस समय जो आत्मघात हो रहा है, उससे हमें बचा लेंगे।

पुलिस की कमीनी चालें

[पुलिस के लोग किस तरह नौजवानों को फँसाने और बरगलाने का काम करते हैं, इस सम्बन्ध में यह लेख जून, 1928 में 'किरती' में छपा था। पाठकों की दिलचस्पी के लिए इसे प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.]

कुछ दिनों से पंजाब में बड़ी सनसनी फैली हुई है। एक अजीब कहानी का पता चला है। पुलिस की एक अजीब करतूत का भण्डाफोड़ हुआ है। अब चूँकि भण्डाफोड हो ही गया है इसलिए यह कहानी मजेदार लगती है, लेकिन दुर्भाग्य से यदि भण्डाफोड़ न हुआ होता तो उसका परिणाम यह होना था कि कई नौजवान फाँसी पर लटक गये होते और कइयों को काला पानी हो गया होता। भण्डाफोड लाहौर के अखबार ट्रिब्यून (The Tribune) ने किया है।

कहानी यों हैं कि अप्रैल, 1927 में लाहौर स्टेशन पर एक बंगाली और एक मेरठ निवासी नौजवान पकड़े गये। बंगाली के पास से पिस्तौल और मेरठवाले के पास से तेजाब मिला। कुछ दिन हवालात में रखने के बाद पहले तो मेरठ निवासी नौजवान, जिसका नाम मोहनसिंह रंक था, छोड़ दिया गया और बंगाली पर मुकदमा चलाया गया। कुछ दिनों बाद बंगाली को भी जमानत पर छोड़ दिया गया। जमानत पाँच सौ की हुई थी। पेशीवाले दिन वह हाजिर न हुआ, फिर भी उसकी जमानत जब्त नहीं की गयी। उसे वारण्ट निकालकर मेरठ से गिरफ्तार कर लाया गया और मि. हीरालाल फैलूक्स ने उसे पाँच साल की कैद का दण्ड दिया। लाहौर के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को उससे हमदर्दी पैदा हुई। उसके लिए अपील का प्रबन्ध किया गया। अपील अभी पेश भी नहीं हुई थी कि वह छूटकर घर चला गया। सब लोग हैरान। उड़ती-उड़ती बात यह सुनी जा रही थी कि वह खुफिया पुलिस का भाड़े का टट्टू था। लेकिन निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

अब कुछ दिन पहले उसके उन दिनों के लिखे हुए कुछ पत्र 'ट्रिब्यून' में छपे हैं। एक पत्र तो मेरठ के पुलिस कप्तान के नाम है और एक लाहौर के पुलिस कप्तान के नाम और

एक ऐसा है जिसमें उसने अपना सारा हाल लिखा है। उसने लिखा है कि वह खुफिया पुलिस का एक जासूस है और कई बरसों से पुलिस का काम कर रहा है। पुलिस को पता चला कि एक और आदमी 'एन' नाम का मैनपुरी का रहनेवाला है जिसके पास दो पिस्तौलें हैं। के. सी. बनर्जी को, जो कि उस बंगाली का नाम है, उसके साथ दोस्ती करने के लिए कहा गया ताकि उससे पिस्तौलें ले ली जायें। उसने एक पिस्तौल ले लिया और पुलिस अधिकारियों ने उससे कहा कि यह तुम अपने पास ही रखो।

एक दिन लाहौर के किसी आदमी का पत्र बंगाली के मार्फत मोहनलाल के नाम लिखा हुआ गया। उसमें लिखा हुआ था कि तुम आदमी और चीजें लेकर लाहौर पहुँचो, क्योंकि फिरोजपुर में डाका डालना है। बंगाली ने वह पत्र पुलिस अधिकारियों को दे दिया, जिन्होंने कि पत्र का फोटो लेकर पत्र लौटा दिया, बनर्जी ने वह पत्र मोहनलाल को दे दिया। अधिकारियों की सलाह से वह पिस्तौल साथ लेकर मोहनलाल के साथ लाहौर आ गया। यहाँ से एक आदमी को डकैती की जगह की देखभाल के लिए भेज दिया गया, पर न जाने किस कारण से डकैती न हुई और दोनों मेरठ के लिए लौट पड़े, लेकिन लाहौर रेलवे स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गये।

पकड़े जाते ही बंगाली ने पुलिस को बता दिया था कि वह खुफिया पुलिस का आदमी है और पिस्तौल भी एक तरह से सरकारी है और उसे यह कहकर दिया गया था कि तुम यह पिस्तौल किसी दूसरे के हाथ में दे देना। लेकिन स्थिति ऐसी बन गयी कि वह स्वयं गिरफ्तार हो गया। अब पुलिस उसे छोड़ना भी चाहती थी लेकिन अचानक छोड़ने से सन्देह होने का खतरा था, सो उसे 500 रुपये की जमानत पर रिहा कर दिया गया।

तारीख के दिन वह पेश न हुआ तो भी उसकी जमानत जब्त न की गयी। लेकिन मजिस्ट्रेट को पूरी कथा मालूम नहीं थी, इसलिए उसने ज्यादा वफादारी दिखाने के लिए अधिकाधिक सम्भव सजा दे दी। आर्म्स एक्ट के तहत दूसरे प्रान्तों में आमतौर पर छः महीने कैद होती है, लेकिन यह पंजाब जो हुआ! यहाँ पाँच साल सजा हुई। अब बंगाली की साँस फूल गयी। पत्र-पर-पत्र लिखे। कहीं राय साहब, लाला चुन्नीलाल, कप्तान लाहौर और कहीं कप्तान मेरठ को पत्र लिखे। पूरा हाल बयान किया। उन्हीं में से कुछ पत्र किसी तरह 'ट्रिब्यून' के हाथ लग गये और वही छपवा दिये गये। कौंसिल में इसी पर बहस हुई। सरकारी सदस्यों ने चुपचाप बात मान ली। उन्होंने कहा कि वह हमारा जासूस था। पंजाब पुलिस को पहले पूरी बात पता नहीं थी, पता लगने पर उसे लोगों के सन्देह से बचाने के लिए मुकदमे का ढोंग किया गया। अब सवाल यह उठता है कि क्या वह सिर्फ जासूस ही था या साथ ही भड़कानेवाला (Agent Provocateur) भी था? एजेन्ट प्रोवोकेटर का काम (Investigate) या तफतीश करना नहीं होता बल्कि (To create) जुर्म पैदा करना होता है। आमतौर पर पुलिस अपनी जरूरत सिद्ध करने के लिए ऐसा कुछ काम करती रहती है। लाला लाजपत राय ने एक बार तुर्की की खुफिया पुलिस की करतूत की कहानी लिखी थी। रूस में एजेन्ट प्रोवोकेटर बहुत-सा काम करते

रहे हैं। लेकिन आमतौर पर पुलिस भी ऐसे षड्यन्त्र नहीं करती, स्वयं सरकारें करवाती हैं। उदाहरणत: जब कभी बड़े भारी आन्दोलन की सम्भावना होती है, उसे दबाने के लिए, अत्याचार करने का बहाना ढूँढ़ने के लिए वह अपने आदमियों को उनमें मिला देती है और वे कोई-न-कोई गलती करवा देते हैं, जिससे अत्याचार का बहाना मिल जाता है। दूर जाने की जरूरत नहीं, आजकल जो भी हड़तालें हुई हैं उनमें भी ऐसे आदमी छोड़े जाते हैं जो दंगा करवाने के लिए लोगों को भड़काते रहते हैं और अत्याचार का बहाना ढूँढ़ने का यत्न करते रहते हैं। रूस में तो इन लोगों ने कई बार बहुत अत्याचार करवाया और हजारों निर्दोष लोगों को फाँसी पर लटकवा दिया। बड़े-बड़े आन्दोलन कुचल डाले गये। लेकिन यह आखिरी चालें होती हैं, इनसे राज प्राप्त नहीं होते, बल्कि जुल्म करने से जड़ें जल्दी उखड़ जाती हैं। खैर! अंग्रेजी राज भी अब ऐसी आखिरी चालों पर उतर आया है। 1923 के आखिर में जब स्वराज पार्टी बनी, पिछला शान्तिपूर्ण आन्दोलन असफल हो गया था। तब सरकार ने इस स्थिति से डरते हुए कि कहीं फिर आतंकवादियों की बड़ी भारी पार्टी न बन जाये, अपने आदमी इन बातों के प्रचार के लिए छोड़े और जल्द ही नियम 1818 के अधीन बहुत-से लोगों को गिरफ्तार कर लिया। 25 जुलाई, 1924 को उन बन्दियों में से दो यानी श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त और श्री जीवनलाल चटर्जी ने एक पत्र भारत-मन्त्री के नाम लिखा जिसमें उन्होंने कहा कि बंगाल में ऐसे आदमी छोड़े गये हैं जिनकी हम, यदि एक निष्पक्ष समिति बने तो, पूरी पोल खोल दें। लेकिन सरकार कब सुननेवाली थी। इन बातों से सिद्ध होता है कि सरकार की अपनी नीयत भी ऐसी ही है।

सवाल यह पैदा होता है कि के.सी. बनर्जी खुफिया काम करनेवाला जासूस (Spy) ही था या षड्यन्त्रकारी Agent Provocateur था? या सरकार का इस मामले में कोई हाथ था? स्थिति पर ज़रा ध्यान से सोचें तो पता चलता है कि इन तीन-चार आदमियों में से एक से अधिक खुफिया जासूस थे और सरकार ने पंजाब के काम करनेवाले होनहार नौजवानों के खिलाफ षड्यन्त्र किया था, सौभाग्य से जिसका बड़े सुन्दर ढंग से भण्डाफोड़ हो गया। बात यह है कि नेशनल कालेज के एक ग्रेज्युएट ने, जिसके बारे में ट्रिब्यून में मिस्टर पी. लिखा है, वह पत्र लिखा था। यह नौजवान बहुत मूर्ख व कमीना है। लगता है कि वह भी ऐसा ही एजेन्ट प्रोवोकेटर है। उसके सम्बन्ध में आमतौर पर शिकायत सुनी गयी थी कि वह बहुत बड़ी-बड़ी डींगें हाँकता है और कहता फिरता है कि मैं एक राज क्रान्तिकारी दल का नेता हूँ। खैर, कम-से-कम वह मूर्ख तो बहुत था, बुरा भले ही न हो। लेकिन आगे की स्थिति से पाठक स्वयं निष्कर्ष निकाल लेंगे। पहले की कहानी ट्रिब्यून में छपी है। उसके बाद जो हाल पता चला है, आगे सब उसी के आधार पर लिखा जा रहा है। उसने यह पत्र लिखा कि आओ, डाका डालें। वे यहाँ आये। जब लौट चले और बडा षड्यन्त्र न बन सका और पिस्तौलवाला बंगाली भी हाथों से निकल चला तब उसे गिरफ्तार करवा दिया गया। उसके पकड़े जाते ही पूरा भण्डाफोड़ हो गया। अब क्या किया जाये? फिर पुलिस उसे छोड़ना भी चाहती थी लेकिन किसी बहाने

से। उसी पत्र लिखनेवाले 'पी' को बुलाकर उसकी जमानत ले ली गयी। 'पी' के पास कोई सम्पत्ति नहीं थी, उसका पूरा माल 5 रुपये से ज्यादा का नहीं था, लेकिन 500 की जमानत मंजूर हो गयी। खुफिया काम करनेवाला आतंकवादी भला किस तरह आगे आकर उस परदेशी से अपनी दोस्ती प्रकट कर षड्यन्त्र का सबूत पैदा कर सकता था? वे तो सभी पुलिस के आदमी थे। फिर तारीख पर बंगाली हाजिर न हुआ। जमानत भी जब्त न हुई। वह और तेजाबवाला मोहनलाल भी क्यों छूट गया? यदि यह मान भी लें कि उनके खिलाफ कोई सबूत नहीं थे, तो भी 120 बी धारा के अधीन उन पर साजिश का मुकदमा क्यों न् चलाया गया?

एक ने डाका डालने का पत्र लिखा। पुलिस ने उसका चित्र ले लिया। पत्र पत्रवाले के पास पहुँच गया। वह भला आदमी पुलिस को पत्र नहीं देता कि मुझे किसी ने डकैती के लिए बुलाया है, बल्कि वह एक और आदमी को पिस्तौल सहित ले जाता है जो पिस्तौल सहित पकड़ा जाता है। क्या साजिश का मुकदमा नहीं बनता था? धारा 120 बी में साफ लिखा है कि–'Who ever is party to a criminal conspiracy to Commit an offence—be punished in the same manner as if he had abetted such offence.' यानी जो भी ऐसी साजिश का सदस्य हो जिसने कोई जुर्म करने की साजिश की हो, उसे ऐसे जुर्म में मदद करने की सजा मिलनी चाहिए। देवघर (बिहार) में इस समय जो बड़ा भारी साजिश का केस चल रहा है, उसमें यही है कि– 'You—did agree with one another—to do or cause to be done an illegal act—and thereby you committed an offence punishable under section 120 B—' तुम लोगों ने आपस में तय किया कि जुर्म किये जायें, इसलिए तुम पर धारा 120 बी लगायी जाती है।

उन पर भी किसी जुर्म करने का आरोप नहीं लगाया गया, सिर्फ 'यह करने की', 'वह करने की' साजिश का जुर्म लगाया गया। उस मुकदमे का पूरा हाल पढ़ने पर तो हमारा यही विचार बनता है कि वह मुकदमा भी पुलिस ने बनाया है। एक व्यक्ति वीरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य के घर की तलाशी हुई। उसने पुलिस को अपने कमरे में बुलाकर दो पिस्तौल और एक कापी दी, जिसमें साठ व्यक्तियों के पते लिखे हुए थे। पुलिस के आने तक उसने कापी को जला डालने की भी कोशिश नहीं की। जान-बूझकर ही नहीं की। उनमें से बीस व्यक्ति पकड़ कर साजिश का मामला बना दिया गया। एक पंजाबी नौजवान, जिसका नाम श्री इन्द्रचन्द्र नारंग है, को भी रगड़ा जा रहा है। आप कामलियेवाली श्री पार्वती देवी के सबसे छोटे भाई हैं। ठीक वैसा ही मुकदमा इधर भी बन रहा था। यदि इधर अकेला के. सी. बनर्जी ही खुफिया पुलिस का होता तो मुकदमा जरूर चल जाता। पर वहाँ तो पूरी हवा ही बिगड़ी हुई थी और जिन आदमियों को फाँसी पर चढ़ाने की कोशिश की गयी थी, उनके खिलाफ कोई भी सबूत नहीं मिल पाया था, इसीलिए वह मुकदमा नहीं चलाया गया। सरकार की यह चाल खराब और घृणित है। आतंकवादी

आन्दोलन को रोकने के लिए भी यह कोई अच्छा तरीका नहीं। लेकिन नकली साजिशों में निर्दोषों को मारने से राज की नीवें पक्की नहीं, बल्कि खोखली हो रही हैं। [इस सन्दर्भ में] रूस के जार और फ्रांस के लुइस को नहीं भूलना चाहिए।

अछूत-समस्या

[काकीनाडा मे 1923 में कांग्रेस-अधिवेशन हुआ। मुहम्मद अली जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आजकल की अनुसूचित जातियो को, जिन्हें उन दिनों 'अछूत' कहा जाता था, हिन्दू और मुस्लिम मिशनरी संस्थाओं में बाँट देने का सुझाव दिया। हिन्दु और मुस्लिम अमीर लोग इस वर्ग-भेद को पक्का करने के लिए धन देने को तैयार थे।

इस प्रकार अछूतों के यह 'दोस्त' उन्हें धर्म के नाम पर बाँटने की कोशिशे करते थे। उसी समय जब इस मसले पर बहस का वातावरण था, भगतसिह ने 'अछूत का सवाल' नामक लेख लिखा। इस लेख में श्रमिक वर्ग की शक्ति व सीमाओं का अनुमान लगाकर उसकी प्रगति के लिए ठोस सुझाव दिये गये हैं। भगतसिंह का यह लेख जून, 1928 के 'किरती' में 'विद्रोही' नाम से प्रकाशित हुआ था। —सं.]

हमारे देश-जैसे बुरे हालात किसी दूसरे देश के नहीं हुए। यहाँ अजब-अजब सवाल उठते रहते हैं। एक अहम् सवाल अछूत-समस्या है। समस्या यह है कि 30 करोड़ की जनसख्यावाले देश में जो 6 करोड़ लोग अछूत कहलाते हैं, उनके स्पर्श मात्र से धर्म भ्रष्ट हो जायेगा! उनके मन्दिरों में प्रवेश मे देवगण नाराज हो उठेंगे! कुएँ से उनके द्वारा पानी निकालने मे कुआँ अपवित्र हो जायेगा! ये सवाल बीसवीं सदी मे किये जा रहे हैं, जिन्हें कि सुनते ही शर्म आती है।

हमारा देश बहुत अध्यात्मवादी है, लेकिन हम मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देते हुए भी झिझकते हैं जबकि पूर्णतया भौतिकवादी कहलानेवाला यूरोप कई सदियों से इन्कलाब की आवाज उठा रहा है। उन्होंने अमेरिका और फ्रास की क्रान्तियों के दौरान ही समानता की घोषणा कर दी थी। आज रूस ने भी हर प्रकार का भेदभाव मिटाकर क्रान्ति के लिए कमर कसी हुई है। हम सदा ही आत्मा-परमात्मा के वजूद को लेकर चिन्तित होने तथा इस जोरदार बहस में उलझे हुए हैं कि क्या अछूत को जनेऊ दे दिया जायेगा? वे वेद-शास्त्र पढ़ने के अधिकारी हैं अथवा नहीं? हम उलाहना देते हैं कि हमारे साथ विदेशों में अच्छा सलूक नही होता। अंग्रेजी शासन हमें अंग्रेजों के समान नहीं समझता। लेकिन क्या हमें यह शिकायत करने का अधिकार है?

सिन्ध के एक मुस्लिम सज्जन श्री नूर मुहम्मद ने, जो बम्बई कौंसिल के सदस्य हैं, इस विषय पर 1926 में खूब कहा—"If the Hindu Society refuses to allow other human beings, fellow creatures so that to attend public schools, and if... the president of local board representing so many lakhs of people in this houses refuses to allow his fellows and brothers the elementary human right of having water to drink, what right have they to ask for more rights from the bureacracy? Before we accuse people coming from other lands, we should see how we ourselves behave toward our own people... How can we ask for greater political rights when we ourselves deny elementary rights of human beings.

वे कहते हैं कि जब तुम एक इन्सान को पीने के लिए पानी देने से भी इनकार करते हो, जब तुम उन्हें स्कूल में भी पढ़ने नहीं देते तो तुम्हें क्या अधिकार है कि अपने लिए अधिक अधिकारों की माँग करो ? जब तुम एक इन्सान को समान अधिकार देने से भी इनकार करते हो तो तुम अधिक राजनैतिक अधिकार माँगने के कैसे अधिकारी बन गये ?

बात बिल्कुल खरी है। लेकिन यह क्योंकि एक मुस्लिम ने कही है इसलिए हिन्दू कहेंगे कि देखो, वह उन अछूतों को मुसलमान बनाकर अपने में शामिल करना चाहते हैं!

जब तुम उन्हें इस तरह पशुओं से भी गया-बीता समझोगे तो वह जरूर ही दूसरे धर्मों में शामिल हो जायेंगे, जिनमें उन्हें अधिक अधिकार मिलेंगे, जहाँ उनसे इन्सानों-जैसा व्यवहार किया जायेगा। फिर यह कहना कि देखो जी, ईसाई और मुसलमान हिन्दू कौम को नुकसान पहुँचा रहे हैं, व्यर्थ होगा।

कितना स्पष्ट कथन है, लेकिन यह सुनकर सभी तिलमिला उठते हैं। ठीक इसी तरह की चिन्ता हिन्दुओं को भी हुई। सनातनी पण्डित भी कुछ-न-कुछ इस मसले पर सोचने लगे। बीच-बीच में बड़े 'युगान्तकारी' कहे जानेवाले भी शामिल हुए। पटना में हिन्दू महासभा का सम्मेलन लाला लाजपतराय—जो कि अछूतों के बहुत पुराने समर्थक चले आ रहे हैं—की अध्यक्षता में हुआ, तो जोरदार बहस छिड़ी। अच्छी नोंक-झोंक हुई। समस्या यह थी कि अछूतों को यज्ञोपवीत धारण करने का हक है अथवा नहीं ? तथा क्या उन्हें वेद-शास्त्रों का अध्ययन करने का अधिकार है? बड़े-बड़े समाज-सुधारक तमतमा गये, लेकिन लालाजी ने सबको सहमत कर दिया तथा यह दो बातें स्वीकृत कर हिन्दू धर्म की लाज रख ली। वरना ज़रा सोचो, कितनी शर्म की बात होती। कुत्ता हमारी गोद में बैठ सकता है। हमारी रसोई में निःसंग फिरता है, लेकिन एक इन्सान का हमसे स्पर्श हो जाये तो बस धर्म भ्रष्ट हो जाता है। इस समय मालवीय जी-जैसे बड़े समाज-सुधारक, अछूतों के बड़े प्रेमी और न जाने क्या-क्या पहले एक मेहतर के हाथों

गले में हार डलवा लेते हैं, लेकिन कपड़ों सहित स्नान किये बिना स्वयं को अशुद्ध समझते हैं ! क्या खूब यह चाल है ! सबको प्यार करनेवाले भगवान की पूजा करने के लिए मन्दिर बना है लेकिन वहाँ अछूत जा घुसे तो वह मन्दिर अपवित्र हो जाता है ! भगवान रुष्ट हो जाता है ! घर की जब यह स्थिति हो तो बाहर हम बराबरी के नाम पर झगड़ते अच्छे लगते हैं ? तब हमारे इस रवैये में कृतघ्नता की भी हद पायी जाती है । जो निम्नतम काम करके हमारे लिए सुविधाओं को उपलब्ध कराते हैं उन्हें ही हम दुरदुराते हैं । पशुओं की हम पूजा कर सकते हैं, लेकिन इन्सान को पास नहीं बिठा सकते !

आज इस सवाल पर बहुत शोर हो रहा है । उन विचारों पर आजकल विशेष ध्यान दिया जा रहा है । देश में मुक्ति-कामना जिस तरह बढ़ रही है, उसमें साम्प्रदायिक भावना ने और कोई लाभ पहुँचाया हो अथवा नहीं लेकिन एक लाभ जरूर पहुँचाया है । अधिक अधिकारों की माँग के लिए अपनी-अपनी कौम की संख्या बढ़ाने की चिन्ता सभी को हुई । मुस्लिमों ने ज़रा ज्यादा जोर दिया । उन्होंने अछूतों को मुसलमान बनाकर अपने बराबर अधिकार देने शुरू कर दिये । इससे हिन्दुओं के अहम् को चोट पहुँची । स्पर्धा बढ़ी । फसाद भी हुए । धीरे-धीरे सिखों ने भी सोचा कि हम पीछे न रह जायें उन्होंने भी अमृत छकाना आरम्भ कर दिया । हिन्दू-सिखों के बीच अछूतों के जनेऊ उतारने या केश कटवाने के सवालों पर झगड़े हुए । अब तीनों कौमें अछूतों को अपनी-अपनी ओर खींच रही हैं । इसका बहुत शोर-शराबा है । उधर ईसाई चुपचाप उनका रुतबा बढ़ा रहे हैं । चलो, इस सारी हलचल से ही देश के दुर्भाग्य की लानत दूर हो रही है ।

इधर जब अछूतों ने देखा कि उनकी वजह से इनमें फसाद हो रहे हैं तथा उन्हें हर कोई अपनी-अपनी खुराक समझ रहा है तो वे अलग ही क्यों न संगठित हो जायें ? इस विचार के अमल में अंग्रेजी सरकार का कोई हाथ हो अथवा न हो लेकिन इतना अवश्य है कि इस प्रचार में सरकारी मशीनरी का काफी हाथ था । 'आदि धर्म मण्डल' जैसे संगठन उस विचार के प्रचार का परिणाम हैं ।

अब एक सवाल और उठता है कि इस समस्या का सही निदान क्या हो ? इसका जवाब बड़ा अहम है । सबसे पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि सब इन्सान समान हैं तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य-विभाजन से । अर्थात क्योंकि एक आदमी गरीब मेहतर के घर पैदा हो गया है, इसलिए जीवन-भर मैला ही साफ करेगा और दुनिया में किसी तरह के विकास का काम पाने का उसे कोई हक नहीं है, ये बातें फिजूल हैं । इस तरह हमारे पूर्वज आर्यों ने इनके साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया तथा उन्हें नीच कहकर दुत्कार दिया एवं निम्नकोटि के कार्य करवाने लगे । साथ ही यह भी चिन्ता हुई कि कहीं ये विद्रोह न कर दें, तब पुनर्जन्म के दर्शन का प्रचार कर दिया कि यह तुम्हारे पूर्व जन्म के पापों का फल है । अब क्या हो सकता है ? चुपचाप दिन गुजारो ! इस तरह उन्हें धैर्य का उपदेश देकर वे लोग उन्हें लम्बे समय तक के लिए शान्त करा

गये। लेकिन उन्होंने बड़ा पाप किया। मानव के भीतर की मानवीयता को समाप्त कर दिया। आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बन की भावनाओं को समाप्त कर दिया। बहुत दमन और अन्याय किया गया। आज उस सबके प्रायश्चित का वक्त है।

इसके साथ एक दूसरी गड़बड़ी हो गयी। लोगों के मनों में आवश्यक कार्यों के प्रति घृणा पैदा हो गयी। हमने जुलाहे को भी दुत्कारा। आज कपड़ा बुननेवाले भी अछूत समझे जाते हैं। यू.पी. की तरफ कहार को भी अछूत समझा जाता है। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा हुई। ऐसे में विकास की प्रक्रिया में रुकावटें पैदा हो रही हैं।

इन तबकों को अपने समक्ष रखते हुए हमें चाहिए कि हम न इन्हें अछूत कहें और न समझें। बस, समस्या हल हो जाती है। नौजवान भारत सभा तथा नौजवान कांग्रेस ने जो ढंग अपनाया है, वह काफी अच्छा है। जिन्हें आज तक अछूत कहा जाता रहा उनसे अपने इन पापों के लिए क्षमा-याचना करनी चाहिए तथा उन्हें अपने-जैसा इन्सान समझना, बिना अमृत छकाये, बिना कलमा पढ़ाये या शुद्धि किये उन्हें अपने में शामिल करके उनके हाथ से पानी पीना, यही उचित ढंग है। और आपस में खींचतान करना और व्यवहार में कोई भी हक न देना, कोई ठीक बात नहीं है।

जब गाँवों में मजदूर-प्रचार शुरू हुआ उस समय किसानों को सरकारी आदमी यह बात समझाकर भड़काते थे कि देखो, यह भंगी-चमारों को सिर पर चढ़ा रहे हैं और तुम्हारा काम बन्द करवायेंगे। बस किसान इतने में ही भड़क गये। उन्हें याद रहना चाहिए कि उनकी हालत तब तक नहीं सुधर सकती जब तक कि वे इन गरीबों को नीच और कमीन कहकर अपनी जूती के नीचे दबाये रखना चाहते हैं। अक्सर कहा जाता है कि वह साफ नहीं रहते। इसका उत्तर साफ है—वे गरीब हैं। गरीबी का इलाज करो। ऊँचे-ऊँचे कुलों के गरीब लोग भी कोई कम गन्दे नहीं रहते। गन्दे काम करने का बहाना भी नहीं चल सकता, क्योंकि माताएँ बच्चों का मैला साफ करने से मेहतर तथा अछूत तो नहीं हो जातीं।

लेकिन यह काम उतने समय तक नहीं हो सकता जितने समय तक कि अछूत कौमें अपने आपको संगठित न कर लें। हम तो समझते हैं कि उनका स्वयं को अलग संगठनबद्ध करना तथा मुस्लिमों के बराबर गिनती में होने के कारण उनके बराबर अधिकारों की माँग करना बहुत आशाजनक संकेत हैं। या तो साम्प्रदायिक भेद का झंझट ही खत्म करो, नहीं तो उनके अलग अधिकार उन्हें दे दो। कौंसिलों और असेम्बलियों का कर्त्तव्य है कि वे स्कूल-कालेज, कुएँ तथा सड़क के उपयोग की पूरी स्वतन्त्रता उन्हें दिलायें। जबानी तौर पर ही नहीं, वरन साथ ले जाकर उन्हें कुओं पर चढ़ायें। उनके बच्चों को स्कूलों में प्रवेश दिलायें। लेकिन जिस लेजिस्लेटिव में बाल-विवाह के विरुद्ध पेश किये बिल तथा मज़हब के बहाने हाय-तौबा मचायी जाती है, वहाँ वे अछूतों को अपने साथ शामिल करने का साहस कैसे कर सकते हैं?

इसलिए हम मानते हैं कि उनके अपने जन-प्रतिनिधि हों। वे अपने लिए अधिक

अधिकार माँगें। हम तो साफ कहते हैं कि उठो, अछूत कहलानेवाले असली जन-सेवको तथा भाइयो उठो! अपना इतिहास देखो। गुरु गोविन्दसिंह की फौज की असली शक्ति तुम्हीं थे! शिवाजी तुम्हारे भरोसे पर ही सबकुछ कर सके, जिस कारण उनका नाम आज भी जिन्दा है। तुम्हारी कुर्बानियाँ स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई हैं। तुम जो नित्यप्रति सेवा करके जनता के सुखों में बढ़ोतरी करके और जिन्दगी सम्भव बनाकर यह बड़ा भारी अहसान कर रहे हो, उसे हम लोग नहीं समझते। लैण्ड-एलियेनेशन एक्ट के अनुसार तुम धन एकत्र कर भी जमीन नहीं खरीद सकते। तुम पर इतना जुल्म हो रहा है कि मिस मेयो मनुष्यों से भी कहती हैं—उठो, अपनी शक्ति पहचानो। संगठनबद्ध हो जाओ। असल में स्वयं कोशिशें किये बिना कुछ भी न मिल सकेगा। (Those who would be free must themselves strike the blow) स्वतन्त्रता के लिए स्वाधीनता चाहनेवालों को यत्न करना चाहिए। इन्सान की धीरे-धीरे कुछ ऐसी आदतें हो गयी हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है, लेकिन जो उनके मातहत हैं उन्हें वह अपनी जूती के नीचे ही दबाये रखना चाहते हैं। कहावत है, 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते'। अर्थात संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इनकार करने की जुर्रत न कर सकेगा। तुम दूसरों की खुराक मत बनो। दूसरों के मुँह की ओर न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झाँसे में मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती, बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूँजीवादी नौकरशाही तुम्हारी गुलामी और गरीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सबकुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो सगठनबद्ध हो जाओ। तुम्हारी कुछ भी हानि न होगी। बस गुलामी की जंजीरें कट जायेंगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होनेवाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रान्ति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति के लिए कमर कस लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो, सोये हुए शेरो! उठो, और बगावत खड़ी कर दो।

विद्यार्थी और राजनीति

[इस महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मसले पर यह लेख जुलाई, 1928 में 'किरती' में छपा था। उन दिनों अनेक नेता विद्यार्थियों को राजनीति में हिस्सा न लेने की सलाहें देते थे, जिनके जवाब में यह लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह लेख सम्पादकीय विचारों में छपा था, और सम्भवत: भगतसिंह का लिखा हुआ है।—सं.]

इस बात का बड़ा भारी शोर सुना जा रहा है कि पढ़नेवाले नौजवान (विद्यार्थी) राजनीतिक या पोलिटिकल कामों में हिस्सा न लें। पंजाब सरकार की राय बिल्कुल ही न्यारी है। विद्यार्थियों से कालेज में दाखिल होने से पहले इस आशय की शर्त पर हस्ताक्षर करवाये जाते हैं कि वे पोलिटिकल कामों में हिस्सा नहीं लेंगे। आगे हमारा दुर्भाग्य कि लोगों की ओर से चुना हुआ मनोहर, जो अब शिक्षा-मन्त्री है, स्कूलों-कालेजों के नाम एक सर्कुलर या परिपत्र भेजता है कि कोई पढ़ने या पढ़ानेवाला पालिटिक्स में हिस्सा न ले। कुछ दिन हुए जब लाहौर में स्टूडेंट्स यूनियन या विद्यार्थी सभा की ओर से विद्यार्थी-सप्ताह मनाया जा रहा था। वहाँ भी सर अब्दुल कादर और प्रोफेसर ईश्वरचन्द्र नन्दा ने इस बात पर जोर दिया कि विद्यार्थियों को पालिटिक्स में हिस्सा नहीं लेना चाहिए।

पंजाब को राजनीतिक जीवन में सबसे पिछड़ा हुआ (Politically backward) कहा जाता है। इसका क्या कारण है? क्या पंजाब ने बलिदान कम किये हैं? क्या पंजाब ने मुसीबतें कम झेली हैं? फिर क्या कारण है कि हम इस मैदान में सबसे पीछे हैं? इसका कारण स्पष्ट है कि हमारे शिक्षा विभाग के अधिकारी लोग बिल्कुल ही बुद्धू हैं। आज पंजाब कौंसिल की कार्रवाई पढ़कर इस बात का अच्छी तरह पता चलता है कि इसका कारण यह है कि हमारी शिक्षा निकम्मी होती है और फिजूल होती है। और विद्यार्थी-युवा-जगत अपने देश की बातों में कोई हिस्सा नहीं लेता। उन्हें इस सम्बन्ध में कोई भी ज्ञान नहीं होता। जब वे पढ़कर निकलते हैं तब उनमें से कुछ ही आगे पढ़ते हैं, लेकिन वे ऐसी कच्ची-कच्ची बातें करते हैं कि सुनकर स्वयं ही अफसोस कर बैठ जाने के सिवाय कोई चारा नहीं होता। जिन नौजवानों को कल देश की बागडोर हाथ में लेनी है, उन्हें आज ही अक्ल के अन्धे बनाने की कोशिश की जा रही है। इससे जो परिणाम निकलेगा वह हमें खुद ही समझ लेना चाहिए। यह हम मानते हैं कि विद्यार्थियों का मुख्य काम पढ़ाई करना है, उन्हें अपना पूरा ध्यान उस ओर लगा देना चाहिए लेकिन क्या देश की परिस्थितियों का ज्ञान और उनके सुधार के उपाय सोचने की योग्यता पैदा करना उस शिक्षा में शामिल नहीं? यदि नहीं तो हम उस शिक्षा को भी निकम्मी समझते हैं, जो सिर्फ क्लर्की करने के लिए ही हासिल की जाये। ऐसी शिक्षा की जरूरत ही क्या है? कुछ ज्यादा चालाक आदमी यह कहते हैं—"काका, तुम पालिटिक्स के अनुसार पढ़ो और सोचो जरूर, लेकिन कोई व्यावहारिक हिस्सा न लो। तुम अधिक योग्य होकर देश के लिए फायदेमन्द साबित होगे।"

बात बड़ी सुन्दर लगती है, लेकिन हम इसे भी रद्द करते हैं, क्योंकि यह भी सिर्फ ऊपरी बात है। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक दिन विद्यार्थी एक पुस्तक 'Appeal to the young,' Prince Kropotkin ('नौजवानों के नाम अपील', प्रिंस क्रोपोटकिन) पढ़ रहा था। एक प्रोफेसर साहब कहने लगे, यह कौन-सी पुस्तक है? और यह तो किसी बंगाली का नाम जान पड़ता है! लड़का बोल पड़ा—प्रिंस क्रोपोटकिन का

नाम बड़ा प्रसिद्ध है। वे अर्थशास्त्र के विद्वान थे। इस नाम से परिचित होना प्रत्येक प्रोफेसर के लिए बडा जरूरी था। प्रोफेसर की 'योग्यता' पर लड़का हँस भी पड़ा। और उसने फिर कहा—ये रूसी सज्जन थे। बस! 'रूसी!' कहर टूट पड़ा! प्रोफेसर ने कहा कि "तुम बोल्शेविक हो, क्योंकि तुम पोलिटिकल पुस्तकें पढ़ते हो।"

देखिए आप प्रोफेसर की योग्यता! अब उन बेचारे विद्यार्थियों को उनसे क्या सीखना है? ऐसी स्थिति में वे नौजवान क्या सीख सकते हैं?

दूसरी बात यह है कि व्यावहारिक राजनीति क्या होती है? महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस का स्वागत करना और भाषण सुनना तो हुई व्यावहारिक राजनीति, पर कमिशन या वाइसराय का स्वागत करना क्या हुआ? क्या वह पालिटिक्स का दूसरा पहलू नहीं? सरकारों और देशों के प्रबन्ध से सम्बन्धित कोई भी बात पालिटिक्स के मैदान में ही गिनी जायेगी, तो फिर यह भी पालिटिक्स हुई कि नहीं? कहा जायेगा कि इससे सरकार खुश होती है और दूसरी से नाराज? फिर सवाल तो सरकार की खुशी या नाराजगी का हुआ। क्या विद्यार्थियों को जन्मते ही खुशामद का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए? हम तो समझते हैं कि जब तक हिन्दुस्तान में विदेशी डाकू शासन कर रहे हैं तब तक वफादारी करनेवाले वफादार नहीं, बल्कि गद्दार हैं, इन्सान नहीं, पशु हैं, पेट के गुलाम हैं। तो हम किस तरह कहें कि विद्यार्थी वफादारी का पाठ पढ़ें।

सभी मानते हैं कि हिन्दुस्तान को इस समय ऐसे देश-सेवकों की जरूरत है, जो तन-मन-धन देश पर अर्पित कर दें और पागलों की तरह सारी उम्र देश की आजादी के लिए न्योछावर कर दें। लेकिन क्या बुड्ढों में ऐसे आदमी मिल सकेंगे? क्या परिवार और दुनियादारी के झंझटों में फँसे सयाने लोगों में से ऐसे लोग निकल सकेंगे? यह तो वही नौजवान निकल सकते हैं जो किन्हीं जंजालों में न फँसे हों और जंजालों में पड़ने से पहले विद्यार्थी या नौजवान तभी सोच सकते हैं यदि उन्होंने कुछ व्यावहारिक ज्ञान भी हासिल किया हो। सिर्फ गणित और ज्योग्राफी का ही परीक्षा के पर्चों के लिए घोंटा न लगाया हो।

क्या इंग्लैण्ड के सभी विद्यार्थियों का कालेज छोड़कर जर्मनी के खिलाफ लड़ने के लिए निकल पड़ना पालिटिक्स नहीं थी? तब हमारे उपदेशक कहाँ थे जो उनसे कहते—जाओ, जाकर शिक्षा हासिल करो। आज नेशनल कालेज, अहमदाबाद के जो लड़के सत्याग्रह के बारदोलीवालों की सहायता कर रहे हैं, क्या वे ऐसे ही मूर्ख रह जायेंगे? देखते हैं उनकी तुलना में पंजाब का विश्वविद्यालय कितने योग्य आदमी पैदा करता है? सभी देशों को आजाद करवानेवाले वहाँ के विद्यार्थी और नौजवान ही हुआ करते हैं। क्या हिन्दुस्तान के नौजवान अलग-अलग रहकर अपना और अपने देश का अस्तित्व बचा पायेंगे? नौजवानों को 1919 में विद्यार्थियों पर किये गये अत्याचार भूल नहीं सकते। वे यह भी समझते हैं कि उन्हें एक भारी क्रान्ति की जरूरत है। वे पढ़ें। जरूर पढ़ें। साथ ही पालिटिक्स का भी ज्ञान हासिल करें और जब जरूरत हो तो मैदान में

कूद पड़ें और अपने जीवन इसी काम में लगा दें। अपने प्राणों का इसी में उत्सर्ग कर दें। वरन बचने का कोई उपाय नजर नहीं आता।

श्री इन्द्रचन्द्र नारंग का मुकदमा

[श्री इन्द्रचन्द्र नारंग पर देवघर षड्यन्त्र केस से सम्बन्धित यह सम्पादकीय टिप्पणी–सितम्बर, 1928 के 'किरती' में छपी थी। ब्रिटिश शासन मे नागरिक स्वतन्त्रता और जनवादी अधिकारो की स्थिति पर यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालती है। –स.]

पाठक पिछली बार देवघर साजिश केस के बारे में पढ़ चुके हैं। उस मुकदमे के निर्णय के बारे में हमने संक्षेप मे लिखा था। उसमें ही एक पजाबी नौजवान श्री इन्द्रचन्द्र नारंग को अकारण तीन साल की सज़ा दी गयी है। आज उनके मुकदमे का निर्णय हमारे सामने हैं। इसे पढ़ते हुए आश्चर्य हो रहा है कि किस कारण उन्हे सज़ा दी गयी है। उनके विरुद्ध यही रहा कि देवघर की तलाशी में जो एक सूची मिली थी उसमें उनका नाम भी था। और तलाशी में 'बन्दी जीवन' की साठ प्रतियाँ मिली थीं और एक अन्य व्यक्ति के पास से तलाशी मे डॉक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त, अध्यक्ष राजनैतिक पीडित कान्फ्रेस (पालिटिकल सफरर्स कान्फ्रेंस) का पता मिला था। उसने कहा था कि यह उसने श्री इन्द्रचन्द्र से लिया था, बस।

सूची में नाम मिलने से इन्द्रचन्द्र का कोई विशेष अपराध नहीं बन जाता। अन्य साठ-सत्तर व्यक्तियों के भी तो नाम थे, लेकिन उनसे तो पूछताछ भी नही की गयी।

सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया गया है कि वह 'बन्दी जीवन' बेचता था और इसलिए यह राजपरिवर्तनकारी साजिश का सदस्य समझा जाता है। खूब! हम पूछते हैं कि 'बन्दी जीवन' क्या जब्त किताब है? क्या सरकार ने उसकी बिक्री पर रोक लगायी हुई है? यदि नहीं तो श्री इन्द्रचन्द्र को सज़ा किस बात की दी गयी है? मज़ा तो यह है कि किताब उसके भाई ने लाहौर-हिन्दी भवन से प्रकाशित की है। उसकी बिक्री के लिए सभी ने प्रयत्न किये हैं। लेकिन इसमें साजिश का क्या सबूत है? क्या डॉक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त का अध्यक्षीय सम्बोधन सरकार ने जब्त कर लिया है? यदि नहीं, तो वह किसी व्यक्ति को पढ़ने के लिए देना ही किस तरह अपराध हो गया? पहले श्री इन्द्रचन्द्र ने समाचार पत्र की एजेंसी लेने का प्रयास किया था। वह जैसे-तैसे पैसे कमाकर गुजारा कर रहा था और शिक्षा भी प्राप्त कर रहा था। अगर वह अपने भाई द्वारा प्रकाशित किताब की बिक्री करके कुछ धन कमा लेता है, तो क्या वह अपराध था? हम समझ नहीं पा रहे हैं कि यह अपराध कैसे हो गया? आज हजारों व्यक्तियों के घरों मे 'बन्दी जीवन' होगा। सैकड़ों आदमी वह किताब बेचते होंगे। तो क्या वे सभी षड्यन्त्रकारी हैं? और जेल

भेजने लायक हैं ? अगर नहीं तो एक बेचारे इन्द्रचन्द्र के हाथों मे जाते ही 'बन्दी जीवन' जहर हो गया ? हमे तो दाल में कुछ काला-वाला नजर आता है । कहीं किसी और तैयारी के सिलसिले में ही उस गरीब को यूँ ही जेल में तो नहीं डाल दिया गया ? हमें लगता है कि पजाब के नौजवानो पर मुसीबत आनेवाली है और यह इसी की तैयारी में पहला कदम उठाया गया है । लेकिन अंग्रेजी सरकार ज़रा ज़ार का इतिहास याद कर लिया करे । इस तरह के जुल्म कर-करके अपने राज को मजबूत पाँव पर खड़ा करता-करता जार आज अपनी हस्ती मिटा बैठा है । याद रखना चाहिए कि जुल्म के साथ कभी शान्ति कायम नहीं हो सकती, राज मजबूत नहीं हो सकते, बल्कि यह अपने पैरों पर कुल्हाड़ा मारना है । लेकिन हमारे बड़े शोर-शराबा करनेवाले देशभक्तों और नेताओं को यह अंधेरगर्दी बन्द करने के लिए आन्दोलन करना चाहिए ।

युगान्तकारी माँ

[सितम्बर, 1928 के 'किरती' मे प्रकाशित एक सम्पादकीय नोट जिसमें सुप्रसिद्ध देशभक्त शचीन्द्रनाथ सान्याल की माता जी के प्रति विचार व्यक्त किये गये है । —स]

हमारे पाठक हिन्दुस्तान के प्रमुख युगान्तकारी श्री शचीन्द्रनाथ सान्यालजी के नाम-काम से अच्छी तरह परिचित हैं । हम उनका चित्र भी 'किरती' मे प्रकाशित कर चुके है । उनका सम्पूर्ण परिवार ही युगान्तकारी है । 1914-15 वाले गदर आन्दोलन में उनके दो भाई गिरफ्तार किये गये थे, जिनमे से एक नजरबन्द है और दूसरे को दो साल की कैद हुई और स्वयं उन्हे आजीवन कारावास की सजाएँ हो गयी थीं । अब उन्हें काकोरी केस में फिर आजीवन कैद की सजा हो गयी है । साथ ही उनके सबसे छोटे भाई श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल जी को पाँच बरस की कैद हो गयी है । यह भी अपने बड़े भाइयों की तरह दिलेर हैं और खुशदिल रहनेवाले है ।

ऐसे वीर पुत्रों की जननी माँ धन्य है । लेकिन हमें अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि 52 साल की उम्र मे लगभग एक माह पूर्व उनका देहान्त हो गया था। वह कोई सामान्य स्त्री नही थी । वह स्वय भी पढी-लिखी और क्रान्तिकारी विचारोवाली थी ।

इनका जन्म बंगाल के सबसे अधिक शिक्षित विद्वान और भक्ति के गढ़ शान्तिपुर के एक बड़े परिवार में हुआ । इनके एक बहन और एक भाई और थे । इनके बड़े भाई श्री योगेशचन्द्र राय अब तक जीवित हैं । वे 1907 के स्वदेशी आन्दोलन में काफी सक्रिय रूप से काम करनेवालों में हैं । बाद में राजपरिवर्तनकारी आन्दोलनों के सम्बन्ध में

उनकी अनेकों बार तलाशियाँ हुईं और पुलिस उनके पीछे लगी रहती थी।

श्री शचीन्द्रनाथ की माता श्रीमती क्षीरोदवासिनी देवी काफी शिक्षित थीं। आपको पढ़ाई में अव्वल होने की वजह से वजीफा मिलता रहा। आप हमेशा समाचारपत्र, पत्रिकाएँ और नयी-नयी पुस्तकें पढ़ती रहती थीं।

श्री शचीन्द्र के पिता श्री हरिनाथ सान्याल भी स्वदेशी आन्दोलन के सक्रिय समर्थक थे। 1907 के स्वदेशी आन्दोलन के बहुत पहले से ही वह स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करने लगे थे। श्री शचीन्द्र की माता उनके ऐसे विचारों और कार्यों में बहुत सहायता करती थीं और स्वदेशी आन्दोलन चलने पर दोनों इसी काम में लग गये। हालाँकि हरिनाथ सान्याल सरकारी नौकरी में थे और अच्छा-खासा वेतन पाते थे।

श्रीमती क्षीरोदवासिनी देवी अपने बच्चों को घर में स्वयं पढ़ाती थीं। स्वदेशी आन्दोलन के बाद में उन्होंने स्वयं ही अपने पुत्रों को अनुशीलन समिति में भर्ती करवाया। अनुशीलन समिति बंगाल की एक पार्टी थी, जो उस समय तक खुफिया राजपरिवर्तनकारी दल नहीं बनी थी, लेकिन बाद में वही सबसे बड़ी और शक्तिशाली राजपरिवर्तनकारी पार्टी बन गयी थी।

बाद में माँ को यह भी पता लग गया कि शचीन्द्र युगान्तकारी दल में शामिल हुआ है। लेकिन वह कभी घबरायी नहीं, बल्कि हमेशा उनसे सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करती थीं। वह प्रसन्न थीं कि उनका बेटा देश-सेवा में संलग्न है।

उनके सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के कारण काफी दूर-दूर से युगान्तकारी उनके दर्शनों के लिए आते थे। उनमें श्री रासबिहारी बोस, हिन्दुस्तान के राजपरिवर्तनकारी शहीदों के सिरमौर श्री जतीन्द्रनाथ मुकर्जी तथा श्री शशांक हाजरा आदि शामिल थे। वह बंगाल के युगान्तकारियों में 'युगान्तकारी माँ' के रूप में मशहूर थीं। दूर अण्डमान के बन्दियों के बीच भी उनकी ख्याति पहुँच चुकी थी।

1915 में जब गदर पार्टी ने चारों तरफ जबर्दस्त बगावत करने की तैयारियाँ की थीं, उस समय श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल और उनके दोनों युवा भाई इस काम में जुटे हुए थे। स्मरण रहे कि इनके पिता का देहावसान हो चुका था। इस कारण परिवार का बोझ भी इनके सिर आ पड़ा। जब फरवरी में विद्रोह पैदा करने की तारीख भी तय हो चुकी थी, तब इन भाइयों में आपस में विवाद चल पड़ा कि कौन पीछे रहकर परिवार की देखभाल करे, क्योंकि कोई भी पीछे रहने के लिए सहमत नहीं होना चाहता था। दोनों की यह इच्छा थी कि देश के स्वतन्त्रता-संघर्ष में वे सक्रिय रूप से मैदान में कूद पड़ें। तब उनकी वीर माता ने आगे आकर कहा कि वह किसी की राह में नहीं आना चाहती, जिस किसी की भी इच्छा हो, वह उनकी चिन्ता छोड़कर देश-सेवा के कार्य में जुट जाये।

पर वह सारा काम तो बीच में ही रह गया। गदर की सारी योजना फेल हो गयी। मुकद्दमा चला। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल को आजीवन कैद हो गयी। जब वह बनारस जेल से अण्डमान (काले पानी) भेजे गये, उस समय उनकी आयु 22 बरस की थी। माँ

उनसे मिलने गयी और प्रसन्नतापूर्वक कहा—"मेरा पुत्र सचमुच संन्यासी हो गया है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि उसने अपना जीवन देश-सेवा के लिए अर्पित कर दिया है।" इसके पश्चात् पुलिस उनका पीछा करने लगी और बहुत परेशान करती रही।

अब काकोरी केस चला और जब उनका छोटा पुत्र श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल भी गिरफ्तार कर लिया गया तो इनको बहुत घबराहट हुई, क्योंकि वह अभी बिल्कुल बच्चा था और पढ़ रहा था। ज्यादा चिन्ता यह थी कि संकट में कहीं वह घबरा न जाये। लेकिन मालूम हुआ कि वह जेल में बिल्कुल निश्चिन्तता से रह रहा है। इस बात से इन्हें बहुत खुशी हासिल हुई। कहने लगीं, "मुझे अपने भूपेन्द्र से यही आशाएँ थीं।"

लेकिन उनका सारा जीवन कठिनाइयों में ही गुजर गया। उन्हें कभी चैन का समय ही नहीं मिला। देखते-देखते काकोरी का मुकद्दमा समाप्त हो गया। और कोई ठोस सबूत न मिलने के बावजूद श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल को आजीवन कैद और भूपेन्द्रनाथ को पाँच साल की सजा हो गयी। यह झटका उनसे बर्दाश्त न हो सका। यह चोट उनसे सही न गयी। वह फिर कभी न सँभल सकीं। लेकिन अपने पुत्रों पर उन्हें बहुत फख्र रहा। उन्होंने शचीन्द्रनाथ सान्याल को अपने अन्तिम पत्र में लिखा था कि दुनियादारी के हिसाब से भले ही मैं बहुत गरीब हूँ, लेकिन मेरे-जैसा अमीर कौन है जिसके पुत्र सत्यपथ पर चल रहे हैं और देश-सेवा में जिन्होंने अपनी ज़िन्दगियाँ अर्पण कर दी हैं, मुझे अपने पर बहुत नाज़ है।

आह! ऐसी और कितनी माताएँ आज हमारे देश में हैं? धन्य है यह माँ और धन्य-धन्य हैं इनके सुपुत्र!

षड्यन्त्र क्यों होते हैं और कैसे रुक सकते हैं?

[सितम्बर, 1928 के 'किरती' मे छपा यह लेख राजनीतिक मुकदमों सम्बन्धी विचारधाराओं को सामने रखता है जिनकी अग्रेज सरकार षड्यन्त्र कहकर निन्दा करती थी। समाज की प्रारम्भिक तब्दीली की ओर इशारा करते हुए कहा गया कि षड्यन्त्रो को रोकने का एक ही तरीका है—दुनिया से गरीबी व गुलामी दूर करना।

इस लेख में शान्तिपूर्ण व आतकवादी तरीको पर भी बड़े तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया गया है। भगतसिंह और उनके साथियों के विचारधारात्मक विकास को जानने के लिए यह लेख महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ो में से एक है। —स.]

एक षड्यन्त्र की चर्चा अभी खत्म नहीं होती कि दूसरे षड्यन्त्र की चर्चा शुरू हो जाती है। कुछ समय पूर्व हम काकोरी षड्यन्त्र का हाल पढ रहे थे, इन दिनो देवघर के षड्यन्त्र के हाल सुन रहे हैं। इनसे पहले लाहौर षड्यन्त्र केस, दिल्ली षड्यन्त्र केस, बोल्शेविक षड्यन्त्र केस और न जाने और कितने षड्यन्त्र केम चल चुके हैं, जिनमे कि दर्जनो ही नौजवान फाँसियों पर लटकाये गये। गोलियों से उड़ा दिये गये। सैकड़ों ही नहीं, हजारों

काले पानी भेजे गये, असख्य देशभक्त अभी तक जेलों में कैद काट रहे हैं।

षड्यन्त्र क्या होते हैं? सरकारों का विचार है कि मनुष्य के दिमाग में यह एक बीमारी है, जो नियमित चल रही व्यवस्था को तोड़ने-फोड़ने के लिए षड्यन्त्रकारी को मजबूर कर देती है। वह इस बीमारी के वश मे होकर कानून तोड़ता है, शान्ति भंग करता है, हत्याएँ करता और डकैतियाँ डालता है और कई ऐसे तरीके इस्तेमाल करता है जो कि समाज मे गडबडी फैलाने और शान्तिभग का कारण बनते हैं। वह चल रही व्यवस्था की तोड-फोड की ठान लेता है और फिर इस लक्ष्य के लिए कोई कसर नहीं छोड़ता।

इसके विपरीत षड्यन्त्रकारी लोगो का दावा है कि षड्यन्त्र उन आदर्शवादी लोगो की कोशिश होती है जो चल रही व्यवस्था की कमियों, अन्याय और जुल्म को सहन नही कर पाते, जो अमीर-गरीब, बड़े-छोटे, जालिम-मजलूम, शासक-प्रजा, पूँजीपति-मजदूर, जमींदार-किसान आदि का फर्क खत्म कर एक-जैसे अधिकारो और आजादी का दौर लाना चाहते हैं और जो पुरानी, गन्दी और अत्याचारी व्यवस्था को समाप्त कर एक नयी व सुन्दर व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं, जिसमें कि कोई शासक-प्रजा, अमीर-गरीब, जमींदार-किसान न हो, बल्कि सभी एक-जैसे भाई-भाई हो। प्रत्येक काम करे और खाये और सभी की प्रत्येक जरूरत पूरी हो।

ये बातें सही हैं या गलत जो कि दोनो अपने-अपने विचार को सामने रखकर की जाती है, यह पाठक स्वय ही अनुमान लगाएँ।

गुजरे वक्त का इतिहास प्रमाण है कि सख्त सजाओ और फाँसियो से षड्यन्त्र नही रुक सकते, न ही जुल्मो और अत्याचारों से—चाहे वे कितने भी भयानक क्यो न हो—आजादी की चाह कुचली जा सकती है। असख्य नौजवान, जो किसी दूसरे आजाद देश मे होते तो अपने देश के लिए तोहफा साबित होते, अत्याचारी और जालिम शासको के अत्याचारो का शिकार हो गये। हजारो देशभक्त टुकडे-टुकडे कर कत्ल कर दिये गये ताकि लोग इससे आतकित होकर षड्यन्त्र करने से बाज आ जाये और आजादी के लिए हाथ-पाँव न हिलाएँ। तमाम सजाओं, फाँसियों, कैद और बेत मार-मारकर देख लिया गया है, लेकिन यह तमाम सजाएँ भी षड्यन्त्रो को रोकने में असफल रही है। बल्कि—*'बढता है शौके-शहादत हर सजा पाने के बाद'* के अनुसार षड्यन्त्रो की आग भडकती गयी और इन सजाओं से न रुकी। यह क्यों है, आखिर इन षड्यन्त्रो को रोकने का क्या कोई इलाज भी हो सकता है?

यदि षड्यन्त्रों के पिछले इतिहास को अच्छी तरह देखा जाये तो हमे इस बात का भली प्रकार पता चलता है कि षड्यन्त्रों को रोकने के लिए जितनी अधिक कोशिशें होती हैं, उतने ही अधिक षड्यन्त्र किसी-न-किसी शक्ल में वजूद मे आते रहते हैं। इस तरह पता चलता है कि ये सजाएँ षड्यन्त्रों की आग भडकाने मे लकडी का ही काम करती हैं।

सैकड़ो नौजवान गोलियों से उडा दिये जाते हैं, लेकिन उनकी जगह भरने के लिए हजारों ही नौजवान हथेलियों पर सर रखकर मैदान मे कूद पडते हैं और अपने प्राणो को

खतरे में डाल उस अधूरे काम को शुरू कर देते हैं। आखिर इसका कारण क्या है?

बदला लेना इन्सानी स्वभाव है। इन्सान जब तक इन्सान है, वह अपने दुश्मनो से बदला जरूर लेगा, ख्याली पुलाव पकानेवाले चाहे कुछ भी कहें। आम नौजवान जब देखते हैं कि उनके भाई सिर्फ देश-प्रेम के लिए ही किस बेदर्दी और बेरहमी से जुल्मों का शिकार हो रहे हैं तो उनके दिलों में अपने भाइयों पर हुए जुल्मों का बदला लेने की आग भड़क उठती है। वे शान्ति और सन्तोष को अलविदा कह देते हैं। अपनी किश्ती ईश्वर के सहारे छोड़ लंगर तोड़ देते हैं। फिर या तो वे खुद उस बदले की आग में जलकर राख हो जाते हैं या दुश्मनों को राख करके ही साँस लेते हैं। यह इन्सानी दिलेरी है। भँगेड़ियों, नशेबाजों का पुलाव नहीं है।

दूसरी ओर एक बुजदिल और कायर होता है। उसे अपनी जान बहुत प्यारी होती है, क्योंकि वह नहीं चाहता कि उसके पास से ऐशो-आराम और सफेद-स्याह करने की ताकत छीन ली जाये। पर जब उसकी जान पर हमला किया जाता है और उसके मुँह से झाग गिरने लगती है तो वह गुस्से में आकर ऐसे-ऐसे कष्ट ढहाता है कि जमीन और आसमान काँप उठते हैं। वह अत्याचार में अन्धा होकर जिस पर भी हाथ उठाता है, चाहे वह निर्दोष ही क्यों न हो, उसे पार बुलाकर ही छोड़ता है। इस तरह अक्सर गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है और हजारो ही बेगुनाह नौजवान देश पर शहीद हो जाते हैं। यह निर्दोषों का खून होता है जो अन्त में रंग लाता है। जनता में बेचैनी फैल जाती है। षड्यन्त्रकारियों के हाथ मजबूत हो जाते हैं, क्योंकि यह जुल्म, अन्याय और आतंक ही षड्यन्त्र पैदा करने के कारण हैं। वे खुली घोषणाएँ कर देते हैं कि देखा, हम नहीं कहते थे कि लातों के भूत बातों से नहीं सुधरते, लेकिन तुमने हमारी बातों पर ध्यान नहीं दिया। अब खूब गत बन रही है। लेकिन यह तो—

इब्तिदाए इश्क है रोता है क्या?
आगे-आगे देखिए होता है क्या?

इस तरह षड्यन्त्र का वृक्ष निर्दोषो के खून से सिंचकर बढ़ता है और थोड़े ही समय में फलने-फूलने लगता है।

जब तक लोग खुलेआम अपने दुख-तकलीफें व्यक्त कर सकते हैं और सरकारी अत्याचारों की पोल खोल सकते हैं, तब तक तो षड्यन्त्रों की जरूरत नहीं पड़ती, लेकिन जब सरकारें खुले आन्दोलनो को कुचलने लगती हैं और जब—

न तड़पने की इजाज़त है, न फरियाद की है।
घुट-घुट के मर जाऊँ, यही मरजी मेरे सैयाद की है।

पर अमल शुरू हो जाता है तो इधर जोशीले और गर्वीले जवान भी इस बुरी स्थिति में नहीं जीना चाहते। वे सिरों की बाजी लगा देते हैं और ऐसे अत्याचारी [शासन] को तोड़ने

की सिरतोड कोशिशों में व्यस्त हो जाते हैं।

जब तक शान्तिपूर्ण आन्दोलन में आजादी की माँग की छूट रही, कोई षड्यन्त्र नहीं हुआ, कोई गुप्त आन्दोलन नहीं चल सका, लेकिन ज्यों ही शान्तिपूर्ण आन्दोलन को कुचलने के आदेश जारी किये गये उसी समय गुप्त आन्दोलन शुरू हो गये और षड्यन्त्रों की तैयारियाँ होने लगीं। सरकार की सख्ती का दौर शुरू हुआ और काले कानूनों के अधीन सैकड़ों नौजवानों को, जो खुले रूप में काम कर रहे थे, जेलों में नजरबन्द कर दिया गया तो जोशीले नौजवानों को इससे आग लग गयी और वे तड़प उठे। बस फिर क्या था ? किसी ओर काकोरी-षड्यन्त्र का तो कहीं किसी और षड्यन्त्र का धुआँ निकलने लगा।

जब तक दुनिया में वहशी जमाने की गुलामी और गरीबी-जैसी स्मृतियाँ कायम रहेंगी तब तक कोई भी ताकत दुनिया के तख्त से षड्यन्त्रों और गुप्त आन्दोलनों को मिटा नहीं सकती। यदि जोर-जबरदस्ती और जुल्म षड्यन्त्रों के रोकने का सही इलाज होता तो षड्यन्त्रों का नामो-निशान कब का मिट गया होता। लेकिन यह इलाज नहीं है। सम्भव है, जुल्म और अत्याचार कुछ समय के लिए षड्यन्त्रों को रोक सकें, लेकिन जुल्म और अत्याचार षड्यन्त्र रोकने का कोई कारगर नुस्खा नही है। कइयों का विचार है कि केवल आजादी ही षड्यन्त्रो को खत्म करने का असली इलाज है, लेकिन हमारा इससे मतभेद है। यह तो ठीक है कि यह आजादी ही है जो बहुत हद तक षड्यन्त्रों को रोक सकती है, लेकिन फिर भी इसमें सोलह आने सच नहीं है, क्योंकि वर्तमान समय में साबित हो गया है कि केवल [आजादी की] प्राप्ति से ही षड्यन्त्र नहीं रुक सकते। हमारे सामने अमेरिका, जर्मनी और फ्रांस आजाद देशों में माने जाते हैं और वे हैं भी बिल्कुल आजाद–किसी के गुलाम या किसी तरह से भी मोहताज नहीं हैं, लेकिन फिर भी वहाँ षड्यन्त्र होते रहते हैं, और अभी बहुत समय नहीं हुआ, जबकि 'साको' और 'वैनजिरी' को अमेरिका की पूँजीपति सरकार ने षड्यन्त्र के अपराध में बिजली की कुर्सी पर बिठाकर मार डाला था। जर्मनी में कम्युनिस्टों ने एक क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था, लेकिन वे कब्जा बनाकर न रख सके। फ्रांस और इंग्लैण्ड में भी षड्यन्त्र होते रहते हैं।

अमेरिका-जैसा समृद्ध देश पूरी दुनिया के नक्शे पर भी नहीं है। वहाँ 'राक-फैलरे'-जैसे तगड़े अमीर आदमी हैं। यदि वे चाहें तो अकेले ही पूरे हिन्दुस्तान को खरीद सकते हैं। लेकिन दूसरी ओर बेरोजगारी और गरीबी का यह हाल है कि हजारों ही नहीं, बल्कि लाखों अमेरिकी मजदूर ऐसे हैं जो बेरोजगार भूखे दर-दर भटक रहे हैं और जिनका गुजारा सिर्फ सरकारी दान से ही होता है। तो क्या जब तक यह हद दर्जे की गरीबी और हद दर्जे की अमीरी दुनिया में कायम रहेगी, षड्यन्त्र दुनिया से खत्म हो सकते हैं ? हमारा विचार तो 'नहीं' में है। षड्यन्त्रों का हटना या न हटना रोटी के सवाल के हल होने पर निर्भर है। यदि रोटी का सवाल आज हल हो जाये तो आज ही षड्यन्त्रों की समाप्ति हो सकती है, लेकिन यदि रोटी का सवाल न निपटा तो यह षड्यन्त्र कभी भी रुक नहीं सकते,

चाहे नीरू और जहाद-जैसे जालिम ही क्यों न पैदा हो जायें।

शायद कुछ लोग कहें कि यदि रोटी के सवाल का हल ही षड्यन्त्रों की बीमारी के लिए अमृतधारा है तो फिर रूस में क्यों षड्यन्त्र होते हैं? हमारा जवाब स्पष्ट है कि रूस में जो षड्यन्त्र होते है वे सिर्फ विदेशी पूँजीपति सरकारों के छोड़े हुए कुछ भाड़े के टट्टुओं द्वारा करवाये जाते हैं और वे विदेशी सरकारें अपने एजेंटों को धन आदि देकर उनसे षड्यन्त्र करवाती हैं, नहीं तो रूस में षड्यन्त्र करने के लिए कोई कारण ही नहीं है, ना ही रूसी लोगों को कोई तकलीफ है, जिससे कि उन्हें षड्यन्त्र करने की जरूरत पड़े। कुछ जार के चेले-चपाटे हैं या विदेशी एजेण्ट हैं जो कभी-कभार हंगामा करते हैं, वरना रूस तो इस समय एक ऐसा देश है जो हर इन्सान को खुश देखना चाहता है और प्रत्येक इन्सान की जरूरतें पूरी करता है।

हिन्दुस्तान का क्या कहना। पहले तो यह गुलाम है। यहाँ के नौजवान जब दूसरे देशों को उन्नति करते देखते हैं तो उनके कलेजो पर छुरियाँ चल जाती हैं। वे अनुभव करते हैं कि उन्नति करना तो दूर रहा, उनके तो साँस लेने के लिए भी यहाँ जगह नहीं है। इसलिए हिन्दुस्तान का गुलाम होना ही यहाँ आजादी की कोशिशों के लिए एक अच्छा तर्क है। आजादी के लिए दो ही प्रकार की कोशिशें हो सकती हैं–शान्तिपूर्ण व आतंकवादी तरीको से। आजादी की प्राप्ति के हर तरीके की एक-न-एक दिन परीक्षा होती है। वह तरीका परीक्षा में खरा उतरे तो लोग उसमें विश्वास करते हैं, लेकिन यदि परीक्षा में असफल रहे तो लोगों का विश्वास उससे हट जाता है। हिन्दुस्तान में भारी संख्या उन लोगों की है जो शान्तिपूर्ण तरीके के समर्थक हैं। शायद इसलिए कि उन्हें इसके सिवा और कुछ सूझता भी नहीं या यदि कुछ सूझता भी है तो वे उस पर व्यवहार करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। लेकिन यह बात अब सन्देह से परे है कि ऐसे आदमी भी हिन्दुस्तान मे मौजूद हैं, जो शान्तिपूर्ण तरीकों पर विश्वास खो चुके हैं, और हिन्दुस्तान की आजादी के लिए काम भी करना चाहते हैं। जब तक ऐसे आदमी मौजूद हों तब तक षड्यन्त्रों का होते रहना अचम्भे की बात नही है। लेकिन एक गुलामी ही क्या? हिन्दुस्तान में इतनी गरीबी है कि तौबा ही भली। हजारों नहीं, लाखों नहीं, बल्कि करोड़ों ही आदमी रोटी के दो टुकडों के लिए तरसते मर जाते हैं। जब तक गुलामी और गरीबी खत्म नहीं होती तब तक लोग भला कैसे आराम मे बैठ सकते हैं? हो सकता है कि अमीर लोग ऐशो-आराम मे आजादी को भूल जाएँ और गुलामी को पसंद करें क्योंकि उनके लिए तो ऐश-परस्ती ही आजादी हो सकती है, लेकिन जो लोग भूखे मर रहे हैं, वे समझते हैं कि हमें मरना ही है तो फिर क्यो न मर्द मैदान बनकर इस अन्यायपूर्ण और जालिम व्यवस्था को रद्द करने में मरें, क्यो न देश के गरीबों को जगाने के लिए और भारत माता को आजाद करवाने के लिए शीश दिये जाये? हो सकता है ऐसे विचार कुछ देर तक गरीबों के दिमाग में न आयें, लेकिन कब तक रूक सकेंगे? इस अन्याय, गुलामी और गरीबी के खिलाफ शुरू से ही षड्यन्त्र होते आये हैं। जब तक यह हाल रहेगा, जोशीले लोग षड्यन्त्र करते रहेंगे,

क्योंकि तमाम षड्यन्त्रों की जड़ गरीबी और गुलामी ही है। चाहे सरकारें इस बात को नहीं मानतीं फिर भी यह बिल्कुल सही है कि शासक जो भी कुछ अधिकार या कुछ सुविधाएँ देते हैं वे इन षड्यन्त्रकारियों के भय से ही दिया करते हैं। नहीं तो–यदि नौजवान हथेलियों पर सिर रखकर बिना किसी स्वार्थ के समाज को अच्छा बनाने के लिए बलिदान न करते तो सरकारों से जितने अधिकार अभी तक छीने जा चुके हैं, उतने भी न छीने जा सकते।

1925 में विपिनचन्द्र पाल ने एक लेख में लिखा था कि "यह पोलिटिकल कातिल ही थे, जिन्होंने कि मिण्टो-मारले योजना के लिए रास्ता साफ किया।" एक और माडरेट एस.आर. दास ने लिखा था कि "इंग्लिस्तान को इस मीठी नींद से जगाने के लिए कि हिन्दुस्तान के साथ 'अच्छा सलूक' हो रहा है, एक बम की जरूरत थी।"

यों आमतौर पर नेता लोग इन षड्यन्त्रकारियों के खिलाफ ही रहा करते हैं तो भी हमारे नेता साहिब बब्बर अकाली दल की तारीफ यह कहकर किया करते हैं कि सिखों को गुरुद्वारा बिल इसी आन्दोलन ने दिलवाया है, नहीं तो गुरुद्वारा बिल कभी भी न मिलता।

यह लेख लिखने से न तो हमारा यह आशय है कि बम फेंकने की प्रेरणा दी जाये और न ही यह कि षड्यन्त्रकारियों की तारीफ के बड़े-बड़े पुल बाँध दिये जायें, चाहे हम समझते हैं कि वे सच्चे देशभक्त होते हैं और अपने भीतर सच्ची राष्ट्रीय और देशभक्ति की स्प्रिट रखते हैं और अपने विश्वासों के अनुसार काम करते हैं, वे इसी में देश और कौम की बेहतरी समझते हैं। इस लेख को लिखने का आशय तो यह है कि जनता को यह बताया जाये कि जहाँ भी गुलामी और गरीबी मौजूद है वहाँ कुछ जोशीले लोग उठते ही रहेंगे और गुलामी और गरीबी के जुए को उतार फेंकने के यत्न करते रहेंगे, चाहे वे सफल हों या नहीं। हम समझते हैं कि इतिहास हमें यही बताता है कि इन षड्यन्त्रों को रोकने और हमेशा के लिए खत्म करने का एक ही तरीका है कि दुनिया से गरीबी और गुलामी दूर की जाये और प्रत्येक देश में आजादी के साथ रोटी के सवाल का भी पूरा समाधान हो। जब तक यह नहीं होता, षड्यन्त्रों का बन्द होना मुश्किल है।

श्रमिक आन्दोलन को दबाने की चालें

[सितम्बर, 1928 के 'किरती' के चार और सम्पादकीय ध्यान देने योग्य हैं। एक पब्लिक सेफ्टी बिल, दूसरा ट्रेड डिस्प्यूट बिल सम्बन्धी भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को प्रकट करता है। इन्हीं बिलों के विरोध में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने 8 अप्रैल, 1929 को असेम्बली हॉल में बम का धमाका किया था।

तीसरी सम्पादकीय टिप्पणी में मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट सम्बन्धी चर्चा है

और इसे बूर्ज्वा विचारधारा का प्रतीक बताया गया है।

चौथे सम्पादकीय में बारदोली किसान आन्दोलन सम्बन्धी विचार रखे गये हैं।

सितम्बर, 1928 में ही हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक पार्टी, हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक पार्टी बन गयी थी। –सं.]

विश्व में जो अंधेरगर्दी इन खुदगर्ज और बेईमान पूँजीपति शासकों ने मचा रखी है, वह लिखकर लोगों को समझायी नही जा सकती। अब जब उनके पर्दे दुनिया में खुल रहे है और अब जब श्रमिक भी इन लोगो को अपने श्रम पर हराम की मोटी-मोटी खाल चढ़ाने से रोकने का यत्न करने लगे हैं तो यह तडपते हैं और शान्ति-शान्ति का शोर मचाने लगते हैं। सम्पत्ति खतरे में है, दुनिया कैसे चलेगी, आदि वाक्यों से शोर मचाकर आम लोगों और श्रमिकों को समाजवादी आन्दोलन के विरोधी बना रहे हैं। साथ-ही-साथ उन आन्दोलनो को दबाने के विचार से अन्धा अत्याचार करने की ठान ली है। आज हम समाचार पत्रों में पढ़ रहे हैं कि लोगों की सुरक्षा नाम का एक (Public safety—removed from India-bill) बिल असेम्बली में पेश हो रहा है। पेश सरकार की ओर से ही होना है। बिल का आशय यह है कि यदि समाजवादी विचारों का प्रचार करनेवाला कोई ऐसा आदमी भारत में आ जायेगा, जो यहाँ का नागरिक न होगा तो उसे नोटिस देकर एकदम देश से निकाल दिया जायेगा। यह बिल क्यों पास किया जायेगा और इसे पास करवाने के लिए क्या-क्या घटिया चाले चली जा रही हैं, यही हम पाठकों को बताना चाहते है।

कुछ दिन पहले अखबारों में एक पत्र छपा था जिसके बारे में कहा जाता था कि कम्युनिस्टों की ओर से यह पत्र इंग्लैण्ड की कम्युनिस्ट पार्टी को लिखा गया था। उसमें उन्होंने कहा था कि आखिर में हम सशस्त्र क्रान्ति या हथियारों से युद्ध कर ही क्रान्ति सम्पन्न करेगे, लेकिन उससे पहले कम्युनिस्ट पार्टी गुप्त रूप में काम करेगी और श्रमिक किसान पार्टी को नियन्त्रण में कर प्रचार का काम खुले रूप में किया जायेगा, आदि। उधर क्योंकि रूस चाहता है कि दुनिया-भर में मजदूरों का शासन स्थापित किये बगैर स्थायी शान्ति नहीं हो सकती, इसीलिए वह हर जगह समाजवादी आन्दोलन करवाना चाहता है। और चूँकि दुनिया मे सबसे बड़े पूँजीपति और सम्राटपसन्द अंग्रेज है, इसलिए उनका राज नष्ट करना जरूरी है और उनका राज ही हिन्दुस्तान के सिर पर है, इसीलिए यहाँ क्रान्ति करवाना अनिवार्य है। ऐसी स्थिति मे अंग्रेज रूस से बहुत भयभीत हैं और वे कम्युनिस्ट या समाजवादी विचारों के प्रचार को रोकना चाहते हैं। पर किया क्या जाय? हिन्दुस्तानी पूँजीपतियों की सहानुभूति जीतने के लिए वह पत्र छपवाया गया। अखबारों में लिखा गया था–

दिल्ली, अगस्त 20

निम्न पत्र को प्रसारित किया गया।

किसकी ओर से, कब, कहाँ? यह कुछ पता नहीं। और यह पत्र है भी पिछले दिसम्बर की तारीख का। अब तक वह कहाँ छिपा रहा?

कम्युनिस्ट पार्टी ने इस पत्र के साथ अपना कोई सम्बन्ध मानने से इन्कार कर दिया है। श्रमिक किसान पार्टी ने भी ऐसी ही घोषणा की है। फिर यह पत्र आया कहाँ से? और इसे अब ही क्यों छापा गया? यह बातें सोचने योग्य हैं। इस पत्र के साथ, और रूस की कुछ घोषणाओं को बार-बार छापने से हिन्दी पूँजीपतियों को भी सरकार ने अपने साथ मिला लिया। हमें पता है कि निठल्ले पूँजीपति मिलकर यह बिल पास करवा लेंगे। पर क्या सरकार समझती है कि इस तरह समाजवादी विचारों का प्रचार रुक जाएगा? क्या इन नीचता-भरी चालों से वे अपने पैर पक्के कर स्थिर रह सकेंगे? इतिहास की ओर से जान-बूझकर क्यों आँखें बन्द रखी जाती हैं? आज फ्रांस के फ्यूडल लार्ड्स और रूसी नोबल्स कहाँ हैं? क्या इन लोगों ने इन विचारों को दबाने के लिए अपना-अपना जोर नहीं लगाया और क्या क्रान्ति रुक सकी थी? फिर यहीं क्रान्ति कैसे रुक सकेगी? जब तक भूख है और श्रम करनेवाले भूखे मरते रहेंगे और निठल्ले बैठनेवाले हर तरह की मौज उडाते रहेंगे, तब तक समाजवादी विचार दबाने से और भी जोर पकडते रहेंगे। लेकिन श्रमिकों को सँभल जाना चाहिए और समझ लेना चाहिए कि उनके आन्दोलन को दबाने के लिए कितने अत्याचार किये जा रहे हैं और यदि वे अब भी न सँभले तो बाद में पछताने से कुछ हाथ न आयेगा।

एक और दमनकारी कानून

जिस तरह हिन्दुस्तान में कारखाने बढ़ रहे हैं, उसी तरह हमारे पूँजीपति और अंग्रेजों के लाभ-हानि भी साझे होते जा रहे हैं और ये देश में उभर रहे जन-आन्दोलन को सामान्यतया दबाने का सयुक्त रूप से प्रयत्न कर रहे हैं। अब एक समय दो कानून स्वीकृत हो रहे हैं: एक है जन-सुरक्षा बिल (पब्लिक सेफ्टी बिल) और दूसरा है औद्योगिक विवाद बिल (ट्रेड्स डिस्प्यूट बिल) अर्थात् किसी पूँजीपति और मजदूरों का किसी सवाल पर झगडा हो जाए तब तुरन्त एक पचायत गठित कर दी जाए, जिसमें पूँजीपति मालिको तथा मजदूरों के प्रतिनिधि शामिल हों और इसका अध्येता एक निष्पक्ष व्यक्ति हो। वह जो निर्णय दे उसे सभी स्वीकारें। हड़ताल का अधिकार नहीं होगा। हड़ताल करनेवाले को 500 रुपये जुर्माना या एक माह की कैद की सजा दी जायेगी और अगर कोई राजनैतिक विचारधारा को लेकर हड़ताल करेगा, उसे तीन माह की कैद तथा 500 रुपये के जुर्माने की सजा होगी। लेकिन यह सजाएँ क्यों? विवाद निपटाने के लिए जो कमेटी बनायी जायेगी, अगर वह मजदूरों की इच्छाओं के विरुद्ध फैसला कर दे, तब?

तो भी क्या उन गरीबों को हड़ताल करने का अधिकार नहीं मिलना चाहिए? बड़ी अजीब बात है। मजदूरों को जल्दी ही सँभल जाना चाहिए, क्योंकि ये उनके ही आन्दोलनों को दबाने के यत्न हो रहे हैं। बम्बई की मजदूर-किसान पार्टी ने घोषित किया है कि इस बिल के विरुद्ध मजदूरों को हड़तालें करनी चाहिए, बात भी ठीक है। असेम्बली के पूँजीपति सदस्य तुरन्त ही यह कानून स्वीकृत कर देंगे। उन्हीं के लिए तो सरकार ने यह कानून बनाया है। पहले ही प्रेमचन्द कीका भाई-जैसे पूँजीपति सरकार से गुहार करते थे कि मजदूर-आन्दोलनों को दबाने की कोशिश की जानी चाहिए। सो सरकार ने इसका हल बनाकर पेश कर दिया है। दोनों कानून स्वीकृत हो जायेंगे। लेकिन मजदूरों को सँभल जाना चाहिए, क्योंकि यदि अभी कोई ध्यान न दिया गया तो बाद में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। यह स्मरण रखना चाहिए कि इंग्लैण्ड में भी ऐसा कानून स्वीकृत कराने की अंग्रेजी सरकार को हिम्मत नहीं हो सकती। मजदूरो के साथ रत्ती-भर भी सहानुभूति रखनेवाले सज्जनों को इस अवैध तथा दमनकारी कानून के विरोध में आवाज़ उठानी चाहिए।

बारदोली सत्याग्रह

हम पहले से ही अपने पाठकों के सामने बारदोली के बहादुर किसानों के हालात रखते रहे हैं। उन्होंने सत्याग्रह शुरू किया था, क्योंकि उनका बन्दोबस्त करके लगान बढ़ा दिया गया है। उन्होंने लगान देने से ही इन्कार कर दिया था! बड़ा झगड़ा बढ़ा। अन्त में समझौता हो गया। फैसला यह हुआ कि एक व्यक्ति ने अपनी तरफ से बढ़ा हुआ लगान जमा करवा दिया है तथा अब एक समिति जाँच करेगी कि लगान बढ़ाना उचित है अथवा नहीं। और वह जो फैसला करेगी वह दोनों पक्षों को मंजूर करना पड़ेगा। अगर वह समिति फैसला कर दे कि लगान बढ़ा दिया जाये—कोई डर नहीं तो फिर क्या होगा? बेचारे किसान पहले ही इतने कमजोर तथा असहाय हैं कि वे एक पैसा भी अधिक नहीं दे सकते। फिर यह तो कुछ बात न बनी। लेकिन हम देखते हैं कि यह सत्याग्रह सरकार के साथ संघर्ष के विचार से नहीं आरम्भ किया गया वरन् केवल यह शिकायत दूर करने के लिए था। नेताओं ने यह स्वीकार भी किया है। लेकिन समझ में नहीं आता कि एक-एक शिकायत के लिए लडने-झगड़ने के बजाय मूल या जड़ का क्यों नहीं इलाज किया जाता? असल में जिम्मेदार नेता तो जिम्मेदारी से भागते हैं और तुरन्त समझौते पर उतर आते हैं। तो यह बात स्पष्ट है कि इस तरह लाभ हमेशा ताकतवर को ही होता है।

हम समझते हैं कि जब तक नेता युगान्तकारी भावना और उत्साह के साथ ऐसा क्रान्तिकारी संघर्ष नहीं छेड़ेंगे, तब तक आजादी-आजादी का शोर करना दूर की बात है।

नेहरू समिति की रिपोर्ट

हिन्दुस्तान भी अजब देश है। यहाँ के नेता भी अजीबो-गरीब हैं। बैठे-ठाले विचार किया कि चलो एक संविधान ही तैयार कर लें कि हम हिन्दुस्तान में कैसा राज चाहते हैं। तुरन्त सर्वदलीय कान्फ्रेंस बुलायी गयी, जिसमें नेहरू समिति बनायी गयी कि वह एक रिपोर्ट तैयार करे। रिपोर्ट तैयार हो गयी और प्रकाशित भी की गयी। बड़ी प्रशंसा हो रही है, बड़ी श्लाघा हो रही है। तारीफों के पुल बाँधे जा रहे हैं। रिपोर्ट का अर्थ क्या है? क्या हमें भी सरकार कनाडा, आस्ट्रेलिया और आयरलैण्ड-जैसा राज दे दे? बहुत खूब! वाइसराय अंग्रेज होगा जो काफी अधिकार सम्पन्न होगा। लेकिन चुनाव से ही कौंसिल और असेम्बली में सदस्य भेजे जायेंगे और चुनाव में मत देने का अधिकार बालिग व्यक्तियों को ही होगा। सदन में वे स्वयं कुछ नहीं कर सकेंगे। केवल वाइसराय की उँगलियों पर नाचेंगे।

ऐसा लगता है कि वे कनाडा और आयरलैण्ड आदि के संविधान खोलकर और सामने रखकर बैठ गये और यह रिपोर्ट लिख दी। लेकिन समस्या यह है कि यह रिपोर्ट लिखी क्यों गयी? जब असहयोग आन्दोलन जोरों पर था, उस समय बाबू भगवानदास आदि जोर-शोर से अपनी बातें उठाते रहे, लेकिन किसी ने स्वराज्य की व्याख्या करने की आवश्यकता न समझी। पर आज जबकि कोई आन्दोलन भी नहीं है, संविधान तैयार करके रख दिया गया है। आखिर इसका क्या कारण है? असल में बात यह है कि कुछ लोगों का विचार है कि साइमन कमीशन बना है तो यह जरूर कुछ-न-कुछ देने के लिए ही बना है। और अब सरकार आनेवाली जंग और अन्य देशों की स्थितियां को सामने रखती हुई हिन्दुस्तान को कुछ-न-कुछ देने को तैयार है। कमीशन का बहिष्कार तो इसलिए किया जा रहा है कि मिशन में कोई हिन्दुस्तानी सदस्य नहीं है, और तो कोई बात नहीं। और अब सीधे नहीं बल्कि यों ही दूसरी तरह से कमीशन को बताना चाहते हैं कि हम यह कुछ लेना चाहते हैं। एक सज्जन ने अच्छा उदाहरण दिया कि एक फकीर ने अपनी लम्बी लाठी से एक लोटा बाँध लिया और कहने लगा—मुझे भीख नहीं चाहिए, मेरे लोटे को दे दो! हमारे उग्र नेताओं की यह स्थिति है। ये सभी समझे बैठे हैं कि अब कुछ-न-कुछ मिलकर ही रहेगा। इसलिए बता दें कि हम क्या लेना चाहते हैं। अक्ल के अन्धे नेता आयरलैण्ड के समान अधिकार तो जरूर माँगते हैं लेकिन यह नहीं देखते कि आयरलैण्ड की जनता ने ये अधिकार किस तरह लिए हैं? 1916 से 1923 तक एड़ी-चोटी का जोर लगाकर वे अंग्रेजों से संघर्ष करते रहे और इन अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया। तंग आकर, मजबूर होकर जब वहाँ से जड़ें बिल्कुल ही उखड़ गयीं तब उन्होंने उनको थोड़े-बहुत अधिकार दिये। और हम चाहते हैं कि हमने बैठकर बतियाया है, इसलिए हमें भी उनके समान अधिकार मिल जाने चाहिए! कितनी बड़ी गलतफहमी है? अच्छा फिर यह तो है ही बड़ा भारी द्रोह। अभी पिछली कांग्रेस में 'पूर्ण स्वराज्य' का

प्रस्ताव पास हुआ था। और अब उन्होंने तुरन्त ही डोमेनियन स्टेट्स बनाया जाना मंजूर कर लिया है। इसका क्या अर्थ है? कहा जाता है कि यह कांग्रेस पार्टी थोड़े ही थी, जिसने कांग्रेस के साथ द्रोह किया हो, यह तो है सर्वदलीय कान्फ्रेंस। बहुत खूब! तुम कांग्रेसवाले ही समझौते के ठेकेदार हो गये हो! उदारवादी नेताओं ने क्यों न समझौता करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार की? उन्हें तो हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की कोई आवश्यकता नहीं? तब कांग्रेस के होनेवाले अध्यक्ष पण्डित मोतीलाल नेहरू आदि कांग्रेस को पीछे खींचने का यत्न न करेंगे? समझ नहीं आता कि पण्डित जवाहरलाल आदि जो कि समाजवादी विचारों के समर्थक हैं, क्यों इस समिति में शामिल होकर अपना आदर्श बदल सके? क्या वह इन्कलाब नहीं चाहते, वैसे ही इन्कलाब-इन्कलाब चिल्लाते रहते हैं? क्या उन्हें आशा है कि यह सरकार स्वयं ही, जो माँगें प्रस्तुत की गयी हैं उन्हें स्वीकार कर लेगी [ऐसा सोचना] जान-बूझकर आँखें मूँदना है। या नेहरू साहब केवल सरकार को भयभीत करने के लिए ही पूर्ण स्वतन्त्रता का शोर मचाते रहते हैं और चाहते अधीन राज ही हैं? असल में यह आशा कि अभी कुछ मिलेगा, अभी कुछ मिलेगा, बहुत बर्बाद करती है। दास, बरकेन हैड की चापलूसी में कितना गिर गया था, यह उसके फरीदपुर के सम्बोधन से ही पता चल सकता है। आज सभी नेता उस राह पर चल पड़े हैं।

स्वतन्त्रता कभी दान में प्राप्त नहीं होगी। लेने से मिलेगी। शक्ति से हासिल की जाती है। जब ताकत थी तब लार्ड रीडिंग गोलमेज कान्फ्रेंस के लिए महात्मा गाँधी के पीछे-पीछे फिरता था और जब आन्दोलन दब गया, तो दास और नेहरू बार-बार जोर लगा रहे हैं और किसी ने गोलमेज तो दूर, 'स्टूल कान्फ्रेंस' भी न मानी। इसलिए अपना और देश का समय बर्बाद करने से अच्छा है कि मैदान में आकर देश को स्वतन्त्रता-संघर्ष के लिए तैयार करना चाहिए। नहीं तो मुँह धोकर सभी तैयार रहें कि आ रहा है—स्वराज्य का पार्सल!

नौजवानों को इन बहकावों से बचकर चुपचाप अपना काम करते रहना चाहिए।

वर्ग-रुचि का आन्दोलनों पर असर

[सितम्बर, 1928 के 'किरती' में 'एक निर्वासित' एम.ए. के नाम से एक बहुत ही दिलचस्प लेख प्रकाशित हुआ था। यह लेख लाला हरदयाल की रचना है। भगतसिंह और उनके साथियों ने इस पर गहराई से विचार किया था।—सं.]

दुनिया-भर में दर्शनशास्त्रों तथा भ्रातृत्व के उपदेश की सारी उलझनों और मुसीबतों के होते हुए भी एक बात बिल्कुल स्पष्ट रूप से सामने है। वह यह कि दुनिया इस समय अनेक वर्गों में बँटी हुई है। जो मनुष्य इस सच्चाई को नज़रअन्दाज करता है या जो ईश्वर

के बन्दों की सच्ची सेवा करना चाहता है वह उस ज्योतिषी के समान है जो कि कोशिश के सिद्धान्त तथा सितारों की गर्दिश से अनजान है। खाली, बेवकूफ और निकम्मा है। दुनिया के लोग, हालाँकि, अन्धे भी अच्छी तरह जानते हैं कि दुनिया में अमीर और गरीब दो वर्ग हैं। दुनिया-भर की भाषा-बोलियों में अपने-अपने अलग-अलग शब्द इस वर्ग-विभाजन को जताने के लिए मौजूद हैं। मालिक और नौकर, जमींदार और मजदूर, शासक और प्रजा, पूँजीपति और मेहनतकश आदि शब्द उस बुरे किस्से की याद दिलाते हैं, जिसने दुनिया से बंधुत्व को नष्ट कर दिया है।

इस समय दुनिया में अलग-अलग पार्टियाँ मौजूद हैं, लेकिन सरसरी निगाह से देखने पर हम दो प्रकार के वर्गों को तो स्पष्ट तौर पर देखते हैं। एक तो वह वर्ग जो शारीरिक श्रम करके कुछ अर्जित करता है। दूसरे वह जो मेहनत नहीं करता। जो लोग खेतों, खदानों अथवा कारखानों आदि में काम करते हैं, वे मेहनतकश वर्ग में शामिल हैं। जो लोग इन जगहों पर या अन्यत्र भी मेहनत करने के लिए मजबूर नहीं किये जाते उनका वर्ग भिन्न है। दरअसल इस दुनिया में दो ही कौमें हैं—ये ही दोनों वर्ग। इससे अधिक अगर कोई दूसरा विभाजन किया गया है तो वह बेहूदा और हानिकारक है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक मेहनतकश व्यक्ति की यह इच्छा रहती है कि उसका पुत्र उन्नति करे और उस मेहनतकश वर्ग मे से निकलकर खुशहाल वर्ग में शामिल हो जाये। दुनिया में हर जगह और हर सूरत में बढई, लोहार और किसान आदि मेहनतकश लोगों से राजा, वजीर, वकील, न्यायाधीश, प्रोफेसर, जमींदार, साहूकार, बैंकर आदि कहीं ज्यादा कमाते हैं। दुनिया की कोई शक्ति इन वर्गों को संयुक्त नहीं कर सकती। हिन्दुस्तानी 'सफेदपोश' शब्द उस गैर मेहनतकश वर्ग के लिए ही इस्तेमाल में लाया जाता है। यह तमाम चीजें जिनके कारण कि जिन्दगी रहने योग्य बन सकती है, अथवा आराम, शिक्षा, हुनर, सफाई, आरोग्य आदि दौलत के साथ ही प्राप्त किये जाते हैं। बेचारे गरीब हर समय, हर जगह गन्दी जगहों पर ही बुरी जिन्दगी गुज़ारने के लिए लाचार होते हैं। इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए समय ही नहीं मिलता। गरीब मजदूर सारा-सारा दिन सिर्फ गुज़ारे के लिए पसीना-पसीना होकर काम करता रहता है, जबकि विद्वान और अमीर लोग बढ़िया-से-बढ़िया भोजन पाते हैं। घोड़ागाड़ियों और मोटरों पर चढ़कर सैर के लिए जाते हैं। खुशबूदार तेल और इत्र के साथ मालिश करते हैं। रेशमी कपड़े पहनते हैं। कहने का मतलब यह कि हर तरह ऐश की जिन्दगी गुजारते हैं।

प्रश्न उठता है कि यह अजीब हालत पैदा ही किस तरह हो गयी? क्या कारण है कि जो लोग खेती करते, कपड़े बुनते, कपड़े सिलते, नालियाँ साफ करते या आटा पीसते हैं, उनकी आमदनी उन लोगों से कई गुना कम है जो केवल लेक्चर देते हैं या मुकदमों पर बहस करते हैं, जो न्याय करते या हकूमत करते हैं, जो केवल दुआ करते या कुछ भी नहीं करते। क्या कभी किसी ने सोचकर देखा है कि भगवान के हर बन्दे और समाज के लिए खेती-बाड़ी, कारीगरी, दस्तकारी आदि करनेवाले 'कानून' या 'सरकार', मज़हब या

साहूकार या केवल जमींदार (वे लोग जो जमीनों के मालिक तो बने बैठे हैं लेकिन काम कुछ नहीं करते) से ज्यादा जरूरी हैं। फिर क्या कारण है कि उस आदमी को, जो कि कुछ घण्टे कुर्सी पर बैठकर कुछ आदमियों को जेल में भेज देता है, गेहूँ बोनेवाले किसान और जूते गाँठनेवाले मोची से कई गुना अधिक तनख्वाह दी जाती है ? एक राजा या मजिस्ट्रेट या साहूकार ही मेहनतकश लोगों से कौन-सा अच्छा, लाभदायक और जरूरी काम करता है ? अनेक लोग सारा दिन चोटी का जोर लगाकर काम करते हुए भी अपनी जरूरी चीजें प्राप्त नहीं कर सकते। क्या वजह है कि एक आदमी बैठा पंखा खींचता है और एक अन्दर पड़ा—भले ही वह हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हो—खर्राटें मारता है। इसे ही पंखा खींचने पर क्यों नहीं लगाया जाता ? वह लोग जो अनाज, दूध, मेवे, सब्जी पैदा नहीं करते, बल्कि इन चीजों को इस्तेमाल करते और खाते हैं, वास्तव में तो वही बेचारे किसान की मेहनत का लाभ उठाते हैं। इस बात को समझने के लिए किसी फिलासफी की जरूरत नहीं है। वे लोग जो रोटी पैदा नहीं करते और न रुई कातकर, बुनकर कपड़ा तैयार करते हैं, और फिर भी रोटी खाते और कपड़ा पहनते हैं, तब इसका केवल यही अर्थ है कि वे अपना हिस्सा गरीब मेहनतकशों की मेहनत में से ले लेते हैं जो कि रोटी पैदा करते हैं, कपडे तैयार करते हैं। लेकिन जब हम देखते हैं कि खेती करनेवाले उस मेहनतकश किसान को इन मुफ्तखोर लोगों की तरह अच्छी खूराक भी नहीं मिलती, तो दिल में ख्याल आता है कि इस व्यवस्था में जरूर कहीं-न-कहीं धोखा है, गलती है, जुल्म है। लेकिन यह मसला 'सर्व दर्शन संग्रह' आदि शास्त्रों की सोलह प्रकार की फिलासफी पढ़ने से हल नहीं हो सकता। सेहत और जिन्दगी के सवाल को छोड़कर आज हम एक बहुत बड़ा सवाल पूछना चाहते हैं कि दुनिया में यह जो दो पार्टियाँ हैं—एक ओर अमीर, विद्वान, सुस्त और हरामखोर; दूसरी तरफ गरीब, मेहनतकश, जाहिल अनपढ़ लोग जो कि दुनिया की दौलत पैदा करते हैं, तो यह दूसरा पक्ष किस तरह अस्तित्व में आया ? दुनिया के तमाम आन्दोलन जो इस सच्चे सवाल को ओझल करते हैं, केवल बेहूदा, फिजूल और खतरनाक हैं—फिर वह भले ही मजलिसी हों, भले ही मज़हबी हों या भाईचारेवाले, आर्थिक हों या राजनैतिक, राष्ट्रीय हों या अन्तर्राष्ट्रीय।

अगर इन पार्टियों को मिला दिया जाये तो दुनिया में कोई ऐसी चीज, जिसको कि एक भगवान के बन्दे या कौम या मज़हब कहा जाता है, बाकी नहीं रह जाती, क्योंकि सदा ही कभी आँखों के सामने और कभी आँखों से ओझल, अमीर गरीबों के दुश्मन ही बने रहते हैं। क्योंकि वे अपनी दौलत इन गरीबों से ही छीनते हैं, उनको यह आसमानी तोहफे की तरह नहीं मिलती और न उनके पास (पारस) पत्थर है। राजा, वजीर और जज लोग सुख से जीवन गुजारते हैं, हालाँकि पैदावार में वह किसी प्रकार की मेहनत नहीं करते, क्योंकि बेचारा किसान सदा टैक्स देता रहता है। जमींदार खाली बैठकर ऐशो-आराम और बदमाशियाँ करता है, क्योंकि बेचारा गरीब खेत-मज़दूर लगान अदा करता रहता है। साहूकार या महाजन आराम से बैठा हुआ अमीर होता चला जाता है, क्योंकि ऋण का

देनदार हमेशा ब्याज देता रहता है और एक सरमायेदार कारखाने के हिस्से खरीदकर घर बैठे ही मुनाफा प्राप्त करके मालोमाल हो सकता है, क्योंकि मजदूरों को मजदूरी कम दी जाती है। वकील सैकड़ों रुपये महीना कमा सकता है, हालाँकि वह एक आरामकुर्सी पर बैठा रहता है और कभी-कभी किसी अदालत में जाकर भाषण झाड़ आता है, क्योंकि वह अमीरों को जायदाद प्राप्त करने और गरीबों से लूटने में सहायता करता है। बात यह है कि जहाँ कहीं भी यह दिखायी दे कि कोई आदमी बिना हाथ-पैर हिलाये आराम की जिन्दगी भोग रहा है तो फौरन समझ लो कि यहाँ जरूर कोई-न-कोई धोखा है, फरेब है। उसके साफ अर्थ यह होते हैं कि अमीर तबका कभी भी यह नहीं चाहता कि गरीब लोग भी उन्नति कर लें, क्योंकि गरीबों की उन्नति और विद्या में बढ़ोतरी से तो, हरामखोरी फौरन पंख लगाकर उड़ जायेगी। जो कोई टैक्स न दे तो यह राजे-महाराजे, जज-वकील आदि किस तरह जीवित रह सकते हैं? अगर मजदूरों को लूटा न जाये तो कारखानों के मालिक और मैनेजर किस तरह करोड़पति बन सकते हैं? संस्कृत का कथन है कि 'खानेवाले और खाये जानेवाले में कभी दोस्ती नहीं हो सकती।' शेर-बकरी के इकट्ठे लौटने पर एक मसखरा शायर कहता है, 'लौटेंगे तो दोनों बेशक इकट्ठे ही, लेकिन उस समय बकरी शेर के पेट में होगी!'

अमीर वर्ग की हरामखोरी में देशभक्ति और मज़हब आदि भी कोई खास रोल अदा नहीं कर सकते। क्या कभी कोई मुसलमान जमींदार अपने खेत-मजदूरों का लगान इसलिए माफ कर देता है कि वे मुसलमान हैं? क्यों जी, कभी कोई हिन्दू साहूकार अपने हिन्दू ऋणदाता से ब्याज लेना इसलिए छोड़ देता है कि वह हिन्दू है? क्या सिख राजे-महाराजे, वजीर, अमीर, अपनी सिख रियासतों के सिख किसानों और मजदूरों से टैक्स और लगान कम वसूल करते हैं? क्या इस लगान व टैक्स की वसूली के लिए वह कम जुल्म करते हैं? क्या अंग्रेज मालिक अपने अंग्रेज मजदूरों की तनख्वाहें तब बढ़ा देते हैं जब तक कि वे उनकी नाक में दम नहीं कर देते? क्या स्काटलैण्ड के जमींदारों ने अपने जंगल और मैदान गरीबों में बाँटकर उनको अमेरिका जाने से रोकने की कोशिश की है?

पिछले इतिहास से यदि कोई शिक्षा मिलती है तो वह यह कि अमीर वर्ग को दौलत ही सबसे अधिक प्यारी चीज है। उनको मज़हब और देशभक्ति से ज्यादा जायदाद और व्यक्तिगत स्वार्थों से प्रेम है। देशभक्ति और मज़हब अच्छी चीजें हैं लेकिन वह भी अमीर वर्ग को दौलत की चेटक से आजाद कराने में निष्फल साबित हुई हैं। दुनिया में आज तक ऐसा ही होता चला आया है और जब तक बड़े-छोटे अमीर तबके ही खत्म नहीं हो जाते तब तक ऐसा ही होता चला जायेगा।

महात्मा बुद्ध, महात्मा टाल्स्टाय और शहज़ादा क्रोपाटकिन-जैसे महापुरुष अपनी जायदाद छोड़कर गरीबों-जैसी जिन्दगी बसर करने लगे थे, लेकिन इन एक-दो दृष्टान्तों से उसूल नहीं बदला जा सकता। यह हस्तियाँ तो सम्माननीय हैं, लेकिन बाकी अमीर वर्ग तो बेईमानी और धोखेबाजी—हर प्रकार से अपनी जायदाद की सुरक्षा करता है।

दूसरों के सिर पर मौज करनेवाली यह जमात जो भी काम करती है तो केवल अपने लाभ के लिए ही करती है। वह किसी भी तरह दूसरों का कुछ नहीं सँवार सकती, क्योंकि दुनिया में दोनों ही कौमें मौजूद हैं—अमीर और गरीब। इनमें कोई प्यार और हमदर्दी नहीं है। वह तो एक-दूसरे के पक्ष के विचार समझने में भी असमर्थ हैं। साधारण लोग तो कम समझी की वजह से दूसरों के ख्याल और काम के बारे में नहीं समझ सकते और समझदार लोगों को जमाती बँटवारा दूसरों को समझने से वंचित रखता है। इससे हम देखते हैं कि जमाती बँटवारे के अलावा हालात भी अमीरों को गरीबों की असली हालत से परिचित नहीं होने देते। मनुष्य के विचार आमतौर पर उसके तजुर्बे पर निर्भर हुआ करते हैं और अमीर लोगों को गरीबों की हालत का कुछ भी तजुर्बा नहीं। इनका दायरा अपने ही तक सीमित सरगर्मियों में बहुत तंग होता है। उनको अपनी जमात से बाहर कुछ भी नजर नहीं आता। हर एक मनुष्य के उसूलों पर जमात का बहुत असर रहता है। अमीर लोग भले ही भगवान के हर बन्दे के लाभ के लिए क्यों न कोई आन्दोलन चलायें, आखिर में वह उनके अपने लिए ही लाभदायक साबित होते हैं। हर एक मनुष्य की बेहतरी और आम लोगों की तरक्की के विचार की मौजूदगी के बावजूद अमीर लोग अपने वर्ग से बाहर नहीं देख सकते और तंग दायरे में ही चक्कर काटते रहते हैं। दुनिया में जितनी ताकत इस जमातवाद की वजह से नष्ट होती है उतनी और कहीं नहीं होती। लोग गरीबों की सहायता का ऊँचा आदर्श सामने रखकर मैदान में कूदते हैं, लेकिन बाद में अक्सर यही देखा जाता है कि उनकी सारी कोशिशें केवल अमीर जमात के फायदे के लिए ही इस्तेमाल हो रही हैं। इसी कारण खुशी रंज में बदल जाती है। लेकिन बहुत सारे भोले-भाले लोग आखिर तक यह समझ ही नहीं सकते और इस भ्रम में मरते हैं कि उन्होंने आम लोगों की तरक्की के लिए बहुत कुछ काम किया है।

आजकल हिन्दुस्तान के तमाम आन्दोलनों पर नज़रेसानी [पुनर्विचार] करके हर व्यक्ति इस हसरतनाक सच्चाई की एक बढ़िया मिसाल पा सकता है। चन्द सज्जनों की व्यक्तिगत कोशिशों को छोड़कर राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में जो लहरें उठीं वह अलग तरह के पढ़े-लिखे लोगों के आस-पास ही रहीं जो कि शहरों में रहते हैं और आजाद पेशावर लोग कहलाते हैं। मैं आज यह साबित करना चाहता हूँ कि पिछले तीस सालों से जो शैक्षणिक और राजनैतिक लहरें उठीं उनसे हिन्दुस्तान के आम लोगों ने बहुत कम लाभ उठाया, क्योंकि ऊँचे दर्जे के कहे जानेवाले लोग ही इन लहरों को उठाते थे। इसलिए इनके आदर्श भी इनके जमाती रंग में रँगे रहते हैं। हर एक लहर, इस लहर के उठानेवाले लोगों का असली निचोड़ ही हुआ करती है। निचले दर्जे के सुधारक लोग गरीब किसानों और मजदूरों के अन्दर घुसकर [इसे] अच्छी तरह समझ सकते हैं। वे अपनी जमात के दुख और तकलीफें ही समझ सकते हैं। उनका आदर्श ही उनके वर्गगत तंग दायरे में चला जाता है। वह इस काम को, जो कि इन दोनों जमातों को अलग-अलग करता है, लाँघ नहीं सकते। अगर किसानों ने कोई आन्दोलन न खड़ा किया हो तो उनका

आदर्श अलग ही होता है। आम लोग अपनी वर्ग-रुचि के अनुसार ही हर एक चीज को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। वे लोग यह भी नहीं जान सकते कि वे इस राह पर किस तरह आ गये। फिर भले ही वे कितने ऊँचे आदर्श लेकर भगवान के बन्दों की सेवा और उनके भले के ख्याल से ही क्यों न आगे आयें, लेकिन वर्ग-रुचि उनका पीछा नहीं छोड़ती, क्योंकि वह बहुत जबर्दस्त ताकत है और उसने समाजी आन्दोलन में बड़ा भारी असर दिखाया है। इतिहास में अधिकतर चीजें जिस तरह नजर आती हैं, असल में उस तरह की नहीं होतीं। मजलिसी वर्ग-रुचि को समझनेवाला फिलासफर काम करनेवाले की अपेक्षा उसकी वर्ग-रुचि को अच्छी तरह समझ और समझा सकता है।

मैं यह लेख केवल इसलिए लिख रहा हूँ कि किसान और मजदूर ही हमारे प्यार के हकदार हैं। अंग्रेजी अदब से परिचित लोग कार्लाइल के प्रसिद्ध उसूल को कई बार पढ़ चुके होंगे कि "मैं केवल दो ही आदमियों की इज्जत और उनसे मुहब्बत करता हूँ, किसी तीसरे की नहीं।" मैं एक कदम और आगे बढ़ता हूँ और कहता हूँ कि मैं केवल एक आदमी को ही प्यार और इज्जत की निगाह से देखता हूँ, किसी दूसरे को नहीं और वह है गरीब मजदूर (किरती), जो दुनिया की दौलत पैदा करता है।

पिछले तीस सालों से जो [आन्दोलनात्मक] लहरें हिन्दुस्तान में उठ रही हैं, उनको निम्नलिखित तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है–

1. राजनैतिक, 2. शैक्षिक, 3. धार्मिक।

अब मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि इन आन्दोलनो का फायदा उच्च वर्ग के लोगों को ही हुआ है। गरीबों को इससे कोई लाभ नहीं पहुँचा।

1. राजनैतिक लहरों ने अलग-अलग सूरतें पकड़ीं। इनमें समाजवादी और अतिवादी दोनों तरह के आदमी हैं। शान्तिमय रहकर सत्याग्रह करनेवाले लोग भी पैदा हो गये और भयानक समय लानेवाले खतरनाक इन्कलाबी लोग भी हो गये। इस शोर-शराबे में एक बात साफ है और वह यह कि इनके परिणामों से जनता को कोई भी लाभ नहीं हुआ। इण्डियन नेशनल कांग्रेस (हिन्दुस्तान-भर की कांग्रेस) मध्यम वर्ग के लोगों की एक खासी और अच्छी पार्टी (जमात) है। उसकी माँगें भी दरमियाने दर्जे के लोगों के लिए ही हैं। कांग्रेस कभी भी अपना कार्यक्रम मजदूरों और किसानों के साथ मिलकर तैयार नहीं कर सकी। क्योंकि इसमें ग्रेजुएट, वकील, प्रोफेसर, व्यापारी लोग ही शामिल हुए, इसलिए कांग्रेस का कार्यक्रम भी उनकी मर्जी के अनुसार ही बना। एक आन्दोलन एक समय में अमीर-गरीब दोनों वर्गों के लाभ के लिए काम नहीं कर सकता, यह दुनिया की कुछ बड़ी अनहोनी बातों में से एक है। कांग्रेस की माँग है कि इसे हिन्दुस्तान में खास हिस्सा मिलना चाहिए। यह हिस्सा किस तरह मिलेगा? जिन बातों की कांग्रेस की ओर से माँग की जा रही है वह किसके लिए पूरी होंगी? अगर सरकारे-हिन्द की नौकरियाँ हिन्दुस्तानियों को मिलनी हैं तो उन्हें कौन लोग प्राप्त करेंगे? यह तो पक्का है कि मजदूर-किसान लोग उन नौकरियों को प्राप्त नहीं कर

सकेंगे। कुछेक हिन्दुस्तानियों को 'इण्डियन सिविल सर्विस' में ओहदे मिल जाने से ही किसानों और मजदूरों को शिक्षा, खुराक और रिहायश की तो बात ही क्या, जरूरी चीजें भी नसीब नहीं होंगी। गरीब किसानों को इस बात से क्या मतलब कि उनकी कमाई का खासा बड़ा हिस्सा टैक्स आदि के रूप में लूट-पाटकर ले जानेवालों में से कितने हिन्दुस्तानी हैं और कितने दूसरे? माल-असबाब में से मुहम्मदुल्ला या स्वामी को भी हिस्सा मिलता है जो कि इसी देश के हैं। फिर कांग्रेस ने कभी यह भी माँग की है कि देशी सरकारी नौकरों की तनख्वाह घटा दी जाये और किसानों का टैक्स कम कर दिया जाये? कांग्रेस ने सरकारी अफसरों की तनख्वाह कम करवाकर गरीब किसानों का भार कम करने की कभी कोशिश की है? फिर आम जनता को इन आन्दोलनों और माँगों से क्या मतलब?

असल में ऐसी [आन्दोलनकारी] लहरें तो मध्यम दर्जे के लोगों के दिमाग में से ही निकल सकती थी, क्योंकि वह लोग अपने बच्चों के लिए अच्छी-से-अच्छी आसामी चाहते हैं। वकीलों की आँखें सदा जज की पदवी को तरसती रहती हैं, ग्रेजुएट लोग सूबों की सरकारों मे अच्छी-अच्छी आसामियों को देख-देखकर ललचाते रहते हैं। क्योंकि यह मध्यम वर्ग के लोगों की माँगे हैं, इसलिए उन्होंने मध्यम वर्ग के लोगों को ही मुल्क और कौम समझना आरम्भ कर दिया है।

कांग्रेसवाले अक्सर चीखा करते हैं कि पंजाब कौंसिल और असेम्बली में हिन्दुस्तानियों की गिनती बढ़नी चाहिए। इससे भी आम हिन्दुस्तानियों को क्या लाभ हो सकता है? कौंसिलों के लिए कौन चुने जाते हैं? क्या वे लोग अपनी सेवाओं का इनाम नहीं लेते? क्या वे लोग इसमें अपनी इज्जत और फख्र नहीं समझते? क्या आनरेबल कहने से लोग किसी को 'शहीद' कहने लगते हैं? क्या सदस्यता के लिए चुने जाना सख्त मुसीबत की जिन्दगी गुजारना है या इससे बिल्कुल विपरीत? यह सवाल जरूर पूछे जाने चाहिए और जवाब भी मिलने चाहिए।

कौंसिल के असली फायदो का सवाल एक तरफ छोड़कर भी अगर देखें तो नजर आयेगा कि यह ख्याल केवल उस जमात के दिमाग में पैदा हो सकता है जिसे इससे कोई लाभ पहुँचने की आशा हो। कौंसिल के लिए कुछेक और वकील एवं साहूकार चुने जाने से करोड़ों मेहनतकश लोगो की जमात में क्या फर्क पड सकता है? क्या इन लोगों के टैक्स कम कर दिये जायेंगे? क्या उन लोगों के पुराने खतरे—बेगार, पुलिस या तहसीलदार, अकाल या प्लेग दूर हो जायेंगे? क्या उन लोगों के लिए गाँवों में साफ पानी पहुँचाने का बन्दोबस्त किया जायेगा? क्या गाँवों में स्कूल और लाइब्रेरी खोल दी जायेंगी। कुछ हिन्दुस्तानियों के कौंसिल में चले जाने के साथ तो हम उपरोक्त बातों में कोई जमा-घटा नहीं देखते। हाँ, कुछेक तालीमवाले लोग इससे रुपया जरूर कमा सकेंगे और कुछ उनकी इज्जत भी बढ़ेगी और वह बड़े रोब के साथ इधर-उधर फिर सकेंगे और ये अँधेर ढानेवाले लोग कौम पर मुफ्त का रोबदाब डालकर गिरावट पैदा करेंगे।

अभी सयाने सज्जन समझते हैं कि यह उन्नति की राह नहीं है, लेकिन वह बेचारे यह नहीं समझते कि यह लहरें कहाँ उठती हैं और किस तरह बढ़ती हैं ? लेकिन सारा ताना-बाना समझ में आ सकता है, यदि वे इतना ही समझ लें कि यह सबकुछ मध्यम दर्जे के लोगों का ही निचोड़ है और किसानों और मजदूरों को इससे कोई लाभ नहीं ।

इस तरह हम देखते हैं कि इन लहरों की कामयाबी से मध्यम दर्जे के लोगों को ही लाभ पहुँचता है । उन्होंने कभी बेगार, प्लेग आदि मर्जों के विरुद्ध बन्दोबस्त करने की कोशिश नहीं की । न कभी लगान, नमक-टैक्स, आबियाना कम करवाने या लोगों की शिक्षा का ठीक प्रबन्ध किया है, हालाँकि यही जरूरी सवाल हैं जिनके हल हो जाने से जनता को लाभ हो सकता है । बेचारे मजदूर या किसान को सिविल सर्विस या पंजाब कौंसिल से क्या लाभ है ? वह इज्जत नहीं चाहता, पदवी नहीं चाहता । हाँ, वह रोटी, आरोग्यता और आजादी जरूर चाहता है । लेकिन इस तरफ तो कांग्रेस ने कभी ध्यान ही नहीं दिया । हाँ, कई सारे जरूरी प्रस्ताव पास कर दिये । लेकिन इनसे क्या हो सकता है ? गवर्नमेण्ट अच्छी तरह समझती है कि इन मध्यम दर्जे के लोगों की वर्ग-रुचि क्या है ? वह अच्छी तरह जानती है कि यह कुछ मामूली-सा सुधार चाहते हैं, जिसके साथ इनकी जमात को लाभ होने की आशा हो । इनको इससे कोई वास्ता नहीं कि गाँवों में रहनेवालों पर किस तरह की गुजरती है ? इसी कारण गवर्नमेण्ट इन लोगों को कौंसिल और सिविल सर्विस आदि में कुछ पद देकर जनता के आन्दोलन रोकने के यत्न किया करती है । इस तरह बड़े-बड़े नेकदिल सच्चे सेवकों की मेहनतें भी मध्यम दर्जे के लोगों के लिए सोना साबित होती हैं, जब कि मजदूरों और किसानों को थोड़ा भी लाभ नहीं पहुँचता ।

इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए मैं कहूँगा कि खेत-मजदूरों के हकों पर ध्यान दिया जाय । ऐसा करने पर मालूम पड़ जायेगा कि सारे राजनैतिक दल जमींदारों की ओर से जमींदारों के हक के लिए तो जरूर आन्दोलन करते हैं लेकिन खेत-मजदूरों के हकों के लिए आवाज उठाने की कभी हिम्मत नहीं करते, हालाँकि हमारे देश में बहुसंख्यक खेत-मजदूर जमींदारों के जुल्मों, टैक्सों और लगान के नीचे पीसे जा रहे हैं ।

वह आन्दोलन जो अपने कार्यक्रम में इस बात को सबसे पहले सामने नहीं रखते और इसके लिए आन्दोलन नहीं करते, वह आम जनता के आन्दोलन नहीं कहला सकते । इसलिए हम कांग्रेस को गुनाहगार नहीं ठहरा सकते, क्योंकि वह अपने सदस्यों के अलावा दूसरे लोगों की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकती । जूती पहननेवाला ही अच्छी तरह समझ सकता है कि पैर में कील किस तरह चुभती है । यह बात किसान ही अच्छी तरह अनुभव कर सकता है कि लगान आदि से आये दिन दुखी होकर मेरी जिन्दगी किस तरह गुजर रही है । तालीमयाफ्ता मध्यम वर्ग के लोग खाक इसका अन्दाजा लगा सकेंगे ।

हम तो साफ कहते हैं कि किसानों की कांग्रेस के प्रस्ताव इस कांग्रेस से बिल्कुल अलग और नये ढंग के हैं और उनकी माँगें भी दूसरे ही ढंग की होंगी ।

शैक्षणिक लहरें

राजनैतिक लहरों में देश ने बहुत-सी कुर्बानियाँ दीं। दर्जनों बहुमूल्य जानें इसमें लग गयीं। लेकिन शैक्षणिक लहरों के लिए तो हमारी बहुत-सी ताकत खर्च हुई और बहुत-से नेक मर्द और औरतों की जिन्दगियाँ इनके लिए वक्फ हो गयीं। लेकिन परिणाम यहाँ भी निराशा भरा हो गया है, क्योंकि इससे भी मध्यम वर्ग को ही कुछ लाभ पहुँच सका है। हमारे बहुत-से नेताओं ने शहरों में अलग-अलग कौमों, बिरादरियों और सभाओं की ओर से स्कूल-कालेज खोल दिये, लेकिन क्या हम पूछ सकते हैं कि उन देशभक्तों के दिलों में स्कूल-कालेज खोलने का ख्याल किस तरह पैदा हुआ? और क्यों उन्होंने अपने इस बड़े काम को गाँवों में नहीं किया, जिससे खर्च तो कम होता और लाभ अधिक पहुँचता। उन्होंने वकील और दफ्तरों के लिए क्लर्क पैदा करना ही अपना मन्तव्य क्यों बना लिया है और फिर हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग अपनी-अपनी यूनिवर्सिटियाँ क्यों कायम कर रहे हैं? हम तो यह समझते हैं कि यह लोग भी वर्ग-रुचि के साये के नीचे ही अपना काम करते हैं। दृष्टान्त पंजाब के आर्य समाज का ही ले लें।

वे (स्वामी दयानन्द की यादगार) एक ऐसे कालेज से क्या चाहते हैं जो कि पंजाब की सरकारी यूनिवर्सिटी के साथ मिलनेवाला हो? कितना अंधेर है। कहाँ स्वामी दयानन्द का आदर्श, कहाँ सरकारी यूनिवर्सिटी और इसके कालेज! लेकिन आखिर यह हुआ क्यों? इसकी वजह साफ है। इसके उपासकों में अधिकतर वकील और ग्रेजुएट आदि मध्यम वर्ग के लोग ही थे। यदि कहीं संस्कृत पढ़े पण्डितों के सामने स्वामी दयानन्द की यादगार स्थापित करने का सवाल आता तो वह बिल्कुल अलग चीज कायम करते। यदि उनके (स्वामी दयानन्द के) पुरातन उपासकों में किसानों की बहुसंख्या होती तो उन लोगों में ही कालेज कायम किया होता। इनके ख्याल में किसी अन्य प्रकार की यादगार ही अच्छी और लाभदायक होती। समाज के शैक्षणिक अड्डे केवल इसीलिए कायम हुए कि मध्यम दर्जे के लोगों के बाल-बच्चे अच्छी तरह कमा सकें। यही वर्ग-रुचि काम कर रही है। दक्षिण के देशभक्तों ने शिक्षा के लिए बहुत कुर्बानियाँ कीं, लेकिन किनकी शिक्षा के लिए? फरगूसन कालेज ने मध्यम वर्ग के हजारों नौजवानों को शिक्षा दी। रोजी कमाने और उन्नति करने योग्य बनाया, लेकिन किसानों के लिए इसने क्या किया? इस कालेज में से जितने वकील और प्रोफेसर निकलते हैं, वे बेचारे किसानों के सिरों पर यूँ ही खाली बैठे मौज मारते हैं। वे भी किसानों का लहू पीनेवाली जमात में शामिल हैं। आम लोग देशभक्तों की कुर्बानियों और योग्यता का कोई खास फायदा नहीं उठा सकते। क्या यह सही न होता कि ये लोग पुराने समय के साधुओं की तरह ही सीधे आम लोगों के पास चले गये होते और अपनी बहुमूल्य जिन्दगी मध्यम वर्ग को ही अर्पित करके न गँवा दी होती। यह इतना जरूरी सवाल है जो कभी आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। मैं हर एक बन्दे की खिदमत करने को अपना आदर्श समझनेवाले नौजवानों से कहूँगा कि मध्यम

वर्ग के लोगों के फायदों को अपनी राह में न ठहरने दो। सीधे साधारण लोगों के पास जाओ। हम क्योंकि मध्यम वर्ग के लोगों में से हैं, इसलिए हो सकता है कुछ भूल करें और अपनी-अपनी जमात को कलंकित करें और दिल को तसल्ली देते रहें कि हम लोगों की सेवा कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि नौजवान इस ख़तरे से बचे रहें।

स्त्री-शिक्षा का शोर भी मध्यम वर्ग के लोगों का ही मसला है। हमारी कन्या-पाठशालाओं में किसानों की कितनी लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही हैं? असल में गाँवों में तो यह सवाल ही नहीं है, क्योंकि वहाँ तो मर्द भी अनपढ़ हैं। यह सवाल तो तालीम-याफ्ता नौजवानों के लिए पढ़ी हुई लड़कियों की जरूरत से ही पैदा हुआ कि लड़कियों को भी शिक्षा दी जाय। इससे मध्यम वर्ग के लोगों के घर अधिक ख़ुशहाल और आरामवाले बन गये। लेकिन कुछ एक महलों की मौजूदगी से आम लोगों की हालत किस तरह सुधर सकती है? उन लोगों के आराम और तरक्की से किसानों और मजदूरों को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। वह गरीब इन चीजों से कोई भी लाभ नहीं उठा सकते। यदि यह शैक्षणिक लहरें आम लोगों की बेहतरी के लिए जारी की गयी होतीं तो सबसे पहले गाँवों में स्कूल खोले जाते [क्योंकि] किसी भी मुल्क के आम लोगों में प्रारम्भिक शिक्षा के बिना जागृति नहीं आ सकती। हमें अपने देश की उन्नति के लिए सबसे पहले यही नींव डालनी पड़ेगी।

साम्प्रदायिक और भाईचारे की लहरें

इस समय हमारे देश में जो अलग-अलग साम्प्रदायिक और भाईचारे की लहरें शोर मचा रही थीं यह भी इन्हीं मध्यम वर्ग के लोगों के दिमाग की उपज है। उदाहरण के रूप में पर्दे के सवाल को ही ले लें। गरीब मजदूर औरतें तो सारा-सारा दिन सिरों पर टोकरियाँ उठाती हैं या खेतों में मेहनत-मजदूरी करके बड़ी मुश्किल से रोटी कमा सकती हैं। उनके आगे यह पर्दे का सवाल किस तरह पेश हो सकता है? मध्यम वर्ग के लोगों की आराम भरी जिन्दगी में ही यह सवाल उठ सकते हैं। मैं एक-एक कर ऐसी सभी साम्प्रदायिक और भाईचारे की लहरों में वर्ग-रुचि का असर देखता हूँ।

अन्त में इतना ही कहूँगा कि वह नौजवान जो दुनिया में कुछ काम करना चाहते हैं या जो लोग भगवान के हर बन्दे की सेवा करने के लिए अपनी कीमती जिन्दगियाँ वक्फ करना चाहते हैं, वे हिन्दुस्तानी मजदूरों और किसानों में मिलकर उनकी रुचि समझने की कोशिश करें और उनकी असली तकलीफें दूर करते हुए उनकी सच्ची उन्नति के लिए आन्दोलन करें। मैंने सरसरी निगाह से वर्तमान समय की गतिविधियों के कुछेक प्रमाण देकर एक खास रुचि की ओर इशारा किया है। इसमें कुछेक नेकदिल लोगों को जोकि इन लहरों में शामिल हैं, नाराज नही होना चाहिए। मैं उनकी हमदर्दी और सच्चाई को अनुभव करते हुए भी इस गलती की ओर उनका ध्यान दिलाना अपना फर्ज़ समझता हूँ,

क्योंकि मैं मानता हूँ कि यूरोपियन मुदब्बर का यह कथन सोलह आने सही है कि एक कारकुन का अपने काम से ही अनजान होना खतरनाक और हलाल कर देनेवाली बात है।

दिलचस्प और लाभदायक पुस्तकें

[नवयुवकों को इस तरह की पुस्तकें पढ़ने का सुझाव दिया जाता था। –सं.]

1. हिन्दुस्तान और आनेवाली जंग (अंग्रेजी में)। लेखक, मिस एग्निस स्मैडली, बर्लिन (जर्मनी)। कीमत– =)
2. ए काल टू एक्शन (अंग्रेजी में)। इसमें मौजूदा स्थिति को बड़ी भौंडी निगाह से बयान किया गया है और साबित किया गया है कि मौजूदा नेता मुल्क को निजात नहीं दिला सकते। कीमत–।।)
3. नौजवानों से दो-दो बातें (उर्दू)। लेखक, भाई छबीलदास बी. ए. आनर्स। कीमत,–)
4. बन्दी जीवन, दोनों भाग (पंजाबी)
   पंजाब और बंगाल की 1914-15 की गदर-लहर के पूरे और दिलचस्प हालात। कीमत–2/-
5. शहीदों के दर्शन (पंजाबी)
   बड़ा दिलचस्प, उपन्यास के ढंग का राजनैतिक पाठ है। कीमत–1)

'मैनेजर, किरती, अमृतसर'
सितम्बर, 1928

आर्म्स एक्ट खत्म कराओ

[1857 के स्वतन्त्रता-संग्राम के बाद भारत को पूरी तरह जकड़ने के लिए बनाए गये कानून के खिलाफ 'किरती' अक्तूबर, 1928 में प्रकाशित एक लेख। –सं.]

किसी देश पर कुछ लोग जब किसी प्रकार कब्जा जमा लेते हैं तो उनकी यही कामना रहती है कि वह देश हमेशा ही उनके कब्जे में रहे और वे उसका लहू निचोड़-निचोड़कर मोटे होते रहें और मौज मारते रहें। इसके लिए वे लगातार प्रयासरत रहते हैं। वे चाहते हैं कि उस कौम का कोई साहित्य तथा भाषा न रहे। देश का कोई इतिहास न रहे।

मर्दानगी और बहादुरी का निशान तक मिटा दिया जाये। इस प्रकार वहाँ की जनता को लगातार दबाया जाता है।

आज हम गुलाम हैं। हमारे ऊपर शासन करनेवाली कौम दुनिया-भर की कौमों में से ज्यादा चालाक, बादशाहत के मामले में ज्यादा योग्य और समझदार है। उन्होंने धीरे-धीरे हिन्दुस्तान को कमजोर करने की कोशिशें कीं। गलतियाँ भी उनसे हुईं। उनकी ऐसी ही गलतियों का नतीजा था 1857 मे हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की पहली जंग जो इतनी जोरदार रही। लेकिन वह अपनी गलतियों से सीख लेते रहे। इसलिए हम देखते हैं कि उन्होंने फिर किसी जन-आन्दोलन को जोर नहीं पकड़ने दिया।

उसी समय उन्होंने एक विशेष योजना के अन्तर्गत हिन्दुस्तान को लगातार कमजोर करने की कुछ नीतियाँ अपना लीं। उनमें से आज हम एक का जिक्र करना चाहते हैं और वह है हिन्दुस्तानियों से शस्त्र छीनने की नीति। 1857 के गदर, विद्रोह या स्वतन्त्रता-आन्दोलन में सामान्य जन के पास शस्त्र थे, इसलिए बहुत ऊधम मचा। हिन्दुस्तानी बहादुरों ने एक बार हलचल मचा दी। लेकिन हिन्दुस्तान की किस्मत और पंजाब के बुरे भाग्य। पंजाबियों ने कलंक का टीका माथे पर लगा लिया। स्वतन्त्रता-आन्दोलन को कुचल डाला गया। अंग्रेजों ने सोचा, आखिर यह विदेश है—फिर अवसर मिला तो हिन्दुस्तानी पुनः विद्रोह खड़ा कर देगे, इसलिए एक बार में ही इनका पूरा इलाज कर देना चाहिए। उन्होंने एक साधारण-सा कानून बनाया। उसके अनुसार उन्होंने कुछ विशेष जिलों के क्षेत्रों को निःशस्त्र कर दिया। तब 17 जुलाई, 1860 को बाकायदा जो शस्त्र-कानून कौंसिल में स्वीकृत हुआ था, वाइसराय ने उसे मंजूर कर लिया। अक्तूबर, 1860 से उसे अमल में लाया गया, लेकिन उसके अनुसार भी सिवाय उन क्षेत्रों के जहाँ वे विशेष अशान्ति की आशंका महसूस करते थे, बाकी देश में शस्त्रों की कोई मनाही नहीं थी। उस समय इस बात पर बहुत जोर दिया जाता था कि सामान्य जन बिना लाइसेंस तोपें न रखें। कुछ सामान्य शस्त्रों के लिए भी मनाही हो गयी। तब 1878 में वह कठोर कानून पास हुआ जो 1891, 1919, 1920 के थोड़े-थोड़े संशोधनों के बाद से अब तक चल रहा है।

सामान्य जन को इस मामले में बड़ी बेचैनी हुई। [उधर] इस विचार के लोग घबराकर कोई और कार्यवाही न कर बैठें, उनको कानूनी आन्दोलन (Constitutional Agitation) सिखाने के लिए कांग्रेस की बुनियाद रखी गयी। यह बात तो मानी हुई है कि उस वक्त के गवर्नर जनरल या वाइसराय लार्ड रिपन और बाद में लार्ड डेफरिन के कथनानुसार, मिस्टर ह्यूम ने कांग्रेस की नींव रखी थी और सभी लोगों को उसके आसपास इकट्ठा किया था। उसमें शस्त्र-कानून पर सामान्यतया बहस की जाती रही।

इसी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में, जो कि 1888 में इलाहाबाद में हुआ था, जो प्रस्ताव पेश और पास हुआ, उसमें इस बारे में कहा गया कि—

जनता की वफादारी और आर्म्स एक्ट की परेशानियों को देखते हुए यह आवश्यक है

कि सरकार को मनाया जाना चाहिए कि वह कानून को कुछ इस तरह बना दे जिससे कि सिवाय [ऐसे व्यक्तियों के] जिन्हें सरकार ने विशेष रूप से किसी कारणवश रोका हुआ है, प्रत्येक व्यक्ति को हथियार रखने की मजूरी दे।

इस प्रस्ताव को स्वीकृत करते हुए उदारवादी नेता सर फिरोजशाह मेहता ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण भाषण दिया, जिसमे उन्होंने कहा कि यूँ ही जोश में आकर मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए खड़ा नही हो गया। मैं तो यह कहता हूँ कि आप सारे देश को नपुंसक न बनायें। कहते हैं कि वह समय भी जल्द आयेगा जब शस्त्र-कानून हटा दिया जायेगा। लेकिन स्मरण रहे, एक बार यदि हिन्दुस्तानी जनता नपुंसक बना दी गयी तो फिर उससे सँभलना मुश्किल हो जायेगा। साथ ही उन्होंने उस व्यक्ति का उदाहरण दिया जिसके बेटे को बादशाह ने किसी बात पर फाँसी पर टँगवा दिया था। फिर एक बार जब बादशाह उससे सहायता माँगने गया तो उसने जवाब दिया कि मेरे एक बेटा था, जिसे मैं आपकी सहायता के लिए भेज सकता था, लेकिन इस वक्त वह बेटा है ही नहीं, इसलिए मैं आपकी कोई मदद नहीं कर सकता। आखिर वह समय जल्दी ही आनेवाला है जब हम भी अंग्रेजी सरकार को यही उत्तर देंगे। लेकिन निःशस्त्र हम किस काम के हैं और हमारी क्या ताकत, क्या कीमत होगी?

खैर, हिन्दुस्तानी पहले से ही [यह कानून हटाने की] जरूरत महसूस करते रहे हैं, लेकिन दिनों-दिन सख्ती बढ़ती ही चली गयी। पहले कहा गया था कि यह कानून केवल चार या पाँच सालों के लिए ही है। बाद में वह ऐसा पक्का हुआ कि अब यह लानत दूर होने में ही नहीं आती। एक बार सशोधन पेश हुआ कि जिस तरह अंग्रेजों, एंग्लो इंडियनो और ऐसे दूसरे अन्य लोगों को लाइसेंस की आवश्यकता नहीं पड़ती, उसी प्रकार आम हिन्दुस्तानियों को भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इसमें हमारा अपमान होता है। मगर अपमान का इलाज अंग्रेजों ने यह किया कि चलो, लाइसेंस सभी के लिए आवश्यक कर देते हैं। अंग्रेज भी लाइसेंस लें। हिन्दुस्तानियों को छूट नहीं दे सकते। लोग ज़ानते ही हैं कि अंग्रेजों को लाइसेंस लेने में कितना 'कष्ट' उठाना पड़ता है और हिन्दुस्तानियों की क्या गत बनती है। खैर, मतलब तो यह है कि अंग्रेजी सरकार जो कि जानती है कि उसका कब्जा हिन्दुस्तान पर सरासर नाजायज और अन्यायपूर्ण है, वह किसी भी सूरत में हिन्दुस्तानियों को हथियार रखने की इजाजत नहीं दे सकती। मगर मुल्क के लिए ऐसे कानून हद दर्जे के नुकसानदेह होते हैं। लोगों में नामर्दी, बुजदिली, कमजोरी इतनी ज्यादा आ गयी है कि सुनते ही शर्म आती है। आज हम देखते हैं कि जहाँ अन्य राष्ट्र युद्ध-विद्या की आम शिक्षा देकर पूरे-के-पूरे देश को एक तरह की बिल्कुल तैयार फौज बनाकर (Nation in arms) मुल्क को ज्यादा महफ़ूज़ और फौजी खर्च को हद दर्जे तक घटा देते हैं, वहाँ हमारी यह हालत है कि हिन्दुस्तान में 99 फीसदी से अधिक लोग कभी पिस्तौल और बन्दूक की शक्ल भी नहीं देख सकते। फिर कहा जाता है कि हिन्दुस्तान में से कोई प्रतिभाशाली जनरल (Military Genius) पैदा नहीं हो रहे।

कहा जाता है कि हिन्द में अमन कायम रखने और अपराध घटाने के लिए ही लोगों को निहत्थे रखा जाता है, लेकिन हम देखते हैं कि चोर और डाकू तो जैसे भी बन पड़ता है, हथियार हासिल कर ही लेते हैं, लेकिन भले लोग अपनी हिफाजत के लिए कहीं से भी हथियार हासिल नहीं कर सकते। कितनी सख्त तकलीफ हमें इस बात से होती है, यह अन्दाजा आसानी से ही लग सकता है।

जब भी सैनिक-शिक्षा का सवाल उठता है, उसी समय सरकार आएँ-बाएँ करके टालना शुरू कर देती है। क्या हमें साफ तौर पर नहीं समझ लेना चाहिए कि यह हमें खासतौर पर कमजोर बनाकर गुलाम बनाये रखने के लिए किया जाता है? हम देखते हैं कि बेचारी औरतें भी अकेली सफर नहीं कर सकतीं, क्योंकि उनके पास अपनी रक्षा का भी पूरा सामान मौजूद नहीं। अगर प्रत्येक स्त्री के पास कम-से-कम एक पिस्तौल हो तो वह भी बेफिक्री के साथ घूम सकें और आराम के साथ जिन्दगी गुजार सकें।

और यदि जरा ध्यान से देखें तो मालूम होगा कि इस विचार के साथ कि हमें अपनी रक्षा के लिए पुलिस का मुँह देखना चाहिए, हम लोग कितने कमजोर हो रहे हैं। इस तरह हमारे भीतर से इन्सानियत खत्म की जा रही है। यही तो वजह है कि हरिसिंहजी नलवा-जैसे जरनैल पैदा कर सकनेवाली कौम के आदमियों को महज आजादी से डराने के लिए सरहिन्द के पठानों का भूत दिखाकर थर-थर कँपा दिया जाता है।

सबसे बड़ी बात है कि यह इन्सानियत का अपमान है कि सारे मुल्क में से हथियार गायब कर दिये जायें। जहाँ अपनी फौजी ताकत को अंग्रेज दिनों-दिन बढ़ाये चले जा रहे हैं, वहाँ हमें किस तरह निहत्थे करके फेंका गया है। और आजकल खासतौर पर पुलिस और खुफिया पुलिस की सारी ताकत लुके-छिपे हथियार खोजने में और भविष्य में उनका आना बन्द करने में खर्च हो रही है। बात क्या है? रोल्ट रिपोर्ट में साफ तौर पर लिखा हुआ है कि यदि 1914-15 में पंजाब और बंगाल के राजपरिवर्तनकारियों के पास काफी हथियार होते तो बड़ा अंधेर हो जाना था। यही बात 'बन्दी जीवन' में लिखी गयी है। आजकल लड़ाई के आसार नजर आ रहे हैं। लड़ाई भी वह सामने सरहद पर। इस बार पिछले अनुभवों से फायदा उठाया जा रहा है और पहले से ही अनुमान लगाये जा रहे हैं।

लेकिन हम अपना कौमी हक और इन्सानी हक समझते हैं कि हम भी हथियार रख सकें। हम पहले श्री अवारी, नागपुर शस्त्र-सत्याग्रह का कुछ हाल दे चुके हैं। लोगों में इसके विरुद्ध विचार तो पैदा हो रहा है। नौजवान भारत सभा की प्रान्तीय कान्फ्रेंस, अमृतसर ने भी पास किया था कि जल्द ही यह सत्याग्रह किया जाना चाहिए। नौजवानों के आन्दोलनों को तो खासतौर पर इस ओर ध्यान देना चाहिए। वजह यह है कि नौजवानों के दिल में कुदरती जज़्बा पैदा हो जाता है कि वह भी हथियार रखें। अगर कोई सिर पीटकर, कोशिश करके एक-आध पिस्तौल पा भी लेता है तो सरकार झट उस पर साजिश का केस चला देती है, और उम्रकैद दे देती है। फिर जरा विचार तो करें कि क्या अंधेर हो रहा है। कोई गरीब पिस्तौल रख ही ले तो 3 साल की कैद !! गजब है ! हो क्या

गया ? कोई राजनैतिक विचारोंवाला कोई हथियार रख ले तो सात साल की कैद ! दफा 20 के अनुसार बिना लाइसेंस हथियार रखने के साथ, उनको छुपाने की सजा 7 साल है। यही तो वजह है कि जहाँ आम लोगों को 3-3 महीने की कैद होती है, वहाँ के.सी. बनर्जी को राजपरिवर्तनकारी समझकर पाँच साल कैद दे दी गयी थी। हम समझते हैं कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी को इसके खिलाफ आवाज उठानी चाहिए। पहले लोगों को इसकी जरूरत महसूस करवा देनी चाहिए। एक बार चारों तरफ से आवाज उठनी चाहिए—

आर्म्स एक्ट उड़ा दो ! (Repeal the arms act)

और फिर साथ ही सत्याग्रह शुरू कर देना चाहिए। असेम्बली और कौंसिलों में ऐसे ही प्रस्ताव पास होने चाहिए। श्री अवारी ने जिस शुभ काम को शुरू किया था, उसको कामयाब बनाने की पूरी कोशिश होनी चाहिए, ताकि फिर हिन्दुस्तानी नौजवानों में से कमजोरी, बुजदिली दूर हो। फिर हिन्दुस्तान के उठने के आसार हों।

6

नौजवान भारत सभा और राष्ट्रीय नेता

[शहीद भगतसिंह और भगवतीचरण वोहरा ने नौजवानों और विद्यार्थियों को संगठित करने के प्रयास सन् 1926 से ही शुरू कर दिये थे । 11, 12, 13 अप्रैल, 1928 को अमृतसर में नौजवान भारत सभा के सम्मेलन के लिए सभा का घोषणापत्र तैयार किया गया, जिसे नीचे दिया गया है। भगतसिंह इस सभा के महासचिव और भगवतीचरण वोहरा प्रचार-सचिव बने । –सं.]

नौजवान भारत सभा, लाहौर का घोषणापत्र

नौजवान साथियो,

हमारा देश एक अव्यवस्था की स्थिति से गुज़र रहा है । चारों तरफ एक-दूसरे के प्रति अविश्वास और हताशा का साम्राज्य है । देश के बड़े नेताओं ने अपने आदर्श के प्रति आस्था खो दी है और उनमें से अधिकांश को जनता का विश्वास प्राप्त नहीं है । भारत की आजादी के पैरोकारों के पास कोई कार्यक्रम नहीं है, और उनमें उत्साह का अभाव है । चारों तरफ अराजकता है । लेकिन किसी राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया में अराजकता एक अनिवार्य तथा आवश्यक दौर है । ऐसी ही नाजुक घड़ियों में कार्यकर्ताओं की ईमानदारी की परख होती है, उनके चरित्र का निर्माण होता है, वास्तविक कार्यक्रम बनता है, और तब नये उत्साह, नयी आशाएँ, नये विश्वास और नये जोशो-खरोश के साथ काम आरम्भ होता है । इसलिए उसमें मन ओछा करने की कोई बात नहीं है।

हम अपने-आपको एक नये युग के द्वार पर खड़ा पाकर बड़े भाग्यशाली हैं । अंग्रेज नौकरशाही के बड़े पैमाने पर गुणगान करनेवाले गीत अब सुनायी नहीं देते । अंग्रेज का

हमसे यह ऐतिहासिक प्रश्न है कि ''तुम तलवार से प्रशासित होगे या कलम से ?'' अब ऐसा नहीं रहा कि उसका उत्तर न दिया जाता हो । लार्ड बर्केनहेड के शब्दों में, ''हमने भारत को तलवार के सहारे जीता और तलवार के बल से ही हम उसे अपने हाथ में रखेंगे ।'' इस खरेपन ने अब सबकुछ साफ कर दिया है । जलियाँवाला और मानावाला के अत्याचारों को याद करने के बाद यह उद्धृत करना कि ''अच्छी सरकार स्वशासन का स्थान नहीं ले सकती'', बेहूदगी ही कही जायेगी । यह बात तो स्वतः स्पष्ट है ।

भारत में अंग्रेजी हुकूमत की दी हुई सुख-सम्पदाओं के बारे में भी दो शब्द लीजिए । भारत के उद्योग-धन्धों के पतन और विनाश के बारे में बतौर गवाही क्या रमेशचन्द्र दत्त, विलियम डिगवी और दादा भाई नौरोजी के सारे ग्रन्थों को उद्धत करने की आवश्यकता होगी ? क्या इस बात को साबित करने के लिए कोई प्रमाण जुटाना पड़ेगा कि अपनी उपजाऊ भूमि तथा खानों के बावजूद आज भारत सबसे गरीब देशों में से एक है, कि भारत जो अपनी महान सभ्यता पर गर्व कर सकता था आज बहुत पिछड़ा हुआ देश है, जहाँ साक्षरता का अनुपात केवल पाँच प्रतिशत है? क्या लोग यह नहीं जानते कि भारत में सबसे अधिक लोग मरते हैं और यहाँ बच्चो की मौत का अनुपात दुनिया में सबसे ऊँचा है ? प्लेग, हैजा, इन्फ्लुएंजा तथा इसी प्रकार की अन्य महामारियाँ आये दिन की व्याधियाँ बनती जा रही हैं ? क्या बार-बार यह सुनना कि हम स्वशासन के योग्य नहीं हैं, एक अपमानजनक बात नहीं है ? क्या यह तौहीन की बात नहीं है कि गुरु गोविन्दसिह, शिवाजी और हरीसिह जैसे शूरवीरों के बाद भी हमसे कहा जाय कि हममें अपनी रक्षा करने की क्षमता नहीं है ? खेद है कि हमने अपने वाणिज्य और व्यवसाय को उसकी शैशवावस्था में ही कुचला जाते नहीं देखा ? जब बाबा गुरुदत्त सिह ने 1914 में गुरु नानक स्टीमशिप चालू करने का पहला प्रयास किया था तो दूर देश कनाडा में और भारत आते समय उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया और अन्त में बज-बज के बन्दरगाह पर उन साहसी मुसाफिरो का गोलियों से खूनी स्वागत किया गया । और भी क्या कुछ नहीं किया गया ? क्या हमने यह सब नहीं देखा ? उस भारत में जहाँ एक द्रोपदी के सम्मान की रक्षा मे महाभारत-जैसा महायुद्ध लड़ा गया था, वहाँ 1919 में दर्जनों द्रोपदियों को बेइज्जत किया गया, उनके नंगे चेहरों पर थूका गया। क्या हमने यह सब नहीं देखा ? फिर भी हम मौजूदा व्यवस्था से सन्तुष्ट हैं । क्या यह जीने योग्य ज़िन्दगी है ?

क्या हमें यह महसूस कराने के लिए कि हम गुलाम हैं और हमें आजाद होना चाहिए, किसी दैवी ज्ञान या आकाशवाणी की आवश्यकता है ? क्या हम अवसर की प्रतीक्षा करेंगे या किसी अज्ञात की प्रतीक्षा करेंगे कि हमें महसूस कराये कि हम दलित लोग हैं ? क्या हम इन्तजार में बैठे रहेंगे कि कोई दैवी सहायता आ जाय या फिर कोई जादू हो जाय कि हम आजाद हो जायें ? क्या हम आजादी के बुनियादी सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हैं ? ''जिन्हें आज़ाद होना है उन्हें स्वयं चोट करनी पड़ेगी ।'' नौजवानो जागो, उठो, हम काफी देर सो चुके ।

हमने केवल नौजवानों से ही अपील की है क्योंकि नौजवान बहादुर होते हैं, उदार एवं भावुक होते हैं, क्योंकि नौजवान भीषण अमानवीय यन्त्रणाओं को मुस्कुराते हुए बर्दाश्त कर लेते हैं और बगैर किसी प्रकार की हिचकिचाहट के मौत का सामना करते हैं, क्योंकि मानव-प्रगति का सम्पूर्ण इतिहास नौजवान आदमियों तथा औरतों के खून से लिखा है; क्योंकि सुधार हमेशा नौजवानो की शक्ति, साहस, आत्मबलिदान और भावात्मक विश्वास के बल पर ही प्राप्त हुए हैं—ऐसे नौजवान जो भय से परिचित नहीं हैं और जो सोचने के बजाय अनुभव कही अधिक करते हैं।

क्या यह जापान के नौजवान नहीं थे जिन्होंने पोर्ट आर्थर तक पहुँचने के लिए सूखा रास्ता बनाने के उद्देश्य से अपने आपको सैकड़ों की तादाद में खाइयों में झोंक दिया था? और जापान आज विश्व के सबसे आगे बढे हुए देशों में से एक है। क्या यह पोलैण्ड के नौजवान नही थे जिन्होंने पिछली पूरी शताब्दी-भर बार-बार सघर्ष किये, पराजित हुए और फिर बहादुरी के साथ लड़े? और आज एक आजाद पोलैण्ड हमारे सामने है। इटली को आस्ट्रिया के जुए से किसने आजाद किया था? तरुण इटली ने!

तरूण तुर्कों ने जो कमाल दिखलाया, क्या आप उसे जानते हैं? चीन के नौजवान जो कर रहे हैं, उसे क्या आप रोज समाचार-पत्रों में नही पढ़ते हैं? क्या यह रूस के नौजवान नही थे जिन्होंने रूसियो के उद्धार के लिए अपनी जाने कुर्बान कर दी थी? पिछली शताब्दी-भर लगातार केवल समाजवादी पर्चे बाँटने के अपराध मे सैकड़ों-हजारों की संख्या में उन्हें साइबेरिया मे जलावतन किया गया था, दोस्तोवस्की-जैसे लोगो को सिर्फ इसलिए जेलो मे बन्द किया गया कि वे समाजवादी डिबेटिंग (बहस-मुबाहसा चलानेवाली) सोसाइटी के सदस्य थे। बार-बार उन्होंने दमन के तूफान का सामना किया, लेकिन उन्होंने साहस नहीं खोया। यह संघर्षरत नौजवान थे। और सब जगह नौजवान ही निडर होकर बगैर किसी हिचकिचाहट के और बगैर (लम्बी-चौड़ी) उम्मीदें बाँधे लड़ सकते हैं। और आज हम महान रूस में विश्व के मुक्तिदाता के दर्शन कर सकते हैं।

जबकि हम भारतवासी, हम क्या कर रहे हैं? पीपल की एक डाल टूटते ही हिन्दुओं की धार्मिक भावनाएँ चोटिल हो उठती हैं! बुतों को तोडनेवाले मुसलमानो के ताज़िये नामक कागज़ के बुत का कोना फटते ही अल्लाह का प्रकोप जाग उठता है और फिर वह 'नापाक' हिन्दुओ के खून से कम किसी वस्तु से सन्तुष्ट नहीं होता! मनुष्य को पशुओं से अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए, लेकिन यहाँ भारत मे वे लोग पवित्र पशु के नाम पर एक-दूसरे का सर फोड़ते हैं।

हमारे बीच और भी बहुत-से लोग हैं जो अपने आलसीपन को अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की निरर्थक बकवास के पीछे छिपाते हैं। जब उनसे अपने देश की सेवा करने को कहा जाता है तो वे कहते हैं, "श्रीमानजी, हम लोग जगत-बन्धु हैं और सार्वभौमिक भाईचारे में विश्वास करते हैं। हमें अंग्रेजों से नहीं झगड़ना चाहिए। वे हमारे भाई हैं।" क्या खूब

विचार है, क्या खूबसूरत शब्दावली है ! लेकिन वे इसके उलझाव को नहीं पकड़ पाते। सार्वभौमिक भाईचारे के सिद्धान्त की माँग है कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का और राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का शोषण असम्भव बना दिया जाये, सबको बगैर किसी भेद-भाव के समान अवसर प्रदान किये जायें। भारत में ब्रिटिश शासन इन सब बातों का ठीक उल्टा है और हम उससे किसी प्रकार का सरोकार नहीं रखेंगे।

अब दो शब्द समाज-सेवा के बारे में। बहुत-से नेक मनुष्य सोचते हैं कि समाज-सेवा (उन संकुचित अर्थों में जिनमें हमारे देश में इस शब्द को प्रयोग किया जाता है और समझा जाता है) हमारी सभी बीमारियो का इलाज है और देशसेवा का सबसे अच्छा तरीका है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बहुत-से ईमानदार नौजवान सारी जिन्दगी गरीबो मे अनाज बाँटकर या बीमारों की सेवा करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। यह अच्छे और आत्मत्यागी लोग हैं लेकिन वे यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि भारत में भूख और बीमारी की समस्या को खैरात के माध्यम से हल नही किया जा सकता।

धार्मिक अन्ध-विश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोडे साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में छुटकारा पा लेना चाहिए। "जो चीज आज़ाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती उसे समाप्त हो जाना चाहिए।" इसी प्रकार की और भी बहुत-सी कमजोरियाँ हैं जिन पर हमें विजय पानी है। हिन्दुओ का दकियानूसीपन और कट्टरपन, मुसलमानों की धर्मान्धता तथा दूसरे देशों के प्रति लगाव और आम तौर पर सभी सम्प्रदायों के लोगो का संकुचित दृष्टिकोण आदि बातो का विदेशी शत्रु हमेशा लाभ उठाता है। इस काम के लिए सभी समुदायों के क्रान्तिकारी उत्साहवाले नौजवानो की आवश्यकता है।

हमने कुछ भी हासिल नहीं किया और हम किसी भी उपलब्धि के लिए कुछ भी त्याग करने को तैयार नहीं हैं। सम्भावित उपलब्धि मे किस सम्प्रदाय का क्या हिस्सा होगा, यह तै करने में हमारे नेता आपस में झगड़ रहे हैं। महज अपनी बुज़दिली को और आत्मत्याग की भावना के अभाव को छिपाने के लिए वे असली समस्या पर पर्दा डालकर नकली समस्याएँ खड़ी कर रहे हैं। यह आरामतलब राजनीतिज्ञ हड्डियों के उन मुट्ठी-भर टुकड़ों पर आँखें गड़ाये बैठे हैं जिन्हें, जैसा उनका विश्वास है, सशक्त शासकगण उनके सामने फेंक सकते हैं। यह बहुत ही अपमानजनक बात है। जो लोग आजादी की लडाई में बढ़कर आते हैं वे बैठकर यह तै नहीं कर सकते कि इतने त्याग के बाद उनकी कामयाबी होगी और उसमें उन्हें इतना हिस्सा सुनिश्चित रहना चाहिए। इस प्रकार के लोग कभी भी किसी प्रकार का त्याग नहीं करते। हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो बगैर उम्मीदों के, निर्भय होकर और बगैर किसी प्रकार की हिचकिचाहट के लड़ने को तैयार हों और बगैर सम्मान के, बगैर आँसू बहानेवालों के और बगैर प्रशस्तिगान के मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हों। इस प्रकार के उत्साह के अभाव मे हम दो मोर्चोंवाले उस महान युद्ध को, जिसे हमें लड़ना है, नहीं लड़

सकेंगे—दो मोर्चोंवाला, क्योंकि हमें एक तरफ अन्दरूनी शत्रु से लड़ना है और दूसरी तरफ बाहरी दुश्मन से। हमारी असली लड़ाई स्वयं अपनी अयोग्यताओं के खिलाफ है। हमारा शत्रु और कुछ हमारे अपने लोग निजी स्वार्थ के लिए उनका फायदा उठाते हैं।

नौजवान पंजाबियो, दूसरे प्रान्तों के युवक अपने क्षेत्रों में जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। नौजवान बंगालियों ने फरवरी 3 को जिस जागृति तथा संगठन-क्षमता का परिचय दिया उससे हमें सबक लेना चाहिए। अपनी तमाम कुर्बानियों के बावजूद हमारे पंजाब को राजनैतिक तौर पर पिछड़ा हुआ प्रान्त कहा जाता है। क्यों? क्योंकि सैनिक उपजाति होने के बावजूद हम संगठित एवं अनुशासित नहीं हैं। हमें तक्षशिला विश्वविद्यालय पर गर्व है, लेकिन आज हमारे पास संस्कृति का अभाव है और संस्कृति के लिए उच्चकोटि का साहित्य चाहिए, जिसकी संरचना सुविकसित भाषा के अभाव में नहीं हो सकती। दुख की बात है कि आज हमारे पास उनमें से कुछ भी नहीं है।

देश के सामने उपस्थित उपरोक्त प्रश्नों का समाधान तलाश करने के साथ-साथ हमें अपनी जनता को आनेवाले महान संघर्ष के लिए भी तैयार करना पड़ेगा। हमारी राजनैतिक लड़ाई 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के ठीक बाद से ही आरम्भ हो गयी थी। वह कई दौरों से होकर गुजर चुकी है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से अंग्रेज नौकरशाही ने भारत के प्रति एक नयी नीति अपनायी है। वे हमारे देश के पूँजीपति तथा निम्नपूँजीपति वर्ग को सहूलियतें देकर उन्हें अपनी तरफ मिला रहे हैं। दोनों का हित एक हो रहा है। भारत में ब्रिटिश पूँजी के अधिकाधिक प्रवेश का अनिवार्यतः यही परिणाम होगा। निकट भविष्य में बहुत शीघ्र हम उस वर्ग को तथा उसके नेताओं को विदेशी शासकों के साथ जाते देखेंगे। कोई गोलमेज कान्फ्रेंस या इसी प्रकार की और कोई संस्था द्वारा दोनों के बीच समझौता हो जायेगा। तब उनमें शेर और लोमड़ी के बच्चे का रिश्ता नहीं रह जायेगा। समस्त भारतीय जनता के आनेवाले महान संघर्ष के भय से आजादी के इन तथाकथित पैरोकारों की कतारों की दूरी बगैर किसी समझौते के भी कम हो जायेगी।

देश को तैयार करने के भावी कार्यक्रम का शुभारम्भ इस आदर्श वाक्य से होगा—"क्रान्ति जनता द्वारा, जनता के हित में।" दूसरे शब्दों में, 98 प्रतिशत के लिए स्वराज्य। स्वराज्य जनता द्वारा प्राप्त ही नहीं, बल्कि जनता के लिए भी। यह एक बहुत कठिन काम है। यद्यपि हमारे नेताओं ने बहुत-से सुझाव दिये हैं लेकिन जनता को जगाने के लिए कोई योजना पेश करके उस पर अमल करने का किसी ने भी साहस नहीं किया। विस्तार में गये बगैर हम यह दावे से कह सकते हैं कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूसी नवयुवकों की भाँति हमारे हजारों मेधावी नौजवानों को अपना बहुमूल्य जीवन गाँवों में बिताना पड़ेगा और लोगों को समझाना पड़ेगा कि भारतीय क्रान्ति वास्तव में क्या होगी। उन्हें समझाना पड़ेगा कि आनेवाली क्रान्ति का मतलब केवल मालिकों की तब्दीली नहीं होगा। उसका अर्थ होगा नयी व्यवस्था का जन्म—एक नयी राजसत्ता। यह एक दिन या

एक वर्ष का काम नहीं है। कई दशकों का अद्वितीय आत्मबलिदान ही जनता को उस महान कार्य के लिए तत्पर कर सकेगा और इस कार्य को केवल क्रान्तिकारी युवक ही पूरा कर सकेंगे। क्रान्तिकारी से लामुहाला एक बम और पिस्तौलवाले आदमी से अभिप्राय नहीं है।

युवकों के सामने जो काम है, वह काफी कठिन है और उनके साधन बहुत थोड़े हैं। उनके मार्ग में बहुत-सी बाधाएँ भी आ सकती हैं। लेकिन थोड़े किन्तु निष्ठावान व्यक्तियों की लगन उन पर विजय पा सकती है। युवकों को आगे जाना चाहिए। उनके सामने जो कठिन एवं बाधाओं से भरा हुआ मार्ग है, और उन्हें जो महान कार्य सम्पन्न करना है, उसे समझना होगा। उन्हें अपने दिल में यह बात रख लेनी चाहिए कि "सफलता मात्र एक संयोग है, जबकि बलिदान एक नियम है।" उनके जीवन अनवरत असफलताओं के जीवन हो सकते हैं–गुरु गोविन्दसिंह को आजीवन जिन नारकीय परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था, हो सकता है उससे भी अधिक नारकीय परिस्थितियों का सामना करना पड़े। फिर भी उन्हें यह कहकर कि अरे, यह सब तो भ्रम था, पश्चाताप नहीं करना होगा।

नौजवान दोस्तो, इतनी बड़ी लड़ाई में अपने आपको अकेला पाकर हताश मत होना। अपनी शक्ति को पहचानो। अपने ऊपर भरोसा करो। सफलता आपकी है। धनहीन, निस्सहाय एवं साधनहीन अवस्था में भाग्य आजमाने के लिए अपने पुत्र को घर से बाहर भेजते समय जेम्स गैरीबाल्डी की महान जननी ने उससे जो शब्द कहे थे [उन्हें] याद रखो। उसने कहा, "दस में से नौ बार एक नौजवान के साथ जो सबसे अच्छी घटना हो सकती है वह यह है कि उसे जहाज की छत पर से समुद्र में फेंक दिया जाये ताकि वह तैरकर या डूबकर स्वयं अपना रास्ता तै करे।" प्रणाम है उस माँ को जिसने ये शब्द कहे और प्रणाम है उन लोगों को जो इन शब्दों पर अमल करेंगे।

इटैलियन पुनरुत्थान के प्रसिद्ध विद्वान मैजिनी ने एक बार कहा था, "सभी महान-राष्ट्रीय आन्दोलनों का शुभारम्भ जनता के अविख्यात या अजाने, गैरप्रभावशाली व्यक्तियों से होता है, जिनके पास समय और बाधाओं की परवाह न करनेवाला विश्वास तथा इच्छा-शक्ति के अलावा और कुछ नहीं होता।" जीवन की नौका को लंगर उठाने दो। उसे सागर की लहरों पर तैरने दो और फिर–

लंगर ठहरे हुए छिछले पानी में पड़ता है।
विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर विश्वास करो
जहाँ ज्वार हर समय ताजा रहता है–
और शक्तिशाली धाराएँ स्वतन्त्र होती हैं–
वहाँ अनायास, ऐ नौजवान कोलम्बस–
सत्य का तुम्हारा नया विश्व हो सकता है।

मत हिचको, अवतार के सिद्धान्त को लेकर अपना दिमाग परेशान मत करो औ उसे अपने आपको हतोत्साहित मत करने दो। हर व्यक्ति महान हो सकता है, बशर्ते कि वह प्रयास करे। अपने शहीदों को मत भूलो। करतारसिंह एक नौजवान था, फिर भी बीस वर्ष से कम की आयु में ही देश की सेवा के लिए आगे बढ़कर मुस्कराते हुए बन्देमातरम के नारे के साथ वह फाँसी के तख्ते पर गया। भाई बालमुकुन्द और अवधबिहारी दोनों ने ही जब ध्येय के लिए जीवन दिया तो वे नौजवान थे। वे तुम्हारे में से ही थे। तुम्हें भी वैसा ही ईमानदार देशभक्त और वैसा ही दिल से आजादी को प्यार करनेवाला बनने का प्रयास करना चाहिए, जैसे कि वे लोग थे। सब्र और होशो-हवास मत खोओ, साहस और आशा मत छोड़ो। स्थिरता और दृढ़ता को स्वभाव के रूप में अपनाओ।

नौजवानों को चाहिए कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक, गम्भीरता से, शान्ति और सब्र के साथ सोचें। उन्हें चाहिए कि वे भारतीय स्वतन्त्रता के आदर्श को अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य के रूप में अपनायें। उन्हें अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए। उन्हें अपने आपको बाहरी प्रभावों से दूर रहकर संगठित करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि मक्कार तथा बेईमान लोगों के हाथों में न खेलें, जिनके साथ उनकी कोई समानता नहीं है और जो हर नाजुक मौके पर आदर्श का परित्याग कर देते हैं। उन्हें चाहिए कि संजीदगी और ईमानदारी के साथ "सेवा, त्याग, बलिदान" को अनुकरणीय वाक्य के रूप में अपना मार्गदर्शक बनायें। याद रखिए कि "राष्ट्रनिर्माण के लिए हजारों अज्ञात स्त्री-पुरुषों के बलिदान की आवश्यकता होती है जो अपने आराम व हितों के मुकाबिले, तथा अपने एवं अपने प्रियजनों के प्राणों के मुकाबिले देश की अधिक चिन्ता करते हैं।"

6-4-1928 बन्देमातरम!

भगवतीचरण वोहरा बी. ए., प्रचार मन्त्री, नौजवान भारत सभा द्वारा अरोड़ वंश प्रेस, लाहौर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

लाला लाजपतराय के नाम खुला खत

[लाला लाजपत राय को देश के बुजुर्ग नेता मानते हुए भी क्रान्तिकारी उनके विचारों से असहमत थे। लाला जी और भगतसिंह व उनके साथियों के बीच बहस में जो तर्क प्रस्तुत किये गये, उसका परिचय देने के लिए 'किरती' पत्रिका से कुछ लेख यहाँ दिये जा रहे हैं।

नवम्बर, 1927 में लाला जी के नाम एक खुला पत्र छापा गया। जनवरी, 1928 में 'लाला लाजपत राय और कुमारी एग्निस स्मैडली' शीर्षक से दूसरा

लेख छपा। एग्निस स्मैडली यूरोप की प्रसिद्ध लेखिका थीं, जिनकी भारत व चीन के स्वतन्त्रता-आन्दोलन में गहरी दिलचस्पी थी। लाला जी ने अपने अखबार में मिस स्मैडली की पुस्तक से कुछ अंश छापकर उनका छपना बन्द कर दिया। उसी सन्दर्भ में यह लेख है। तीसरा लेख अगस्त, 1928 में 'लाला लाजपत राय और नौजवान आन्दोलन' शीर्षक से छपा। –सं.]

'किरती' की सम्पादकीय टिप्पणी

(जिन सज्जनों का लाला लाजपत राय से राजनीतिक जीवन में अच्छी तरह वास्ता पड़ा है, वे लाला जी की नेतागिरी की कोरी इच्छा और देश के लिए सिवाय टर्र-टर्र करने तथा और कुछ न करने को अच्छी तरह जानते हैं। विदेशों में बसे भाइयों, विशेषत: अमेरिका व कनाडा निवासी सिखों का विश्वास 1914 में ही लाला जी से उठ गया था, जब आप कनाडा-अमेरिका गये थे और आपको उन हिन्दुस्तानी भाइयों ने अपने गाढ़े पसीने की कमाई का काफी रुपया हिन्दुस्तान में आज़ादी के लक्ष्य के लिए दिया था और उन भाइयों के अनुसार लाला जी ने वह रुपया अपनी मर्जी से खर्च किया था और बहुत-सा रुपया स्वयं ही हड़प गये थे।

लाला जी की आजकल की मनमरजी और टेढ़ी चालों से हिन्दुस्तान के लोगों व राजनीतिक क्षेत्रों में उनका विश्वास उठ गया है। हमारे पास 22 सज्जनों की ओर से छपा 'लाला जी के नाम खुला खत' प्रकाशित होने के लिए आया है, जिसका अनुवाद प्रस्तुत है। –सम्पादक, 'किरती')

लाहौर, 18 सितम्बर, 1927

प्रिय लाला लाजपत राय जी,

असेम्बली चुनाव के दिनों जब जनसभाएँ की जाती थीं, तब आपने एक बार दस हजार हिन्दुओं की सभा के समक्ष अपने बारे में सिपाही होने की घोषणा की थी।

इसके उत्तर में कि आप एक मर चुके नेता हैं, आपने कहा था कि बेशक हिन्दुओं के हाथों से एक नेता निकल रहा है, लेकिन नेता की जगह उन्हें एक सिपाही मिल गया है। आपकी घोषणा सुनकर हमें भी बहुत प्रसन्नता हुई, क्योंकि हम भी ऐसे नेताओं से जो कि राजनैतिक समस्याओं के सम्बन्ध में तो बहुत लम्बी-चौड़ी बातें किया करते थे, तंग आये हुए थे। पिछले भले दिनों मे आप तर्कशील भाषणों में यह कहने नहीं थकते थे कि ''मैं या तख्त लूँगा या तख्ता।'' लाहौर के 16 युवकों ने जो घोषणा 'पंजाब के नौजवानों से अपील' शीर्षक के अन्तर्गत की थी, उसके उत्तर में आपने उन पर आरोप लगाया था कि उन्होंने आप पर एक धब्बा लगाकर आपको इस राजनैतिक क्षेत्र से निकालने की कोशिश की है।

यह आरोप देखने से ही कड़वा लगता था। हम आपको फिर मैदान-ए-जंग में लाना चाहते हैं और आप में यह शतरंजी चालें खेलने की जो चाह पैदा हो गयी है उसे खत्म करना चाहते हैं। आपने कहा था कि ये तो बोल्शेविक हैं इसलिए अपना नेता लेनिन को मानते हैं। बोल्शेविक होना कोई गुनाह नहीं है और आज हिन्दुस्तान को लेनिन की सबसे ज्यादा जरूरत है। क्या आपने उन नौजवानों को सी. आई. डी. की 'मेहरबान' नजरों में लाने का कमीना प्रयत्न नहीं किया? आपकी इस बुरी इच्छा को फल लग गया है, इसलिए आप स्वयं को इस सफलता की बधाई दे सकते हैं। आपने लंगे मण्डी में इन नौजवानों पर मात्र इसलिए कीचड़ उछाला क्योंकि उन्होंने जनता को वास्तविक स्थितियों से परिचित कराने का साहस दिखाया। आपकी चुनाव सम्बन्धी लड़ाई का यह आरम्भिक दिन था। मदनमोहन मालवीय जी को इसका शुभारम्भ करने के लिए आमन्त्रित किया गया था। आपको संक्षिप्त-सा अध्यक्षीय भाषण करना था, लेकिन आप अपना संयम खो बैठे। पण्डित मालवीय को लम्बा भाषण करने का समय ही न मिला, जिसकी कि वह तैयारी करके आये थे। आपने दो घण्टे, बल्कि इससे भी अधिक 'पंजाब के नौजवानों से अपील' कर कड़कती आवाज में [उनका] विरोध किया। आपने इन नौजवानों को दिल खोलकर कोसा और आरोप लगाये। आपने सारे भाषण में ही तर्कशीलता को बिल्कुल दरकिनार कर दिया। हम आप पर निम्नलिखित आरोप लगाते हैं–

1. राजनैतिक ढुलमुलपन।
2. राष्ट्रीय शिक्षा के साथ विश्वासघात।
3. स्वराज्य पार्टी के साथ विश्वासघात।
4. हिन्दू-मुस्लिम-तनाव को बढ़ाना।
5. उदारवादी बन जाना।

इन आरोपों में से एक का भी आपने कोई तर्क-सम्मत खण्डन नहीं किया। जब चुनावों का जोश शान्त हो गया तब हमने बहुत चिन्तापूर्वक सुना कि आपके शरीर को फिर कोई रोग लग गया है। अफसोस, अस्वस्थता हमारे नेताओं का एक हिस्सा बन गयी है। वे अस्वस्थता की तभी शिकायत करने लग जाते हैं जब उन्हें मालूम होता है कि कोई-न-कोई हमसे गाँव की प्रगति और जन-एकता के वायदे को पूरा करने के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ कहेगा। यह वायदे ऐसे हैं जो हजारों बार किये तो गये, पर पूरे कभी नहीं उतरे।

चिकित्सा विज्ञान क्या यही कहता है कि बुरे स्वास्थ्य का रोगी केवल यूरोप के ही स्वास्थ्य-लाभ-केन्द्र पर ठीक होगा? रोग की रोकथाम के लिए जो राय डॉक्टर दें उसे मानने से कौन इन्कार कर सकता है? हिन्दुस्तान एक बदकिस्मत देश है जो जंगल और दलदल से भरा है। यहाँ कोई पहाड़ी स्थान नहीं है और न ही कोई स्वास्थ्य-लाभ-केन्द्र है। इन नेताओं का कश्मीर केवल इटली के उत्तर में है। 'मरी', मसूरी और नैनीताल भी

यूरोप में ही मिलते हैं। आप जानते हैं कि अपने देश की सेवा के लिए जीना बहुत जरूरी है। इसलिए जीवन बहुमूल्य है। यह भी कहा जाता है कि सिपाही के लिए कोई आराम नहीं। वो मरने के लिए जीता है, ताकि वह दुख झेलते, देश की सेवा में रहते हुए ही मरे। और दुखी देश के लिए मरने के वास्ते कमर कसकर युद्ध में मरे, उसकी, बड़ी इच्छा होती है।

लेकिन यूरोप जाने से पहले आप जब हिन्दुस्तान की ही हवाखोरी कर रहे थे और हिन्दुस्तान की ही जमीन पर चल रहे थे, तब आपके और आपके साथियों द्वारा बोये काँटे उग पड़े। आपने 'हिन्दुओ, मारो!' का प्रचार किया था और हिन्दू ही मारे गये!

आप-जैसे ही अन्य सज्जनों ने 'मुसलमानो, मारो!' का प्रचार किया था। जब मुसलमानों के मारे जाने का समय आया तो उनके नेताओं ने यह कमजोरी दर्शायी और वह सिपाहीवाला काम न कर सके। इस तरह उन्हें भी काफी मार पड़ी। लेकिन हमारा सिपाही उस समय बुज़दिली दर्शाने में बहादुर निकला। जब हिन्दू मारे जाने लगे तो आपने प्रथम श्रेणी के गद्दे पर बैठकर यूरोप चले जाना ही श्रेयस्कर समझा। आपने लाहौर के हिन्दुओं की इस संकट में मदद करने से असमर्थता प्रकट की। चुनाव के दिनों में आप आमतौर पर हिन्दुओं की मुसलमानों के हाथों रक्षा करने की डींगें हाँका करते थे।

लेकिन अफसोस है कि यह सबकुछ आपका चुनावी सफलता तक ही सीमित था। इसके साक्ष्य में हम केवल यह कहना ही पर्याप्त समझते हैं कि आपने यूरोप से वापस लौटकर भी लाहौर के गरीब और दुखी हिन्दुओं की सहायता के लिए लाहौर पहुँचने तक का भी कष्ट नहीं उठाया। हमें मालूम नहीं कि आपने सीमा से पागल पठानों के निकाले हुए हिन्दुओं की रक्षा के लिए कौन-से तरीके इस्तेमाल किये? इसके विपरीत आप सीधे ही शिमला असेम्बली में भाग लेने और अपने साथियों पर भाषण का असर दर्शाने के लिए चले गये। संकट के समय अलग-थलग रहना आपकी बहादुरी का बड़ा हिस्सा है।

अनेक युवतियों के सिर से पति का साया उठ गया और उनकी सारी उम्र दुखों भरी और एकान्तमय रह गयी। कई कुँआरी कन्याएँ अपना सतीत्व भंग होने के कारण अपने भीतर-ही-भीतर आँसुओं से रो रही हैं। कई मासूमों का कत्ल किया गया। तीस लाख जिन्दगियाँ भयावह नरक में से गुजर रही हैं। गवर्नर, पंजाब तो अपनी पहाड़ी आरामगाह छोड़कर इन लोगों के बोये हुए काँटे काटने के लिए लाहौर आ जाता है, लेकिन हमारा सिपाही लाला लाजपत राय इतना बीमार है कि वह अपनी ड्यूटी पर नहीं पहुँच सकता और कह देता है कि लाहौर में गर्मी बहुत है तथा रेलवे की सीटें पहले ही बुक हो चुकी हैं। रोने दो इन विधवा हो चुकी स्त्रियों को, यतीम हो चुके बच्चों को, हमें इनसे क्या लेना! मुसीबतें अजब-अजब लोगों को एकजुट कर देती हैं! जनता के सामने जिनके बारे में हम यह आरोप लगाते थे कि यह लोग आम जनता के विश्वास योग्य नहीं हैं', तो क्या अब उन्हीं के दरवाजे पर माँगने में हमें सुकून मिलता है? होशियार रहो कि आदमी अपने साथियों से ही पहचाना जाता है। यह कोई विस्मयकारी बात नहीं है कि आप एक

उदारवादी गिने जाने लगे हैं जब कि आप जी-हजूरियों और पिछलग्गुओं के साथ बाँह में बाँह डाले साथ चल रहे हैं।

1. केदारनाथ सहगल : सदस्य, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, अध्यक्ष पंजाब राजनीतिक पीड़ित कान्फ्रेन्स।
2. मेलाराम वफा : सम्पादक, वन्देमातरम् और नेशनल कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर।
3. प्रेमप्रकाश देवीश्वर : महासचिव, पंजाब सनातन धर्म राजनैतिक कान्फ्रेंस।
4. अब्दुल मजीद : सचिव, पंजाब प्रेस कर्मचारी यूनियन।
5. भगवानचरण कौमी, बी. ए. : सचिव, कौमी ग्रेजुएट यूनियन।
6. नरेन्द्रनाथ कौमी, बी. ए. : पूर्व सहायक सम्पादक, 'भीष्म'।
7. धर्मचन्द्र कौमी, बी. ए.।
8. गनपतराय कौमी, बी. ए.।
9. बाबूसिंह कौमी, बी. ए.।
10. जी. आर. दरवेशी : सम्पादक, 'मेहनतकश'।
11. कर्मचन्द : सम्पादक, 'लाहौर'।
12. मोहम्मद युसूफ कौमी, बी. ए. : सहायक सम्पादक 'अकाली'।
13. सीताराम मास्टर : राजनैतिक कार्यकर्ता, पंजाब।
14. हरदयाल : हिन्दी साहित्य भवन।
15. धर्मेन्द्र कौमी, बी. ए.।
16. सुरेन्द्रनाथ।
17. एन. कालमऊल्ला।
18. पिण्डीदास सोढी : पूर्व सम्पादक, 'भीष्म', लाहौर।
19. धर्मेन्द्र ठाकुर : पूर्व उपदेशक, हिन्दू सभा।
20. डॉ. इन्द्रलाल कपूर।
21. लद्दाराम : पूर्व सम्पादक, 'स्वराज्य', इलाहाबाद।
22. वेदराज भल्ला कौमी, बी. ए.।

लाला लाजपत राय और एग्निस स्मैडली

'द पीपल' (The People) एक अंग्रेज़ी साप्ताहिक समाचार पत्र है। इसके संस्थापक और सम्पादक पंजाब केसरी लाला लाजपत राय हैं। जिस समय यह पत्र आरम्भ किया गया था तब उसमें पहले पृष्ठ पर लाला जी की ओर से यह घोषणा की गयी थी कि इस

समाचार पत्र में हर प्रकार के विचार दिये जायेंगे तथा हर विचार को, भले ही वह किसी भी तरह का हो, सुना जाया करेगा और उस पर धैर्य और गम्भीरता से विचार किया जायेगा। कुल मिलाकर यह कि यह पत्र एक खुला विचार-मंच (ओपन फोरम) बनाया गया था, जहाँ प्रत्येक बात पर बहस और विचार होना था ताकि अंग्रेजी पढ़ी-लिखी जनता वास्तविक स्थितियों से परिचित हो सके तथा अपनी सही राय कायम कर सके।

इन पंक्तियों का लेखक इस पत्र को आरम्भ से पढ़ता रहा है। यह पत्र अच्छे समाचार पत्रों में एक है। इसमें अक्तूबर, 1927 तक घोषित उद्देश्यों का पूर्णतया पालन किया जाता रहा है। इसमें विद्वान लेखकों के अच्छे-अच्छे लेख प्रकाशित होते रहे हैं, लेकिन 10 अक्तूबर, 1927 से इसने अपने मुख्य उद्देश्य से मुँह फेर लिया है और मिस स्मैडली के लेख प्रकाशित करने बन्द कर दिये हैं।

मिस एग्निस स्मैडली यूरोप की एक प्रख्यात लेखिका हैं। वे बर्लिन के एक विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की प्राध्यापिका हैं। लाला जी व्यक्तिगत तौर पर उन्हें जानते हैं। लाला जी ने उनके सन्दर्भ में लिखा था—"पिछले दस बरसों से मैं मिस स्मैडली को जानता हूँ। मैंने उनकी ईमानदारी पर कभी शक नहीं किया। यह ऐसी स्त्री नहीं जिन्हें कि रुपये-पैसे से खरीदा जा सके। वे जन्मजात युगान्तकारी हैं। इसलिए उनका स्वभाव, रुझान एवं आदतें सभी एक युगान्तकारी-जैसी हैं। उनका जीवन सम्मान से जीने में बीता है। इन बातों ने युग-परिवर्तन की ओर उनका झुकाव बढ़ा दिया है। व्यक्तिगत तौर पर उनके विचार पूर्णतया पवित्र एवं सुस्पष्ट हैं। वह एक ऐसी स्त्री है जो अपने कार्य एवं मित्रों के लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान कर सकती है। मैं व्यक्तिगत परिचय के आधार पर कह सकता हूँ कि उन्हें सोना-चाँदी-जैसी चीजें बिल्कुल भी नहीं भरमा सकती हैं।"

मिस स्मैडली के लेख 'द पीपल' में प्रकाशित होते रहते थे। जिसने उनके लेख पढ़े हैं वह उनकी लेखकीय विद्वता एवं ज्ञान की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। मिस स्मैडली बहुत अच्छी लेखिका हैं। वह जिस विषय को छूती हैं उसे जीवन्त कर देती हैं। राष्ट्रीय राजनीति, हिन्दुस्तान का युगान्तकारी इतिहास तथा हिन्दुस्तान के जलावतनों के बारे में जितना वह जानती हैं उतना शायद ही कोई हिन्दुस्तानी जानता हो। हिन्दुस्तान के गुलाम होने की वजह से या किन्हीं दूसरे कारणों से वह इससे बहुत लगाव रखती हैं तथा यहाँ के पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपने विचारों से अवगत कराती रहती हैं।

लेकिन लाला लाजपत राय को मिस स्मैडली के विचार अच्छे नहीं लगते। उनको मिस स्मैडली के लेखों में से बोल्शेविकवाली बू आती है। उनकी कोमल नाक इस बोल्शेविकी बू को सहन न कर सकी। तभी लाला जी पुराने किस्सों की तरह, मानस-गन्ध, मानस-गन्ध चीख रहे हैं और मिस स्मैडली के लेखों से तौबा-तौबा कर चुके हैं। इस बोल्शेविकी भय के कारण ही वे अपने मुख्य उद्देश्य को भी छोड़ चुके हैं और अब अच्छे बच्चों के 'बीबे राने' लेख प्रकाशित करने लगे हैं।

लाला लाजपत राय मजदूरों के कट्टर समर्थक हैं। ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। आप जेनेवा की अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस में मजदूरों के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए थे। आप मिस्टर मैकार्डोल्ड एण्ड कम्पनी को पूँजीपति तथा तानाशाही समर्थक लिखते थे। लेकिन आप कौन हैं? मजदूर? नहीं, बिल्कुल भी नहीं। आप तो असली पूँजीपति हैं तथा पूँजीपतियों से मित्रता रखते हैं। आप अपने स्वास्थ्य-लाभ के बहाने मिस्टर बिरला के साथ जेनेवा गये थे तथा वहाँ उसकी मदद करते रहे थे।

आपने लिखा है कि "मिस स्मैडली ने हमें कोई नयी बात नहीं बतायी। हम जानते हैं, और पिछले दो सौ बरसों से जानते रहे हैं कि इंग्लैण्ड विकासशील देशों में हिन्दुस्तान को अपनी जंग-जंगी तैयारियों के लिए उपयोग करता रहा है।" लेकिन लाला जी से कोई पूछे कि जब आप अंग्रेजों की दो सौ बरसों की चालबाजियों से परिचित हैं कि वह हिन्दुस्तान को युद्ध-कार्य के लिए इस्तेमाल करते रहे हैं, तब आपने इस उपयोग के बारे में शोर क्यों न मचाया? आपने पिछले युद्ध में ही ये सलाह क्यों नहीं दी कि हिन्दुस्तानियो सशक्त हो जाओ, अब वक्त है कि युद्ध के लिए इन्हें कोई मदद न दो और आजादी के लिए संघर्ष करो। लेकिन उस समय आप ऐसा क्यों कहते? उस समय तो आप आनन्दमग्न बैठे अमेरिका में तमाशा देख रहे थे और जर्मनी के विरुद्ध केवल लिखकर अंग्रेजों को यह भरोसा दिला रहे थे कि आप खतरनाक नहीं हैं और देश-निकाले के बाद आपके वापस हिन्दुस्तान आने में कोई डर नहीं है।

लाला जी, आप सर्वज्ञाता हैं। आपके समक्ष अनपढ़ सिख भाई अमेरिका में से जत्थे बना-बनाकर यहाँ आये और उन्होंने जनता का आह्वान किया कि जनता जंग में कोई सहायता न करे। अब वक्त है, लोहा गर्म है, जबरदस्त चोट मारकर आजाद हो जाओ। उनकी किसी ने नहीं सुनी। लेकिन वे शहादत पाकर अपना कर्तव्य पूरा कर गये। उस समय आप सबकुछ जानते थे। आपके लिए तो कोई नयी बात नहीं हुई। क्या आपके भीतर का सच मर गया था? आपको हिन्दुस्तान लौटने की चाह ने तड़पाया? दरअसल आप अंग्रेजों की नजर में भले बनकर हिन्दुस्तान आना चाहते थे, इसलिए आप शान्त रहे और मौन धारण कर लिया। अंग्रेजों के प्रति वफादार बनने के लिए आप जर्मन के विरुद्ध कलम उठाते रहे। क्यों लाला जी, ठीक है ना?

लाला जी, वैसे तो सबकुछ आप जानते ही हैं, लेकिन चेतावनी देनी बेहतर होगी। सुनिए, अब फिर युद्ध छिड़नेवाला है। अब फिर अंग्रेज हिन्दुस्तान को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करेंगे। देश की जनता को सचेत करने के लिए घोषणा करवा दो, ताकि जनता अंग्रेजों की चालबाजियों का शिकार न बने और अपने सहारे खड़े होने के लिए तैयार हो जाय। क्या आप मैदान में आयेंगे?

लेकिन लाला जी तो अपनी अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार काम करते हैं। वे किसी के कहने पर कोई काम नहीं करते। लेकिन जमाना बुरी चीज है। यह किसी तरह भी नहीं जीने देता। क्यों, यह अन्तरात्मा का प्रकाश किसी भीतरी कमजोरी का ही तो

दूसरा नाम नहीं ? प्रकाश प्रकाश में फर्क होता है, इसलिए लाला जी ने भी अपने भीतर कई प्रकार के प्रकाश रखे हैं। एक आत्म-प्रकाश तो वह था जो लाला लाजपत राय को विदेशों में दौड़ाये फिरता था, एक प्रकाश यह है जो उन्हें यहाँ ले आया है। एक प्रकार का प्रकाश लाहौर सेण्ट्रल जेल से छूटने के पश्चात हुआ था। तब लाला जी असहयोग आन्दोलनकारियों का नेतृत्व करते थे। समझ नहीं आता लाला जी, आप किस प्रकाश के पीछे फिरते हैं ? कृपया बताइए !

क्या साम्यवाद स्वयं में, कम-से-कम आजकल की दुनिया में, फिरकेदारी नहीं है ? क्या यह एक वर्ग का दूसरे वर्ग के विरुद्ध संगठित संघर्ष नहीं है ? लाला जी तो यही कहते हैं। लेकिन लाला जी, आप स्वयं बतायें कि आप साम्यवाद को फिरकेदारी समझकर ही तो नहीं आये ? दरअसल आपने सोचा होगा कि लो साम्यवादी क्या बनना, हिन्दू ही फिर बन जाते हैं।

लाला जी वर्ग-संघर्ष के भी विरुद्ध दिखायी देते हैं। क्योंकि मालूम होता है, जैसे लाला जी को दो सौ बरसों से हिन्दुस्तान का ज्ञान है, ऐसे ही जो कुछ महात्मा मार्क्स ने सिखाया है, उसका भी ज्ञान है। लाला जी ठहरे मजदूर नेता, तो फिर क्यों न वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त के खिलाफ हों, मजदूर-आन्दोलन की नींव रखनेवाले महात्मा कार्ल मार्क्स के मोटे-मोटे तीन सिद्धान्तों में से एक वर्ग-संघर्ष है और इसी सिद्धान्त पर चलते हुए आज दुनिया के मजदूर अपनी-अपनी सरकारों और अपने-अपने देश से टूटकर विश्व-मजदूर-संगठन में शामिल हो रहे हैं। लेकिन लाला जी, आज तो आप वर्ग-संघर्ष के खिलाफ होकर पूँजीवाद तथा तानाशाही को भी रहने देना चाहते हैं। आप शायद यह समझते हैं कि सामाजिक विकास में, जिस तरह आप-जैसे पूँजीवादी कहते हैं, दोनों की ही आवश्यकता है।

असल बात तो यह है कि लाला जी एक-एक करके अपने पहले के सिद्धान्त छोड़ रहे हैं और पुनः आर्यसमाजी बन रहे हैं। इसीलिए आपने बहुत खीजते हुए मिस एग्निस स्मैडली के राष्ट्रवादी सिद्धान्त बतानेवाले लेखों को प्रकाशित करना बन्द कर दिया है। इस तरह प्रकाशन बन्द करते हुए जो टिप्पणी आपने 13 अक्तूबर के पत्र में लिखी, उसने आपकी शान में चार चाँद नहीं लगाये। जहाँ तक हमें जानकारी है कि मिस एग्निस स्मैडली अपने लेख बिना कोई पारिश्रमिक लिये भेजती रही हैं। इस टिप्पणी पर अनेक विरोधात्मक पत्र आये हैं, जिन्हें आपने प्रकाशित करने का भी साहस नहीं दिखाया। 15 दिसम्बर के पत्र में आपने इस तरह मिस स्मैडली से क्षमा-याचना की है—"हम अपनी इच्छानुसार कार्य करते हैं। मिस स्मैडली को यह जानना चाहिए कि जिन्दगी में मेरा तो अन्य कोई दूसरा (देशसेवा के अलावा) काम ही नहीं है। अगर मैंने उन्हें कष्ट पहुँचाया है तो मुझे इसका बहुत अफसोस है। मुझे यह सोचना चाहिए था कि मेरे 'रिमार्क' उन्हें दुख पहुँचाने के अलावा और कर भी क्या सकते थे।"

लाला जी नित्य सूर्योदय से नौजवानों को उपदेश करने आरम्भ कर देते हैं, कि

शान्तिपूर्वक बुजुर्ग अनुभवी नेताओं के आदेशों को मानना चाहिए, तथा देश के लिए कुर्बानियाँ करनी चाहिए। लेकिन लाला जी जब स्वयं पग-पग पर ठोकरें खाते हैं, कई जगहों पर भूलें करते हैं, आत्म-संयम में नहीं रहते क्षमा-याचनाएँ करते फिरते हैं तो आप कैसे नौजवानों को नेतृत्व दे सकते हैं?

यदि सच पूछें तो 'पंजाब केसरी' अब बूढ़ा हो गया है। इसके खतरनाक दाँत झड़ गये हैं। नौकरशाही को डरानेवाले इसके भयानक नाखून तेज नहीं रहे। अब तो यह सर्कस के एक पालतू शेर की तरह बेअसर हो गया है। लाला पहलेवाले लाला नहीं रहे। पहलेवाला लाला नौजवान था। उसमें नौजवानोंवाला जोश, नौजवानवाला साहस और जवाँमर्दोंवाली कुर्बानी कूट-कूटकर भरी थी। वह लाला हिसाबी नहीं था। वह कुर्बानी के समुद्र में कूदना जानता था और नौजवान भाइयो, देश का दुर्भाग्य! अब यह लाला हम नौजवानों को उपदेश करने के लिए रह गया है। लाला स्वयं स्वीकारता है और कहता है कि "मेरी तौबा, मैं कोई कुर्बानी नहीं कर सकता।" लेकिन वह "नौजवानों को सही मार्ग" पर चलाने को अपना अधिकार समझता है। किसी कवि ने ठीक कहा है, "बदलता है रंग आसमाँ कैसे-कैसे?"

जनवरी, 1928

लाला लाजपत राय और नौजवान

लाला लाजपत राय आदि न जाने क्यों पहले से ही नौजवानों के भाषणों के विरोधी चले आ रहे हैं। आपने देश-भक्ति का आदर्श इटली के महान मैजिनी से सीखा। वह नौजवानों का बहुत बड़ा प्रशंसक था और कहता था कि "महान कार्यों का भार नौजवान ही उठाते हैं, उनकी आवाज में जादू-सा असर होता है। वे जनता को स्वतन्त्रता-संग्राम के लिए तुरन्त तैयार कर देते हैं।" ऐसे व्यक्ति को अपने जीवन का आदर्श बतानेवाला व्यक्ति इसके बिल्कुल विपरीत आचरण करे, यही देखकर आश्चर्य होता है। 1907-8 के पुराने गड़े मुर्दे क्या उखाड़ने? आजकल की ही कुछ बातें पर्याप्त हैं।

पिछले कौंसिल के चुनावों में लाला जी ने कांग्रेस का साथ छोड़कर उसकी मुखालिफत करनी आरम्भ कर दी और इसी दौरान ऐसी बातें कहते रहे जो कि किसी भी तरह उन्हें शोभा नहीं देती थीं। यह देखकर कुछ संवेदनशील नौजवानों ने आपके विरुद्ध आवाज उठायी। उसका बदला लेने के लिए लाला जी ने खुले आम भाषणों में कहा कि ये नौजवान बहुत ही खतरनाक एवं क्रान्ति-समर्थक हैं तथा लेनिन-जैसा नेता चाहते हैं। मुझमें लेनिन बनने की ताकत नहीं। साथ ही यह भी कह दिया कि इन नौजवानों को अगर पचास रुपये की भी नौकरी मिल गयी तो ये झाग की तरह बैठ

जायेंगे। इसका क्या अर्थ है ? क्या पचास रुपयों के लिए अपना आदर्श छोड़नेवाले नौजवान ही लेनिन के साथ थे ? क्या लेनिन इसी स्तर का है ? नहीं तो ऐसी बात क्यों कही गयी ? सिर्फ इसलिए कि लाला जी जहाँ एक ओर सरकार को इनके विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने के लिए उकसा रहे हैं, वहीं जनता की नजरों में नौजवानों का सम्मान गिराने की कोशिश भी कर रहे हैं।

सद्भावना से किसी व्यक्ति के किसी कार्य अथवा विचार की कठोरतम आलोचना करने का प्रत्येक को अधिकार है, लेकिन जानबूझकर किसी के विचारों की गलतबयानी करके, गलतफहमियाँ फैलाकर किसी को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करना प्रत्येक के लिए ना-मुनासिब है। तब चाहे वह लाला लाजपत राय हों या कोई अज्ञात नौजवान। उस चुनाव के बाद अनेक अवसर ऐसे आये, लेकिन उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।

लाला जी ने अभी दूसरा लेख लिखा है। वास्तव में तो यह 'कंट्री लीग', जिसका उल्लेख हम पिछले अंक में कर चुके हैं, के सन्दर्भ में लिखा गया था, लेकिन उसमें नौजवानों का उल्लेख आ गया। लाला जी फरमाते हैं कि आजकल के उग्र विचारोंवाले नौजवानों के भाषणों से जनता को बचना चाहिए। ये युगान्तकारी क्रान्ति समर्थक हैं। सम्पत्ति के लिए इनका प्रचार हानिकारक है, क्योंकि इससे वर्ग-संघर्ष छिड़ने का डर है। अन्त में कहा कि यह काम कुछ विदेशी शरारती तत्वों के उकसावे में आकर आरम्भ किया गया है। वह बाहरी तत्व हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में फूट डालना चाहते हैं, इसलिए वह बहुत खतरनाक हैं। साथ वह यह भी मानते हैं कि इस तरह के प्रचार से सम्पत्तिवाले व्यक्ति सरकार में मिल जायेंगे। इन प्रचारक नौजवानों को गुमराह, बाहरी तत्वों के उकसावे मे आये हुए, शरारती और लोभी बताते हुए अन्त में कहा है कि उन्हें पण्डित जवाहरलाल नेहरू पर पूरी तरह यकीन है। वे यदि कुछ कर रहे हैं अथवा कह रहे है तो नेकनीयती और समझबूझ से। बहुत खूब ! जिन पण्डित जवाहरलाल नेहरू आदि के विचारों पर रूस का अच्छा-खासा असर हुआ, जिन्होंने रूस से लौट आने पर इन विचारों का प्रचार शुरू किया, उनकी नीयत पर कोई शक नहीं। वह विदेशी प्रभाव या उकसावे में यह बातें नहीं कह रहे, बल्कि नेकनीयती से कह रहे हैं, लेकिन जो बेचारे देश से बाहर नहीं जा सके वे उकसावे में आये हुए हैं ! खूब ! बहुत खूब ! असल बात यह है कि जवाहरलाल नेहरू की हैसियत बहुत बड़ी हो गयी है। उनका नाम कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए पेश हो रहा है, तो उम्मीद भी है कि वे जल्द ही अध्यक्ष बन भी जायेंगे। उनके विरुद्ध लिखने पर ईंट का जवाब पत्थर से मिलने का भय होता है, लेकिन गुमनाम नौजवानों के लिए जो मन में आये कौन पूछता है। नौजवानों को संकटों में फँसाने की इन कोशिशो को हम क्या कहें ? लाला जी को यह शोभा नही देता। खैर, जो उनके मन में आये, करें। अब हम उनकी कुछ बातो का उत्तर देना चाहेंगे।

सबसे पहले हम यह बताना चाहते हैं कि इस प्रचार के लिए कोई विदेशी हमें गुमराह

नहीं कर रहा। नौजवान किसी के उकसावे में आकर ऐसी बातें नहीं कह रहे, बल्कि अब देश के भीतर से ही महसूस करने लगे हैं। लाला जी स्वयं बड़े आदमी हैं। प्रथम या द्वितीय श्रेणी में यात्रा करते हैं। उन्हें क्या मालूम कि तीसरे दर्जे में कौन सफर कर रहा है ? वे क्या जानें कि तीसरे दर्जे के मुसाफिरखानों में किसे लातें खानी पड़ती हैं ? वे मोटर में बैठकर अपने साथियों के साथ हँसते-खेलते हजारों गाँवों से गुजर जाते हैं। उन्हें क्या मालूम कि हजारों लोगों पर क्या गुजर रही है ? क्या आज हम 'अनहैप्पी इण्डिया' जैसी किताब के लेखक को हिन्दुस्तान के करोड़ों भूखों मरनेवालों की दयनीय दशा बतायें ? क्या आज उन करोड़ो मनुष्यों को देखकर जो सुबह से शाम तक खून-पसीना एक करके पेट भी नहीं भर सकते, यह आवश्यकता शेष रह जाती है कि कोई बाहर से आकर हमें कहे कि उनके पेट भरने की कोई राह निकालो। हम गाँवों में गर्मी, सर्दी, बारिश, धूप, लू और कोहरे में रात-दिन किसानों को काम करते देखते हैं। लेकिन वे बेचारे रूखी-सूखी रोटी खाकर गुजारा कर रहे हैं—और कर्ज़ के नीचे दबे हुए हैं। तब क्या हम तड़प नहीं उठते ? उस समय हमारे दिलों में आग नहीं भड़क उठती ? तब भी क्या हमें किसी की आवश्यकता रह जाती है जो आकर यह बताये कि इस व्यवस्था को बदलने का प्रयास करो। जब हम नित्य प्रति देखते हैं कि श्रमिक भूखे मरते हैं और निठल्ले बैठकर खानेवाले आनन्द मना रहे हैं, तो क्या हम इस आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की गड़बड़ियाँ अनुभव नहीं कर सकते ? जब हम देखते हैं कि दिनो-दिन अपराध बढ़ रहे हैं, जनता की हालत रोज-ब-रोज दयनीय होती जा रही है, तब क्या हमें बाहरी उपदेशकों की आवश्यकता है जो हमें आकर समझाये कि क्रान्ति की आवश्यकता है करोडों मनुष्यो को जिन्हें हमने अछूत कहकर दूर किया हुआ है उनकी दर्दनाक स्थितियाँ देखकर क्या क्रोध नहीं आता ? करोड़ो [लोग] दुनिया का बहुत विकास कर सकते हैं, वे जन-सेवा कर सकते थे, लेकिन आज वे हम पर भार महसूस होते हैं। उनकी इस स्थिति में सुधार के लिए, उन्हे पूर्ण रूप मे मनुष्य बनाने के लिए और कुओं की जगत पर चढ़ाने मात्र के लिए क्या आन्दोलनों की जरूरत नहीं है ? क्या उन्हें ऐसी अवस्था में लाने की आवश्यकता नहीं थी कि वे हमारी नरह कमा-खा सकें ? इसके लिए क्या सामाजिक और आर्थिक नियमों में क्रान्ति आवश्यक नहीं है ? क्या पंजाब तथा हिन्दुस्तान के नौजवानों मे स्वयं कुछ अहसास करने की कोई शक्ति शेष नहीं बची ? उनके सीने में क्या दिल नहीं धड़कता ? क्या उनके दिलो मे मानवता नही है ? नहीं तो फिर क्यो कहा जाता है कि विदेशियों ने आकर उन्हें उकसाया है। हाँ, हम यह स्वीकारते हैं कि रूसी क्रान्ति ने दुनिया के समक्ष एकदम नये विचार रखे हैं। हम मानते हैं कि जिन बातों का हल शायद अभी हम स्वयं नहीं सोच सकते, रूसी विद्वानों ने उम्र-भर कष्ट सहते हुए, तिल-तिल कर जीवन समाप्त करते हुए उनके बारे में अपने विचार दुनिया के सामने रखे। क्या उन्हें उसका कोई लाभ नहीं मिलना चाहिए ? क्या उनसे विचारों की समानता भी उकसावा है ? तब तो लाला जी को मैजिनी ने देश के नौजवानों को गुमराह करके देश-सेवा के

काम में जुटाया हुआ था !

प्रश्न यह है कि आजकल, 1928 में, क्या दुनिया को फ्रांसीसी क्रान्ति से कोई सबक सीखना और उसे अपना आदर्श बनाना चाहिए या आज नये वातावरण में नये विचारों से पूर्ण रूसी क्रान्ति को ? क्या लाला जी की यह मंशा है कि अब अंग्रेजी शासन के विरुद्ध ही क्रान्ति की जाये और शासन की बागडोर अमीरों के हाथों में दी जाये ? करोड़ों जन इसी तरह नहीं, इससे भी अधिक बुरी स्थितियों में पड़ें, मरें और तब फिर सैकडो बरसों के खून-खराबे के पश्चात् पुनः इस राह पर आयें और फिर हम अपने पूँजीपतियों के विरुद्ध क्रान्ति करें ? यह अव्वल दर्जे की मूर्खता होगी।

लाला जी ने एक-दो बार दास के शब्द सुन-सुनाकर गाँवों में संगठन की बात थोड़ी-सी उठायी थी। लाला जी को तो गाँवों में जाने की फुर्सत ही नहीं। वे क्या जाने कि जनता के विचार क्या हैं ? लोग साफ कहते हैं कि हमें इन्कलाब का क्या लाभ ? जब इसी तरह मर-खपकर दो जून की रोटी जुटनी है और तब भी नम्बरदार, तहसीलदार और थानेदार को इसी तरह अत्याचार करने हैं, इसी तरह किराये वसूल किये जाने हैं तो हम अभी की रोटी क्यो गँवायें ? किसी के लिए अपने प्रियजनों को क्यों उलझनों में डालें ? हम उन्हें क्या बतायें कि उनके पूर्वज कैसे थे, जिससे कि वे बलिदान के लिए तैयार हो जायें।

अच्छा, माना कि यहाँ क्रान्ति हो जाये तब लाला जी के विचार से किसे शासन सौंपा जायेगा ? क्या महाराज वर्द्धमान या महाराज पटियाला को और पूँजीपतियों के टोले को ? क्या आज अमेरिका और फ्रांस के करोडों मजदूर भूखों नहीं मर रहे ? हम सबकुछ जानते-बूझते क्यों कुएँ में गिरें ?

लाला जी कहते हैं कि हमारे साम्यवादी विचारों के प्रचार से पूँजीपति सरकार के साथ मिल जायेंगे। बहुत खूब ! पहले वे किधर हैं ? कितने पूँजीपति युगान्तरकारी बने हैं ? क्रान्ति से जिन्हें अपनी सम्पत्ति में थोड़ी-बहुत हानि होने का डर होगा वह हमेशा ही विरोधी हो जाते हैं। ऐसी स्थितियो मे उनकी जी-हजूरी के लिए आदर्श त्यागकर खामखाह अपने कार्य को हानि पहुँचाना उचित नहीं। दूसरी बात यह कि पूँजीपति जरा सोचें कि किस स्थिति में उन्हे लाभ है ? आज अंग्रेज उन्हे अपने स्वार्थ के लिए अपने साथ अवश्य मिला लेंगे, लेकिन धीरे-धीरे उनकी पूँजी छीनकर उसे अपने पूँजीपतियों के हाथों में स्थानान्तरित कर देंगे। तब यह गरीब [हो गये सरमायेदार] आज जैसे करोड़ों मजदूरों में शामिल होकर मरते-खपते रहेंगे। इन्हे सामाजिक व्यवस्था में अन्याय दिखायी देगा। अगर वे साम्यवादी क्रान्ति कर लें तो आज उनकी हरामखोरी पर तो जरूर रोक लगायी जायेगी लेकिन दुनिया की आम खुशहाली मे जो कि निश्चय ही आनी है, शामिल होकर वे बहुत सुखी रहेंगे। हिन्दुस्तानी पूँजीपति सोच लें कि उनको किस में लाभ है ?

लेकिन मजदूर-आन्दोलन उनके लिए रुक नहीं सकता, उनकी प्रतीक्षा भी नहीं कर सकता। नौजवानों को घबराना नहीं चाहिए। काम को आरम्भ करने में बहुत

कठिनाइयाँ पैदा होती हैं, धीरज से मुकाबला करना चाहिए। लाला जी और दूसरे प्रकार के पूँजीवादी नीतिवाले नेता भी धीरे-धीरे स्वयं मैदान से बाहर हो रहे हैं, जिस प्रकार पहले सुरेन्द्रनाथ बनर्जी हुए थे और आज सप्रू तथा चिन्तामणि जैसे हो रहे हैं। अन्त में मजदूर-आन्दोलन की जीत होगी। बोलो साम्यवादियों की जय! युगान्तकारी धारा कायम रहे!

नये नेताओं के अलग-अलग विचार

[जुलाई, 1928 के 'किरती' में छपे इस लेख में भगतसिंह ने सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू के विचारों की तुलना की है। बाद में इतिहास ने भगतसिंह के इन विचारों की पुष्टि की। —सं.]

असहयोग आन्दोलन की असफलता के बाद जनता में बहुत निराशा और मायूसी फैली। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों ने बचा-खुचा साहस भी खत्म कर डाला। लेकिन देश में जब एक बार जागृति फैल जाये तब देश ज्यादा दिन तक सोया नहीं रह सकता। कुछ ही दिनों बाद जनता बहुत जोश के साथ उठती तथा हमला बोलती है। आज हिन्दुस्तान में फिर जान आ गयी है। हिन्दुस्तान फिर जाग रहा है। देखने में तो कोई बड़ा जन-आन्दोलन नजर नहीं आता लेकिन नींव जरूर मजबूत की जा रही है। आधुनिक विचारों के अनेक नये नेता सामने आ रहे हैं। इस बार नौजवान नेता ही आगे बढ़े और देश में नौजवानों के ही आन्दोलन चल रहे हैं। नौजवान नेता ही देशभक्त लोगों की नजरों में आ रहे हैं। बड़े-बड़े नेता बड़े होने के बावजूद एक तरह से पीछे छोड़े जा रहे हैं। इस समय जो नेता आगे आये हैं वे हैं—बंगाल के पूजनीय श्री सुभाषचन्द्र बोस और माननीय पण्डित श्री जवाहरलाल नेहरू। यही दो नेता हिन्दुस्तान में उभरते नजर आ रहे हैं और युवाओं के आन्दोलनों में विशेष रूप से भाग ले रहे हैं। दोनों ही हिन्दुस्तान की आजादी के कट्टर समर्थक हैं। दोनों ही समझदार और सच्चे देशभक्त हैं। लेकिन फिर भी इनके विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर है। एक को भारत की प्राचीन संस्कृति का उपासक कहा जाता है तो दूसरे को पक्का पश्चिम का शिष्य। एक को कोमल हृदयवाला भावुक कहा जाता है और दूसरे को पक्का युगान्तकारी। हम इस लेख में उनके अलग-अलग विचारों को जनता के समक्ष रखेंगे, ताकि जनता स्वयं उनके अन्तर को समझ सके और स्वयं भी विचार कर सके। लेकिन उन दोनों के विचारों का उल्लेख करने से पूर्व एक और व्यक्ति का उल्लेख करना भी जरूरी है जो कि इन्हीं की भाँति स्वतन्त्रता प्रेमी है और युवा-आन्दोलनों की एक विशेष शख्सियत है। साधू वासवानी जी चाहे कांग्रेस के बड़े

नेताओं की भाँति जाने-माने तो नहीं, चाहे देश के राजनैतिक क्षेत्र में उनका कोई विशेष स्थान तो नहीं, तो भी युवाओं पर, जिन्हें कि कल देश की बागडोर सँभालनी है, उनका असर है और उनके ही द्वारा शुरू हुआ आन्दोलन 'भारत-युवा संघ' इस समय युवाओं में विशेष प्रभाव रखता है। उनके विचार बिल्कुल अलग ढंग के हैं। उनके विचार एक ही शब्द में बताये जा सकते हैं–"वापस वेदों की ओर लौट चलो।" (बैक टु वेद्स)। यह आवाज सबसे पहले आर्यसमाज ने उठायी थी। इस विचार का आधार इस आस्था में है कि वेदों में परमात्मा ने संसार का सारा ज्ञान उँड़ेल दिया है। इससे आगे और अधिक विकास नहीं हो सकता। इसलिए हमारे हिन्दुस्तान ने चौतरफा जो प्रगति कर ली थी उससे आगे न दुनिया बढ़ी है और न बढ़ सकती है! खैर, वासवानी आदि इसी आस्था को मानते हैं। तभी एक जगह कहते हैं–

"हमारी राजनीति ने अब तक कभी तो मैजिनी और वाल्टेयर को अपना आदर्श मानकर उदाहरण स्थापित किये हैं और या कभी लेनिन और टालस्टाय से सबक सीखा। हालाँकि उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि उनके पास उनसे कहीं बड़े आदर्श हमारे पुराने ऋषि हैं।" वे इस बात पर यकीन करते हैं कि हमारा देश एक बार तो विकास की अन्तिम सीमा तक जा चुका था और आज हमें आगे कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं, बल्कि पीछे लौटने की जरूरत है।

आप एक कवि हैं। कवित्व आपके विचारों में सभी जगह नजर आता है। साथ ही यह धर्म के बहुत बड़े उपासक हैं। यह 'शक्ति' धर्म चलाना चाहते हैं। यह कहते हैं, "इस समय हमें शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है।" वह 'शक्ति' शब्द का अर्थ केवल भारत के लिए इस्तेमाल नहीं करते। लेकिन उनको इस शब्द से एक प्रकार की देवी का, एक विशेष ईश्वरीय प्राप्ति का विश्वास है। वे एक बहुत भावुक कवि की तरह कहते हैं:

"For in solitude have communicated with her, our admired Bharat Mata, And my aching head has heard voices saying... The day of freedom is not far off."... Sometimes indeed a strange feeling visits me and I say to myself-Holy, holy is Hindustan. For still is she under the protection of her mighty Rishis and their beauty is around us, but we behold it not.

अर्थात एकान्त में भारत की आवाज मैंने सुनी है। मेरे दुखी मन ने कई बार यह आवाज सुनी है कि 'आजादी का दिन दूर नहीं'... कभी-कभी बहुत अजीब विचार मेरे मन में आते हैं और मैं कह उठता हूँ, हमारा हिन्दुस्तान पाक और पवित्र है, क्योंकि पुराने ऋषि उसकी रक्षा कर रहे हैं और उनकी खूबसूरती हिन्दुस्तान के पास है। लेकिन हम उन्हें देख नहीं सकते।

यह कवि का विलाप है कि वह पागलों या दीवानों की तरह कहते रहते हैं: "हमारी माता बड़ी महान है। बहुत शक्तिशाली है। उसे परास्त करनेवाला कौन पैदा हुआ है।" इस तरह वे केवल मात्र भावुकता की बातें करते हुए कह जाते हैं: "Our national movement must become a purifying mass movement, if it is to fulfil its destiny without falling into class war one of the dangers of Bolshevism."

अर्थात हमें अपने राष्ट्रीय जन-आन्दोलन को देश-सुधार का आन्दोलन बना देना चाहिए। तभी हम वर्गयुद्ध के बोल्शेविज़्म के खतरों से बच सकेंगे। वह इतना कहकर ही कि गरीबों के पास जाओ, गाँवों की ओर जाओ, उनको दवा-दारू मुफ्त दो—समझते हैं कि हमारा कार्यक्रम पूरा हो गया। वे छायावादी कवि हैं। उनकी कविता का कोई विशेष अर्थ तो नहीं निकल सकता, मात्र दिल का उत्साह बढ़ाया जा सकता है। बस पुरातन सभ्यता के शोर के अलावा उनके पास कोई कार्यक्रम नहीं। युवाओं के दिमागों को वे कुछ नया नहीं देते। केवल दिल को भावुकता से ही भरना चाहते हैं। उनका युवाओं में बहुत असर है। और भी पैदा हो रहा है। उनके दकियानूसी और संक्षिप्त-से विचार यही हैं, जो कि हमने ऊपर बताये हैं। उनके विचारों का राजनैतिक क्षेत्र में सीधा असर न होने के बावजूद बहुत असर पड़ता है। विशेषकर इस कारण कि नौजवानों, युवाओं को ही कल आगे बढ़ना है और उन्हीं के बीच इन विचारों का प्रचार किया जा रहा है।

अब हम श्री सुभाषचन्द्र बोस और श्री जवाहरलाल नेहरू के विचारों पर आ रहे हैं। दो-तीन महीनों से आप बहुत-सी कान्फ्रेंसों के अध्यक्ष बनाये गये और आपने अपने-अपने विचार लोगों के सामने रखे। सुभाष बाबू को सरकार तख्तापलट गिरोह का सदस्य समझती है और इसीलिए उन्हें बंगाल अध्यादेश के अन्तर्गत कैद कर रखा था। आप रिहा हुए और गर्म दल के नेता बनाये गये। आप भारत का आदर्श पूर्ण स्वराज्य मानते हैं, और महाराष्ट्र कान्फ्रेंस में अध्यक्षीय भाषण में आपने इसी प्रस्ताव का प्रचार किया।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू स्वराज पार्टी के नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू जी के सुपुत्र हैं। बैरिस्टरी पास हैं। आप बहुत विद्वान हैं। आप रूस आदि का दौरा कर आये हैं। आप भी गर्म दल के नेता हैं और मद्रास कान्फ्रेंस में आपके और आपके साथियों के प्रयासों से ही पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव स्वीकृत हो सका था। आपने अमृतसर कान्फ्रेंस के भाषण में भी इसी बात पर जोर दिया। लेकिन फिर भी इन दोनों सज्जनों के विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर है। अमृतसर और महाराष्ट्र कान्फ्रेंसों के इन दोनों अध्यक्षों के भाषण पढ़कर ही हमें इनके विचारों का अन्तर स्पष्ट हुआ था। लेकिन बाद में बम्बई के एक भाषण में यह बात स्पष्ट रूप से हमारे सामने आ गयी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू इस जनसभा की अध्यक्षता कर रहे थे और सुभाषचन्द्र ने भाषण किया। वह एक

बहुत भावुक बंगाली हैं। उन्होंने भाषण आरंभ किया कि हिन्दुस्तान का दुनिया के नाम एक विशेष सन्देश है। वह दुनिया को आध्यात्मिक शिक्षा देगा। खैर, आगे वे दीवाने की तरह कहना आरम्भ कर देते हैं—चाँदनी रात में ताजमहल को देखो और जिस दिल की यह सूझ का परिणाम था, उसकी महानता की कल्पना करो। सोचो एक बंगाली उपन्यासकार ने लिखा है कि हममें 'यह हमारे आँसू ही जम-जमकर पत्थर बन गये हैं।' वह भी वापस वेदों की ओर ही लौट चलने का आह्वान करते हैं। आपने अपने पूनावाले भाषण में 'राष्ट्रवादिता' के सम्बन्ध में कहा है कि अन्तर्राष्ट्रीयतावादी, राष्ट्रीयतावाद को एक संकीर्ण दायरेवाली विचारधारा बताते हैं, लेकिन यह भूल है। हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता का विचार ऐसा नहीं है। वह न संकीर्ण है। न निजी स्वार्थ से प्रेरित है और न उत्पीड़नकारी है, क्योंकि इसकी जड़ या मूल तो यह 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' है, अर्थात 'सच, कल्याणकारी और सुन्दर।'

यह भी वही छायावाद है। कोरी भावुकता है। साथ ही उन्हें भी अपने पुरातन युग पर बहुत विश्वास है। वह प्रत्येक बात में अपने पुरातन युग की महानता देखते हैं। पंचायतीराज का ढंग उनके विचार में कोई नया नहीं। 'पंचायती राज और जनता का राज' वे कहते हैं कि हिन्दुस्तान में बहुत पुराना है। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि साम्यवाद भी हिन्दुस्तान के लिए नयी चीज नहीं। खैर, उन्होंने सबसे ज्यादा उस दिन के भाषण में जोर जिस बात पर दिया था वह यह थी कि हिन्दुस्तान का दुनिया के लिए एक विशेष सन्देश है। पण्डित जवाहरलाल आदि के विचार इसके बिल्कुल विपरीत हैं। वे कहते हैं—

"जिस देश में जाओ वही समझता है कि उसका दुनिया के लिए एक विशेष सन्देश है। इंग्लैण्ड दुनिया को संस्कृति सिखाने का ठेकेदार बनता है। मैं तो कोई विशेष बात अपने देश के पास नहीं देखता। सुभाष बाबू को उन बातों पर बहुत यकीन है।" जवाहरलाल कहते हैं—"Every youth must rebel. Not only in political sphere, but in social, economic and religious spheres also. I have not much use for any man who comes and tells me that such and such thing is said in Koran, Every thing unreasonable must be discarded even if they find authority for it in the Vedas and Koran." [यानी] "प्रत्येक नौजवान को विद्रोह करना चाहिए। राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र में भी। मुझे ऐसे व्यक्ति की कोई आवश्यकता नहीं जो आकर कहे कि फलाँ बात कुरान में लिखी हुई है। कोई बात जो अपनी समझदारी की परख में सही साबित न हो उसे चाहे वेद और कुरान में कितना ही अच्छा क्यों न कहा गया हो, नहीं माननी चाहिए।"

यह एक युगान्तकारी के विचार हैं और सुभाष के एक राजपरिवर्तनकारी के विचार हैं। एक के विचार में हमारी पुरानी चीजें बहुत अच्छी हैं और दूसरे के विचार में उनके

विरुद्ध विद्रोह कर दिया जाना चाहिए। एक को भावुक कहा जाता है और एक को युगान्तकारी और विद्रोही! पण्डित जी एक स्थान पर कहते हैं—"To those who still fondly cherish old ideas and are striving to bring back the conditions which prevailed in Arabia 1300 years ago or in the vedic Age in India. I say, that it is inconcievable that you can bring back the hoary past. The world of reality will not retrace its steps, the world of imagiation may remain stationary."

वे कहते हैं कि जो अब भी कुरान के जमाने के, अर्थात 1300 बरस पीछे के अरब की स्थितियाँ पैदा करना चाहते हैं या जो पीछे वेदों के जमाने की ओर देख रहे हैं उनसे मेरा यही कहना है कि यह तो सोचा भी नहीं जा सकता कि वह युग वापस लौट आयेगा, वास्तविक दुनिया पीछे नहीं लौट सकती, काल्पनिक दुनिया को चाहे कुछ दिन यहीं स्थिर रखो। और इसीलिए वे विद्रोह की आवश्यकता महसूस करते हैं।

सुभाष बाबू पूर्ण स्वराज के समर्थन में हैं क्योंकि वे कहते हैं कि अंग्रेज पश्चिम के वासी हैं। हम पूर्व के। पण्डित जी कहते हैं, हमें अपना राज कायम करके सारी सामाजिक व्यवस्था बदलनी चाहिए। उसके लिए पूरी-पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त करने की आवश्यकता है।

सुभाष बाबू मजदूरों से सहानुभूति रखते हैं और उनकी स्थिति सुधारना चाहते हैं। पण्डित जी एक क्रान्ति करके सारी व्यवस्था ही बदल देना चाहते हैं। सुभाष भावुक हैं—दिल के लिए नौजवानों को बहुत कुछ दे रहे हैं, पर मात्र दिल के लिए। दूसरा युगान्तकारी है जो कि दिल के साथ-साथ दिमाग को भी बहुत कुछ दे रहा है—"They should aim at Swaraj for the masses based on socialism. That was a revolutionary change which they could not bring about without revolutionary methods... Mere reform or gradual repairing of the existing machinery could not achieve the real proper Swaraj for the General Masses." [अर्थात] हमारा आदर्श समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार पूर्ण स्वराज्य होना चाहिए, जोकि युगान्तकारी तरीकों के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। केवल सुधार और मौजूदा सरकार की मशीनरी की धीमी-धीमी की गयी मरम्मत जनता के लिए वास्तविक स्वराज्य नहीं ला सकती।

यह उनके विचारों का ठीक-ठीक अक्स है। सुभाष बाबू राष्ट्रीय राजनीति की ओर उतने समय तक ही ध्यान देना आवश्यक समझते हैं जितने समय तक दुनिया की राजनीति में हिन्दुस्तान की रक्षा और विकास का सवाल है। परन्तु पण्डित जी राष्ट्रीयता के संकीर्ण दायरों से निकलकर खुले मैदान में आ गये हैं।

अब सवाल यह है कि हमारे सामने दोनों विचार आ गये हैं। हमें किस ओर झुकना चाहिए। एक पंजाबी समाचार-पत्र ने सुभाष की तारीफ के पुल बाँधकर पण्डित जी

आदि के बारे में कहा था कि ऐसे विद्रोही पत्थरों से सिर मार-मारकर मर जाते हैं। ध्यान रखना चाहिए कि पंजाब पहले ही बहुत भावुक प्रान्त है। लोग जल्द ही जोश में आ जाते हैं और जल्द ही झाग की तरह बैठ जाते हैं।

सुभाष आज शायद दिल को कुछ भोजन देने के अलावा कोई दूसरी मानसिक खुराक नहीं दे रहे हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि पंजाब के नौजवानों को इन युगान्तकारी विचारों को खूब सोच-विचारकर पक्का कर लेना चाहिए। इस समय पंजाब को मानसिक भोजन की सख्त जरूरत है और यह पण्डित जवाहरलाल नेहरू से ही मिल सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके अन्धे पैरोकार बन जाना चाहिए। लेकिन जहाँ तक विचारों का सम्बन्ध है, वहाँ तक इस समय पंजाबी नौजवानों को उनके साथ लगना चाहिए, ताकि वे इन्कलाब के वास्तविक अर्थ, हिन्दुस्तान में इन्कलाब की आवश्यकता, दुनिया में इन्कलाब का स्थान क्या है, आदि के बारे में जान सकें। सोच-विचार के साथ नौजवान अपने विचारों को स्थिर करें ताकि निराशा, मायूसी और पराजय के समय में भी भटकाव के शिकार न हों और अकेले खड़े होकर दुनिया से मुकाबले में डटे रह सकें। इसी तरह जनता इन्कलाब के ध्येय को पूरा कर सकेगी।

सांडर्स की हत्या के बाद : दो नोटिस

[17 नवम्बर, 1928 को लाला लाजपत राय का देहान्त हुआ। अक्तूबर में साइमन कमीशन के विरोध में लाहौर में हुए विशाल प्रदर्शन का लाला जी ने नेतृत्व किया था और पुलिस ने उन पर लाठियाँ बरसायी थीं। यही लाठियाँ लाला जी की मृत्यु का कारण बनीं। लाला जी की मृत्यु से देश में दुःख व आतंक छा गया। श्रीमती चितरंजन दास ने ऐसे माहौल में सवाल किया था, 'क्या देश में मानवता व जवानी अभी बाकी है?'

समय की जरूरत को समझते हुए, लाला लाजपत राय के प्रति बहुत अच्छी राय न होने के बावजूद, क्रान्तिकारियों ने लाला जी की मृत्यु को राष्ट्रीय अपमान समझा और इसका बदला लाला जी पर लाठियाँ बरसानेवाले ब्रिटिश पुलिस अधिकारी सांडर्स को मारकर लिया और वरिष्ठ पुलिस अधिकारी स्काट क्रान्तिकारियों से बच गया।

सांडर्स की हत्या 17 दिसम्बर को की गयी। 18 दिसम्बर को पूरे लाहौर में हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना के कमाण्डर इन चीफ के हस्ताक्षर से एक पर्चा बाँटा गया। 23 दिसम्बर को फिर एक नोटिस लगाया गया, जो अब तक पाठकों के सामने नहीं आया था।—सं.]

'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना'

नोटिस

नौकरशाही सावधान !

जे. पी. साण्डर्स की मृत्यु से लाला लाजपत राय जी की हत्या का बदला ले लिया गया।

यह सोचकर कितना दुख होता है कि जे. पी. साण्डर्स-जैसे एक मामूली पुलिस अफसर के कमीने हाथों देश की तीस करोड़ जनता द्वारा सम्मानित एक नेता पर हमला करके उनके प्राण ले लिये गये। राष्ट्र का यह अपमान हिन्दुस्तानी नवयुवकों और मर्दों को चुनौती थी।

आज संसार ने देख लिया है कि हिन्दुस्तान की जनता निष्प्राण नहीं हो गयी है, उनका [नौजवानों] खून जम नहीं गया, वे अपने राष्ट्र के सम्मान के लिए प्राणों की बाजी लगा सकते हैं। और यह प्रमाण देश के उन युवकों ने दिया है जिनकी स्वयं देश ने नेता निन्दा और अपमान करते हैं।

अत्याचारी सरकार सावधान !

इस देश की दलित और पीड़ित जनता की भावनाओं को ठेस मत लगाओ ! अपनी शैतानी हरकते बन्द करो। हमें हथियार न रखने देने के लिए बनाये तुम्हारे सब कानूनों और चौकसी के बावजूद पिस्तौल और रिवाल्वर इस देश की जनता के हाथ में आते ही रहेगे। यदि वह हथियार सशस्त्र क्रान्ति के लिए पर्याप्त न भी हुए तो भी राष्ट्रीय अपमान का बदला लेते रहने के लिए तो काफी रहेंगे ही। हमारे अपने लोग हमारी निन्दा और अपमान करें। विदेशी सरकार चाहे हमारा कितना भी दमन कर ले, परन्तु हम राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा करने और विदेशी अत्याचारियों को सबक सिखाने के लिए सदा तत्पर रहेंगे। हम सब विरोध और दमन के बावजूद क्रान्ति की पुकार को बुलन्द रखेंगे और फाँसी के तख्तों पर से भी पुकारकर कहेंगे—

इन्कलाब ज़िन्दाबाद !

हमें एक आदमी की हत्या करने का खेद है। परन्तु यह आदमी उस निर्दयी, नीच और अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अंग था जिसे समाप्त कर देना आवश्यक है। इस आदमी की हत्या हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन के कारिन्दे के रूप में की गयी है। यह सरकार संसार की सबसे अत्याचारी सरकार है।

मनुष्य का रक्त बहाने के लिए हमें खेद है। परन्तु क्रान्ति की वेदी पर कभी-कभी

रक्त बहाना अनिवार्य हो जाता है । हमारा उद्देश्य एक ऐसी क्रान्ति से है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर देगी ।

'इन्कलाब जिन्दाबाद !'

ह. बलराज
'सेनापति, पंजाब हिसप्रस'

18 दिसम्बर, 1928

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना

नोटिस

17 दिसम्बर की घटना सम्बन्धी

अब कोई रहस्य नहीं ! कोई अनुमान नहीं !

जे. पी. साण्डर्स मारा गया !
लाला लाजपत राय का बदला ले लिया गया !!

हिसप्रस की नियमावली (नियम 10—बी व सी) के अनुसार इस बात की सूचना दी जाती है कि यह सीधी राजनीतिक प्रकृति की बदले की कार्रवाई थी । भारत के महान बुजुर्ग लाला लाजपत राय पर किये गये अत्यन्त घृणित हमले से उनकी मृत्यु हुई । यह इस देश की राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा अपमान था और अब इसका बदला ले लिया गया है ।

इसके बाद सभी से यह अनुरोध है कि हमारे शत्रु पुलिस को हमारा पता-ठिकाना बताने में किसी किस्म की सहायता न दें । जो कोई इस [सलाह] के विपरीत काम करेगा, उस पर सख्त कार्रवाई की जायेगी ।

इन्कलाब-ज़िन्दाबाद !

हस्ताक्षर—बलराज
कमाण्डर-इन चीफ

23 दिसम्बर, 1928

7

असेम्बली बम काण्ड

असेम्बली हॉल में फेंका गया पर्चा

[8 अप्रैल, सन् 1929 को असेम्बली में बम फेंकने के बाद भगतसिंह और दत्त द्वारा बाँटे गये अंग्रेजी पर्चे का हिन्दी अनुवाद ।—सं.]

'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना'

सूचना

''बहरों को सुनाने के लिए बहुत ऊँची आवाज की आवश्यकता होती है'', प्रसिद्ध फ्रांसीसी अराजकतावादी शहीद वैलियाँ के यह अमर शब्द हमारे काम के औचित्य के साक्षी हैं ।

पिछले दस वर्षों में ब्रिटिश सरकार ने शासन-सुधार के नाम पर इस देश का जो अपमान किया है उसकी कहानी दोहराने की आवश्यकता नहीं और न ही हिन्दुस्तानी पार्लियामेण्ट पुकारी जानेवाली इस सभा ने भारतीय राष्ट्र के सिर पर पत्थर फेंककर उसका जो अपमान किया है, उसके उदाहरणों को याद दिलाने की आवश्यकता है । यह सब सर्वविदित और स्पष्ट है । आज फिर जब लोग 'साइमन कमीशन' से कुछ सुधारों के टुकड़ों की आशा में आँखें फैलाये हैं और इन टुकड़ों के लोभ में आपस में झगड़ रहे हैं, विदेशी सरकार 'सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक' (पब्लिक सेफ्टी बिल) और 'औद्योगिक विवाद विधेयक' (ट्रेड्स डिस्प्यूट्स बिल) के रूप में अपने दमन को और भी कड़ा कर लेने का यत्न कर रही है । इसके साथ ही आनेवाले अधिवेशन में 'अखबारों द्वारा राजद्रोह रोकने का कानून' (प्रेस सैडिशन एक्ट) जनता पर कसने की भी धमकी दी जा रही है ।

सार्वजनिक काम करनेवाले मजदूर नेताओं की अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियाँ यह स्पष्ट कर देती हैं कि सरकार किस रवैये पर चल रही है।

राष्ट्रीय दमन और अपमान की इस उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में अपने उत्तरदायित्व की गम्भीरता को महसूस कर 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' ने अपनी सेना को यह कदम उठाने की आज्ञा दी है। इस कार्य का प्रयोजन है कि कानून का यह अपमानजनक प्रहसन समाप्त कर दिया जाये। विदेशी शोषक नौकरशाही जो चाहे करे परन्तु उसकी वैधानिकता की नकाब फाड़ देना आवश्यक है।

जनता के प्रतिनिधियों से हमारा आग्रह है कि वे इस पार्लियामेण्ट के पाखण्ड को छोड़ कर अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों को लौट जायें और जनता को विदेशी दमन और शोषण के विरुद्ध क्रान्ति के लिए तैयार करें। हम विदेशी सरकार को यह बतला देना चाहते हैं कि हम 'सार्वजनिक सुरक्षा' और 'औद्योगिक विवाद' के दमनकारी कानूनों और लाला लाजपत राय की हत्या के विरोध में देश की जनता की ओर से यह कदम उठा रहे हैं।

हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का अवसर मिल सके। हम इन्सान का खून बहाने की अपनी विवशता पर दुखी हैं। परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतन्त्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रान्ति में कुछ-न-कुछ रक्तपात अनिवार्य है।

इन्कलाब जिन्दाबाद !

ह. बलराज
कमाण्डर इन चीफ

पिता के नाम पत्र

[यह पत्र भगतसिंह ने असेम्बली हॉल में बम फेंकने के बाद दिल्ली जेल से अपने पिता जी को लिखा था। –सं.]

दिल्ली जेल, 26 अप्रैल, 1929

पूज्य पिता जी,

अर्ज़ यह है कि हम लोग 22 अप्रैल को पुलिस की हवालात से दिल्ली जेल में तब्दील कर दिये गये हैं। लगभग एक महीने में सारा नाटक समाप्त हो जायेगा। ज्यादा चिन्ता करने की जरूरत नहीं। मुझे पता चला था कि आप यहाँ आये थे और किसी वकील आदि से बातचीत की थी, लेकिन कोई इन्तजाम न हो सका। परसों मुझे कपड़े मिल गये थे। जिस दिन आप आयेंगे अब मुलाकात हो जायेगी। वकील आदि की कोई खास जरूरत नहीं है। हाँ. एक-दो नुक्तों पर थोड़ा-सा मशविरा लेना चाहता हूँ, लेकिन वे कोई खास

महत्त्व नहीं रखते । आप बिना वजह ज्यादा कष्ट न करें । अगर आप मिलने आयें तो अकेले ही आना । बेबे जी [माँ] को साथ न लाना । खामखाह में वे रो पड़ेंगी और मुझे भी कुछ तकलीफ जरूर होगी । घर के सब हालात आपसे मुलाकात पर मालूम हो जायेंगे । हाँ, अगर सम्भव हो तो 'गीता रहस्य', 'नेपोलियन की जीवनगाथा' जो आपको मेरी किताबों में से मिल जायेंगी और अंग्रेजी के कुछ अच्छे उपन्यास लेते आना । बेबे जी (माँ) मामी जी, माता जी और चाची जी को चरणस्पर्श । कुलबीरसिंह, कुलतारसिंह को नमस्ते । बापू जी को चरणस्पर्श । इस समय पुलिस हवालात और जेल में हमसे बहुत अच्छा व्यवहार हो रहा है । आप किसी किस्म की फिक्र न करना । मुझे आपका पता नहीं मालूम, इसलिए इस पते पर लिख रहा हूँ ।

आपका आज्ञाकारी,
भगतसिंह

बम काण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान

[असेम्बली में बम फेंकने के बाद, 6 जून, सन् 1929 को दिल्ली के सेशन जज मि. लियोनाई मिडिल्टन की अदालत में दिया गया सरदार भगतसिंह और दत्त का ऐतिहासिक बयान । —सं.]

हमारे ऊपर गम्भीर आरोप लगाये गये हैं । इसलिए यह आवश्यक है कि हम भी अपनी सफाई में कुछ शब्द कहें । हमारे कथित अपराध के सम्बन्ध मे निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं : (1) क्या वास्तव में असेम्बली में बम फेंके गये थे, यदि हाँ तो क्यों ? (2) नीचे की अदालत में हमारे ऊपर जो आरोप लगाये गये हैं, वे सही हैं या गलत ?

पहले प्रश्न के पहले भाग के लिए हमारा उत्तर स्वीकारात्मक है, लेकिन तथाकथित चश्मदीद गवाहों ने इस मामले में जो गवाही दी है वह सरासर झूठ है । चूँकि हम बम फेंकने से इनकार नहीं कर रहे हैं इसलिए यहाँ इन गवाहों के बयानों की सच्चाई की परख भी हो जानी चाहिए । उदाहरण के लिए हम यहाँ बतला देना चाहते हैं कि सार्जेण्ट टेरी का यह कहना कि उन्होंने हममें से एक के पास से पिस्तौल बरामद की, वह एक सफेद झूठ मात्र है, क्योंकि जब हमने अपने आपको पुलिस के हाथों सौंपा तो हममें से किसी के पास कोई पिस्तौल न थी । जिन गवाहों ने कहा है कि उन्होंने हमें बम फेंकते देखा था, वे झूठ बोलते हैं । न्याय तथा निष्कपट व्यवहार को सर्वोपरि माननेवाले लोगों को इन झूठी बातों से एक सबक लेना चाहिए । साथ ही हम सरकारी वकील के उचित व्यवहार तथा अदालत के अभी तक के न्याय संगत रवैये को भी स्वीकार करते हैं ।

पहले प्रश्न के दूसरे हिस्से का उत्तर देने के लिए हमें इस बमकाण्ड-जैसी

ऐतिहासिक घटना के कुछ विस्तार में जाना पड़ेगा। हमने वह काम किस अभिप्राय से तथा किन परिस्थितियों के बीच किया, इसकी पूरी एवं खुली सफाई आवश्यक है।

जेल में हमारे पास कुछ पुलिस अधिकारी आये थे। उन्होंने हमें बतलाया कि लार्ड इर्विन ने इस घटना के बाद ही असेम्बली के दोनों सदनों के सम्मिलित अधिवेशन में कहा है कि "यह विद्रोह किसी व्यक्ति विशेष के खिलाफ नहीं, वरन सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था के विरुद्ध था।" यह सुनकर हमने तुरन्त भाँप लिया कि लोगों ने हमारे इस काम के उद्देश्य को सही तौर पर समझ लिया है।

मानवता को प्यार करने में हम किसी से भी पीछे नहीं हैं। हमें किसी से व्यक्तिगत द्वेष नहीं है और हम प्राणिमात्र को हमेशा आदर की निगाह से देखते आये हैं। हम न तो बर्बरतापूर्ण उपद्रव करनेवाले देश के कलंक हैं, जैसा कि सोशलिस्ट कहलानेवाले दीवान चमनलाल ने कहा है, और न ही हम पागल हैं, जैसा कि लाहौर के 'ट्रिब्यून' तथा कुछ अन्य समाचार पत्रों ने सिद्ध करने का प्रयास किया है। हम तो केवल अपने देश के इतिहास, उसकी मौजूदा परिस्थिति तथा अन्य मानवोचित आकांक्षाओं के मननशील विद्यार्थी होने का विनम्रतापूर्वक दावा-भर कर सकते हैं। हमें ढोंग तथा पाखण्ड से नफरत है।

एक अपकारजनक संस्था

यह काम हमने किसी व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा विद्वेष की भावना से नहीं किया है। हमारा उद्देश्य केवल उस शासन-व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिवाद प्रकट करना था जिसके हर एक काम से उसकी अयोग्यता ही नहीं वरन अपकार करने की उसकी असीम क्षमता भी प्रकट होती है। इस विषय पर हमने जितना विचार किया उतना ही हमें इस बात का दृढ़ विश्वास होता गया कि वह केवल संसार के सामने भारत की लज्जाजनक तथा असहाय अवस्था का ढिंढोरा पीटने के लिए ही कायम है और वह एक गैर-जिम्मेवार तथा निरंकुश शासन का प्रतीक है।

जनता के प्रतिनिधियों ने कितनी ही बार राष्ट्रीय माँगों को सरकार के सामने रखा, परन्तु उसने उन माँगों की सर्वथा अवहेलना करके हर बार उन्हें रद्दी की टोकरी में डाल दिया। सदन द्वारा पास किये गये गम्भीर प्रस्तावों को भारत की तथाकथित पार्लियामेण्ट के सामने ही तिरस्कारपूर्वक पैरों तले रौंदा गया है, दमनकारी तथा निरंकुश कानूनों को समाप्त करने की माँग करनेवाले प्रस्तावों को हमेशा अवज्ञा की दृष्टि से ही देखा गया है और जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों ने सरकार के जिन कानूनों तथा प्रस्तावों को अवांछित एवं अवैधानिक बताकर रद्द कर दिया था, उन्हें केवल कलम हिलाकर ही सरकार ने लागू कर लिया है।

संक्षेप में, बहुत कुछ सोचने के बाद भी एक ऐसी संस्था के अस्तित्व का औचित्य

हमारी समझ में नहीं आ सका जो, बावजूद उस तमाम शानो-शौकत के, जिसका आधार भारत के करोड़ों मेहनतकशों की गाढ़ी कमाई है, केवल मात्र एक दिल को बहलानेवाली, थोथी, दिखावटी और शरारतों से भरी हुई संस्था है। हम सार्वजनिक नेताओं की मनोवृत्ति को समझ पाने में भी असमर्थ हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि हमारे नेतागण भारत की असहाय परतन्त्रता की खिल्ली उड़ानेवाले इतने स्पष्ट एवं पूर्वनियोजित प्रदर्शनों पर सार्वजनिक सम्पत्ति एवं समय बर्बाद करने में सहायक क्यों बनते हैं।

हम इन्हीं प्रश्नों तथा मजदूर आन्दोलन के नेताओं की धरपकड़ पर विचार कर ही रहे थे कि सरकार ट्रेड-डिस्प्यूट बिल लेकर सामने आयी। हम इसी सम्बन्ध में असेम्बली की कार्यवाही देखने गये। वहाँ हमारा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि भारत की लाखों मेहनतकश जनता एक ऐसी संस्था से किसी बात की भी आशा नहीं कर सकती जो भारत के बेबस मेहनतकशों की दासता तथा शोषकों की गलाघोटू शक्ति की अहितकारी यादगार है।

अन्त में वह कानून, जिसे हम बर्बर एवं अमानवीय समझते हैं, देश के प्रतिनिधियों के सरों पर पटक दिया गया और इस प्रकार करोड़ों संघर्षरत भूखे मजदूरों को प्राथमिक अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया और उनके हाथों से उनकी आर्थिक मुक्ति का एकमात्र हथियार भी छीन लिया गया। जिस किसी ने भी कमरतोड़ परिश्रम करनेवाले मूक मेहनतकशों की हालत पर हमारी तरह सोचा है वह शायद स्थिर मन से यह सब नहीं देख सकेगा। बलि के बकरों की भाँति शोषकों—और सबसे बड़ी शोषक स्वयं सरकार है—की बलिवेदी पर आये दिन होनेवाली मजदूरों की इन मूक कुर्बानियों को देखकर जिस किसी का दिल रोता है वह अपनी आत्मा की चीत्कार की उपेक्षा नहीं कर सकता।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति के भूतपूर्व सदस्य स्वर्गीय श्री एस. आर. दास ने अपने प्रसिद्ध पत्र में अपने पुत्र को लिखा था कि इंग्लैण्ड की स्वप्ननिद्रा भंग करने के लिए बम का उपयोग आवश्यक था। श्री दास के इन्हीं शब्दों को सामने रखकर हमने असेम्बली भवन में बम फेंके थे। हमने वह काम मजदूरों की तरफ से प्रतिरोध प्रदर्शित करने के लिए किया था। उन असहाय मजदूरों के पास अपने मर्मान्तक क्लेशों को व्यक्त करने का और कोई साधन भी तो नहीं था। हमारा एकमात्र उद्देश्य था 'बहरे को सुनाना' और उन पीड़ितों की माँगों पर ध्यान न देनेवाली सरकार को समय रहते चेतावनी देना।

हमारी ही तरह दूसरों की भी परोक्ष धारणा है कि प्रशान्त सागर रूपी भारतीय मानवता की ऊपरी शान्ति किसी भी समय फूट पड़नेवाले एक भीषण तूफान की द्योतक है। हमने तो उन लोगों के लिए सिर्फ खतरे की घण्टी बजायी है जो आनेवाले भयानक खतरे की परवाह किये बगैर तेज रफ्तार से आगे की तरफ भागे जा रहे हैं। हम लोगों को सिर्फ यह बतला देना चाहते हैं कि 'काल्पनिक अहिंसा' का युग अब समाप्त हो चुका है और आज की उठती हुई नयी पीढ़ी को उसकी व्यर्थता में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं

रह गया है।

मानवता के प्रति हार्दिक सद्भाव तथा अमित प्रेम रखने के कारण उसे व्यर्थ के रक्तपात से बचाने के लिए हमने चेतावनी देने के इस उपाय का सहारा लिया है। और उस आनेवाले रक्तपात को हम ही नहीं, लाखों आदमी पहले से ही देख रहे हैं।

काल्पनिक अहिंसा

ऊपर हमने 'काल्पनिक अहिंसा' शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ पर उसकी व्याख्या कर देना भी आवश्यक है। आक्रामक उद्देश्य से जब बल का प्रयोग होता है उसे हिंसा कहते हैं, और नैतिक दृष्टिकोण से उसे उचित नहीं कहा जा सकता। लेकिन जब उसका उपयोग किसी वैध आदर्श के लिए किया जाता है तो उसका नैतिक औचित्य भी होता है। किसी हालत में बल-प्रयोग नहीं होना चाहिए, यह विचार काल्पनिक और अव्यावहारिक है। इधर देश मे जो नया आन्दोलन तेजी के साथ उठ रहा है, और जिसकी पूर्व सूचना हम दे चुके हैं वह गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी, कमाल पाशा, रिज़ा खाँ, वाशिंगटन, गैरीबाल्डी, लाफायेट और लेनिन के आदर्शों से ही प्रस्फुरित है और उन्हीं के पद-चिह्नों पर चल रहा है। चूँकि भारत की विदेशी सरकार तथा हमारे राष्ट्रीय नेतागण दोनों ही इस आन्दोलन की ओर से उदासीन लगते हैं और जान-बूझकर उसकी पुकार की ओर से अपने कान बन्द करने का प्रयत्न कर रहे हैं, अतः हमने अपना कर्तव्य समझा कि हम एक ऐसी चेतावनी दें जिसकी अवहेलना न की जा सके।

हमारा अभिप्राय

अभी तक हमने इस घटना के मूल उद्देश्य पर ही प्रकाश डाला है। अब हम अपना अभिप्राय भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि इस घटना के सिलसिले में मामूली चोटें खानेवाले व्यक्तियों अथवा असेम्बली के किसी अन्य व्यक्ति के प्रति हमारे दिलों में कोई वैयक्तिक विद्वेष की भावना नहीं थी। इसके विपरीत हम एक बार फिर स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम मानव-जीवन को अकथनीय पवित्रता प्रदान करते हैं और किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुँचाने के बजाय हम मानव-जाति की सेवा में हँसते-हँसते अपने प्राण विसर्जित कर देंगे। हम साम्राज्यशाही की सेना के भाड़े के सैनिकों-जैसे नहीं हैं जिनका काम ही नर-हत्या होता है। हम मानव-जीवन का आदर करते हैं और बराबर उसकी रक्षा का प्रयत्न करते हैं। इसके बाद भी हम स्वीकार करते हैं कि हमने जान-बूझकर असेम्बली भवन में बम फेंके।

घटनाएँ स्वयं हमारे अभिप्राय पर प्रकाश डालती हैं। और हमारे इरादों की परख हमारे काम के परिणाम के आधार पर होनी चाहिए न कि अटकल एवं मनगढ़न्त

परिस्थितियों के आधार पर। सरकारी विशेषज्ञ की गवाही के विरुद्ध हमें यह कहना है कि असेम्बली भवन में फेंके गये बमों से वहाँ की एक खाली बेंच को ही कुछ नुकसान पहुँचा और लगभग आधे दर्जन लोगों को मामूली-सी खरोंचें-भर आयीं। सरकारी वैज्ञानिकों ने कहा है कि बम बड़े जोरदार थे और उनसे अधिक नुकसान नहीं हुआ, इसे एक अनहोनी घटना ही कहना चाहिए। लेकिन हमारे विचार से उन्हें वैज्ञानिक ढंग से बनाया ही ऐसा गया था। पहले तो, दोनों बम बेंचों तथा डेस्कों के बीच की खाली जगह में ही गिरे थे। दूसरे, उनके फूटने की जगह से दो फिट पर बैठे हुए लोगों को भी, जिनमें मि. पी. आर. राउ, मि. शंकर राव तथा सर जार्ज शुस्टर के नाम उल्लेखनीय हैं, या तो बिलकुल ही चोटें नहीं आयीं या मात्र मामूली आयीं। अगर उन बमों में जोरदार पोटेशियम क्लोरेट और पिक्रिक एसिड भरा होता, जैसा कि सरकारी विशेषज्ञ ने कहा है, तो इन बमों ने उस लकड़ी के घेरे को तोड़कर कुछ गज की दूरी पर खड़े हुए लोगों तक को उड़ा दिया होता। और यदि उनमें कोई और भी शक्तिशाली विस्फोटक भरा जाता तो निश्चय ही वे असेम्बली के अधिकांश सदस्यों को उड़ा देने में समर्थ होते। यही नहीं, यदि हम चाहते तो उन्हें सरकारी कक्ष में फेंक सकते थे जो कि विशिष्ट व्यक्तियों से खचाखच भरा था। या फिर उस सर जान साइमन को अपना निशाना बना सकते थे, जिसके अभागे कमीशन ने प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के दिल में उसकी ओर से गहरी नफरत पैदा कर दी थी और जो उस समय असेम्बली की अध्यक्ष दीर्घा में बैठा था। लेकिन इस तरह का हमारा कोई इरादा नहीं था और उन बमों ने उतना ही काम किया जितने के लिए उन्हें तैयार किया गया था। यदि उससे कोई अनहोनी घटना हुई तो यही कि वे निशाने पर अर्थात निरापद स्थान पर गिरे।

एक ऐतिहासिक सबक

इसके बाद हमने इस कार्य का दण्ड भोगने के लिए अपने आपको जान-बूझकर पुलिस के हाथों समर्पित कर दिया। हम साम्राज्यवादी शोषकों को यह बतला देना चाहते थे कि मुट्ठी-भर आदमियों को मारकर किसी आदर्श को समाप्त नहीं किया जा सकता और न ही दो नगण्य व्यक्तियों को कुचलकर राष्ट्र को दबाया जा सकता है। हम इतिहास के इस सबक पर जोर देना चाहते थे कि परिचय-पत्र या परिचय-चिह्न (Letter de catchet) तथा बैस्टाइल (फ्रांस की कुख्यात जेल जहाँ राजनैतिक बन्दियों को घोर यन्त्रणाएँ दी जाती थीं। अनु.) फ्रांस के क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचलने में समर्थ नहीं हुए थे, फाँसी के फन्दे और साइबेरिया की खानें रूसी क्रान्ति की आग को बुझा नहीं पायी थीं। तो फिर क्या अध्यादेश और सेफ्टी बिल्स भारत में आजादी की लौ को बुझा सकेंगे? षड्यन्त्रों का पता लगाकर या गढ़े हुए षड्यन्त्रों द्वारा नौजवानों को सजा देकर या एक महान आदर्श के स्वप्न से प्रेरित नवयुवकों को जेलों में ठूँसकर क्या क्रान्ति का अभियान

रोका जा सकता है ? हाँ, सामयिक चेतावनी से, बशर्ते कि उसकी उपेक्षा न की जाये, लोगों की जानें बचायी जा सकती हैं और व्यर्थ की मुसीबतों से उनकी रक्षा की जा सकती है। आगाही देने का यह भार अपने ऊपर लेकर हमने अपना कर्तव्य पूरा किया है।

क्रान्ति क्या है ?

भगतसिंह से नीचे की अदालत में पूछा गया था कि क्रान्ति से हम लोगों का क्या मतलब है ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था कि क्रान्ति के लिए खूनी लड़ाइयाँ अनिवार्य नहीं हैं और न ही उसमें व्यक्तिगत प्रतिहिंसा के लिए कोई स्थान है। वह बम और पिस्तौल का सम्प्रदाय नहीं है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है—अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मजदूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया-भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया करनेवाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करनेवाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुँह पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

आमूल परिवर्तन की आवश्यकता

सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते सँभाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जो साम्राज्यशाही के नाम से विख्यात है, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है, और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व-शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढोंग के अतिरिक्त और

कुछ भी नहीं हैं। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होनेवाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूँजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

सामयिक चेतावनी

यह है हमारा आदर्श। और इसी आदर्श से प्रेरणा लेकर हमने एक सही तथा पुरजोर चेतावनी दी है। लेकिन अगर हमारी इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया और वर्तमान शासन-व्यवस्था उठती हुई जनशक्ति के मार्ग में रोड़े अटकाने से बाज न आयी तो क्रान्ति के इस आदर्श की पूर्ति के लिए एक भयंकर युद्ध का छिड़ना अनिवार्य है। सभी बाधाओं को रौंदकर आगे बढते हुए उस युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतन्त्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है! इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रान्ति की इस पूजा-वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाये हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग भी कम है। हम सन्तुष्ट हैं और क्रान्ति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इन्कलाब जिन्दाबाद!

बम कांड पर हाईकोर्ट में बयान

[दिल्ली के सेशन जज ने असेम्बली बम केस में भगतसिंह को आजन्म कारावास दण्ड दिया था। लाहौर हाईकोर्ट में उसकी अपील की गयी। दिल्ली अदालत के निर्णय की आलोचना करते हुए भगतसिंह ने हाईकोर्ट में यह दूसरा बयान दिया। —सं.]

हमारे उद्देश्य पर ध्यान दें

माई लार्ड,

हम न वकील हैं, न अंग्रेजी विशेषज्ञ हैं और न हमारे पास डिग्रियाँ ही हैं, इसलिए हमसे शानदार भाषणों की आशा न की जाये। हमारी प्रार्थना है कि हमारे बयान की भाषा सम्बन्धी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए, उसके वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयत्न किया जाये। दूसरे तमाम मुद्दों (पुआइन्ट्स) को अपने वकीलों पर छोड़ते हुए मैं स्वयं एक मुद्दे पर अपने विचार प्रकट करूँगा। यह मुद्दा इस मुकदमे में बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्दा यह है कि हमारी नीयत क्या थी और हम किस हद तक अपराधी हैं।

यह बड़ा पेचीदा मामला है, इसलिए कोई व्यक्ति भी आपकी सेवा में विचारों के विकास की वह ऊँचाई प्रस्तुत नहीं कर सकता, जिसके प्रभाव में हम एक खास ढंग से सोचने और व्यवहार करने लगे थे। हम चाहते हैं कि इसे दृष्टि में रखते हुए ही हमारी नीयत और अपराध का अनुमान लगाया जाये। प्रसिद्ध कानून-विशारद सालोमन के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके अपराधी आचरण के लिए उस समय तक सज़ा नहीं मिलनी चाहिए, जब तक उसका उद्देश्य कानून-विरोधी सिद्ध न हो।

सेशन जज की अदालत में हमने जो लिखित बयान दिया था, वह हमारे उद्देश्य की व्याख्या करता है और उस रूप में हमारी नीयत की व्याख्या भी करता था, लेकिन सेशन जज महोदय ने कलम की एक ही नोक से यह कहकर कि "आमतौर पर अपराध को व्यवहार में लानेवाली बात कानून के कार्य को प्रभावित नहीं करती और इस देश में क़ानूनी व्याख्याओं में कभी-कभार उद्देश्य और नीयत की चर्चा होती है", हमारी सब कोशिशें बेकार कर दीं।

माई लार्ड, इन परिस्थितियों में सुयोग्य सेशन जज को उचित था कि या तो अपराध का अनुमान परिणाम से लगाते या हमारे बयान की मदद से मनोवैज्ञानिक पहलू का फैसला करते, पर उन्होंने इन दोनों में से एक भी काम नहीं किया।

विचारणीय बात यह है कि असेम्बली में हमने जो दो बम फेंके, उनसे किसी भी व्यक्ति की शारीरिक या आर्थिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टिकोण से हमें जो सज़ा दी गयी है वह कठोरतम ही नहीं, बदला लेने की भावना वाली भी है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाये तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाये, उसके असली उद्देश्य का पता ही नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाये तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नज़रों में न रखने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नज़र आयेंगे, सरकारी कर वसूल करनेवाले अधिकारी चोर, जालसाज़ दिखायी देंगे और न्यायाधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लगेगा। इस तरह तो समाज-व्यवस्था और सभ्यता खूनखराबा, चोरी और जालसाज़ी

बनकर रह जायेगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाये, तो किसी हकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे ? उद्देश्य की उपेक्षा की जाये तो हर धर्मप्रचारक झूठ का प्रचारक दिखायी देगा और हरेक पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उसने करोड़ों भोले और अनजान लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को भुला दिया जाये तो हजरत ईसा मसीह गड़बड़ करानेवाले, शान्ति भंग करनेवाले और विद्रोह का प्रचार करनेवाले दिखायी देंगे और कानून के शब्दों में 'खतरनाक व्यक्तित्व' माने जायेंगे, लेकिन हम उनकी पूजा करते हैं, उनका हमारे दिलों में बेहद आदर है, उनकी मूर्ति हमारे दिलों में आध्यात्मिकता का स्पन्दन पैदा करती है। यह क्यों ? यह इसलिए कि उनके प्रयत्नों का प्रेरक एक ऊँचे दरजे का उद्देश्य था। उस युग के शासकों ने उनके उद्देश्य को नहीं पहचाना, उन्होने उनके बाहरी व्यवहार को ही देखा, लेकिन उस समय से लेकर इस समय तक उन्नीस शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, क्या हमने तब से लेकर अब तक कोई तरक्की नही की ? क्या हम ऐसी गल्तियाँ दोहरायेंगे ? अगर ऐसा हो तो मानना पड़ेगा कि इन्सानियत की कुर्बानियाँ, बड़े शहीदो के प्रयत्न बेकार रहे और आज भी हम उसी स्थान पर हैं, जहाँ आज से बीस शताब्दियो पहले थे ?

कानूनी दृष्टि से उद्देश्य का प्रश्न खास महत्त्व रखता है। जनरल डायर का उदाहरण लीजिए। उसने गोली चलायी और सैकड़ों निरपराध और शस्त्रहीन व्यक्तियों को मार डाला, लेकिन फौजी अदालत ने उसे गोली का निशाना बनाने का हुक्म देने की जगह लाखों रुपये इनाम दिये। एक और उदाहरण पर ध्यान दीजिए—श्री खड़गबहादुर-सिंह ने, जो एक गोरखा नौजवान है, कलकत्ता में एक अमीर मारवाड़ी को छुरे से मार डाला। यदि उद्देश्य को एक तरफ रख दिया जाये तो खडगबहादुर को मौत की सजा मिलनी चाहिए थी, लेकिन उसे कुछ वर्षों की सजा दी गयी और उस अवधि से भी बहुत पहले ही मुक्त कर दिया गया। क्या कानून मे कोई दरार रखनी थी, जो उसे मौत की सजा न दी गयी ? या उसके विरुद्ध हत्या का अभियोग सिद्ध न हुआ ? उसने हमारी ही तरह अपना अपराध स्वीकार किया था, लेकिन उसका जीवन बच गया और वह स्वतन्त्र है। मैं पूछता हूँ, उसे फाँसी की सजा क्यों नही दी गयी ? उसका कार्य जँचा-तुला था। उसने पेचीदा ढंग की तैयारी की थी। उद्देश्य की दृष्टि से उसका कार्य (एक्शन) हमारे कार्य की अपेक्षा ज्यादा घातक और संगीन था। उसे इसलिए बहुत ही नर्म सजा मिली क्योंकि उसका मकसद नेक था। उसने समाज को एक ऐसी जोंक से छुटकारा दिलाया, जिसने कई-एक सुन्दर लड़कियों का खून चूस लिया था। श्री खड़गबहादुरसिंह को महज कानून की प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए कुछ वर्षों की सज़ा दी गयी।

यह सिद्धान्त किस कदर गलत है। यह न्याय के बुनियादी सिद्धान्त का विरोध है, जो कि इस प्रकार है—'कानून आदमियों के लिए है, आदमी कानून के लिए नहीं है।' इस दशा में क्या कारण है कि हमें भी वे रियायतें न दी जायें, जो श्री खड़गबहादुरसिंह को मिली थीं। स्पष्ट है कि उसे नर्म सजा देते समय उसका उद्देश्य दृष्टि में रखा गया था, अन्यथा कोई

भी व्यक्ति जो किसी दूसरे को कत्ल करता है, फाँसी की सज़ा से नहीं बच सकता। क्या इसलिए हमें आम कानूनी अधिकार नहीं मिल रहा कि हमारा कार्य हुकूमत के विरुद्ध था या इसलिए कि इस कार्य का राजनैतिक महत्त्व है ?

माई लार्ड, इस दशा में मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाये कि जो हुकूमत इन कमीनी हरकतों में आश्रय खोजती है, जो हुकूमत व्यक्ति के कुदरती अधिकार छीनती है, उसे जीवित रहने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं। अगर यह कायम है, तो आरजी तौर पर और हजारों बेगुनाहों का खून इसकी गर्दन पर है। यदि कानून उद्देश्य नहीं देखता, तो न्याय नहीं हो सकता और न ही स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।

आटे में संखिया (ज़हर) मिलाना जुर्म नहीं, बशर्ते कि इसका उद्देश्य चूहों को मारना हो, लेकिन यदि इससे किसी आदमी को मार दिया जाये,यह कत्ल का अपराध बन जाता है। लिहाजा ऐसे कानूनों पर जो युक्ति (दलील) पर आधारित नहीं और न्याय के सिद्धान्त के विरुद्ध हैं, उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे ही न्याय-विरोधी कानूनों के कारण बड़े-बड़े श्रेष्ठ बौद्धिक लोगों ने बगावत के कार्य किये हैं।

हमारे मुकदमे के तथ्य बिल्कुल सादा हैं। 8 अप्रैल, 1929 को हमने सेन्ट्रल असेम्बली में दो बम फेंके। उनके धमाके से चन्द लोगों को मामूली खरोंचें आयीं। चेम्बर में हंगामा हुआ, सैकड़ों दर्शक और सदस्य बाहर निकल गये। कुछ देर बाद खामोशी छा गयी। मैं और साथी बी. के. दत्त खामोशी के साथ दर्शक गैलरी में बैठे रहे और हमने स्वयं अपने को प्रस्तुत किया कि हमें गिरफ्तार कर लिया जाये। हमें गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग लगाये गये और हत्या करने के प्रयत्न के अपराध में हमें सजा दी गयी, लेकिन बमों से 4-5 आदमियों को मामूली चोटें आयीं और एक बेंच को मामूली-सा नुकसान पहुँचा, और जिन्होने यह अपराध किया, उन्होने बिना किसी किस्म के हस्तक्षेप के अपने आपको गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया। सेशन जज ने स्वीकार किया कि यदि हम भागना चाहते तो भागने में सफल हो सकते थे। हमने अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए बयान दिया। हमे सज़ा का भय नहीं है। लेकिन हम यह नहीं चाहते कि हमें गलत तौर पर समझा जाये। हमारे बयान से कुछ पैराग्राफ काट दिये गये हैं, यह वास्तविक स्थिति की दृष्टि से हानिकारक है।

समग्र रूप में हमारे वक्तव्य के अध्ययन से साफ प्रकट होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाज़ुक दौर से गुजर रहा है। इस दशा में काफी ऊँची आवाज में चेतावनी देने की जरूरत थी और हमने अपने विचारानुसार चेतावनी दी है। सम्भव है कि हम गलती पर हों, हमारा सोचने का ढंग जज महोदय के सोचने के ढंग से भिन्न हो, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमें अपने विचार प्रकट करने की स्वीकृति न दी जाये और गलत बातें हमारे साथ जोड़ी जाये।

इन्कलाब जिन्दाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के सम्बन्ध में हमने जो व्याख्या अपने बयान मे दी, उसे उड़ा दिया गया है; हालाँकि यह हमारे उद्देश्य का खास भाग

है । इन्कलाब जिन्दाबाद से हमारा वह उद्देश्य नहीं था, जो आमतौर पर गलत अर्थ मे समझा जाता है । पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी जिसे हम प्रकट करना चाहते थे । हमारे इन्कलाब का अर्थ पूँजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अन्त करना है । मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया समझे बिना किसी के सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नहीं है । गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ-साफ अन्याय है ।

इसकी चेतावनी देना बहुत आवश्यक था । बेचैनी रोज-रोज बढ़ रही है । यदि उचित इलाज न किया गया, तो रोग खतरनाक रूप ले लेगा । कोई भी मानवीय शक्ति इसकी रोकथाम न कर सकेगी । अब हमने इस तूफान का रुख बदलने के लिए यह कार्रवाई की । हम इतिहास के गम्भीर अध्येता हैं । हमारा विश्वास है कि यदि सत्ताधारी शक्तियाँ ठीक समय पर सही कार्रवाइयाँ करतीं, तो फ्रांस और रूस की खूनी क्रान्तियाँ न बरस पड़तीं । दुनिया की कई बड़ी-बड़ी हुकूमतें विचारों के तूफान को रोकते हुए खून-खराबे के वातावरण में डूब गयीं । सत्ताधारी लोग परिस्थितियों के प्रवाह को बदल सकते हैं । हम पहली चेतावनी देना चाहते थे और यदि हम कुछ व्यक्तियों की हत्या करने के इच्छुक होते, तो हम अपने मुख्य उद्देश्य में असफल हो जाते । माई लार्ड, इस नीयत (भावना) और उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए हमने कार्रवाई की और इस कार्रवाई के परिणाम हमारे बयान का समर्थन करते हैं । एक और नुक्ता (प्वाइण्ट) स्पष्ट करना आवश्यक है । यदि हमें बमों की ताकत के सम्बन्ध में कतई ज्ञान न होता, तो हम पं. मोतीलाल नेहरू, श्री केलकर, श्री जयकर और श्री जिन्ना जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय व्यक्तियों की उपस्थिति में क्यों बम फेंकते ? हम नेताओं के जीवन किस तरह खतरे में डाल सकते थे ? हम पागल तो नहीं हैं ? और अगर पागल होते तो जेल में बन्द करने के बजाय हमें पागलखाने में बन्द किया जाता । बमो के सम्बन्ध में हमें निश्चित जानकारी थी । उसी के कारण हमने ऐसा साहस किया । जिन बेंचों पर लोग बैठे थे, उन पर बम फेंकना कहीं आसान काम था, लेकिन खाली जगह पर बमों का फेंकना निहायत मुश्किल काम था । अगर बम फेंकनेवाले सही दिमागों के न होते या वे परेशान (असन्तुलित) होते तो बम खाली जगह की बजाय बेंचों पर गिरते । तो मैं कहूँगा कि खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हमने दिखायी, उसके लिए हमें इनाम मिलना चाहिए । इन हालात में, माई लार्ड, हम सोचते हैं कि हमे ठीक तरह समझा नहीं गया । आपकी सेवा में हम सज़ाओं में कमी कराने नहीं आये, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए आये हैं । हम चाहते हैं कि न तो हमसे अनुचित व्यवहार किया जाये, न ही हमारे सम्बन्ध में अनुचित राय दी जाये । सजा का सवाल हमारे लिए गौण है ।

8

संघर्ष-संघर्ष, अंतिम दम तक संघर्ष

[12 जून, 1929 को असेम्बली बम-काण्ड का ड्रामा खत्म हुआ । भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को उम्र कैद की सज़ा दी गयी । भगतसिंह को दिल्ली से पंजाब ले जाकर मियाँवाली जेल में व दत्त को लाहौर केन्द्रीय जेल में रखा गया । उन्होंने गाड़ी में ही अगली कार्रवाई की योजना बना डाली कि जेल में राजनीतिक बन्दियों से व्यवहार में सुधार कराये जायें । उनके अनुसार, "सज़ा पाने के बाद हमने देखा कि हमारे वर्ग के राजनीतिक कैदियों की स्थिति बहुत खराब थी ।" 17 जून, 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने अलग-अलग नोटिसों में 15 जून से भूख हड़ताल शुरू करने की सूचना और अपनी माँगों की सूची सरकार को पेश की । बाद में, 14 सितम्बर, 1929 को ये दोनों नोटिस पं. मदनमोहन मालवीय द्वारा लेजिस्लेटिव असेम्बली में पढ़े गये । एक दूसरे पत्र में भगतसिंह ने स्वयं को लाहौर जेल भेजने की बात उठायी ।]

इन्सपेक्टर जनरल के नाम पत्र

मियाँवाली जेल
17 जून, 1929

सेवा में,
इन्सपेक्टर जनरल, जेल,
पंजाब (जेल्स) लाहौर ।

प्रिय महोदय,

इस सचाई के बावजूद कि साण्डर्स शूटिंग केस में गिरफ्तार दूसरे नौजवानों के साथ ही मुझ पर भी मुकदमा चलेगा, मुझे दिल्ली से मियाँवाली जेल में बदल दिया गया है । उस केस की सुनवाई 26 जून, 1929 से शुरू होनेवाली है । मैं यह समझने में सर्वथा असमर्थ रहा हूँ कि मुझे यहाँ तब्दील करने के पीछे क्या भावना काम कर रही है ।

जो भी हो, न्याय की माँग है कि हरेक अभियुक्त (अण्डर ट्रायल) को वे सब सुविधाएँ मिलनी चाहिए, जिनसे वह अपने मुकदमे की तैयारी कर सके और लड़ सके। मैं यहाँ रहते कैसे अपना वकील नियुक्त कर सकता हूँ ? क्योंकि यहाँ रहते हुए मुझे अपने पिता या दूसरे रिश्तेदारों से सम्पर्क रखना कठिन है। यह स्थान काफी अलग-थलग है, रास्ता कठिन है और लाहौर से काफी दूर है।

मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे तुरन्त लाहौर सेण्ट्रल जेल में बदलने का आदेश दें, जिससे कि मुझे अपना केस लड़ने की तैयारी करने का उचित अवसर मिले। आशा है कि शीघ्र ध्यान दिया जायेगा।

आपका,
भगतसिंह

भूख हड़ताल का नोटिस (भगतसिंह)

प्रति,

इन्स्पेक्टर जनरल जेल, पंजाब, लाहौर।

17 जून, 1929

असेम्बली बम काण्ड दिल्ली के सम्बन्ध में मुझे आजीवन कैद की सजा दी गयी है, इसलिए स्पष्ट है कि मैं राजनीतिक बन्दी हूँ। दिल्ली जेल में मुझे विशेष भोजन मिलता था, लेकिन यहाँ पहुँचने पर मेरे साथ सामान्य अपराधियों जैसा सलूक किया जा रहा है इसलिए मैं 15 जून, 1929 की सुबह से भूख हड़ताल पर हूँ। इन दो-तीन दिनों में मेरा वजन दिल्ली जेल की अपेक्षा 6 पौंड कम हो गया है। मैं आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि मुझे हर हाल में राजनैतिक बन्दी का विशेष दर्जा मिलना चाहिए। मेरी माँगें हैं : अच्छा भोजन (दूध, घी, दाल, चावल, आदि के साथ), मशक्कत न करायी जाय, स्नान-सुविधा (साबुन, तेल-हजामत आदि), प्रत्येक तरह का साहित्य (इतिहास अर्थशास्त्र, राजनैतिक विज्ञान, कविता, नाटक या उपन्यास, समाचार-पत्र)। मुझे उम्मीद है कि आप उदारतापूर्वक मेरे कथन पर विचार करेंगे और अपना फैसला लेंगे।

भगतसिंह
आजीवन बन्दी न. 117,
मियाँवाली जेल

भूख हड़ताल का नोटिस (बी. के. दत्त)

सुपरिंटेण्डेण्ट, सेण्ट्रल जेल, लाहौर
17 जून, 1929

मैं आपको और उच्च अधिकारियों को बताना चाहता हूँ कि राजनैतिक बन्दी होने के नाते मैं निम्न सुविधाओं की माँग कर सकता हूँ। असेम्बली में बम फेंकने के बाद लार्ड इर्विन ने अपने अन्तिम भाषण में कहा था, "यह बम किसी एक व्यक्ति की ओर नहीं बल्कि एक संस्था पर फेंके गये हैं।" फिर श्री मिडल्टन ने अपने फैसले में उल्लेख किया है कि "यह लोग (दत्त और भगतसिंह) अदालत में 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'सर्वहारा जिन्दाबाद' आदि के नारे लगाते हुए आते थे जिससे साफ जाहिर होता है कि वे किस तरह के राजनैतिक विचारों के हैं। इन्हीं विचारों के प्रचार को रोकने के लिए मैं इनको आजीवन कैद की सज़ा देता हूँ।"

मैं पुनः यह बता देना चाहता हूँ कि जब कोई यूरोपियन स्वार्थपरता के लिए स्वय कानून की अवहेलना करता है तब जेल में उसको सभी तरह की सुविधाएँ मिलती हैं। उसे बिजलीवाला हवादार कमरा, सबसे अच्छी खुराक (दूध, मक्खन, डबल रोटी, गोश्त आदि) और अच्छे कपड़े मिलेंगे। लेकिन हम राजनैतिक कैदियों को ये सुविधाएँ मुहैया नहीं करायी जा रहीं। लार्ड इर्विन और श्री मिडल्टन की टिप्पणियाँ यह साबित करने के लिए पर्याप्त हैं कि हम राजनैतिक बन्दी हैं और इस आधार पर मैं माँग करता हूँ कि हमारे साथ राजनीतिक बन्दियों-जैसा व्यवहार होना चाहिए। मुझे अच्छी खुराक मिलनी चाहिए, जोकि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

इसके साथ ही राजनीति पर विचार करने के लिए मुझे हर प्रकार का साहित्य और समाचार पत्र मिलने चाहिए। लोग हमें अक्खड़, गुमराह और बेसब्र नौजवान कहते हैं, इसलिए हमें अलग-अलग पुस्तकें पढ़ने का अवसर दिया जाना चाहिए, ताकि हम देख सकें कि हम वास्तव में बेसब्र, गुमराह नौजवान हैं या नहीं, हमारे काम का विचार ठीक है या नहीं। मेरी माँगें इस प्रकार हैं–

1. अच्छी खुराक, सुबह दूध और डबल रोटी। दोपहर को दाल, चावल, घी, सब्जी और चीनी और रात को डबल रोटी, गोश्त और चटनी।
2. मशक्कत न करायी जाय।
3. समाचार पत्र और हर प्रकार का साहित्य।
4. स्नान, साबुन, तेल, कंघी और हज्जाम आदि सहित।
5. अच्छी रिहायश।
6. अपने कपड़े।

सज़ा से पहले और बाद में मुझे यह सब चीजें जेल के खर्च पर मिलती थीं, लेकिन यहाँ यह सब चीजें नहीं मिल रहीं। इसलिए मैंने 14 जून, 1929 से भूख हड़ताल शुरू कर दी है। इन्हीं कारणों से मियाँवाली जेल में मेरे साथी भगतसिंह ने भी भूख हड़ताल की हुई है। मैं तब तक भूख हड़ताल नहीं छोड़ूँगा जब तक कि सरकार हमारी माँगों को नहीं स्वीकार करती।

मैं तुरन्त उत्तर की आशा करता हूँ। जो भी कोई सरकारी अधिकारी आयेगा उससे इस विषय पर विचार-विमर्श के लिए मैं तैयार हूँ।

बी. के. दत्त,
कैदी, असेम्बली बम केस

यतीन्द्रनाथ दास का पत्र

सम्राट
बनाम
यतीन्द्रनाथ दास

3 जुलाई, 1929

महोदय,

आपका प्रार्थी अत्यन्त सम्मानपूर्वक प्रार्थना करता है कि—

(क) करीब चार या पाँच दिन पहले रेलवे स्टेशन पुलिस लॉकअप, जहाँ मैं बन्दी रखा गया था, में शिनाख्ती परेड करवायी गयी।

(ख) कि रेलवे स्टेशन से गन्दे कपड़े पहने व करीब तीस-पैंतालीस साल की उम्र के बीच के कुछ पंजाबी भंगियों और कुलियों को लाया गया। इन व्यक्तियों को इस लॉकअप पर एक गली से लाया गया, जिसके करीब मजिस्ट्रेट की कार में पहचान करानेवाला बैठा हुआ था। जब मुझे इन छह व्यक्तियों के बीच खड़ा कर दिया गया और यद्यपि ऐसी शिनाख्ती परेड के बेतुकेपन के विषय में मैंने मजिस्ट्रेट से रोष भी प्रकट किया, क्योंकि यह पंजाबी न सिर्फ अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट थे उनके चेहरे के रूप तक से कोई भी यह बता सकता था कि वे बंगाली नहीं हैं। लेकिन मेरी आपत्तियों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, हालाँकि मैंने मजिस्ट्रेट से बार-बार यह कहा कि न्यायोचित यह होगा कि मुझे मुझसे मिलते-जुलते बंगालियों के बीच खड़ा किया जाये, क्योंकि पुलिस के पास मेरा फोटो, मेरे हस्ताक्षर आदि थे जिन्हें वे मेरी शिनाख्त करने आनेवाले व्यक्ति या व्यक्तियों को दिखा सकते थे।

(ग) कि जो व्यक्ति मेरी शिनाख्त करने आया उससे मैं जिस तारीख को उसने

कथित रूप से मुझे देखा, उस बारे में कुछ सवाल पूछना चाहता था लेकिन न सिर्फ मेरा अनुरोध नहीं माना गया, वहाँ आये पुलिस-अधिकारियों द्वारा शिनाख्त करने आये, उस व्यक्ति को वहाँ से घसीटकर दूर ले जाया गया।

(घ) कि यह कार्रवाई बड़े गोपनीय तरीके व जल्दबाजी से की गयी और मुझे डर है कि इसमें गम्भीर अनियमितता पायी गयी है, जिससे मेरे बचाव में भारी नुकसान होगा।

यतीन्द्रनाथ दास,
3 जुलाई, 1929
2.10 अपराह्न

[क्रान्तिकारियों के विरुद्ध मुकदमे की कार्रवाई किस ढंग से चल रही थी और ब्रिटिश न्याय किस तरह से एक ढकोसला था, यह तथ्य मजिस्ट्रेट के नाम यतीन्द्रनाथ दास के इस विरोध-पत्र से भली-भाँति उजागर होता है। सं.]

होम मेम्बर के नाम पत्र

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
24 जुलाई, 1929

श्रीमानजी,

होम मेम्बर, भारत सरकार,

हमें (भगतसिंह और बी. के. दत्त) 12 जून, 1929 को दिल्ली के असेम्बली बम केस में आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। जब तक हम दिल्ली जेल में हवालाती कैदी (अंडर ट्रायल) रहे, हमारे साथ बड़ा अच्छा सलूक किया गया, पर जब से उस जेल से हमारी तब्दीली मियाँवाली और लाहौर सेण्ट्रल जेल में हुई, तब से हमारे साथ इखलाकी कैदियों-जैसा सलूक किया जा रहा है। पहले ही दिन हमने उच्च अधिकारियों से अच्छी खुराक तथा कुछ और सुविधाओं की माँग की और जेल की रोटी खाने से इन्कार कर दिया। हमारी माँगें इस प्रकार थीं–

1. राजनैतिक कैदी होने के नाते हमें अच्छा खाना दिया जाना चाहिए, इसलिए हमारे भोजन का रूप यूरोपियन कैदियों जैसा होना चाहिए। हम उसी तरह की खुराक की माँग नहीं करते, बल्कि खुराक का स्तर वैसा चाहते हैं।
2. हमें मशक्कत के नाम पर जेलों में सम्मानहीन काम करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।
3. बिना किसी रोक-टोक के पूर्व स्वीकृत (जिन्हें जेल-अधिकारी स्वीकृत कर लें)

पुस्तकें और लिखने का सामान लेने की सुविधा होनी चाहिए।

4. कम-से-कम एक दैनिक पत्र हरेक कैदी को मिलना चाहिए।
5. हरेक जेल में राजनैतिक कैदियों का एक विशेष वार्ड होना चाहिए, जिसमें उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की सुविधा होनी चाहिए, जो यूरोपियनों के लिए होती हैं और एक जेल में रहनेवाले सभी राजनैतिक कैदी उस वार्ड में इकट्ठे रहने चाहिए।
6. स्नान के लिए सुविधाएँ मिलनी चाहिए।
7. अच्छे कपड़े मिलने चाहिए।

हमारी ये माँगें पूर्णतया उचित हैं पर जेल-अधिकारियों ने हमें एक दिन कहा कि उच्च अधिकारियों ने हमारी माँगें मानने से इन्कार कर दिया है। इससे भी अधिक यह कि जबरदस्ती खाना देनेवाले हमारे साथ बड़ा बुरा सलूक करते हैं। 1 जून, 1929 को भगतसिंह जबरदस्ती खाना देने के पन्द्रह मिनट बाद तक पूरी तरह बेसुध पड़े रहे। अतः हम यह निवेदन करते हैं कि बिना किसी ढील के यह दुर्व्यवहार बन्द किया जाना चाहिए।

इसके साथ ही हमें यू. पी. जेल कमेटी में पण्डित जगतनारायण और खान बहादुर हाफिज हिदायत हुसेन की सिफारिश की तरफ इशारा करने की आज्ञा दी जाये। उन्होंने यह सिफारिश की है कि राजनैतिक कैदियों के साथ अच्छी क्लास के कैदियों-जैसा सलूक किया जाना चाहिए।

हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारी माँगों की ओर ध्यान दिया जाये।

आपके,
भगतसिंह और बी. के. दत्त

नोट : राजनीतिक कैदियों से हमारा मतलब उन लोगों से है, जिन्हें शासन-विरोधी कार्रवाइयों के कारण सजा हुई। उदाहरण के लिए, 1915-17 के लाहौर षड्यन्त्र केस, काकोरी षड्यन्त्र केस व अन्य विद्रोही केसों में सजा पाये लोग।

पंजाब जेल जाँच समिति के अध्यक्ष को पत्र

6 सितम्बर, 1929
अध्यक्ष, पंजाब जेल जाँच समिति,
और भूख हड़ताल उपसमिति के सदस्यगण,,शिमला
(द्वारा-अधीक्षक, बोर्स्टल इंस्टीच्यूट, लाहौर)

प्रिय महोदयो,

निम्न बातें हम आपके विचारार्थ रखने की अनुमति चाहते हैं—

(1) कि हमने भूख हड़ताल छोड़ी नहीं थी बल्कि सिर्फ सरकार के निर्णय तक इसे स्थगित किया था। हमारा विचार है कि हमने यह बात आपसे स्पष्ट कह दी थी और बार-बार फिर आपसे यह आग्रह किया था कि इसे जनता और साथ ही सरकार के सामने स्पष्ट कर दिया जाये।

हमें बहुत हैरानी हुई कि 4 सितम्बर, 1929 के 'सिविल एण्ड मिलिट्री गजट' में भूख हड़ताल उपसमिति के सदस्यों की ओर से दिये प्रेस-वक्तव्य में इस बात का कोई जिक्र नहीं किया गया। फिर भी हमें उम्मीद है कि आप जल्द-से-जल्द यह कर देंगे।

(2) हमने सिर्फ आश्वासन पर भूख हड़ताल स्थगित नहीं की थी कि आप और जाँच समिति के बाकी सदस्य हमारे सन्तोष के अनुसार हमारी सारी माँगें मानते हुए इसकी सिफारिश कर देंगे। हममें से एक ने तो आपसे कहा था कि सरकार ने विगत समय में बहुत सारे मामलों में जाँच समिति की ऐसी सिफारिशें नहीं मानी थीं, क्योंकि इससे उनका लक्ष्य पूरा नहीं होता, उदाहरणस्वरूप सकीन समिति का हवाला दिया गया था।

उन्हें संशय था कि आपकी समिति की सिफारिशों के साथ भी यही व्यवहार होगा।

जवाब में आपने कहा था कि हमारे पास आने से पहले आपने स्थानीय सरकार से बात कर ली थी, और आप हमें आश्वासन देने की स्थिति में थे कि सरकार इस मामले में ऐसा नहीं करेगी।

इस स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण आश्वासन पर ही, पूरे नौ घण्टे की बहस के बाद, हमने भूख हड़ताल स्थगित करना स्वीकार किया था।

इसके अतिरिक्त, आपने हमें विश्वास दिलाया था कि हमारी दृढ़ इच्छा के अनुसार साथी यतीन्द्रनाथ दास को, उनके स्वास्थ्य की नाजुक स्थिति को देखते हुए रिहा कर दिया जायेगा।

दूसरे यह कि विचाराधीन कैदियों के रूप में हमारी माँगें, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण हम सभी को (समेत साथी भगतसिंह और साथी दत्त) एक साथ आम बैरक में रखने की माँग, सरकार एक या दो दिन में ही मान लेगी।

पर हमारी आशंकाएँ सही सिद्ध हुईं, जब उपसमिति की तगड़ी व एकमत सिफारिशों के बावजूद सरकार ने न तो साथी दास को रिहा करना स्वीकार किया और न ही साथी भगतसिंह और साथी दत्त को हमारे साथ रखना।

अतः इस तथ्य के तत्काल प्रमाण मिल गये हैं कि सरकार को आपकी सिफारिशों की कोई परवाह नहीं और हमें उम्मीद है, आप हमें यह कहने के लिए क्षमा करेंगे कि सरकार यही चाहती थी कि हमारी भूख हड़ताल तुड़वाने के लिए जन-नेता होने के आपके

सम्माननीय पद का इस्तेमाल करे । हम और भी बता दें कि भूख हड़ताल स्थगित करने से पहले हमने बहुत ध्यान से इस बात पर विचार किया था कि जाँच समिति के वायदे पर कहाँ तक भरोसा किया जा सकता है ? इस सम्बन्ध मे साथी भगतसिंह और साथी दत्त की सलाह थी कि वर्तमान अवसर पर इसकी परीक्षा हो जायेगी । अब हम देख रहे हैं कि सरकार ने, जबकि आपकी दो बहुत साधारण सिफारिशों की ओर भी ध्यान नहीं दिया, हमें तुरन्त भूख हड़ताल आरम्भ करने के लिए विवश किया है ।

(3) साथी दास की अवस्था बेहद चिन्ताजनक है और यदि सरकार यह सोचती है कि उनके देहान्त के बाद हम अपने कर्त्तव्य से पीछे हट जायेंगे तो यह उसकी घातक गलती है । हम सभी यह बता रहे हैं कि हम सब उन्हीं के रास्ते पर चलने के लिए तैयार हैं । फिर भी निरन्तर संघर्ष को ध्यान में रखते हुए सुविधा के लिए हम स्वयं को दो गुटों में बाँट रहे हैं, जिनमें से पहला गुट फौरन भूख हड़ताल शुरू कर रहा है ।

यह निश्चय किया गया है कि जब पहले गुट के सदस्य का देहान्त हो जाय तो दूसरे गुट में से एक सदस्य आगे आयेगा ।

हमने यह निर्णय इसकी पूरी गम्भीरता को देखते हुए लिया है । अपने साथी दास के पद-चिह्नों पर चलने के सिवाय हमारे समक्ष और कोई भी सम्मानजनक व सरल रास्ता नहीं बचा है ।

हम अपने कॉज़ (Cause) को वाजिब व बाइज्जत समझते हैं, जिन्हें ऐसे गम्भीर कदम उठाने पर मजबूर करने की बजाय कोई भी सरकार मान लेती । हम फिर बता दें कि हम यह संघर्ष इस हद निश्चय के साथ कर रहे हैं कि वाजिब व पवित्र लक्ष्य के लिए मृत्युपर्यन्त संघर्ष करने के सिवाय और कोई भी चीज सम्माननीय व शानदार नहीं हो सकती ।

अन्त में हम यह महसूस करते हैं कि हम अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं कर रहे होंगे, यदि सरकार के सामने हमारे लक्ष्य को दिये समर्थन के लिए आपकी सच्ची हार्दिक दिलचस्पी और भारी कष्ट के प्रति आपका हार्दिक आभार न मानें ।

सच्चे दिल से, हम हैं आपके,
लाहौर षड्यन्त्र केस के
भूख हड़ताली

शुक्रवार, 6 सितम्बर, 1929
प्रातः दस बजे

भूख हड़ताल का हथियार

[ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध क्रान्तिकारियों ने जेल में भी प्रतिदिन संघर्ष जारी रखा। जेलों में सुधार के लिए जो भूख हड़ताल शुरू की गयी, वह कई मंजिलों से गुज़री। यतीन्द्रनाथ दास शहीद हुए, सरकार ने कुछ वायदे किये। एक बार भूख हड़ताल छोड़ी गयी, और फिर शुरू कर दी गयी, क्योंकि सरकार के वायदों का झूठ उघड़ गया था। जनता के सामने सरक़ार की असलियत उघाड़ना उस अभियान का हिस्सा था। फिर शुरू हुई भूख हड़ताल में सरकार ने कई बेहूदा ढंग अपनाये, लेकिन क्रान्तिकारी दृढ़ता से अपने विश्वासों पर स्थिर रहे। भगतसिंह और उनके साथी सभी कष्टों को हँसकर झेलने के सिद्धान्त पर चलते रहे।

इसी दौर में इस अध्याय में दिये गये इन दस्तावेजों की रचना हुई। लाहौर षड्यन्त्र केस की सुनवाई शुरू हो गयी थी, लेकिन भगतसिंह और उनके साथियो ने भारतीय जनता को यह दिखाना चाहा कि ब्रिटिश शासन में न्याय मात्र ढकोसला है। मुकदमे के प्रति उनका रवैया इन दस्तावेज़ों से स्पष्ट है। साथ ही वे अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन से अपने लगाव की अभिव्यक्ति अदालत से ही तार भेजकर करते रहे। —सं.]

गृहमन्त्री, भारत सरकार को तार

20 जनवरी, 1930
प्रति, गृहमन्त्री, भारत

भगतसिंह और अन्य कैदियों की ओर से

समिति के इस आश्वासन पर कि राजनैतिक कैदियों के साथ व्यवहार का प्रश्न हमारे सन्तोष के अनुसार शीघ्र ही अन्तिम रूप में हल किया जा रहा है, हमने अपनी भूख हड़ताल स्थगित कर दी थी। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के भूख हड़ताल सम्बन्धी प्रस्तावों की प्रतियाँ जेल-अधिकारियों ने रोक ली हैं। कांग्रेस प्रतिनिधि मण्डल को कैदियों से मिलने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया गया है। षड्यन्त्र केस से सम्बन्धित विचाराधीन व्यक्तियों पर पुलिस-अधिकारियों की आज्ञा से 23, 24 अक्तूबर, 1929 को बुरी तरह हमले किये गये।

गृह मन्त्रालय, भारत सरकार को स्मरणपत्र

द्वारा,
स्पेशल मजिस्ट्रेट, लाहौर षड्यन्त्र केस, लाहौर
28 जनवरी, 1930

20 जनवरी, 1930 के हमारे तार के सन्दर्भ में, जो नीचे दिया जा रहा है, हमें कोई उत्तर नहीं दिया गया—

गृह सदस्य भारत सरकार, दिल्ली—लाहौर साजिश केस के विचाराधीन (अंडर ट्रायल) बन्दियों ने इस आश्वासन पर भूख हड़ताल स्थगित की थी कि सरकार जेल कमेटी की सिफारिशों पर विचार कर रही है। अखिल भारतीय सरकारी कान्फ्रेंस समाप्त हो गयी लेकिन अभी तक कोई कार्रवाई नहीं की गयी—राजनैतिक बन्दियों के साथ प्रतिशोधात्मक व्यवहार अभी भी किया जा रहा है। निवेदन है कि लाहौर साजिश केस के बन्दियों के बारे में सरकार हमें अपने अन्तिम निर्णय से एक हफ्ते में अवगत करा दे।

जिस प्रकार उपरोक्त तार में संक्षेप में बताया है, आपके ध्यान में हम यह लाना चाहते हैं कि पंजाब की जेलों में बन्द लाहौर साजिश के बन्दियों और प्रत्येक राजनैतिक बन्दी को पंजाब जेल जाँच कमेटी के सदस्यों के इस आश्वासन से कि बहुत जल्द ही राजनैतिक बन्दियों के व्यवहार का प्रश्न हमारी तसल्ली के अनुसार हल किया जा रहा है, भूख हड़ताल स्थगित कर दी। महान शहीद यतीन्द्रनाथ दास की शहादत के बाद यह मामला लेजिस्लेटिव असेम्बली में उठा और सर जेम्स करीर ने सार्वजनिक रूप से यह आश्वासन दिया कि अब मन बदल गया है। और तभी यह कहा गया था कि राजनैतिक कैदियों के साथ व्यवहार के प्रश्न पर उन्हें बहुत सहानुभूति है। ऐसे राज-बन्दियों ने जो देश के भिन्न-भिन्न भागों की जेलों में भूख हड़ताल पर थे, उस समय—उपरोक्त आश्वासन और कुछ बन्दियों की बदतर हालत को सामने रखकर पास किये गये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पारित प्रस्ताव और निवेदन पर—अपनी हड़ताल स्थगित कर दी थी। उस समय से सभी स्थानीय सरकारों ने अपनी सिफारिशें पेश कर दी हैं। अलग-अलग राज्यों की जेलों के इन्सपेक्टर जनरलों की बैठक लखनऊ में अभी समाप्त हुई है। अखिल भारतीय सरकारी कान्फ्रेंस का विचार-विमर्श दिल्ली में हुआ है। अखिल भारतीय कान्फ्रेंस पिछले दिसम्बर महीने में हुई थी। एक माह से अधिक बीत चुका है, लेकिन सरकार ने अभी तक एक भी सिफारिश लागू नहीं की। इस तरह के लटकाये रखनेवाले व्यवहार में दूसरों की तरह हमें भी इस बात का भय है कि सम्भवत इस सवाल को एक ओर कर दिया गया है। पिछले चार महीनों में जिस प्रकार भूख हड़तालियों और राजनैतिक बन्दियों के साथ प्रतिशोधात्मक व्यवहार हुआ है, उससे हमारी आशंका और पक्की हुई है। जो यातनाएँ राजनैतिक बन्दियों को दी जा रही हैं,

उनके सम्बन्ध में पूरी जानकारी होना हमारे लिए बहुत कठिन है लेकिन फिर भी जेल की चारदीवारी में से जो थोड़ी-बहुत सूचनाएँ हमें मिल सकती हैं वह में वस्तुस्थिति से परिचित कराने के लिए पर्याप्त हैं। ऐसे ही कुछ उदाहरण हम नीचे दे रहे हैं, जिनमें हम विचलित हुए बिना नहीं रह सके और जो सरकारी आश्वासनों से मेल नहीं खाते—

1. श्रीयुत् ब.क. बनर्जी, जो दक्षिणेश्वर बम केस के सम्बन्ध में लाहौर सेण्ट्रल जेल में पाँच बरस की सज़ा भुगत रहे हैं, गत वर्ष आम भूख हड़ताल में शामिल हो गये। उनकी सज़ा के हिसाब से उनकी रिहाई पिछले दिसम्बर माह में हो जानी थी, लेकिन अब चार माह के लिए टाल दी गयी है। इस जेल में लाहौर साजिश के सम्बन्ध में आजीवन बन्दी की सज़ा भुगत रहे सतत्तर वर्षीय वृद्ध बाबा सोहनसिंह[1] को सज़ा दी गयी है। इसके अलावा अन्यों में से मियाँवाली जेल में बन्द सरदार काबलसिंह[2] और सरदार गोपालसिंह[3] को आम भूख हड़ताल में शामिल होने के कारण सज़ाएँ दी गयी हैं। इनमें से अनेक मामलों में कैद बढ़ा दी गयी है, जबकि कुछ स्पेशल क्लास से हटा दिये गये हैं।

2. इसी अपराध में अर्थात् आम भूख हड़ताल में शामिल होने के कारण आगरा सेण्ट्रल जेल में बन्द सर्वश्री शचीन्द्रनाथ सान्याल, रामकृष्ण खत्री, सुरेश चन्द्र भट्टाचार्य, रामकुमार सिन्हा, शचीन्द्रनाथ बख्शी, मन्मथनाथ गुप्त तथा काकोरी केस के अनेक बन्दियों को सख्त सज़ाएँ दी गईं। विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि श्री सान्याल को बेड़ियाँ डालकर एकान्त कोठरी में रखा गया है, जिसके कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया है। उनका वजन 18 पौण्ड कम हो गया है। मालूम हुआ कि श्री भट्टाचार्य तपेदिक के मरीज हैं। बरेली जेल के तीन बन्दियों को भी सज़ाएँ दी गयी हैं। उनकी समस्त सुविधाएँ वापस ले ली गयीं। यहाँ तक कि अपने सम्बन्धियों से मुलाकात एवं पत्र-व्यवहार करने-जैसे आम अधिकार भी छीन लिये गये हैं। उनके वजन काफी कम हो गए हैं। इस सम्बन्ध में पण्डित जवाहरलाल ने सितम्बर, 1929 और जनवरी, 1930 में दो प्रेस वक्तव्य दिये थे।

3. भूख हड़ताल के सम्बन्ध में अखिल भारतीय कांग्रेस का प्रस्ताव, स्वीकृत होने के पश्चात्, तार द्वारा अलग-अलग राजनैतिक बन्दियों को भेजा गया। इनकी कापियाँ जेल-अधिकारियों ने रोक लीं। फिर इस सम्बन्ध में सरकार ने बन्दियों से मुलाकात के लिए कांग्रेस प्रतिनिधि मण्डल को इजाजत नहीं दी।

4. पुलिस के उच्च अधिकारियों के आदेशानुसार 23 एवं 24 अक्तूबर, 1929 को लाहौर साजिश केस के मुलजिम बन्दियों पर वहशियाना हमला किया गया। विवरण समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए हैं। स्पेशल मजिस्ट्रेट पण्डित श्रीकृष्ण ने हममें से एक व्यक्ति का बयान दर्ज़ किया था। इस बयान की कापी आपको 16 दिसम्बर, 1929 को भेजी जा चुकी है। पर न तो पंजाब सरकार और न ही भारत सरकार ने उत्तर देना या

---

1 बाबा सोहनसिंह भकना (1867-1968), गदर पार्टी के पहले अध्यक्ष। 2 काबलसिंह गोविन्दपुरी। 3. गोपालसिंह कौमी।

हमारी ओर से जाँच कराने की माँग को आवश्यक समझा, जबकि दूसरी ओर से इसी घटना के सम्बन्ध में 'हिंसात्मक प्रतिशोध' लेने के इरादे से स्थानीय सरकार ने हम पर मुकदमा चलाने की बहुत आवश्यकता महसूस की है।

5. दिसम्बर, 1929 के अन्तिम सप्ताह मे लाहौर बोर्स्टल जेल में कैद बन्दी श्री किरणचन्द्र दास तथा अन्य आठ को जब मजिस्ट्रेट की अदालत में लाकर पेश किया गया तो उन्हें हथकड़ियों और जंजीरों से जकड़ा हुआ था। यह पंजाब जेल जाँच कमेटी और पंजाब की जेलो के इन्स्पेक्टर जनरल के समझौते का सरासर उल्लंघन था। यह ध्यान देने योग्य है कि ये जमानत योग्य जुर्म के तहत बन्दी थे। इस सम्बन्ध में डॉक्टर मोहम्मद आलम, लाला दुनीचन्द लाहौरवाले और लाला दुनीचन्द अम्बालावाले के लम्बे बयान 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित हुए हैं।

जब हमें राजनैतिक बन्दियों की समस्त यातनाओ का पता चला तो हमने भूख हड़ताल पुनः प्रारम्भ करने से गुरेज किया। भले ही इस बात का हमें अत्यन्त दुख था, लेकिन हमने सोचा कि समस्या जल्द ही तय हो जायेगी। लेकिन अब उपरोक्त उदाहरणों की रोशनी में क्या हम यह मानें कि भूख हड़ताल की अनकही, भयंकर यातनाएँ और यतीन्द्रनाथ दास की महान शहादत ऐसे ही चली गयी? क्या हम यही मानें कि उभर रहे जन-आन्दोलन को रोकने और सकटमय दौर को टालने की नीयत से ही सरकार ने हमें आश्वासन दिये थे? हम आशा करते हैं कि आप हमसे असहमत नहीं होंगे कि हमने काफी समय तक धैर्य से प्रतीक्षा की है। लेकिन हम अनन्त काल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। सरकार के अपने ढुलमुल व्यवहार एवं राजनैतिक बन्दियो के साथ दुर्व्यवहार के चलते हमारे पास पुनः सघर्ष शुरू करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह गया है। हम जानते हैं कि भूख हडताल आरम्भ करनी और उसे जारी रखना कोई सरल कार्य नही, लेकिन साथ ही हम बता देते हैं कि भारत अन्य बहुत-से यतीन्द्र और रामरक्खा और भानसिंह पैदा कर सकता है। (अन्तिम दोनों ने 1917 मे अण्डमान द्वीप मे अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया था। पहले ने 92 दिनों की भूख हड़ताल के बाद आखिरी साँस ली और दूसरा छह महीने तक चुपचाप अमानवीय अत्याचार सहते हुए महान नायक की मृत्यु को प्राप्त हुआ।)

राजनैतिक बन्दियों से अच्छे व्यवहार के समर्थन में जनता में से लोगों ने तथा हमने काफी कुछ कहा है। इसे दोहराने की जरूरत नहीं है। वर्गीकरण के मामले में सबसे अहम पक्ष और मूल मन्तव्य की स्थापना के बारे में हम कुछ शब्द कहना चाहेंगे। वर्गीकरण के मापदण्ड के प्रश्न पर हंगामा हुआ है। अलग-अलग सरकारों के सुझाये हुए मापदण्ड में से मूल मन्तव्य को बिल्कुल निकाल दिया गया है। यह वास्तव में अजब व्यवहार है। मात्र मूल मन्तव्य से ही किसी भी कार्यवाही की सही कद्र का निर्णय किया जा सकता है। क्या हम यह समझें कि सरकार—एक ऐसे हमलावर जो अपने शिकार का शोषण करते हुए उसे जान से मार डालता है और एक खड़गबहादुर, जो एक बदमाश

की हत्या करके नौजवान लड़की की इज्जत बचाता है और समाज को सबसे अधिक दुराचारी चापलूस से मुक्ति दिलाता है—दोनों के बीच अन्तर करने में असमर्थ है ? क्या दोनों को एक ही वर्ग का व्यक्ति समझा जाये ? क्या एक-जैसा अपराध करनेवाले दो व्यक्तियो मे कोई अन्तर नही जिनमे एक स्वार्थी है और दूसरा निस्वार्थ ? इसी तरह क्या एक सामान्य हत्यारे और एक राजनैतिक कार्यकर्ता में कोई अन्तर नहीं ? भले ही राजनैतिक कार्यकर्ता हिसा भी अपना ले, उसकी यह निस्वार्थता क्या उसे शेष अपराधियो से ऊँचा नही कर देती ? ऐसी स्थितियो में हमारी मान्यता है कि वर्गीकरण के मापदण्ड मे मन्तव्य को सबसे मुख्य पक्ष की तरह लिया जाना चाहिए।

गत वर्ष हमारी भूख हडताल आरम्भ होने पर जब इसी बात पर विचार के लिए अनेक जन-नेता—जिनमें डॉ. गोपीचन्द्र और लाला दुनीचन्द अम्बालावाले भी थे, जिन्होने पंजाब जेल मे जाँच कमेटी की सिफारिशो पर हस्ताक्षर किये हैं—हमारे पास आये और जब उन्होंने बताया कि आतंकवादी अपराध के बन्दियों में से सजा पाये राजनैतिक बन्दियो को सरकार विशेष वर्ग के बन्दी मानने पर विचार कर रही है, तब वास्तव में हत्या के अपराधियों को बाहर रखनेवाली हद तक की सिफारिश को समझौते के तौर पर मान लिया गया, लेकिन बाद में बहस के दौरान दूसरा ही रवैया अपना लिया गया और पजाब जेल जाँच कमेटी के लिए हवाले की शर्तोंवाला सयुक्त बयान इस तरह लिखा गया, जिससे प्रतीत होता था कि मूल मन्तव्य का प्रश्न बिल्कुल ही अलग कर दिया गया है और समूचा वर्गीकरण दो चीजों पर आधारित था—

1. अपराध का ढग, और
2. अपराधी का सामाजिक स्तर।

इस मापदण्ड ने समस्या के निदान के बजाय उसे पेचीदा बना दिया।

अहिसात्मक और हिसात्मक अपराधोंवाले राजनैतिक बन्दियों में दो वर्गोंवाली बात हम समझ सकते थे। लेकिन पजाब जेल जाँच कमेटी की सिफारिशों में सामाजिक स्तर का प्रश्न आ जाता है। जिस प्रकार चौधरी अफ़ज़ल हक़ ने रिपोर्ट से असहमति की टिप्पणी में ठीक ही कहा है कि स्वतन्त्रता के कार्य में जुटे रहने के कारण कंगाल हो गये राजनैतिक कार्यकर्ताओ का क्या होगा ? क्या उन्हे किसी न्यायाधीश की दया पर छोड़ दिया जाये, जो प्रत्येक को साधारण अपराधी कहकर अपनी वफादारी सिद्ध करने की कोशिश करता रहेगा। या यह आशा की जाये कि एक असहयोगी जेल से अच्छे व्यवहार की प्रार्थना करते हुए उन लोगों के आगे हाथ फैलायेगा, जिनके विरुद्ध वह जूझ रहा है ? क्या यह ढंग इस बेचैनी के कारण को दूर करने का है या बढाने का ? तर्क दिया जा सकता है कि जेलो के बाहर दरिद्रता में जीते लोगों को जेलों मे ऐशो-आराम की आशा नहीं रखनी चाहिए जहाँ कि उन्हें सजा के उद्देश्य से बन्दी बनाकर रखा गया है। पर वे कौन-से सुधार हैं जिनकी ऐश के लिए आवश्यकता होती है ? क्या वे मात्र साधारण जीवन-स्तर की आवश्यकताएँ नहीं हैं ? माँगी जानेवाली समस्त सुविधाओं के बावजूद

जेल सदा जेल ही रहेगी। बाहर के लोगों को आकर्षित करने के लिए [जेल] कोई चुम्बकीय शक्ति नहीं होती और न ही कभी हो सकती है। केवल जेल आने के लिए कोई भी अपराध नहीं करता। हम यह कहने का साहस रखते हैं कि किसी भी सरकार का यह बहुत घटिया तर्क होगा कि नागरिकों को इस दर्जे तक मोहताजगी हो गयी है, और उनके रहने का स्तर जेल के स्तर की अपेक्षा घटिया हो गया है। क्या ऐसे तर्क में सरकार के अस्तित्व की कोई सम्भावना शेष रह जाती है ? खैर, इस समय हमें इन बातों से कोई सरोकार नहीं है। हम कहना चाहते हैं कि बेचैनी को दूर करने का सबसे बेहतर ढंग यह है कि राजनैतिक बन्दियों को भिन्न वर्ग में रखा जाये। बाद में अगर आवश्यकता महसूस हो तो इसको पुनः दो वर्गों—एक, जो अहिंसक अपराधों में सज़ायाफ्ता हैं और दूसरे, जो हिंसक अपराधों में सज़ायाफ्ता हैं—में बाँटा जा सकता है। इस स्थिति में मन्तव्य निर्णयात्मक पहलू बन जाएगा। यह कहना कि राजनैतिक मामलों में मन्तव्य का फैसला नहीं किया जा सकता, एक झूठा दावा है। वह कौन-सी चीज है जो आज जेल-अधिकारियों से जेलों में 'राजनैतिकों' को साधारण सुविधाओं से वंचित करने के लिए कहती है ? वह कौन-सी चीज है जो उनकी नम्बरदारियाँ छीनती है ? वह कौन-सी चीज है जो अधिकारियों से यह कहती है कि उन्हें शेष बन्दियों से अलग रखा जाए ? यही चीज वर्गीकरण में भी मदद कर सकती है।

जहाँ तक विशेष माँगों का सम्बन्ध है, हम पहले ही पंजाब जेल जाँच कमेटी से अपने स्मरण-पत्र में पूरी तरह कह चुके हैं। फिर भी हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि किसी भी राजनैतिक बन्दी का चाहे जो अपराध हो, उसे सख्त और सम्मान-विरोधी मशक्कत नहीं मिलनी चाहिए। एक जेल में ऐसे सभी बन्दियों को एक ही वार्ड में साथ-साथ रखना चाहिए और स्थानीय भाषा या अंग्रेजी का कम-से-कम एक समाचार-पत्र उन्हें दिया जाना चाहिए। अध्ययन के लिए सभी आवश्यक सुविधाएँ दी जानी चाहिए और व्यक्तिगत साधनों से भोजन और कपड़े पर खर्च बढ़ाने की इजाजत दी जानी चाहिए।

हम अभी भी आशान्वित हैं कि सरकार हमें और जनता को दिये गये आश्वासन को अविलम्ब कार्यरूप में लायेगी, ताकि भूख हड़ताल का फिर अवसर न आये। आगामी सात दिनों में यदि सरकार ने अपना आश्वासन पूरा न किया तो हम पुनः भूख हड़ताल करने के लिए बाध्य होंगे।

आपके,
भगतसिंह, दत्त और अन्य कैदी
लाहौर षड्यन्त्र केस।

तीसरी इण्टरनेशनल, मास्को के अध्यक्ष को तार

24 जनवरी, 1930 को लेनिन-दिवस के अवसर पर लाहौर षड्यन्त्र केस के विचाराधीन कैदी अपनी गर्दनों में लाल रूमाल बाँधकर अदालत में आये। वे काकोरी-गीत गा रहे थे। मजिस्ट्रेट के आने पर उन्होंने 'समाजवादी क्रान्ति—जिन्दाबाद' और 'साम्राज्यवाद—मुर्दाबाद' के नारे लगाये। फिर भगतसिंह ने निम्नलिखित तार तीसरी इण्टरनेशनल, मास्को के अध्यक्ष के नाम प्रेषित करने के लिए मजिस्ट्रेट को दिया—

लेनिन-दिवस के अवसर पर हम सोवियत रूस में हो रहे महान अनुभव और साथी लेनिन की सफलता को आगे बढ़ाने के लिए अपनी दिली मुबारकबाद भेजते हैं। हम अपने को विश्व-क्रीन्तकारी आन्दोलन से जोड़ना चाहते हैं। मजदूर-राज की जीत हो। सरमायादारी का नाश हो।

साम्राज्यवाद—मुर्दाबाद !!

विचाराधीन कैदी,
लाहौर षड्यन्त्र केस।

24 जनवरी, 1930

[ट्रिब्यून, लाहौर, 25 जनवरी, 1930 में प्रकाशित]

हिन्दुस्तानी एसोसिएशन, बर्लिन के नाम तार

कृपया भारत में समाजवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन के झण्डा-बरदारों में से एक कामरेड कृष्ण वर्मा के देहान्त पर हमारा हार्दिक शोक अपने साथियों तक पहुँचाएँ।

उनका जीवन भारतीय मुक्ति के लम्बे संघर्ष के आदर्श में एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है, जो आजादी की लड़ाई के कार्यकर्त्ताओं को हमेशा प्रेरणा देता रहेगा।

विचाराधीन कैदी,
लाहौर षड्यन्त्र केस

5 अप्रैल, 1930

['ट्रिब्यून', लाहौर, 8 अप्रैल, 1930 में प्रकाशित।]

स्पेशल मजिस्ट्रेट, लाहौर के नाम

द्वारा, सुपरिण्टेण्डेण्ट, सेंट्रल जेल, लाहौर
11 फरवरी, 1930

मिस्टर मजिस्ट्रेट,

4 फरवरी, 1930 के सिविल एण्ड मिलिट्री गजट मे प्रकाशित आपके बयान के सम्बन्ध में यह जरूरी जान पड़ता है कि हम अपने अदालत मे न आने के कारणो से आपको परिचित करवायें, ताकि कोई गलतफहमी और गलत प्रस्तुति सम्भव न हो।

पहले हम यह कहना चाहेंगे कि हमने अभी तक ब्रिटिश अदालतो का बायकाट नहीं किया है। हम मि. लुइस की अदालत मे जा रहे हैं, जो हमारे विरुद्ध जेल एक्ट धारा 22 के अधीन मुकदमे की सुनवाई कर रहे हैं। यह घटना 29 जनवरी को आपकी अदालत में घटित हुई थी। लाहौर षड्यन्त्र केस के सम्बन्ध में यह कदम उठाने के लिए हमे विशेष परिस्थितियों ने मजबूर किया है। हम शुरू से ही महसूस करते रहे हैं कि अदालत के गलत रवैये द्वारा या जेल के अथवा अन्य अधिकारियो द्वारा हमारे अधिकारों की सीमा लाँघकर हमें निरन्तर जान-बूझकर परेशान किया जा रहा है ताकि हमारी पैरवी में बाधाएँ डाली जा सके। कुछ दिन पहले जमानत की दरख्वास्त में हमने अपनी तकलीफें आपके सामने रखी थी, लेकिन उस दरख्वास्त को कुछ कानूनी नुक्तो पर नामजूर करते हुए आपने बन्दियों की तकलीफों का जिक्र करना जरूरी नहीं समझा, जिनके आधार पर जमानत की दरख्वास्त दी गयी थी।

हम महसूस करते है कि मजिस्ट्रेट का पहला व मुख्य फर्ज़ यह होता है कि उसका व्यवहार निष्पक्ष व दोनो पक्षों के ऊपर उठा होना चाहिए। यहाँ तक कि उस दिन माननीय जस्टिस कोर्ट ने यह रूलिग दी थी कि मजिस्ट्रेट को दूसरी सबसे महत्त्वपूर्ण बात अपने सामने रखनी चाहिए कि विचाराधीन कैदी का अपनी पैरवी के सम्बन्ध में किसी मुश्किल का सामना न करना पड़े और यदि कोई मुश्किल हो तो उसे दूर करना चाहिए, अन्यथा पूरा मुकदमा एक मजाक बनकर रह जाता है। लेकिन ऐसे महत्त्वपूर्ण मुकदमे में मजिस्ट्रेट का व्यवहार इससे उल्टा रहा है, जिसमें 18 नवयुवकों पर गम्भीर आरोपो—जैसे हत्या, डकैती और षड्यन्त्र—के अधीन मुकदमा चलाया जा रहा है, जिनमे सम्भव है उन्हें मृत्युदण्ड दिया जाये। जिन प्रमुख मुद्दों पर हम आपकी अदालत में न आने के लिए विवश हुए हैं, वे इस तरह हैं—

विचाराधीन कैदियों मे से अधिकांश दूर-दराज प्रान्तों से हैं और सभी मध्य वर्गीय लोग हैं। ऐसी स्थिति में उनके सम्बन्धियों द्वारा उनकी पैरवी के लिए बार-बार आना न सिर्फ बहुत मुश्किल है, बल्कि बिल्कुल असम्भव है। वे अपने कुछ दोस्तों से मुलाकात

करना चाहते थे, जिन्हें वे अपनी पैरवी की सभी जिम्मेदारियाँ सौंप सकते थे। साधारण बुद्धि का भी यही तकाजा है कि उन्हे मुलाकात करने का हक हासिल है, इस मकसद के लिए बार-बार प्रार्थना की गयी, लेकिन सभी प्रार्थनाएँ अनसुनी रहीं।

श्री बी. के दत्त बगाल के रहनेवाले है और श्री कमलनाथ तिवारी बिहार के। दोनों अपनी-अपनी मित्र कुमारी लज्जावती व श्रीमती पार्वती से भेंट करना चाहते थे। लेकिन अदालत ने उनकी दरख्वास्त जेल-अधिकारियो को भेज-दी और उन्होंने यह कहकर दरख्वास्त रद्द कर दी कि मुलाकात सिर्फ सम्बन्धियों व वकीलों से ही हो सकती है। यह मामला बार-बार आपके ध्यान मे लाया गया, लेकिन ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया, जिससे बन्दी पैरवी के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर सकते। बाद में उन्हे इनका वकालतनामा हासिल करने पर भी मुलाकात करने की आज्ञा नही दी गयी और यहाँ तक कि मजिस्ट्रेट ने जेल-अधिकारियो को यह लिखने से भी इन्कार कर दिया कि बन्दी उसकी ओर से चलाये जा रहे मुकदमे की पैरवी के सम्बन्ध में इन मुलाकातो की माँग कर रहे थे और इस प्रकार बन्दी ऊपर की अदालत मे जाने योग्य नही रहे। लेकिन मुकदमे की सुनवाई जारी रही। इन परिस्थितियों में बन्दी बिल्कुल विवश थे और उनके लिए मुकदमा मजाक से अधिक कुछ नही था। यह बात नोट करने योग्य है कि दूसरे बन्दियों मे भी अधिकाश की ओर से कोई वकील पेश नही हो रहा था।

मेरा कोई वकील नहीं है और न ही मैं पूरे समय के लिए किसी को वकील रख सकता हूँ। मैं कुछ नुक्तों सम्बन्धी कानूनी परामर्श चाहता हूँ और एक विशेष पड़ाव पर मैं चाहता था कि वे (वकील) कार्रवाई को स्वयं देखें, ताकि अपनी राय बनाने के लिए वे बेहतर स्थिति में हो, लेकिन उन्हें अदालत में बैठने तक की जगह नहीं दी गयी। हमारी पैरवी रोकने के लिए, हमें परेशान करने के लिए क्या सम्बन्धित अधिकारियों की यह सोची-समझी चाल नही थी? वकील अपने सायलों [प्रार्थियों] के हितो को देखने के लिए अदालत मे आता है, जो न तो स्वयं उपस्थित होते हैं और न उनका कोई प्रतिनिधि वहाँ होता है। इस मुकदमे की ऐसी कौन-सी विशेष परिस्थितियाँ हैं, जिससे मजिस्ट्रेट वकीलों के प्रति ऐसा सख्त रवैया अपनाने पर मजबूर हुए? इस प्रकार हर उस वकील की हिम्मत तोडी गयी जो बन्दियों की मदद के लिए बुलाये जा सकते थे। श्री अमरदास को पैरवी (डिफेंस) की कुर्सी पर बैठने की इजाज़त देने की क्या तुक थी, जबकि वे किसी भी पक्ष का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे थे और न ही उन्होंने किसी को कानूनी परामर्श दिया। अपने मुख्तारो से मुलाकातो के सम्बन्ध मे मुझे कानूनी सलाहकार से विचार-विमर्श करना था और इसी नुक्ते को लेकर हाईकोर्ट जाने के लिए उनसे कहना था। लेकिन उनके साथ इस सम्बन्ध में बात करने का मुझे कोई अवसर ही नहीं मिला और कुछ न हो सका। इस सबका क्या मतलब है? यह दिखाकर कि मुकदमा कानून के अनुसार चलाया जा रहा है, क्या लोगों की आँखों में धूल नहीं झोंकी जा रही? अपने बचाव का इन्तजाम करने के लिए बन्दियों को कतई कोई अवसर नहीं दिया गया। इस बात के खिलाफ हम

रोष प्रकट करते हैं। यदि सब कुछ उचित ढंग से नहीं किया जाता तो इस तमाशे की कोई जरूरत नहीं है। न्याय के नाम पर हम अन्याय होता नहीं देख सकते। इन परिस्थितियों में हम सभी ने सोचा कि या तो हमें अपनी जिन्दगी बचाने का उचित अवसर मिलना चाहिए, और या हमें हमारी अनुपस्थिति में चले मुकदमे में हमारे खिलाफ दी सज़ाओं को भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए।

तीसरी बड़ी शिकायत अखबारों के बाँटने सम्बन्धी है। विचाराधीन कैदियों क कभी भी दण्ड प्राप्त कैदी नहीं माना जाना चाहिए और यह रोक उन पर तभी लगायी ज सकती जब उनकी सुरक्षा के लिए बेहद जरूरी हो। इससे अधिक इसे उचित नहीं माना जा सकता। जमानत पर रिहा न हो सकनेवाले बन्दी को कभी भी दण्ड के तौर पर कष्ट नहीं देने चाहिए। सो प्रत्येक शिक्षित विचाराधीन कैदी को कम-से-कम एक अखबार लेने का अधिकार है। अदालत में 'एक्जीक्यूटिव' कुछ सिद्धान्तों पर हमें हर रोज एक अंग्रेजी अख़बार देने के लिए सहमत हुई थी। लेकिन अधूरी चीज़ें न होने से भी बुरी होती हैं। अंग्रेजी न जाननेवाले बन्दियों के लिए स्थानीय अखबार देने के अनुरोध व्यर्थ सिद्ध हुए। अंतः स्थानीय अखबार न देने के आदेश के विरुद्ध रोष प्रकट करते हुए हम दैनिक ट्रिब्यून लौटाते रहे हैं।

इन तीन आधारों पर हमने 29 जनवरी को अदालत में आने से इन्कार करने की घोषणा की थी। ज्यों ही यह मुश्किलें दूर कर दी जायेंगी, हम बाखुशी अदालत मे आयेंगे।

भगतसिंह व अन्य

['हिन्दुस्तान टाइम्स' में 13 फरवरी, 1930 को प्रकाशित]

काकोरी केस के बन्दियों के नाम तार
द्वारा, स्पेशल मजिस्ट्रेट, लाहौर

कृपया निम्न तार तुरन्त काकोरी-कैदियों को भेज दें, जो बरेली जेल में भूख हड़ताल पर हैं और जिनके बारे में कहा जाता है कि वे गम्भीर हालत में हैं।

आपके,
भगतसिंह, बी. के. दत्त

तार

गुप्त, बख्शी, सिन्हा, मुकन्दीलाल
काकोरी-कैदी,
सेन्ट्रल जेल,
बरेली।

आपकी नाजुक हालत के बारे में जानकर बहुत दुख है। हमारा पहला तार आप तक नहीं पहुँचा। हम आपसे हार्दिक निवेदन करते हैं कि सरकार की ओर से बन्दियों के वर्गीकरण के अन्तिम नोटिस को ध्यान में रखते हुए आप अपना संघर्ष त्याग दें। जहाँ तक नये नियमों के लागू होने का प्रश्न है, हमें एक साथ इन्तजार करना चाहिए।

—सिंह और दत्त

गवाहियों की अपेक्षा रसगुल्ले ज्यादा जरूरी

आज अदालत में भगतसिंह ने शिकायत की है कि जब बचाव समिति के एक सदस्य दोपहर में भोजन के लिए कुछ वस्तुएँ ला रहे थे तब खाने योग्य वस्तुएँ अदालत में नहीं लाने दी गयीं।

दोपहर में भोजन के बाद कथित अपराधी जतिन सान्याल ने मजिस्ट्रेट से शिकायत की कि उनके लिए बंगाल से रसगुल्ले का पार्सल आया था, लेकिन जेल-अधिकारियों ने वह इस तरह कुचल डाला कि वे खाने योग्य न रहे।

सरदार भगतसिंह (मजिस्ट्रेट से) : रसगुल्ले बाहर पड़े हैं। क्या आप उनका मुआयना करने का कष्ट करेंगे। आहा! एक खूबसूरत दृश्य है! बस ज़रा अवलोकन कर लें! इन गवाहियों की अपेक्षा रसगुल्ले हमारे लिए ज्यादा जरूरी हैं!

जतिन सान्याल : सभी चीजें बहुत बेहूदा हाल में हैं। क्या आप इसे तर्कसंगत कहते हैं?

सरदार भगतसिंह : यह (मजिस्ट्रेट) बिल्कुल तर्कविहीन हैं।

जतिन सान्याल : यह हम किसे वापस करें, आपको या जेल-अधिकारियों को?

मजिस्ट्रेट : जेल-अधिकारियों को।

सरदार भगतसिंह : लेकिन इसकी कीमत कौन देगा? हमारे दोस्त ने काफी रकम खर्च की है इस पर।

मजिस्ट्रेट : यह बात जेल-अधिकारियों के साथ सम्बन्ध रखती है।

['ट्रिब्यून, लाहौर, 9 अप्रैल 1930 में प्रकाशित]

[भगतसिंह और उनके साथी मुकदमे के परिणाम से पूरी तरह परिचित थे और मिलनेवाली सज़ाओं की ओर से बिल्कुल बेपरवाह । क्योंकि वे अपने विचार जनता तक ले जाने और लोगों को ऐतिहासिक जिम्मेदारी के लिए तैयार करना चाहते थे, इसलिए यह भी इच्छा रखते थे कि मुकदमे की कार्रवाई धीमी गति से आगे बढ़े, ताकि जनता तक उनके विचार पहुँच सके । लेकिन सरकार खीझ रही थी । आखिर 1 मई, 1930 को एक विशेष अध्यादेश द्वारा एक विशेष ट्रिब्यूनल स्थापित किया गया । उस अध्यादेश के बारे में बनाये गये सरकारी बहाने का उत्तर भगतसिंह ने 2 मई, 1930 को प्रस्तुत निम्नलिखित दस्तावेज मे दिया । –सं.]

विशेष ट्रिब्यूनल की स्थापना पर

गवर्नर जनरल, भारत, शिमला (पंजाब)
श्रीमान,

हमारे मुकदमे को जल्द निबटाने के लिए जारी किये आर्डिनेंस की पूरी कॉपी पढ़कर सुनायी जा चुकी है । इसके लिए पंजाब हाई कोर्ट के अधिकार-क्षेत्र में एक ट्रिब्यूनल की नियुक्ति की गयी है । अगर इस सम्बन्ध मे अपनाये गये व्यवहार का उल्लेख न किया होता और इसकी सारी जवाबदेही हमारे सिर पर न मढ़ी होती तो हम शायद अपनी जुबान बन्द रखते, परन्तु वर्तमान स्थितियों में इसके सम्बन्ध में हम अपना बयान देना आवश्यक समझते हैं ।

हम आरम्भ से ही जानते हैं कि सरकार जान-बूझकर हमारे बारे में गलतफहमी पैदा कर रही है । आखिरकार यह एक लड़ाई है और हम भली प्रकार जानते हैं कि अपने दुश्मनों का मुकाबला करने के लिए गलतफहमियों का जाल बनाना सरकार का सबसे बड़ा हथकण्डा है । इस घृणित कार्य को रोकने का हमारे पास कोई साधन नहीं, लेकिन कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें ध्यान में रखते हुए हम कुछ कहने के लिए मजबूर हैं ।

आपने लाहौर साजिश केस के बारे में जारी अध्यादेश में हमारी भूख हड़ताल के बारे में अपना स्पष्टीकरण शामिल किया है । आपने स्वयं स्वीकारा है कि हममें से दो ने इस मुकदमे के सम्बन्ध में स्पेशल मजिस्ट्रेट पण्डित श्रीकृष्ण की अदालत में होनेवाली जाँच-पड़ताल होने से पहले भूख हड़ताल शुरू कर दी थी । सामान्य समझवाले साधारण व्यक्ति की समझ में भी यह बात आ सकती है कि इस मुकदमे का भूख हड़ताल से कोई सम्बन्ध नहीं है । भूख हड़ताल आरम्भ करने के कुछ विशेष कारण थे, इस स्थिति में सरकार को उन कारणों के बारे में स्पष्टीकरण देना था जिसके आधार पर भूख हड़ताल की गयी थी । जब सरकार ने इस समस्या को सुलझाने के लिए कुछ प्रबन्ध

करने की स्वीकृति दी और जेल जाँच कमेटी स्थापित की तब हमने भूख हड़ताल समाप्त की थी । लेकिन सबसे पहले हमें यह बताया गया था कि यह समस्या नवम्बर तक सुलझा दी जायेगी लेकिन उसमें दिसम्बर तक विलम्ब किया गया । जनवरी भी बीत गयी लेकिन इस बात का कोई सकेत नहीं मिल रहा कि सरकार वास्तव में इस सम्बन्ध में कुछ करेगी भी या नहीं । हमें लगा कि मामला समाप्त कर दिया गया है । इन स्थितियों में हमने पूरे एक हफ्ते का नोटिस देकर 4 फरवरी, 1930 से पुनः भूख हड़ताल आरम्भ कर दी । इसके बाद ही सरकार ने इस समस्या को अन्तिम रूप से हल करने के लिए कुछ कदम उठाये ।

इस आशय का एक विज्ञापन फिर सरकार ने समाचार पत्रों में जारी किया । तब हमने भूख हड़ताल समाप्त कर दी । यहाँ तक कि हमने इस बात का इन्तजार भी नहीं किया कि सरकार अपने अन्तिम निर्णय लागू करती भी है या नहीं ? लेकिन आज ही हमने यह महसूस किया है कि अंग्रेज सरकार ऐसे साधारण मामलों में भी झूठ और फरेब का सहारा लेने से बाज नहीं आयी । वह विज्ञापन खास निश्चित और निर्णय निकालनेवाले आधार पर निर्धारित थे, लेकिन हमने देखा कि उस पर भी विपरीत अमल किया गया । जो भी हो, इस विषय पर बहस करने का यह उचित अवसर नहीं । अगर यह मामला पुनः कभी उठा तो हम इसका अवश्य निर्णय करेंगे । लेकिन हम पुरजोर कहना चाहते हैं कि भूख हड़ताल का उद्देश्य इस्तगासा की कार्यवाही के विरुद्ध कोई कदम नहीं था. ऐसे साधारण कारणों से हमने इतनी यातनाएँ नहीं सही थीं । यतीन्द्रनाथ दास ने इतने सामान्य कारण के लिए अपने जीवन का बलिदान नहीं दिया, राजगुरु और सुखदेव ने भी इस बचाव के लिए ही अपने जीवन संकट में नहीं डाले थे ।

आप स्वयं हमारे मुकदमे के सन्दर्भ में यह अच्छी तरह जानते थे कि अध्यादेश जारी करने की वजह भूख हड़ताल नही थी । लेकिन असल कारण तो कुछ और हैं जिनके बारे में सोचकर आपकी सरकार के होश-हवास गुम हो गये । न तो वे इस मुकदमे में विलम्ब के कारण हुए और न ही कोई ऐसी सकटमय स्थिति पैदा हुई, जिसके कारण इस बेकानून के कानून के ऊपर हस्ताक्षर किये । जरूर ही इसके पीछे कुछ और है ।

लेकिन हम यह बता देना चाहते हैं कि उन अध्यादेशों से हमारी भावनाओं को कुचला नही जा सकता । भले ही आप कुछ इन्सानों को कुचल देने में सफलता हासिल कर लें, लेकिन याद रहे, आप इस राष्ट्र को नहीं कुचल सकते । जहाँ तक इस अध्यादेश का सन्दर्भ है, हम इसे अपनी शानदार सफलता मानते हैं । हम आरम्भ से ही यह बताने का प्रयास करते रहे हैं कि आपका यह कानून एक खूबसूरत फरेब है । यह न्याय नहीं दे सकता । लेकिन अफसोस है कि जेल में जो सुविधाएँ कानूनन और इंसाफ करके अपराधियों को मिलती हैं और साधारण बन्दियों को भी दी जाती हैं, वह सुविधाएँ भी हम राजनैतिक बन्दियों को नहीं दी जातीं । हम चाहते थे कि सरकार पर्दे से बाहर आये और स्पष्ट कहे कि राजनैतिक बन्दियों को बचाव का कोई अवसर नहीं दिया जा सकता ।

हमें लगता है कि सरकार ने यही बात स्पष्ट रूप से स्वीकारी है । हम आपको और आपकी सरकार को इस साफगोई के लिए धन्यवाद देते हैं और अध्यादेश का स्वागत करते हैं ।

आपके प्रतिनिधि स्पेशल मजिस्ट्रेट और इस्तगासा के सरकारी वकील द्वारा लगातार हमारे उचित व्यवहार को साफ-साफ स्वीकारने के बावजूद सिर्फ हमारे मुकदमे के वजूद के बारे में सोचते ही आपके मस्तिष्क में भयंकर खलबली मची हुई है । हमारे इस संघर्ष की शानदार सफलता का इससे बढ़कर भरोसा और क्या हो सकता है ?

आपके आदि-आदि

भगतसिंह

अदालत एक ढकोसला है

छह साथियों का एलान

कमिश्नर,
विशेष ट्रिब्यूनल,
लाहौर साजिश केस, लाहौर

जनाब,

अपने छह साथियों की ओर से, जिनमें कि मैं भी शामिल हूँ, निम्नलिखित स्पष्टीकरण इस सुनवाई के शुरू में ही देना आवश्यक है । हम चाहते हैं कि यह दर्ज किया जाये ।

हम मुकदमे की कार्यवाही में किसी भी प्रकार भाग नहीं लेना चाहते, क्योंकि हम इस सरकार को न तो न्याय पर आधारित समझते हैं और न ही कानूनी तौर पर स्थापित । हम अपने विश्वास से यह घोषणा करते हैं कि "समस्त शक्ति का आधार मनुष्य है । कोई व्यक्ति या सरकार किसी भी ऐसी शक्ति की हकदार नहीं है जो जनता ने उसको न दी हो ।" क्योंकि यह सरकार इन सिद्धान्तों के विपरीत है इसलिए इसका अस्तित्व ही उचित नहीं है । ऐसी सरकारें जो राष्ट्रों को लूटने के लिए एकजुट हो जाती हैं उनमें तलवार की शक्ति के अलावा कोई आधार कायम रहने के लिए नहीं होता । इसीलिए वे वहशी ताकत के साथ मुक्ति और आजादी के विचार और लोगों की उचित इच्छाओं को कुचलती हैं ।

हमारा विश्वास है कि ऐसी सरकारें, विशेषकर अंग्रेजी सरकार जो असहाय और असहमत भारतीय राष्ट्र पर थोपी गयी है, गुण्डों, डाकुओं का गिरोह और लुटेरों का टोला

है जिसने कत्लेआम करने और लोगों को विस्थापित करने के लिए सब प्रकार की शक्तियाँ जुटाई हुई हैं। शान्ति-व्यवस्था के नाम पर यह अपने विरोधियों या रहस्य खोलनेवाले को कुचल देती है।

हमारा यह भी विश्वास है कि साम्राज्यवाद एक बड़ी डाकेजनी की साजिश के अलावा कुछ नहीं। साम्राज्यवाद मनुष्य के हाथों मनुष्य के और राष्ट्र के हाथों राष्ट्र के शोषण का चरम है। साम्राज्यवादी अपने हितो, और लूटने की योजनाओं को पूरा करने के लिए न सिर्फ न्यायालयों एव कानून को कत्ल करते हैं, बल्कि भयंकर हत्याकाण्ड भी आयोजित करते हैं। अपने शोषण को पूरा करने के लिए जंग-जैसे खौफनाक अपराध भी करते हैं। जहाँ कहीं लोग उनकी नादिरशाही शोषणकारी माँगों को स्वीकार न करें या चुपचाप उनकी ध्वस्त कर देनेवाली और घृणा योग्य साजिशों को मानने से इन्कार कर दें तो वह निरपराधियो का खून बहाने से संकोच नहीं करते। शान्ति-व्यवस्था की आड़ में वे शान्ति-व्यवस्था भंग करते हैं। भगदड़ मचाते हुए लोगों की हत्या, अर्थात हर सम्भव दमन करते हैं।

हम मानते हैं कि स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का अमिट अधिकार है। हर मनुष्य को अपने श्रम का फल पाने-जैसा सभी प्रकार का अधिकार है और प्रत्येक राष्ट्र अपने मूलभूत प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण स्वामी है। अगर कोई सरकार जनता को उसके इन मूलभूत अधिकारो से वंचित रखती है तो जनता का केवल यह अधिकार ही नहीं बल्कि आवश्यक कर्तव्य भी बन जाता है कि ऐसी सरकार को समाप्त कर दे। क्योंकि ब्रिटिश सरकार इन सिद्धान्तों, जिनके लिए हम लड़ रहे हैं, के बिल्कुल विपरीत है, इसलिए हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिस भी ढंग से देश में क्रान्ति लायी जा सके और इस सरकार का पूरी तरह खात्मा किया जा सके, इसके लिए हर प्रयास और अपनाये गये सभी ढंग नैतिक स्तर पर उचित हैं। हम वर्तमान ढाँचे के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के पक्ष में हैं। हम वर्तमान समाज को पूरे तौर पर एक नये सुगठित समाज में बदलना चाहते हैं। इस तरह मनुष्य के हाथों मनुष्य का शोषण असम्भव बनाकर सभी के लिए सब क्षेत्रों में पूरी स्वतन्त्रता विश्वसनीय बनायी जाये। जब तक सारा सामाजिक ढाँचा बदला नही जाता और उसके स्थान पर समाजवादी समाज स्थापित नहीं होता, हम महसूस करते हैं कि सारी दुनिया एक तबाह कर देनेवाले प्रलय-संकट में है।

जहाँ तक शान्तिपूर्ण या अन्य तरीकों से क्रान्तिकारी आदर्शों की स्थापना का सम्बन्ध है, हम घोषणा करते हैं कि इसका चुनाव तत्कालीन शासकों की मर्जी पर निर्भर है। क्रान्तिकारी अपने मानवीय प्यार के गुणों के कारण मानवता के पुजारी हैं। हम शाश्वत और वास्तविक शान्ति चाहते हैं, जिसका आधार न्याय और समानता है। हम झूठी और दिखावटी शान्ति के समर्थक नहीं जो बुजदिली से पैदा होती है और भालों और बन्दूकों के सहारे जीवित रहती है।

क्रान्तिकारी अगर बम और पिस्तौल का सहारा लेता है तो यह उसकी चरम आवश्यकता में से पैदा होता है और आखिरी दाँव के तौर पर होता है। हमारा विश्वास है कि अमन और कानून मनुष्य के लिए है, न कि मनुष्य अमन और कानून के लिए।

फ्रांस के उच्च न्यायाधीश का यह कहना उचित है कि कानून की आन्तरिक भावना स्वतन्त्रता समाप्त करना या प्रतिबन्ध लगाना नहीं, वरन स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना और उसे आगे बढ़ाना है। सरकार को कानूनी शक्ति बनाये गये उन उचित कानूनों से मिलेगी जो केवल सामूहिक हितों के लिए बनाये गये हैं, और जो जनता की इच्छाओं पर आधारित हों, जिनके लिए यह बनाये गये हैं। इससे विधायकों समेत कोई भी बाहर नहीं हो सकता।

कानून की पवित्रता तभी तक रखी जा सकती है जब तक वह जनता के दिल यानी भावनाओं को प्रकट करता है। जब यह शोषणकारी समूह के हाथों में एक पुर्जा बन जाता है तब अपनी पवित्रता और महत्त्व खो बैठता है। न्याय प्रदान करने के लिए मूल बात यह है कि हर तरह के लाभ या हित का खात्मा होना चाहिए। ज्यों ही कानून सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करना बन्द कर देता है त्यो ही जुल्म और अन्याय को बढ़ाने का हथियार बन जाता है। ऐसे कानूनों को जारी रखना सामूहिक हितों पर विशेष हितों की दम्भपूर्ण जबरदस्ती के सिवाय कुछ नहीं है।

वर्तमान सरकार के कानून विदेशी शासन के हितों के लिए चलते हैं और हम लोगों के हितों के विपरीत हैं। इसलिए इनकी हमारे ऊपर किसी भी प्रकार की सदाचारिता लागू नहीं होती।

अतः हर भारतीय की यह जिम्मेदारी बनती है कि इन कानूनों को चुनौती दे और इनका उल्लंघन करे। अंग्रेज न्यायालय, जो शोषण के पुर्जे हैं, न्याय नहीं दे सकते। विशेषकर राजनैतिक क्षेत्रों में, जहाँ सरकार और लोगों के हितों का टकराव है। हम जानते हैं कि ये न्यायालय सिवाय न्याय के ढकोसले के और कुछ नहीं हैं।

इन्हीं कारणों से हम इसमें भागीदारी करने से इन्कार करते हैं और इस मुकदमे की कार्यवाही में भाग नहीं लेंगे।

5-5-30

जज ने नोट किया—यह रिकार्ड में तो रखा जाये लेकिन इसकी कापी न दी जाये, क्योंकि इसमें कुछ अनचाही बातें लिखी हैं।

विशेष ट्रिब्यूनल के पुनर्गठन पर

[1 मई, 1930 को अध्यादेश द्वारा स्थापित विशेष ट्रिब्यूनल के सदस्य थे—जस्टिस जे. कोल्डस्ट्रीम (अध्यक्ष), जस्टिस आगा हैदर व जस्टिस जी.सी. हिल्टन। 5 मई को कार्रवाई शुरू हुई। पुंछ हाउस को अदालत बनाया गया। क्रांतिकारी युवक अदालत में क्रान्तिकारी गीत गाते और क्रान्तिकारी नारे लगाते आते। भगतसिंह ने माँग की कि उन्हें 15 दिन का समय दिया जाये, ताकि वे ट्रिब्यूनल के गैर-कानूनी होने सम्बन्धी तर्क पेश कर सकें। लेकिन यह माँग मानी नहीं गयी। 24 क्रान्तिकारियों के नाम मुकदमे के लिए लिये गये, जिनमें से 16 पर मुकदमा चलाया गया। बाद में बटुकेश्वर दत्त के खिलाफ केस वापिस ले लिया गया। जिन पर मुकदमा शुरू किया गया वे थे—सुखदेव, भगतसिंह, किशोरी लाल, देसराज, प्रेमदत्त, जयदेव कपूर, शिव वर्मा, महावीर सिंह यतीन्द्रनाथ दास, अजयकुमार घोष, यतींद्र सान्याल, विजयकुमार सिन्हा, शिवराम राजगुरु, कुन्दनलाल व कमलनाथ तिवारी। भगतसिंह और उनके साथियों ने वकील करने से इन्कार कर दिया। 12 मई, 1930 को भगतसिंह और उनके साथियों को हथकड़ियों में अदालत में लाया गया। हथकड़ियाँ न खोलने के विरोध में उन्होने बस से उतरने से इन्कार कर दिया। ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष ने उन्हे जबरदस्ती उतारने का आदेश दिया। भगतसिंह और उनके साथियों ने अदालत का बायकाट कर दिया। यद्यपि उन लोगों की हथकड़ियाँ दोपहर के खाने के लिए खोली गयीं, लेकिन खाने के बाद फिर लगाने का आदेश दे दिया गया, जिसका भगतसिह और उनके साथियों ने विरोध किया। अध्यक्ष ने भारतीयों को गाली देते हुए भगतसिंह को लाठियों से पीटने का आदेश दिया।

अदालत में क्रान्तिकारियों, खासकर भगतसिंह को सवाददाताओं और जनता के सामने लाठियों और जूतों से मारा गया। भगतसिंह ने भारतीयों को गाली देने पर आपत्ति करते हुए जस्टिस आगा हैदर से भारतीय होने सम्बन्धी प्रश्न किया और पूछा कि ऐसी मानसिक स्थितिवाले जज न्याय कैसे करेंगे? जस्टिस आगा हैदर ने उस दिन की कार्रवाई पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। इस घटना की दुनिया-भर में चर्चा हुई। सारे भारत में भगतसिंह-दिन मनाया गया, जिसके फलस्वरूप जस्टिस कोल्डस्ट्रीम को लम्बी छुट्टी पर जाना पड़ा और 21 जून को ट्रिब्यूनल नये सिरे से गठित किया गया। अब जस्टिस जी. सी. हिल्टन को अध्यक्ष व जस्टिस जे. के. टैप और जस्टिस अब्दुल कादिर को सदस्य बनाया गया।

इस पर भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने निम्नलिखित पत्र में अपने विचार प्रकट किये।—सं.]

कमिश्नर,
विशेष ट्रिब्यूनल
लाहौर षड्यन्त्र केस, लाहौर

श्रीमान जी,

जबकि ट्रिब्यूनल के दो न्यायाधीशो को हटा दिया गया है या वे हट गये हैं और दो नये न्यायाधीश उनके स्थान पर नियुक्त कर दिये गये हैं, इसलिए हम अपना स्पष्टीकरण दर्ज कराना आवश्यक समझते हैं, ताकि हम अपना पक्ष स्पष्ट कर सकें और किसी भी प्रकार की शंकाएँ पैदा होने से बचा जा सके।

12 मई, 1930 को न्यायाधीश कोल्डस्ट्रीम ने जो कि अध्यक्ष भी हैं, एक अदालती आदेश पास किया जिसके अन्तर्गत हमें अदालत में हथकड़ियाँ पहनाने का आदेश दिया गया। इस आदेश का पालन कराने के लिए पुलिस को बल-प्रयोग करने के लिए भी कहा गया।

इस अचानक और असाधारण आदेश का कारण जानने के लिए हमने इस अदालत से निवेदन किया था, जिसे सुनने की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी। ऐसी स्थितियों में पुलिस हमें जबरन हथकड़ियाँ लगाकर वापिस जेल ले आयी। अगले दिन तीन में से एक न्यायाधीश आगा हैदर ने अध्यक्ष के इस आदेश से अपने को अलग कर लिया। उस दिन से हम न्यायालय में नहीं जा रहे।

जिन शर्तों पर हम न्यायालय मे आने को तैयार हैं, वे अगले दिन न्यायालय के समक्ष रखी गयी थीं। शर्तें थीं कि या तो अध्यक्ष क्षमा माँगे या फिर उन्हे बदल दिया जाये। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि उनकी जगह पर ऐसे एक न्यायाधीश को बैठा दिया जाये जो उस आदेश में भागीदार था।

पाँच हफ्ते तक तो अपराधियों की शिकायत को विचार योग्य ही नहीं समझा गया।

वर्तमान ट्रिब्यूनल के निर्माण में दोनों अध्यक्ष और दूसरे न्यायाधीश—जो उनके साथ सहमत नहीं हुए थे—को बदलकर दो नये न्यायाधीश लगाये गये हैं। इस तरह एक न्यायाधीश को जो उस आदेश में भागीदार था, क्योंकि आदेश बहुमत के आधार पर दिया गया था, ट्रिब्यूनल का अध्यक्ष बनाया गया है। ऐसी स्थिति में हम पुरजोर यह कहना चाहते हैं कि न्यायाधीश कोल्डस्ट्रीम से व्यक्तिगत स्तर पर हमारा कोई शिकवा नहीं था और न ही शिकायत थी। हमारे विरोध का कारण तो न्यायाधीश कोल्डस्ट्रीम की ओर से पास किया बहुमत का आदेश और उसके बाद हमारे साथ हुआ दुर्व्यवहार था। न्यायाधीश कोल्डस्ट्रीम और न्यायाधीश हैमिल्टन का हम सम्मान करते हैं, जैसा कि एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का किया जाना चाहिए। हमारा रोष एक विशेष आदेश के विरोध में था जिसके कारण ट्रिब्यूनल, जो कि उस आदेश के लिए जिम्मेदार है, के अध्यक्ष से क्षमा माँगने की माँग की गयी थी। अध्यक्ष को हटा देने से कोई अन्तर नहीं

पड़ता, क्योंकि अब जज हैमिल्टन, जो उस आदेश में शरीक थे, न्यायाधीश कोल्डस्ट्रीम के स्थान पर अध्यक्षता कर रहे हैं। हम तो केवल यह कह सकते हैं कि बदली हुई स्थितियों ने अब जख्म पर नमक छिड़कने का ही काम किया है।

आपके,
भगतसिह

25 जून, 1930 बी. के दत्त

पिता जी के नाम पत्र

[30 सितम्बर, 1930 को भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह ने ट्रिब्यूनल को एक अर्जी देकर बचाव पेश करने के लिए अवसर की माँग की। सरदार किशनसिंह स्वयं देशभक्त थे और राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल जाते रहते थे। उन्हें व कुछ अन्य देशभक्तों को लगता था कि शायद बचाव-पक्ष पेश कर भगतसिंह को फाँसी के फन्दे से बचाया जा सकता है, लेकिन भगतसिंह और उनके साथी बिल्कुल अलग नीति पर चल रहे थे। उनके अनुसार, ब्रिटिश सरकार बदला लेने की नीति पर चल रही है व न्याय सिर्फ ढकोसला है। किसी भी तरीके से उसे सजा देने से रोका नहीं जा सकता। उन्हें लगता था कि यदि इस मामले में कमजोरी दिखायी गयी तो जन-चेतना में अंकुरित हुआ क्रान्ति-बीज स्थिर नहीं हो पायेगा। पिता द्वारा दी गयी अर्ज़ी से भगतसिंह की भावनाओं को भी चोट लगी थी, लेकिन अपनी भावनाओं को नियन्त्रित कर अपने सिद्धान्तों पर जोर देते हुए उन्होंने 4 अक्तूबर, 1930 को यह पत्र लिखा जो उसके पिता को देर से मिला। 7 अक्तूबर, 1930 को मुकदमे का फैसला सुना दिया गया।

राजनीतिक मामलों की पैरवी कैसे की जाये, इसकी चर्चा भगतसिंह ने एक अन्य पत्र में भी की है, जिसे अगले पृष्ठों पर दिया गया है। —सं.]

4 अक्तूबर, 1930

पूज्य पिता जी,

मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि आपने मेरे बचाव-पक्ष के लिए स्पेशल ट्रिब्यूनल को एक आवेदन भेजा है। यह खबर इतनी यातनामय थी कि मैं इसे खामोशी से बर्दाश्त नहीं कर सका। इस खबर ने मेरे भीतर की शान्ति भंग कर उथल-पुथल मचा दी है। मैं यह नहीं समझ सकता कि वर्तमान स्थितियों में और इस मामले पर आप किस तरह का आवेदन दे सकते हैं?

आपका पुत्र होने के नाते मैं आपकी पैतृक भावनाओं और इच्छाओं का पूरा सम्मान करता हूँ लेकिन इसके बावजूद मैं समझता हूँ कि आपको मेरे साथ सलाह-मशविरा किये बिना ऐसे आवेदन देने का कोई अधिकार नहीं था। आप जानते हैं कि राजनैतिक क्षेत्र में मेरे विचार आपसे काफी अलग हैं। मैं आपकी सहमति या असहमति का ख्याल किये बिना सदा स्वतन्त्रतापूर्वक काम करता रहा हूँ।

मुझे यकीन है कि आपको यह बात याद होगी कि आप आरम्भ से ही मुझसे यह बात मनवा लेने की कोशिशें करते रहे हैं कि मैं अपना मुकदमा संजीदगी से लड़ूँ और अपना बचाव ठीक से प्रस्तुत करूँ, लेकिन आपको यह भी मालूम है कि मैं सदा इसका विरोध करता रहा हूँ। मैंने कभी भी अपना बचाव करने की इच्छा प्रकट नहीं की और न ही मैंने कभी इस पर संजीदगी से गौर किया है।

आप जानते हैं कि हम एक निश्चित नीति के अनुसार मुकदमा लड़ रहे हैं मेरा हर कदम इस नीति, मेरे सिद्धान्तो और हमारे कार्यक्रम के अनुरूप होना चाहिए। आज स्थितियाँ बिल्कुल अलग हैं। लेकिन अगर स्थितियाँ इससे कुछ और भी अलग होतीं तो भी मैं अन्तिम व्यक्ति होता जो बचाव प्रस्तुत करता। इस पूरे मुकदमे में मेरे सामने एक ही विचार था और वह यह कि हमारे विरुद्ध जो संगीन आरोप लगाये गये हैं, बावजूद उनके हम पूर्णतया इस सम्बन्ध में अवहेलना का व्यवहार करे। मेरा नजरिया यह रहा है कि सभी राजनैतिक कार्यकर्ताओं को ऐसी स्थितियों में उपेक्षा दिखानी चाहिए और उनको जो भी कठोरतम सजा दी जाये, वह उन्हे हँसते-हँसते बर्दाश्त करनी चाहिए। इस पूरे मुकदमे के दौरान हमारी योजना इसी सिद्धान्त के अनुरूप रही है। हम ऐसा करने में सफल हुए या नहीं, यह फैसला करना मेरा काम नहीं। हम खुदगर्जी को त्यागकर अपना काम कर रहे हैं।

वाइसराय ने लाहौर साजिश केस आर्डिनेंस जारी करते हुए इसके साथ जो वक्तव्य दिया था, उसमें उन्होंने कहा था कि इस साजिश के मुजरिम शान्ति-व्यवस्था को समाप्त करने के प्रयास कर रहे हैं। इससे जो हालात पैदा हुए उसने हमे यह मौका दिया कि हम जनता के समक्ष यह बात प्रस्तुत करें कि वह स्वय देख ले कि शान्ति-व्यवस्था एवं कानून समाप्त करने की कोशिशें हम कर रहे है या हमारे विरोधी? इस बात पर मतभेद हो सकते हैं। शायद आप भी उनमे से एक हो जो इस बात पर मतभेद रखते हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आप मुझसे सलाह किये बिना मेरी ओर ऐसे कदम उठाये। मेरी ज़िन्दगी इतनी कीमती नहीं जितनी कि आप सोचते हैं। कम-से-कम मेरे लिए तो इस जीवन की इतनी कीमत नहीं कि इसे सिद्धान्तों को कुर्बान करके बचाया जाये। मेरे अलावा मेरे और साथी भी हैं जिनके मुकदमे इतने ही संगीन हैं जितना कि मेरा मुकदमा। हमने एक संयुक्त योजना अपनायी है और इस योजना पर हम अन्तिम समय तक डटे रहेंगे। हमें इस बात की कोई परवाह नहीं कि हमें व्यक्तिगत रूप में इस बात के लिए कितना मूल्य चुकाना पड़ेगा।

पिता जी, मैं बहुत दुख का अनुभव कर रहा हूँ। मुझे भय है, आप पर दोषारोपण करते हुए या इससे बढकर आपके इस काम की निन्दा करते हुए मैं कहीं सभ्यता की सीमाएँ न लाँघ जाऊँ और मेरे शब्द ज्यादा सख्त न हो जायें। लेकिन मैं स्पष्ट शब्दों में अपनी बात अवश्य कहूँगा। यदि कोई अन्य व्यक्ति मुझसे ऐसा व्यवहार करता तो मैं इसे गद्दारी से कम न मानता, लेकिन आपके सन्दर्भ में मै इतना ही कहूँगा कि यह एक कमजोरी है—निचले स्तर की कमजोरी।

यह एक ऐसा समय था जब हम सबका इम्तिहान हो रहा था। मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप इस इम्तिहान में नाकाम रहे हैं। मैं जानता हूँ कि आप भी इतने ही देशप्रेमी हैं, जितना कि कोई और व्यक्ति हो सकता है। मैं जानता हूँ कि आपने अपनी पूरी जिन्दगी भारत की आजादी के लिए लगा दी है, लेकिन इस अहम मोड़ पर आपने ऐसी कमजोरी दिखायी, यह बात मैं समझ नहीं सकता।

अन्त में मैं आपसे, आपके अन्य मित्रों एवं मेरे मुकदमे में दिलचस्पी लेनेवालों से यह कहना चाहता हूँ कि मैं आपके इस कदम को नापसन्द करता हूँ। मैं आज भी अदालत मे अपना कोई बचाव प्रस्तुत करने के पक्ष में नही हूँ। अगर अदालत हमारे कुछ साथियो की ओर से स्पष्टीकरण आदि के लिए प्रस्तुत किये गये आवेदन को मजूर कर लेती, तो भी मैं कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत न करता।

भूख हडताल के दिनों में ट्रिब्यूनल को जो आवेदन पत्र मैंने दिया था और उन दिनों में जो साक्षात्कार दिया था उन्हे गलत अर्थों मे समझा गया है और अखबारों में यह प्रकाशित कर दिया गया कि मै अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ, हालाँकि मैं हमेशा स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के विरोध में रहा। आज भी मेरी वही मान्यता है जो उस समय थी।

बोर्स्टल जेल मे बन्दी मेरे साथी इस बात को मेरी ओर से गद्दारी और विश्वासघात ही समझ रहे होंगे। मुझे उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर भी नहीं मिल सकेगा।

मैं चाहूँगा कि इस सम्बन्ध में जो उलझने पैदा हो गयी है, उनके विषय में जनता को असलियत का पता चल जाये। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप जल्द-से-जल्द यह चिट्ठी प्रकाशित कर दे।

आपका आज्ञाकारी,
भगतसिंह

राजनीतिक मामलों की पैरवी पर

[23 दिसम्बर, 1930 को पंजाब के गवर्नर सर ज्याफ्रेडी पर क्रान्तिकारी युवक हरिकृष्ण ने गोली चलायी और उसे घायल कर दिया। हरिकृष्ण पकड़ा गया

और उस पर केस चला। लेकिन वकील की सलाह पर हरिकृष्ण जिस तरह केस की पैरवी कर रहा था, भगतसिंह उसके तरीके से असहमत थे। इसलिए उन्होंने अपने एक साथी को जेल से दो पत्र इस सन्दर्भ में लिखे, जिनमें से पहला अनुपलब्ध है, लेकिन दूसरा पत्र जो कि जून, 1931 में लाहौर से प्रकाशित 'पीपुल्स' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक में छपा था, नीचे दिया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि हरिकृष्ण को 9 जून, 1931 को फाँसी दी गयी। –सं.]

मुझे यह जानकर बहुत अफसोस है कि इस सम्बन्ध में मेरा पहला पत्र समय पर अपने ठिकाने नहीं पहुँच सका और इसलिए उससे कोई फायदा न हो सका, या यह कि वह उस उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहा, जिसके लिए वह लिखा गया था। इसलिए मैं आमतौर पर यह पत्र राजनैतिक मुकदमों में पैरवी के सवाल के बारे में और खासतौर पर क्रान्तिकारी मुकदमे के बारे में अपने विचारों को प्रकट करने के लिए लिख रहा हूँ। पहले पत्र में विचारे गये खास-खास नुक्तों के अलावा इसका एक और मकसद भी होगा, और वह यह कि मैं घटनाओं से गुजर जाने के बाद समझदार नहीं बन रहा हूँ।

खैर, मैंने उस खत में यह लिखा था कि वकील पैरवी के लिए जो दलीलें दे रहा था, उन्हें माना न जाये, पर बावजूद आपके और मेरे विरोध के उन्हें मान लिया गया है।

बावजूद इसके हम अधिक रोशनी में इस बात पर विचार कर सकते हैं और पैरवी से सम्बन्धित आगामी नीति के बारे में ठोस विचार बना सकते हैं।

आप यह जानते ही हैं कि मैं कभी भी हमारे राजनैतिक बन्दियों की बचाववाली पैरवी करने का समर्थक नहीं रहा, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उचित संघर्ष की खूबसूरती बिल्कुल ही बिगाड़ दी जाये। इस पर विशेष ध्यान की आवश्यकता है कि खूबसूरती शब्द यहाँ अवास्तविक शक्ल में प्रयोग नहीं किया गया है और इसका उस उद्देश्य से सम्बन्ध है, जिसने कि एक खास कार्रवाई के लिए हरिकृष्ण को प्रेरित किया। जब मैं यह जानता हूँ कि सब राजनैतिक बन्दियों को अपनी पैरवी स्वयं करनी चाहिए, तो यह कुछ विशेष मान्यताओं के साथ कहता हूँ। मेरा मतलब सिर्फ एक ही बात से साफ हो सकता है।

एक मनुष्य एक ही विशेष मकसद को सामने रखकर काम नहीं करता। उसकी गिरफ्तारी के बाद उसके काम का राजनैतिक महत्त्व समाप्त नहीं होना चाहिए और काम की अपेक्षा मरने की तैयारी ही ज्यादा जरूरी नहीं बन जानी चाहिए। हम इसे उदाहरण की मदद से और साफ करें। हरिकृष्ण गवर्नर को गोली मारने के लिए आये। मैं इस कार्रवाई का नैतिक पक्ष नहीं लेना चाहता। मैं सिर्फ इस केस के राजनैतिक पहलू पर विचार करना चाहता हूँ। गोली मारनेवाला व्यक्ति गिरफ्तार कर लिया गया। दुर्भाग्य से पुलिस-कर्मचारी इस कार्रवाई में मर गया। अब पैरवी का सवाल सामने आता है। जब गवर्नर बच गया तो हरिकृष्ण के केस में बड़ा सुन्दर बयान आ सकता था; अर्थात् असली

तथ्यों का बयान, जैसा कि हमारे केस में नीचे की अदालत में दिया गया था। इस प्रकार यह कानूनी मकसद को भी पूरा कर देता और कार्य के उद्देश्य को भी ऊपर उठाता, पर वकील की कोशिश और काबिलियत सब-इन्स्पेक्टर की मौत के बारे में दलीलें देने में उलझी रही। उसे यह कहकर क्या मिला कि हरिकृष्ण सिर्फ गवर्नर को जख्मी करना चाहता था, मारना नहीं चाहता था? इसी तरह की दूसरी बातें थीं। क्या कोई समझदार एक क्षण के लिए भी ऐसी बात की उम्मीद कर सकता है? क्या इस दलील की कोई कानूनी कीमत थी? बिल्कुल कोई कीमत नहीं, तो फिर गवर्नर पर गोली चलाने के विशेष कार्य की ही नहीं, बल्कि सारी क्रान्तिकारी लहर की खूबसूरती खराब करने से क्या फायदा था?

प्रतिवाद तथा भावनाएँ ज्यादा देर तक नहीं चल सकतीं। क्रान्तिकारी दल के द्वारा सरकार को बहुत समय पहले चेतावनी दी जा चुकी। इसके लिए क्रान्तिकारी दल को भारत ने बेहद इज्जत दी थी और क्रान्ति की लहर सही स्वरूप में आरम्भ हो गयी थी। वायसराय की गाड़ी पर बम फेंकने का कार्य एक चेतावनी नहीं था; भले ही वह असफल रहा। चिटगाँव की घटनाएँ न चेतावनी थीं और न केवल विरोध-प्रदर्शन। इसी तरह हरिकृष्ण का एक्शन अपने-आपमें क्रान्तिकारी संघर्ष का एक हिस्सा था, चेतावनी बिल्कुल नहीं। कार्रवाई की असफलता के बाद अभियुक्त इस चीज को खिलाड़ी की तरह ले सकता है। मकसद पूरा होने पर सम्भव है भाग्यवश गवर्नर के बच जाने से हरिकृष्ण प्रसन्न हुआ हो। व्यक्तिगत रूप में किसी को मारने से कोई लाभ भी नहीं। इन कार्यों का राजनैतिक महत्त्व होता है, ये वह वातावरण और सोचने का ढंग बनाने में मदद करते हैं जो कि आखिरी संघर्ष के लिए बहुत जरूरी है। इतना ही पर्याप्त है। व्यक्तिगत कार्य लोगों की सहानुभूति जीतने के लिए होते हैं। हम कभी-कभी इनको अपने कार्यों के द्वारा प्रोपेगेंडा का नाम दे देते हैं।

इस विचार की रोशनी में क्रान्तिकारी मुकदमों की पैरवी होनी चाहिए। यह एक आम समझवाला नियम है कि संघर्ष करनेवाली सभी पार्टियाँ प्राप्त अधिक करना चाहती हैं और खोना कम। कोई भी जनरल ऐसी युद्ध-नीति नहीं अपना सकता जिसमें उसे सोचे हुए लाभ से अधिक बलिदान देना पड़े। मुझसे अधिक कोई भी हरिकृष्ण के अमूल्य जीवन को बचाने के लिए बेताब नहीं होगा, पर मैं आपको बताना चाहता हूँ कि जो चीज उसकी जिन्दगी को अनमोल बनाती है उसे आँख से ओझल नहीं करना चाहिए। किसी भी कीमत पर जीवन को बचाना ही हमारी नीति नहीं है। यह कांग्रेस की नीति हो सकती है, यह आरामकुर्सियोंवाले राजनीतिज्ञों की नीति हो सकती है, परन्तु यह हमारी नीति नहीं है। बचाव-नीति (डिफेन्स पालिसी) अधिकतर अभियुक्त के अपने सोचने के ढंग पर आधारित होती है, पर यदि अभियुक्त न सिर्फ निडर हो, बल्कि हमेशा की तरह जोशीला भी रहे तो जिस कार्य के लिए उसने अपनी जिन्दगी का खतरा मोल लिया उसे बयान में पहले लिया जाना चाहिए और व्यक्तिगत मसलों को बाद में। इसके बाद भी एक तरह की उलझन भरी स्थिति हो सकती है क्योंकि कुछ ऐसे केस हो सकते हैं जिनमें

स्थानीय महत्त्व के होने पर भी कार्रवाई (एक्शन) का आम महत्त्व न हो। वहाँ अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करने में अभियुक्त को भावुक नहीं होना चाहिए। निर्मलकान्त राय का मशहूर मुकदमा इसका सबसे अच्छा उदाहरण है, परन्तु इस तरह के राजनैतिक महत्त्व के केस में व्यक्तिगत पहलू को राजनैतिक पहलू से अधिक महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। अगर आप मेरा निष्पक्ष मत प्रस्तुत केस के बारे में पूछना चाहते हैं तो मैं साफ-साफ बताना चाहता हूँ कि यह ऐतिहासिक महत्त्व की राजनैतिक हत्या बिल्कुल नहीं है।

यहाँ मैं एक बात अवश्य बताना चाहता हूँ कि इस केस का गला घोंटनेवाले लोग—जिन्हें अपनी गलती का अहसास हो गया है और उसके बाद जो समझदार बन गये हैं, लेकिन अपने कन्धों पर उत्तरदायित्व लेने का हौसला नहीं कर पा रहे हैं—हमारे नौजवान साथी के चमत्कारी चरित्र के सौन्दर्य को नीचा दिखाने की कोशिश कर रहे हैं। मैंने उन्हें यह कहते सुना है कि हरिकृष्ण बहादुरी से सामना करने में काँप गया है। यह एक हद दर्जे का शर्मनाक झूठ है। मुझे उस-जैसा हौसलेवाला नौजवान कभी कोई नहीं मिला। लोगों को हमारे ऊपर मेहरबानी करनी चाहिए। हौसला पस्त करने और नीचा दिखाने से तो अच्छा है कि वे हमारी तरफ ध्यान ही न दें।

वकीलों को उन नौजवानों की जिन्दगियाँ, यहाँ तक कि मौतों को खराब करने में इतने आत्महीन विशेषज्ञ (बेजमीरे एक्सपर्ट) नहीं होना चाहिए, जो दुखी जनता की मुक्ति के पवित्र काम में अपना आपा न्योछावर करने के लिए आते हैं। मुझे यह जानकर सचमुच बहुत दुख होता है कि धीरे-धीरे हम राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की एक नयी अफसरशाही बना रहे हैं। यह बात ठीक नहीं है तो भला एक वकील किसी राजनैतिक मुकदमे में यकीन न आनेवाली फीस क्यों माँगे, जैसा कि इस केस में फीस दी गयी है।

राजद्रोह के केसों मे मैं वह हद बता सकता हूँ जिस तक हम पैरवी की इजाजत दे सकते हैं। गत वर्ष जब एक साथी पर समाजवादी भाषाण देने का मुकदमा चला और उसे गलत ढंग पर लड़ा गया तो हमें केवल हैरानगी ही हुई थी। ऐसे केसों में हमें अपने द्वारा प्रचारित विचारों और आदर्शों को स्वीकार कर लेना चाहिए और स्वतन्त्र भाषण का अधिकार माँगना चाहिए, परन्तु कहाँ यह बात और कहाँ यह कहना कि हमने कुछ कहा ही नहीं! हम इस तरह अपने ही आन्दोलन के हितों के विरुद्ध जाते हैं। कांग्रेस को मौजूदा आन्दोलन में बिना मुकदमों की पैरवी किये जेल से नुकसान पहुँचा है। मेरे विचार में यह एक गलती थी।

खैर, मेरा ख्याल है कि आप मेरा यह पत्र पिछले पत्र के साथ पढ़ेंगे और राजनैतिक मुकदमों की पैरवी के बारे में मेरे विचारों से अच्छी तरह परिचित हो जायेंगे। हरिकृष्ण के केस में मेरे ख्याल में जल्दी-से-जल्दी हाईकोर्ट में अपील कर देनी चाहिए और उसको बचाने की पूरी कोशिश होनी चाहिए। मुझे आशा है कि मेरे यह दोनों पत्र प्रत्येक बात आपको बता देंगे, जो मैं आपको बताना चाहता हूँ।

आपका

भगतसिंह

9

जेल से कुछ पत्र

[लाहौर षड्यन्त्र केस के दौरान लिखे गये भगतसिंह के कुछ व्यक्तिगत पत्र यहाँ प्रस्तुत हैं। जेल में की गयी भूख हड़ताल की सबसे बड़ी जीत यह थी कि वे पढ़ने-लिखने में काफी समय लगा लेते थे। यहाँ प्रस्तुत नौ पत्र-दस्तावेज भगतसिंह के व्यक्तित्व के कई अछूते पक्षों को उजागर करते हैं। —सं.]

बचपन के दोस्त जयदेव गुप्ता को पत्र

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
3 जून, 1930

मेरे प्रिय जयदेव,

'विक्ट्री' जूते और 'क्विक' दवात भेजने के लिए मेरी ओर से धन्यवाद स्वीकारो! आपके शब्दानुसार जैसा कि कुलबीर ने कहा है, मैं यह खत कुछ अन्य चीजें मँगवाने के लिए लिख रहा हूँ।

आपका बहुत धन्यवाद होगा अगर आप एक दूसरा जोड़ा कपड़े के जूते श्री दत्त के लिए भेज सको। लेकिन दुकानदार से उन्हें पूरा न आने की स्थिति में वापसी की शर्त से लें। मैं इस बारे में अपने पहले खत में ही लिख सकता था, लेकिन उस समय श्री दत्त अच्छे मूड में नहीं थे। मगर मेरे लिए यह बहुत कठिन बात है कि मैं अकेला ही इन जूतों को पहनूँ। मैं उम्मीद करता हूँ कि अगली मुलाकात के समय जूतों का एक और जोड़ा यहाँ पड़ा होगा।

कृपया 34 नम्बर छाती की सफेद शेक्सपीयर कालरवाली आधी आस्तीनवाली खेल शर्ट भेजना। यह भी श्री दत्त के लिए चाहिए। यह न सोचना कि जेल में होते हुए भी हमने अपना रहन-सहन का खर्चीला ढंग नहीं त्यागा। क्योंकि यह फिर भी आवश्यक

जरूरतें हैं, विलासिताएँ नहीं। किसी मुलायम कपड़े के बने हुए दो लँगोट नहाने और वर्जिश करने के लिए भेज दो। और कपड़े धोने के लिए साबुन की कुछ टिक्की भेज देना। साथ ही थोड़े बादाम और एक स्वान इंक की दवात भी भेज देना। सरदार जी का क्या हाल है ? क्या वे लुधियाना से आ गये हैं ? आजकल कचहरी बन्द रहेगी। मुकदमा नहीं चल रहा होगा। यदि वे आज अभी तक वापस नहीं आये तो उनको लाने के लिए किसी को भेज देना। फिर उनके और मेरे मुकदमों का फैसला होनेवाला है। कहा नहीं जा सकता कि हमें आपस में मुलाकात का भी मौका मिलेगा अथवा नहीं, इसलिए आप उन्हें फौरन बुला लें ताकि वे इस हफ्ते के भीतर मुझसे दो मुलाकातें कर सकें और अगर यदि वे जल्द नहीं आ पा रहे तो कृपया कुलबीर और बहन अमर कौर को मुझसे मुलाकात के लिए कल या फिर परसों भेज दें। मित्रों को मेरी ओर से याद कहें।

साथ ही, क्या आप उर्दू अनुवाद के साथ एक फारसी कायदा भेज सकते हो ?

आपका,
भगतसिंह

जयदेव को एक और पत्र

सेंट्रल जेल, लाहौर
24 जुलाई, 1930

मेरे प्रिय जयदेव !

कृपया निम्नलिखित किताबें द्वारकानाथ पुस्तकालय से मेरे नाम पर जारी करवाकर शनिचरवार को कुलबीर के हाथ भेज देना :

मैटीरियेलिज़्म : कार्ल लीब्नेखत
व्हाई मैन फाइट—बी. रसेल
सोवियट्स एट वर्क
कोलेप्स आफ सेकिण्ड इण्टरनेशनल
लैफ्ट विंग कम्युनिज्म
म्यूचुअल एण्ड प्रिंस क्रोपाटकिन
फील्ड्स फेक्ट्रीज एण्ड वर्कशाप्स
सिविल वार इन फ्रांस : मार्क्स
लैण्ड रिवोल्यूशन इन एशिया, और

अप्टन सिकलेयर की 'स्पाई'।

कृपया यदि हो सके तो मुझे एक और किताब भेजने का प्रबन्ध करना, जिसका नाम 'थ्योरी आफ हिस्टोरिकल मैटिरियेलिज्म : बुखारिन' है। (यह पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी से मिल जायेगी)। और पुस्तकालयाध्यक्ष से यह मालूम करना कि कुछ किताबें क्या बोर्स्टल जेल में भेजी गयी हैं ? उन्हें किताबों की बहुत जरूरत है। उन्होंने सुखदेव के भाई जयदेव के हाथों एक सूची भेजी थी, लेकिन उनको अभी तक किताबें नहीं मिलीं। अगर उनके (पुस्तकालय) पास कोई सूची न हो तो कृपया लाला फिरोजचन्द से जानकारी ले लेना और उनकी पसन्द के अनुसार कुछ रोचक किताबें भेज देना। इस रविवार जब मैं वहाँ जाऊँ तो उनके पास किताबें पहुँची हुई होनी चाहिए। कृपया यह काम किसी भी हालत में कर देना। इसके साथ ही डार्लिंग की 'पंजाब पेजेण्ट्री इन प्रॉसपैरिटी एण्ड डैट' और इसी तरह की एक-दो अन्य किताबें किसान समस्या पर डॉ. आलम के लिए भेज देना।

आशा है तुम इन कष्टों को ज्यादा महसूस न करोगे। भविष्य के लिए तुम्हें यकीन दिलाता हूँ कि तुम्हें कभी भी कोई कष्ट न दूँगा। सभी मित्रों को मेरी याद कहना और लज्जावती जी को मेरी ओर से अभिवादन उम्मीद है कि अगर दत्त की बहन आयीं तो वे मुझसे मुलाकात करने का कष्ट करेंगी।

आदर के साथ,
भगतसिंह

बटुकेश्वर दत्त की बहन प्रोमिला को पत्र

सेंट्रल जेल, लाहौर
17 जुलाई, 1930

प्यारी बहन,

कल बत्तू[1] ने आपको चिट्ठी लिखी थी। आपको यह खबर देने के लिए कि जब तक आपको उसकी दूसरी चिट्ठी न मिले, आप यहाँ न आयें। बत्तू को कल रात किसी अन्य जेल में भेज दिया गया है। अभी तक हम उसके पड़ाव के बारे में अन्जान हैं। इसलिए मैं आपसे अर्ज करता हूँ कि आप बनारस से लाहौर के लिए तब तक न चलें जब तक उसकी चिट्ठी न मिले। उसका बिछोह मेरे लिए भी असहनीय है। आज भी मैं बड़ी परेशानी

---

1. बटुकेश्वर दत्त का लाड का नाम।

महसूस कर रहा हूँ। हर पल बोझिल बन गया है। सच में ऐसे दोस्त से बिछड़ना जो कि मेरे अपने भाइयों से ज्यादा प्यारा हो, बहुत दुखद है। खैर, हमें यह सबकुछ हौसला करके सहना चाहिए। मैं आपसे अर्ज करता हूँ कि आप धीरज रखें; कोई चिन्ता न करें।

समय बीतने से कोई अच्छा ही परिणाम निकलेगा।

आपका भाई,
भगतसिंह

बटुकेश्वर दत्त को पत्र

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
अक्तूबर, 1930

प्रिय भाई,

मुझे सजा सुना दी गयी है और फाँसी का हुक्म हुआ है। इन कोठरियों में मेरे अलावा फाँसी का इन्तजार करनेवाले बहुत-से मुजरिम हैं। यह लोग यही प्रार्थनाएँ कर रहे हैं कि किसी तरह वे फाँसी से बच जायें। लेकिन उनमें से शायद मैं अकेला ऐसा आदमी हूँ जो बड़ी बेसब्री से उस दिन का इन्तजार कर रहा हूँ जब मुझे अपने आदर्श के लिए फाँसी के तख्ते पर चढ़ने का सौभाग्य मिलेगा। मैं खुशी से फाँसी के तख्ते पर चढ़कर दुनिया को दिखा दूँगा कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से कुर्बानी दे सकते हैं।

मुझे फाँसी की सजा मिली है, मगर तुम्हें उम्र कैद। तुम ज़िन्दा रहोगे और जिन्दा रहकर तुम्हें दुनिया को यह दिखा देना है कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए सिर्फ मर ही नहीं सकते, बल्कि जिन्दा रहकर हर तरह की यातनाओं का मुकाबला भी कर सकते हैं। मौत सांसारिक मुसीबतों से छुटकारा पाने का साधन नहीं बननी चाहिए, बल्कि जो क्रान्तिकारी संयोगवश फाँसी के फन्दे से बच गये हैं उन्हें ज़िन्दा रहकर दुनिया को यह दिखा देना चाहिए कि वे न सिर्फ अपने आदर्शों के लिए फाँसी पर चढ़ सकते हैं, बल्कि जेलों की अँधेरी कोठरियों में घुट-घुटकर हद दर्जे के अत्याचारों को भी सहन कर सकते हैं।

तुम्हारा,
भगतसिंह

छोटे भाई कुलबीर को पत्र

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
16 सितम्बर, 1930

प्यारे भाई कुलबीर जी,

सत श्री अकाल !

तुम्हें मालूम ही होगा कि उच्च अधिकारियों के आदेशानुसार मुझसे मुलाकातों पर पाबन्दी लगा दी गयी है। इन स्थितियों में फिलहाल मुलाकात न हो सकेगी और मेरा विचार है कि जल्द ही फैसला सुना दिया जायेगा। इसके कुछ दिनों बाद किसी दूसरी जेल में भेज दिया जायेगा। इसलिए किसी दिन जेल में आकर मेरी किताबें और कागजात आदि चीजें ले जाना। मैं बर्तन, कपड़े, किताबें और अन्य कागजात जेल के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट के दफ्तर में भेज दूँगा। आकर ले जाना। पता नहीं क्यों, मेरे मन में बार-बार यह विचार आ रहा है कि इसी हफ्ते के किसी दिन या अधिक-से-अधिक इसी माह में फैसला और चालान हो जायेगा। इन स्थितियों में अब तो किसी अन्य जेल में मुलाकात होगी। यहाँ तो उम्मीद नहीं।

वकील को भेज सको तो भेजना। मैं प्रिवी कौंसिल के सिलसिले में एक जरूरी मशविरा करना चाहता हूँ। माँजी को दिलासा देना, घबराएँ नहीं।

तुम्हारा भाई,
भगतसिंह

कुलबीर को एक और पत्र

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
25 सितम्बर, 1930

प्रिय भाई कुलबीरसिंह जी,

सत श्री अकाल !

मुझे यह जानकर कि एक दिन तुम माँजी को साथ लेकर आये और मुलाकात का आदेश न मिलने से निराश होकर वापस लौट गये, बहुत दुख हुआ। तुम्हें तो पता चल चुका था कि जेल में मुलाकात की इजाजत नहीं देते। फिर माँजी को साथ क्यों लाये ? मैं जानता हूँ कि इस समय वे बहुत घबरायी हुई हैं, लेकिन इस घबराहट और परेशानी का क्या फायदा, नुकसान जरूर है, क्योंकि जब से मुझे पता चला कि वे बहुत रो रही हैं, मैं स्वयं भी बेचैन हो रहा हूँ। घबराने की कोई बात नहीं, फिर इससे कुछ मिलता भी नहीं।

सभी साहस से हालात का मुकाबला करें। आखिरकार दुनिया में दूसरे लोग भी तो हजारों मुसीबतों में फँसे हुए हैं। और फिर अगर लगातार एक बरस तक मुलाकातें करके भी तबीयत नहीं भरी तो और दो-चार मुलाकातों से भी तसल्ली न होगी। मेरा ख्याल है कि फैसले और चालान के बाद मुलाकातों से पाबन्दी हट जायेगी, लेकिन माना कि इसके बावजूद मुलाकात की इजाजत न मिले तो ··· इसलिए घबराने से क्या फायदा ?

तुम्हारा भाई,
भगतसिंह

कुलबीर के नाम अन्तिम पत्र[1]

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
3 मार्च, 1931

प्रिय कुलबीरसिंह,

तुमने मेरे लिए बहुत कुछ किया। मुलाकात के समय तुमने अपने खत के जवाब में कुछ लिख देने के लिए कहा था। कुछ शब्द लिख दूँ, बस। देख, मैंने किसी के लिए कुछ न किया। तुम्हारे लिए भी कुछ न कर सका। आज तुम सबको विपदाओं में छोडकर जा रहा हूँ। तुम्हारी जिन्दगी का क्या होगा ? गुजर किस तरह करोगे ? यही सब सोचकर काँप जाता हूँ। लेकिन भाई हौसला रखना। विपदाओं में भी कभी न घबराना। इसके सिवाय और क्या कह सकता हूँ। अमेरिका जा सकते तो बहुत अच्छा होता। लेकिन अब तो यह नामुमकिन जान पड़ता है। धीरे-धीरे हिम्मत से पढ़ लो। अगर कोई काम सीख सको तो बेहतर होगा। लेकिन सबकुछ पिता जी की सलाह से करना। जहाँ तक सम्भव हो प्यार-मुहब्बत से रहना। इसके सिवाय और क्या कहूँ ? जानता हूँ कि आज तुम्हारे दिल में ग़म का समुद्र ठाठें मार रहा है। तुम्हारे बारे में सोचकर मेरी आँखों में आँसू आ रहे हैं; लेकिन क्या किया जा सकता है ? हौसला रख मेरे अजीज ! मेरे प्यारे भाई, जिन्दगी बड़ी सख्त है और दुनिया बड़ी बेरहम। लोग भी बहुत बेरहम हैं। सिर्फ हिम्मत और प्यार से ही गुजारा हो सकेगा। कुलतार की पढ़ाई की चिन्ता भी तुम्हीं करना। बहुत शर्म आती है और अफसोस के सिवाय मैं कर भी क्या सकता हूँ। साथवाला खत हिन्दी में लिखा है। खत बी. के. की बहन को दे देना। अच्छा नमस्कार, अजीज भाई अलविदा ··· रुखसत।

तुम्हारा शुभाकांक्षी,
भगतसिंह

1. फाँसी लगने से 20 दिन पूर्व।

कुलतार के नाम अन्तिम पत्र[1]

सेण्ट्रल जेल, लाहौर.
3 मार्च, 1931

प्यारे कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर बहुत दुख पहुँचा। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था। तुम्हारे आँसू मुझसे सहन नहीं होते।

बरखुरदार, हिम्मत से विद्या प्राप्त करना और स्वास्थ्य का ध्यान रखना। हौसला रखना, और क्या कहूँ—

उसे यह फिक्र है हरदम नया तर्ज़े-जफ़ा क्या है,
हमें यह शौक़ है देखें सितम की इन्तहा क्या है।

दहर से क्यों ख़फ़ा रहें, चर्ख़ का क्यों गिला करें,
सारा जहाँ अदू सही, आओ मुक़ाबला करें।

कोई दम का मेहमाँ हूँ ऐ अहले-महफ़िल,
चराग़े - सहर हूँ बुझा चाहता हूँ।

हवा में रहेगी मेरे ख्याल की बिजली,
ये मुश्ते-ख़ाक है फानी, रहे रहे न रहे।

अच्छा रुख़सत। खुश रहो अहले-वतन; हम तो स़फर करते हैं। हिम्मत से रहना। नमस्ते।

तुम्हारा भाई,
भगतसिह

बलिदान से पहले साथियों को अन्तिम पत्र

22 मार्च, 1931

साथियो,

स्वाभाविक है कि जीने की इच्छा मुझमें भी होनी चाहिए, मैं इसे छिपाना नही

1. *फाँसी लगने से 20 दिन पूर्व।*

चाहता। लेकिन मैं एक शर्त पर जिन्दा रह सकता हूँ, कि मैं कैद होकर या पाबन्द होकर जीना नहीं चाहता।

मेरा नाम हिन्दुस्तानी क्रान्ति का प्रतीक बन चुका है और क्रान्तिकारी दल के आदर्शों और कुर्बानियों ने मुझे बहुत ऊँचा उठा दिया है—इतना ऊँचा कि जीवित रहने की स्थिति में इससे ऊँचा मैं हर्गिज नहीं हो सकता।

आज मेरी कमजोरियाँ जनता के सामने नहीं हैं। अगर मैं फाँसी से बच गया तो वे जाहिर हो जायेंगी और क्रान्ति का प्रतीक-चिह्न मद्धिम पड़ जायेगा या सम्भवतः मिट ही जाये। लेकिन दिलेराना ढंग से हँसते-हँसते मेरे फाँसी चढ़ने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएँ अपने बच्चों के भगतसिंह बनने की आरजू किया करेंगी और देश की आजादी के लिए कुर्बानी देनेवालों की तादाद इतनी बढ़ जायेगी कि क्रान्ति को रोकना साम्राज्यवाद या तमाम शैतानी शक्तियों के बूते की बात नहीं रहेगी।

हाँ, एक विचार आज भी मेरे मन में आता है कि देश और मानवता के लिए जो कुछ करने की हसरतें मेरे दिल में थीं, उनका हजारवाँ भाग भी पूरा नहीं कर सका। अगर स्वतन्त्र, जिन्दा रह सकता तब शायद इन्हें पूरा करने का अवसर मिलता और मैं अपनी हसरतें पूरी कर सकता।

इसके सिवाय मेरे मन में कभी कोई लालच फाँसी से बचे रहने का नहीं आया। मुझसे अधिक सौभाग्यशाली कौन होगा? आजकल मुझे स्वयं पर बहुत गर्व है। अब तो बड़ी बेताबी से अन्तिम परीक्षा का इन्तजार है। कामना है कि यह और नजदीक हो जाये।

आपका साथी,
भगतसिंह।

10

दूसरे साथियों के कुछ पत्र

[सुखदेव दल की पंजाब शाखा के संगठनकर्त्ता थे, जबकि भगतसिंह और विजयकुमार सिन्हा की अन्तरप्रान्तीय सम्पर्क की जिम्मेदारी थी। इसीलिए लाहौर षड्यन्त्र केस ''ब्रिटिश राज बनाम सुखदेव व उनके साथी' चला। सुखदेव प्रत्यक्ष रूप से साण्डर्स की हत्या से सम्बन्धित नहीं थे, फिर भी क्रान्तिकारी दल के संगठनकर्त्ता होने के नाते उन्हें फाँसी की सजा दी गयी। यदि भगतसिंह दल को विचारधारात्मक नेतृत्व प्रदान कर रहे थे तो सुखदेव संगठन में नेता थे और राजगुरु अत्यन्त निष्ठा और त्याग की मूर्ति थे। इन तीनों के सुमेल से ही 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा पैदा हुआ।

भगतसिंह व सुखदेव ने क्रान्ति-पथ के पड़ाव भी साथ ही तय किये और परस्पर विचार-विमर्श द्वारा वैचारिक स्पष्टता भी हासिल की। हर महत्त्वपूर्ण समस्या पर इन दोनों की बहस होती थी, उसी बहस से क्रान्तिकारी दल के चिन्तन का भी पता चलता है। भगतसिंह और सुखदेव एक-दूसरे के अन्तरंग मित्र भी थे। इस अध्याय में सुखदेव के पत्रों के रूप में कुछ महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ प्रस्तुत हैं। –सं.]

सुखदेव का तायाजी के नाम पत्र[1]

बोर्स्टल, लाहौर

मान्य ताया जी,

दो पत्र पहले लिख चुका हूँ। कोई उत्तर नहीं मिला।

मैं सुन रहा हूँ मेरे कारण आपको बहुत कुछ मानसिक कष्ट उठाना पड़ रहा है इसके पूर्व भी इस ख्याल से आपको पत्र द्वारा कहने की चेष्टा की है। अब फिर वही कर रहा हूँ।

---

1. *बोर्स्टल जेल, लाहौर से ताया श्री चिन्ताराम थापर के नाम लिखा पत्र। –सं.*

मैं जानता हूँ कि आपको मेरे स्वभाव [मूलपत्र में 'स्वाभाव' लिखा है ।—सं.] के कारण बहुत चिन्तित रहना पड़ता है और मैं यह भी चाहता हूँ कि आपकी यह चिन्ता किसी प्रकार दूर हो जाये । खासकर इन दिनों में जब कि आपके लिए दूसरे कष्ट काफी इकट्ठे हो रहे हैं । परन्तु एक बात मैं आपसे साफ कहना चाहता हूँ । मुझसे कोई बात सिर्फ इसीलिए कि उससे दूसरे खुश होंगे—नहीं हो सकती । दाढ़ी ही की बात लीजिए । भला इससे आपको इतना दुखी होने की क्या आवश्यकता थी । जैसे दाढ़ी-मूँछ कटाना एक फैशन है वैसे ही दाढ़ी रखना भी तो एक फैशन ही है । अब क्या किसी व्यक्ति को इस बारे में भी माता-पिता द्वारा इतना बाध्य होना पड़ेगा और उसे सर, दाढ़ी और मूँछ के बाल अपने माता-पिता की इच्छा पर ही रखाने या कटाने चाहिएँ । तो क्या वह लोग जो दाढ़ी इत्यादि धर्म अथवा माँ-बाप की खातिर या रूढ़ि को कायम रखने की खातिर रखाते हैं ऐसा करने में (justified) हुए न । मैं नहीं समझता कि आप-जैसे स्वतन्त्र विचार रखनेवाला पुरुष क्यों अपने पुत्र से ऐसी आशा करता है कि वह मामूली-मामूली बात करने में इस बात का विचार रखे कि उसके वैसा करने से उसका पिता तो बुरा नहीं मानेगा । और वह आदमी आजाद विचारोंवाला ही कैसे हो सकता है जो दूसरे व्यक्ति को उसके अपनी इच्छानुसार करने पर बुरा समझे जबकि वह बात कोई ऐसी नहीं है जिसे बुरी दृष्टि से (Morally) देखा जाना चाहिए ।

हाँ, एक बात और है, शायद आपका यह विचार होता होगा कि इससे मैं बदसूरत मालूम होता हूँ और मैं जान-बूझकर अपनी हालत ज्यादा गन्दी रखना चाहता हूँ, जिसे आप अपने पुत्र के लिए अच्छा नहीं समझते । यदि ऐसा है तो मैं आपको बताना चाहता हूँ कि आपका ऐसा विचार करना भूल है । अपने शरीर की जितनी फिकर मुझे रहती है और देश तथा धर्म की खातिर अपने शरीर को खराब करने के बरखिलाफ जितना मैं हूँ और शायद ही कोई हो । ऐसी अवस्था में मैं नहीं समझता कि आपकी नाराजगी का क्या कारण है ।

साथ ही यह बात भी मैं आपके आगे रख देना चाहता हूँ कि मैं इस बात को बहुत बुरा समझता हूँ कि मैं यह कुछ भी करने में सदा इस बात का ध्यान रखूँ कि दूसरे क्या विचार करेंगे और न ही मैं यह अच्छा समझता हूँ कि और कोई मेरे व्यक्तिगत जीवन की बातों में मुझे अपनी इच्छाओं से बाध्य करे । मैं चाहे कोई भी हो—किसी की खातिर अपना व्यक्तित्व खोना नहीं चाहता और फिर ऐसी-ऐसी मामूली बातों की खातिर मैं स्वयं इन बातों से तंग हो जाता हूँ ।

दूसरा कारण आपके दुःखी रहने का है मेरा आजकल का Attitude । ठीक है। माता-पिता के लिए गौरव की बात यही है कि उनका लड़का उनके लिए नेकनामी पैदा करे न कि कलंक । माता-पिता की सदा यह इच्छा रहती है कि उनका लड़का बड़ा नाम कमाये और जीवन के संग्रामों में किसी से भी पीछे न रहे । मैं जानता हूँ आपकी भी ऐसी ही मानसिक अवस्था है और जब आप देखते हैं कि मैं किसी बात में भाग नहीं लेता और

हमेशा चुप रहता हूँ तो आपको बहुत दुख होता है। सचमुच, मैं आपसे सच्चे दिल से कहता हूँ, आपको इस बारे में दुखी देखकर मैं स्वयं बहुत दुःखी होता हूँ। और क्या कहूँ, मैंने इस कारण से कितने अपनों को नाराज किया है और कितनों की नजर में बुरा बना हूँ। इतना होने पर भी इस बारे में मैं कुछ नहीं कहना चाहता और न सफाई देना चाहता हूँ। पर आपसे यह अवश्य कहूँगा कि आप कभी इन विचारों को लेकर दुखी न हों और मैं क्या करता हूँ और मुझे क्या करना चाहिए, इन बातों पर कभी विचार ही न करना चाहिए।

क्योंकि आपको यकीन करना चाहिए कि मैं आपका पुत्र हूँ। बस यही मेरी सफाई है। इस पर यकीन कीजिए।

क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि आप मेरी ओर से निश्चिन्त हो जायेंगे।

आपका पुत्र,
सुखदेव

सुखदेव का अधूरा पत्र

[राष्ट्रीय अभिलेखागार, भारत सरकार, नयी दिल्ली के सौजन्य से प्राप्त सुखदेव की यह अपूर्ण, अप्रेषित चिट्ठी सुखदेव के बोर्स्टल जेल से, सेण्ट्रल जेल लाहौर में स्थानान्तरण के समय प्राप्त हुई थी। मूल चिट्ठी पाकिस्तान सरकार के रिकार्ड में है लेकिन इसकी फोटोस्टेट प्रतिलिपि राष्ट्रीय अभिलेखागार में उपलब्ध है।—सं.]

7 अक्तूबर, 1930

बिरादरमन,

देर से कुछ भावनाएँ हृदय में उठ रही थीं जिनको कुछ कारणोंवश अब तक दबाये हुए था। किन्तु अब अधिक नहीं दबा सकता। दबा सकता ही नहीं वरन उनको दबाना उचित भी नहीं समझता। कह नहीं सकता मेरे इस प्रकार भाव प्रकट करने को आप अच्छा समझें या बुरा। इनको कुछ महत्त्व दें या नहीं। ये आपके अनुकूल हों या नहीं। आप इनसे सहमत हों या नहीं। लेकिन मैं तो वही कर रहा हूँ जो मुझे उचित मालूम दे रहा है। आप इन्हें ग्रहण करना चाहें करें, यह आपकी इच्छा है। और यदि आप इसका उत्तर देना चाहें तो बड़ी अच्छी बात हो। इससे यह लाभ होगा कि मेरे विचार भी कुछ clear हो जायेंगे और मुझे इस बात की तसल्ली भी हो जायेगी कि जेल की चारदीवारी ने मुझे मेरे

---

1. *'आपका पुत्र सुखदेव' यह शब्द मूल पत्र के आरम्भ में बायीं तरफ ऊपर लिखा गया है।—सं.*

ठीक-ठीक judge कर सकने की शक्ति से वंचित नहीं कर दिया और practical life के field से अलग हो जाने पर मैं idle और Vain Schemes के सोचने का आदी नहीं हो गया हूँ।

जब से हम लोग जेल में आये हैं बाहिर का वातावरण बहुत गरम हो रहा है। जहाँ तक actions का सम्बन्ध है, पत्रों द्वारा पता चलता है कि करीब हर एक province में, खासकर पंजाब और बंगाल में तो हद ही हो गयी है। इस पर bomb तो एक साधारण-सी बात हो गयी है। बम द्वारा इतने actions हमारे इतिहास में शायद ही कभी हुए होंगे। इन्हीं actions के बारे में ही मैं यहाँ पर आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। इस बारे में actions के सम्बन्ध में हमारी अपनी policy क्या थी, आपके सम्मुख रखूँगा। इसके पश्चात् actions के सम्बन्ध में अपने विचार कहूँगा।

हम लोग कुल दो actions कर पाये। एक साण्डर्स मर्डर, दूसरा असेम्बली बम। इसके अतिरिक्त हमने दो-तीन और actions करने का प्रयत्न किया था यद्यपि उनमें सफलता प्राप्त नहीं हुई। इनके सम्बन्ध में मैं इतना कह सकता हूँ कि हमारे actions तीन प्रकार के थे–1. Propaganda 2. Money 3.Special. इन तीनों में से हमारा मुख्य ध्यान propaganda के actions की ओर था। बाकी दोनो गौण कहे जा सकते हैं। इससे मेरा अभिप्राय उनकी improtance को कम करने का नहीं है तो भी हमारे लिए हमारी existence का उद्देश्य propaganda के actions करना ही था। बाकी दोनों प्रकार के actions हमारा उद्देश्य नहीं थे, वरन उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक। इन तीनों को clear करने के लिए 1. Assembly action, 2. Punjab National Bank Dacoity और 3. जोगेश चटर्जी को छुड़ाने की कोशिश आप (आज ?) आपके सम्मुख रखता हूँ।

पिछले दो प्रकार के actions को छोड़कर मैं propaganda actions को इस स्थान पर discuss करना चाहता हूँ। propaganda शब्द से शायद इन actions को ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता। दरअसल मतलब यह है कि हमारे यह actions हमारी जनता के भावों के अनुकूल होते थे। उदाहरण के लिए Saunders' murder को लो। लाला (ला. लाजपत राय) पर लाठियाँ पड़ने से हमने देखा कि देश में इनके कारण बहुत हलचल है। इस पर Govt. के रवैये ने तेल का काम किया। लोग बहुत नाराज हो गये। जनता का ध्यान revolutionaries की ओर खींचने के लिए हमारे लिए यह बड़ा अच्छा अवसर था। पहले हमने सोचा था कि एक आदमी पिस्तौल लेकर जाये और Scott को मारकर वहीं पर अपने आपको पेश कर दे। फिर Statement द्वारा यह कह दे कि National insult का बदला जब तक revolutionaries जिन्दा हैं, इसी प्रकार लिया जा सकता है। किन्तु आस-पास man-power कम होने के कारण तीन आदमियों को भेजना ज्यादा उचित समझा गया। इसमें भी बचकर निकल जाने की आशा का विचार मुख्य नहीं था। इसकी तो आशा भी नहीं थी। हमारा विचार यह था

कि यदि murder के बाद पुलिस पीछा करे तो खूब मुकाबला किया जाये। जो इस मुकाबले में बच जाये और पकड़ा जाये तो Statement दे दे। इसी विचार से भागकर D. A.. V. College boarding की छत पर चढ़ गये थे। Action के समय यह प्रबन्ध था कि भगतसिंह जो Scott को पहचानता था, पहली गोली चलाये और राजगुरु थोड़ी दूरी पर उसकी हिफाजत करे। यदि भगतसिंह पर कोई हमला करे तब राजगुरु उसको रोके। इसके बाद यह दोनों वहाँ से भागें और चूँकि भागते हुए मुड़कर पीछा करनेवालों पर निशाना नहीं लिया जा सकता इसलिए पण्डित जी को इन दोनों की रक्षा के निमित्त पीछे खड़ा किया था। इसके साथ ही यह विचार हमारे सामने था कि अपने बचने के बजाय उसको मारने का ज्यादा ध्यान रखना है। हम यह भी नहीं चाहते थे कि जिस पर गोली चलायी जाये वह हस्पताल जाकर मरे। इसीलिए राजगुरु द्वारा गोली मार देने के बाद भी भगतसिंह ने तब तक गोली चलानी बन्द न की जब तक उसे तसल्ली नहीं हो गयी कि वह मर गया है।

मारकर भाग जाना ही हमारा उद्देश्य नहीं था। हम तो चाहते थे कि देश जान जाये कि यह political murder है और इस action के करनेवाले revolutionaries हैं न कि मालंगी के साथी, इसलिए हमने उसके बाद posters लगाये और कुछ posters अखबारवालों को छापने के लिए भेजे। अफसोस, हमारे नेताओं और अखबारवालों ने हमें इस सम्बन्ध में कुछ सहायता न की और Govt. को धोखे में रखने के विचार से देशवासियों को धोखा दिया। हम तो केवल इतना ही चाहते थे कि वह इसके सम्बन्ध में यह गोल-मोल करके लिख दें कि यह political murder है और Govt. की policy का ही परिणाम है। ऐसे actions के लिए वह responsible है। लेकिन उन्होंने जानते-बूझते और मेरे बार-बार कहने के बावजूद भी ऐसा कहने की हिम्मत नहीं की। अच्छा हुआ हम पकडे गये और देश के सम्मुख सब प्रगट हो गया। मैं तो भाई, अपने पकड़े जाने को सौभाग्य समझता हूँ। सिर्फ इसीलिए इस action की nature को clear कर देने के पश्चात् अब मैं इस policy को (Note : इसी समय पता लगा है कि आज Judgement होगी, चलना है कि नहीं यह पूछने के लिए खाँ साहिब और बख्शी जी आये थे। हम सबने इंकार कर दिया है) रखना चाहता हूँ। हमारा विचार था कि हमारे actions जनता की desires और Govt. द्वारा grievances के उत्तर में होने चाहिए ताकि हम लोग जनता को अपने साथ ले सकें और जनता हमारे प्रति सहानुभूति और सहायता दिखाने के लिए तैयार हो जाये। इसके साथ-साथ हमारा यह विचार था कि revolutionary ideals और tacties को public में फैलाया जाय और यह उसके मुख से ज्यादा अच्छी लगती है जो इनकी खातिर gallows पर खडा हो। तीसरा उद्देश्य यह था कि Govt. से direct टक्कर लेने से हमारी organisation एक निश्चित programme अपने लिए बना सकेगी।

बाकी दो प्रकार के actions के सम्बन्ध मे कुछ ज्यादा नहीं कहना चाहता हूँ।

Money actions के लिए इतना आवश्यक होना चाहिए कि बंगालवालों की तरह dacoities में ज्यादा energy और attention देना ठीक नहीं है। साथ ही छोटी-छोटी dacoities कतई लाभदायक सिद्ध नहीं हुई हैं। इसलिए हम सबकुछ देकर भी एक जुआ खेलने को तैयार हो गये थे ताकि अगर बच गये तो अच्छी तरह से निश्चिन्त होकर अपना काम करते जायेंगे और पैसा की समस्या को हम एक बार risk लेकर हल करेंगे। सांडर्स के murder के बाद तो हमें पैसा के लिए ज्यादा चिन्ता भी नहीं करनी पड़ी। साधारण dacoities में जितना धन हमें नहीं मिलता उतना हम चुपचाप इकट्ठा कर लिया करते थे। आज तो उससे कहीं ज्यादा आसानी है। Special actions अनिवार्य होते हैं लेकिन उसी दशा में जब अत्यन्त आवश्यक हों। हाँ, इनकी संख्या बहुत कम होनी चाहिए।

अब मैं उन actions के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ जो हमारे बाद घटित हुए। वाइसराय की ट्रेन को उड़ाने के प्रयत्न के अतिरिक्त बम द्वारा कई actions हुए हैं। इनमें एक विशेष प्रकार के actions हुए हैं। अर्थात बम रास्ते में रख आयें या जो actions पंजाब के चार-पाँच शहरों में एक साथ हुए हैं। मुझे समझ नहीं आयी कि यह actions किस विचार से किये गये हैं। जहाँ तक मैं अनुभव करता हूँ जनता में ऐसे actions से विशेष जागृति तो आती नहीं है। यदि terrorise करने का विचार था तो मैं पूछना चाहता हूँ कि आप लिखें कि इन actions ने इस उद्देश्य की कहाँ तक पूर्ति की है। इस सम्बन्ध में चिटगाँववाले actions की यहाँ पर प्रशंसा नहीं करना चाहता।

क्रान्तिवादी दोस्तों के नाम

प्यारे साथियो!

दो साल का समय हो चुका है जबकि पहले-पहल Long Live Revolution का आरम्भ हुआ था। यह छोटी-सी आवाज आज एक भारी और भयानक रूप धारण कर चुकी है। हमारे देश का बच्चा-बच्चा इन्कलाब-जिन्दाबाद चिल्ला रहा है।

किन्तु क्या यही काफी है? क्या अब हमारे लिए कोई कार्य बाकी नहीं रहा? नहीं। कार्य का आरम्भ तो अभी होना चाहिए। नहीं तो यह इन्कलाब-जिन्दाबाद भी गाँधी के 'स्वराज्य' की भाँति एक बेमानी चीज हो जायेगा, जिसे थोड़े समय बाद जनता घृणा और नफरत की दृष्टि से देखेगी। काफी देर तक हमने पब्लिक के sentiments को उभारा है। अब समय आ गया है कि हम public को इसका अर्थ समझाएँ। हम उनके आगे रखे कि Revolution क्या है। उसका masses के साथ क्या सम्बन्ध है। उसकी क्या आवश्यकता है। और वह क्योंकर Successful की जा सकती है।

याद रखो इन प्रश्नों को छुपाकर रखना हितकर नहीं होगा। मैं देख रहा हूँ—लोगों के दिलों में यह प्रश्न उठ रहे हैं। यदि इन प्रश्नों का उत्तर न दिया गया, यदि गाँधी की तरह इनको vague रखा गया तो सब गुड़गोबर हो जायेगा। आज तक की सब मेहनत व्यर्थ हो जायेगी। परन्तु इसके साथ ही एक introductory काम और भी है। यदि तुम्हारी यह धारणा है कि Long Live Revolution कह लेने से तुम Revolutionary हो गये हो तो यह तुम्हारी भूल है। तुम लोगों मे कोई ही होगा जो वास्तव में Revolutionary कहलाने के योग्य होगा। लेकिन यह कोई शरम की बात नही। अपने इस अभाव को हमें मानना चाहिए और इसे मानकर इसकी पूर्ति करनी चाहिए। अपनी और सभी साथियों की revolutionary education के प्रबन्ध करने चाहिए। उसके लिए कार्य आरम्भ करने चाहिए।

याद रखो, अपनी सफलता इस बात पर निर्भर है कि हमारे workers अपने revolutionary ideals, tactics और struggle को खूब समझते हैं। आज के arm chair politicians और sentimental lectures द्वारा क्रान्ति का कार्य नहीं चलाया जाना चाहिए। बल्कि ऐसे व्यक्तियों को अपनी organisation में ही नहीं लेना चाहिए। क्रान्ति करने के हेतु वे ही व्यक्ति लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं जो Self sacrificing devotion के हों, जो revolutionary education प्राप्त किये हों और जीवन में क्रान्ति को profession समझे हों। जो व्यक्ति Revolutionary work को अपना profession नहीं बना सकता वह एक Sympathiser के सिवा कुछ नहीं है।

मैं आशा करता हूँ कि समय की आवश्यकता को अनुभव कर आप मेरी इन बातों पर ध्यान देंगे और जितनी जल्दी हो सके public demand को पूरा करने का यत्न करेंगे।

[मूल पत्र यहीं समाप्त होता है और अन्तिम अक्षर अस्पष्ट हैं—सं.]

आवाज दबाना दुखदायी है[1]

प्यारे साथी,

अभी-अभी पता चला है कि हमारा वह statement जो हमने 3 तारीख को दिया है अखबारवालों ने नहीं छापा। कारण यह कहा जाता है कि उसमें लीडरों को criticise किया गया है और उनके इस समझौते को बुरा कहा गया है। उफ, कैसी शरम की बात

1. मथुरादास की पुस्तक 'अमर शहीद सुखदेव' में प्रकाशित लेखकीय टिप्पणी के अनुसार—सुखदेव ने यह पत्र सम्भवत: श्री चन्द्रशेखर आजाद के नाम लिखा था, जो उन तक पहुँच नहीं पाया।—सं.

है! भाई, सच पूछो तो हमें सरकार फाँसी नहीं लगा रही। हमारा गला तो हमा so-called leaders ही दबा रहे हैं जो हमारी आवाज निकलने नहीं देते। परन्त सरकार द्वारा गला दबाना हमारे लिए बुरा सिद्ध नहीं हो सकता। उसको हम सहन क सकते हैं लेकिन यह बात हमारे से बर्दाश्त नहीं हो सकती कि हमारा गला हमारे य स्वार्थी High Class Leaders दबायें। इसके विरुद्ध हमें लडना पड़ेगा। अपनी struggle को हमें उनसे अलग होकर स्वतन्त्र रूप से चलाना होगा और सरकार क विरोध करते-करते इन उच्च जाति-नेताओं की पोल भी खोलनी पड़ेगी।

परन्तु दोस्तो, यह कार्य ज्यादा देरी तक neglect नहीं किया जा सकता। इस पर हमें विचार करना चाहिए और उसके लिए शीघ्र ही प्रबन्ध करना चाहिए। और कब तव ऐसा व्यवहार सहते रहोगे। हम क्रान्तिकारियों के प्रति उनके इस प्रकार Natura Relation और हमारी गिरावट के दो मुख्य कारण हैं। पहला यह कि हमारी को स्थायी organisation नहीं है, जो उनके मुकाबले में और उनसे अलग अपनी line पर काम कर रही हो। दूसरा यह कि जो भी थोड़ा-बहुत scattered element है उसवे हाथ में Press नहीं है जिसके द्वारा वह अपनी आवाज जनता तक पहुँचा सके और जिसवे बल पर वह बढ़े, डटकर सरकार तथा इन उच्च जाति-सन्तों का भलीभाँति विरोध क सके।

अनेक कारणोंवश हम लोगों को आज तक केवल गुप्त समितियाँ बनाकर ही काम करते रहना पड़ा है। परन्तु यारो, अब समय आ गया है कि हम इस policy का त्याग करें। साधारण जनता हमें और हमारे आदर्शों को मानने लग गयी है। उसकी सहानुभूति हमारे साथ है। ठीक है, अपने कार्य को Successfully चलाने और अपनी organisation को कायम रखने के हेतु बहुत कुछ गुप्त रखना पड़ेगा। हमें अपने काम को गाँधी की lines पर नहीं चलाना है तो भी अब केवल इस जत्थेबन्दी और गोली बारूद द्वारा ही काम करना उचित नहीं। अब हमें आगामी struggle के लिए एव Force बनने की जरूरत है।

उसके लिए जैसा मैंने पहले भी लिखा है, खुफिया सोसायटी के ढंग पर पंजाब मे एव Central Red Revolutionary Party कायम करने की आवश्यकता है, जिसक मुख्य काम भिन्न-भिन्न local स्थानों पर Revolutionary work और tactics क प्रचार और अच्छे क्रान्तिवादी worker तथा व्यवस्था होनी चाहिए। इसके साथ-साथ उस कांग्रेस की नकेल अपने हाथ में रखनी चाहिए। अपने ideas को legally o illegally दोनों प्रेसों द्वारा बराबर फैलाने की कोशिश करनी चाहिए।

यह सब शायद तुम्हें शेखचिल्ली की बातें जान पड़ती होंगी। लेकिन प्यारे, यह तो करना ही होगा और शीघ्र करना होगा। मैं नहीं कह सकता इस कांग्रेस में इसी वक्त से कोई ऐसा wing तैयार हो जायेगा लेकिन इस कांग्रेस की तैयारी चाहे कितनी भी मामूली हो उसकी beginning कर देनी चाहिए।

(Important) हमें मरने का दुख नहीं है। अपनी आवाज का दबाया जाना हमारे लिए बहुत कष्टदायक है। मैं चाहता हूँ कि हमारी वह Statement तुम सरदार जी या हमारे वकील से प्राप्त कर एक छोटे-से appealing note के साथ उर्दू, गुरमुखी और अंग्रेजी में लिखवाकर छपने का प्रबन्ध करो।

—सुखदेव

गाँधी जी के नाम खुली चिट्ठी[1]

परम कृपालु महात्मा जी,

आजकल की ताजा खबरों से मालूम होता है कि समझौते की बातचीत की सफलता के बाद आपने क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ताओं को फिलहाल अपना आन्दोलन बन्द कर देने और आपको अपने अहिंसावाद को आजमा देखने का आखिरी मौका देने के लिए कई प्रकट प्रार्थनाएँ की हैं। वस्तुत: किसी आन्दोलन को बन्द करना केवल आदर्श या भावना से होनेवाला काम नहीं है। भिन्न-भिन्न अवसरों की आवश्यकताओं का विचार ही अगुआओं को उनकी युद्धनीति बदलने के लिए विवश करता है।

माना कि सुलह की बातचीत के दरम्यान, आपने इस ओर एक क्षण के लिए भी न तो दुर्लक्ष्य किया, न इसे छिपा ही रखा कि यह समझौता अन्तिम समझौता न होगा। मैं मानता हूँ कि सब बुद्धिमान लोग बिल्कुल आसानी के साथ यह समझ गये होंगे कि आपके द्वारा प्राप्त तमाम सुधारों का अमल होने लगने पर भी कोई यह न मानेगा कि हम मंजिले-मकसूद पर पहुँच गये हैं। सम्पूर्ण स्वतन्त्रता जब तक न मिले, तब तक बिना विराम के लड़ते रहने के लिए महासभा लाहौर के प्रस्ताव से बँधी हुई है। उस प्रस्ताव को देखते हुए मौजूदा सुलह और समझौता सिर्फ कामचलाऊ युद्ध-विराम है, जिसका अर्थ यही होता है कि आनेवाली लड़ाई के लिए अधिक बड़े पैमाने पर अधिक अच्छी सेना तैयार करने के लिए यह थोड़ा विश्राम है। इस विचार के साथ ही समझौते और युद्ध-विराम की शक्यता की कल्पना की जा सकती और उसका औचित्य सिद्ध हो सकता है।

किसी भी प्रकार का युद्ध-विराम करने का उचित अवसर और उसकी शर्तें ठहराने का काम तो उस आन्दोलन के अगुआओं का है। लाहौरवाले प्रस्ताव के रहते हुए भी

1. गाँधी जी के नाम सुखदेव की यह 'खुली चिट्ठी' मार्च, 1931 में लिखी गयी थी जो गाँधी जी के उत्तर सहित हिन्दी 'नवजीवन' 30 अप्रैल, 1931 के अंक में प्रकाशित हुई थी।

आपने फिलहाल सक्रिय आन्दोलन बन्द रखना उचित समझा है, तो भी वह प्रस्ताव तो कायम ही है। इसी तरह 'हिन्दुस्तानी सोशियालिस्ट रिपब्लिकन पार्टी' के नाम से ही साफ पता चलता है कि क्रान्तिवादियों का आदर्श समाज-सत्तावादी प्रजातन्त्र की स्थापना करना है। यह प्रजातन्त्र मध्य का विश्राम नहीं है। उनका ध्येय प्राप्त न हो और आदर्श सिद्ध न हो, तब तक वे लड़ाई जारी रखने के लिए बँधे हुए हैं। परन्तु बदलती हुई परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार वे अपनी युद्ध-नीति बदलने को तैयार अवश्य होंगे। क्रान्तिकारी युद्ध जुदा-जुदा मौकों पर जुदा-जुदा रूप धारण करता है। कभी वह प्रकट होता है, कभी गुप्त, कभी केवल आन्दोलन-रूप होता है, और कभी जीवन-मरण का भयानक संग्राम बन जाता है। ऐसी दशा में क्रान्तिवादियों के सामने अपना आन्दोलन बन्द करने के लिए विशेष कारण होने चाहिए। परन्तु आपने ऐसा कोई निश्चित विचार प्रकट नहीं किया। निरी भावपूर्ण अपीलों का क्रान्तिवादी युद्ध में कोई विशेष महत्त्व नहीं होता, हो नहीं सकता।

आपके समझौते के बाद आपने अपना आन्दोलन बन्द किया है, और फलस्वरूप आपके सब कैदी रिहा हुए हैं। पर क्रान्तिकारी कैदियों का क्या ? 1915 ई. से जेलों में पड़े हुए गदर-पक्ष के बीसों कैदी सजा की मियाद पूरी हो जाने पर भी अब तक जेलों में सड़ रहे हैं। मार्शल लॉ के बीसो कैदी आज भी जिन्दा कब्रों में दफनाये पड़े हैं। यही हाल बब्बर अकाली कैदियों का है। देवगढ़, काकोरी, मछुआ-बाजार और लाहौर षड्यन्त्र के कैदी अब तक जेल की चहारदीवारी में बन्द पडे हुए बहुतेरे कैदियों में से कुछ हैं। लाहौर, दिल्ली, चटगाँव, बम्बई, कलकत्ता और अन्य जगहों में कोई आधी दर्जन से ज्यादा षड्यन्त्र के मामले चल रहे हैं। बहुसंख्यक क्रान्तिवादी भागते फिरते हैं, और उनमे कई तो स्त्रियाँ हैं। सचमुच आधी दर्जन से अधिक कैदी फाँसी पर लटकने की राह देख रहे हैं। इन सबका क्या ? लाहौर षड्यन्त्र केस के सज़ायाफ्ता तीन कैदी, जो सौभाग्य से मशहूर हो गये हैं और जिन्होंने जनता की बहुत अधिक सहानुभूति प्राप्त की है, वे कुछ क्रान्तिवादी दल का एक बड़ा हिस्सा नहीं हैं। उनका भविष्य ही उस दल के सामने एकमात्र प्रश्न नहीं है। सच पूछा जाये तो उनकी सजा घटाने की अपेक्षा उनके फाँसी पर चढ़ जाने से ही अधिक लाभ होने की आशा है।

यह सब होते हुए भी आप उन्हें अपना आन्दोलन बन्द करने की सलाह देते हैं। वे ऐसा क्यों करें ? आपने कोई निश्चित वस्तु की ओर निर्देश नहीं किया है। ऐसी दशा में आपकी प्रार्थनाओं का यही मतलब होता है कि आप इस आन्दोलन को कुचल देने में नौकरशाही की मदद कर रहे हैं, और आपकी विनती का अर्थ उनके दल को द्रोह, पलायन और विश्वासघात का उपदेश करना है। यदि ऐसी बात नहीं है, तो आपके लिए उत्तम तो यह था कि आप कुछ अग्रगण्य क्रान्तिकारियों के पास जाकर उनसे सारे मामले के बारे में बातचीत कर लेते। अपना आन्दोलन बन्द करने के बारे में पहले आपको उनकी बुद्धि की प्रतीति करा लेने का प्रयत्न करना चाहिए था। मैं नहीं मानता कि आप

भी इस प्रचलित पुरानी कल्पना में विश्वास रखते हैं कि क्रान्तिकारी बुद्धिहीन हैं, विनाश और संहार में आनन्द माननेवाले हैं। मैं आपको कहता हूँ कि वस्तुस्थिति ठीक इसकी उलटी है, वे सदैव कोई भी काम करने से पहले उसका खूब सूक्ष्म विचार कर लेते हैं, और इस प्रकार वे जो जिम्मेदारी अपने माथे लेते हैं, उसका उन्हें पूरा-पूरा ख्याल होता है। और, क्रान्ति के कार्य में दूसरे किसी भी अंग की अपेक्षा वे रचनात्मक अंग को अत्यन्त महत्त्व का मानते हैं, हालाँकि मौजूदा हालत में अपने कार्यक्रम के संहारक अंग पर डटे रहने के सिवा और कोई चारा उनके लिए नहीं है।

उनके प्रति सरकार की मौजूदा नीति यह है कि लोगों की ओर से उन्हें अपने आन्दोलन के लिए जो सहानुभूति और सहायता मिली है, उससे वंचित करके उन्हें कुचल डाला जाये। अकेले पड़ जाने पर उनका शिकार आसानी से किया जा सकता है। ऐसी दशा में उनके दल में बुद्धि-भेद और शिथिलता पैदा करनेवाली कोई भी भावपूर्ण अपील एकदम बुद्धिमानी से रहित और क्रान्तिकारियों को कुचल डालने में सरकार की सीधी मदद करनेवाली होगी।

इसलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि या तो आप कुछ क्रान्तिकारी नेताओं से बातचीत कीजिए—उनमें से कई जेलों में हैं—और उनके साथ सुलह कीजिए या ये सब प्रार्थनाएँ बन्द रखिए। कृपा कर हित की दृष्टि से इन दो में से कोई एक रास्ता चुन लीजिए और सच्चे दिल से उस पर चलिए। अगर आप उनकी मदद न कर सकें, तो मेहरबानी करके उन पर रहम करें। उन्हें अलग रहने दें। वे अपनी हिफाजत आप अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। वे जानते हैं कि भावी राजनैतिक युद्ध में सर्वोपरि स्थान क्रान्तिकारी पक्ष को ही मिलनेवाला है। लोकसमूह उनके आस-पास इकट्ठा हो रहे हैं, और वह दिन दूर नहीं है, जब ये जनसमूह को अपने झण्डे तले, समाजसत्ता प्रजातन्त्र के उम्दा और भव्य आदर्श की ओर ले जाते होंगे।

अथवा अगर आप सचमुच ही उनकी सहायता करना चाहते हों, तो उनका दृष्टिकोण समझ लेने के लिए उनके साथ बातचीत करके इस सवाल की पूरी तफसीलवार चर्चा कर लीजिए।

आशा है, आप कृपा करके उक्त प्रार्थना पर विचार करेंगे और अपने विचार सर्वसाधारण के सामने प्रकट करेंगे।

आपका,
अनेकों में से एक

शहीद महावीरसिंह का पत्र

[शहीद महावीरसिंह को लाहौर षड्यन्त्र केस में उम्र कैद की सज़ा हुई थी। डॉ. गया प्रसाद, शिव वर्मा, पण्डित किशोरीलाल, जयदेव कपूर, विजयकुमार सिन्हा और कमलनाथ तिवारी को भी उम्र कैद हुई थी। इन सभी साथियों को अण्डमान जेल में भेजा गया था। ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के विरुद्ध जेलों के भीतर भी क्रांतिकारियों का संघर्ष जारी रहा। प्रस्तुत पत्र में, जो कि 23 जनवरी, 1933 को लिखा गया, शहीद महावीरसिंह की उच्च व सच्ची राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। —सं.]

पोर्ट ब्लेयर, अण्डमान

परम पूज्य पिताजी,

आपको पढ़कर आश्चर्य होगा कि उपरोक्त स्थान पर मैं कब आ गया। यही पहेली हल करने मैं जा रहा हूँ। तारीख 19 जनवरी को प्रातःकाल लगभग 11 बजे जेलर साहब सेण्ट्रल जेल बिलारी आये और कोठरी का दरवाजा खोलकर सूचना दी कि तुम्हारा ट्रान्सफर है, पर यह नहीं बताया कि कहाँ को है। पूछने पर केवल इतना कहा कि शायद पंजाब में नये लाहौर साजिश केस में गवाही देने के लिए मद्रास भेजे जाओगे। अस्तु, 19 तारीख की शाम को जब मैंने सेण्ट्रल जेल मद्रास मे पैर रखा तो मेरे जीवन-मरण के साथी श्रीयुत् भाई कमलनाथ तिवारी के दर्शन—लगभग दो वर्ष बाद—हुए और रात को भाई बी. के. दत्त और भाई कुन्दनलाल जी की आवाजें सुनी। आप स्वय ही जान सकते हैं कि मुझे कितनी प्रसन्नता हुई। परन्तु अलस्सुबह फिर कुछ निराशा की झलक नजर आयी जब देखा कि तिवारी और भाई दत्त और कुन्दनलाल हमसे पहले पृथक ले जाये गये हैं, परन्तु 15 मिनट बाद वह फिर हर्ष मे बदल गयी और मोटर लॉरी में हम फिर मिल गये। बहुत दिनों का वियोग मिट गया। उस समय तक हम मन की खिचड़ी पका रहे थे और मिलने के आनन्द में विह्वल थे, परन्तु यह पता नहीं था कि कहाँ जा रहे हैं। सोचते थे शायद पंजाब जावें, बाद में यहाँ आवें। परन्तु हमारी लॉरी बन्दरगाह पर पहुँची और विख्यात महाराजा जहाज के दर्शन हुए। उस समय समझा कि हम लोग अण्डमान अर्थात् 'काला पानी' जा रहे हैं। मातृभूमि से तथा बन्धु वर्ग से सदैव के लिए अथवा कम-से-कम 18 साल के लिए पृथक हो रहे हैं। जिस जननी की गोद में पले हैं और धूलि में लोटे हैं उसके दर्शन से भी वंचित हो रहे हैं। आप लोगों के पदारविन्द की रज से सदैव के लिए दूर हो रहे हैं। ऐसी दशा में प्यारे देश को छोड़ते हुए हृदय में कितना ही कष्ट हुआ परन्तु साथ ही प्रसन्नता भी हुई, जोकि इसके सम्मुख कुछ अधिक ही थी। वह थी

एक साध क्रान्तिकारी की दर्शनाभिलाषा—पुण्य पवित्र तीर्थ स्थान की, जिसको भाई रामरक्खा मल ने अपनी समाधि बनाकर पवित्र किया है और दूसरे बंगाली तथा सिक्ख वीरों की तपोभूमि रही है। और साथ ही आशा थी कि हमारे जीवन के बन्धुगण सर्वदा साथ रहेंगे, और भी अनेक अपने कन्धे-से-कन्धा सटानेवाले भाइयों के दर्शन होंगे। अस्तु, 23 जनवरी की सन्ध्या को विस्तृत नील गम्भीर जल-राशि की 850 मील से अधिक लम्बी यात्रा करके हम इस पोर्ट ब्लेयर की जेल में पहुँचे जहाँ पर अपने वर्तमान साथियों को मिलने के लिए अति उत्कण्ठित पाया। उनकी वैसी ही दशा हो रही थी जैसी हमारी थी। यहाँ सम्प्रति लगभग 40 बी. क्लास के तथा 24 सी. क्लास के राजनैतिक कैदी हैं और कुछ लोगों की निकट भविष्य में आशा भी करते हैं।

हमारी जेल तिमंजिला है और पास ही कुछ गजों के फासले पर नीलास्व [जल] राशि गम्भीर गर्जन के साथ किनारे से टक्करें मारती है, जो ऊपर से दीख पड़ती है। यह द्वीप समूह जंगलों से भरा सुना जाता है जिसमें केवल नंगे रहनेवाले असभ्य लोग रहते हैं, परन्तु खुली हुई जगहों में कुछ भारतीय लोग भी बस गये हैं, जिनकी भाषा हिन्दुस्तानी है। इन लोगों में से बहुत-से कैदी हैं, कुछ सरकारी नौकर हैं और कुछ तिजारती लोग भी हैं। अभी हाल में तो जेलवालों का कुछ ठीक-ठीक हाल मालूम होता है, लेकिन आगे की कह नहीं सकते। हमारे पुराने साथियों में अभी हमारे साथ डॉ. गयाप्रसाद, मि. बी. के. दत्त, भाई कुन्दनलाल जी तथा कमलनाथ तिवारी हैं। बाकी तीन साथी मद्रास सूबे में होंगे जो कि शायद अभी भी हंगर स्ट्रायक पर होंगे। हमारे साथियों में 3/4 से अधिक संख्या बंगाल प्रदेशवालों की है।

पूज्यवर, शायद आप चिंतित होंगे कि मैंने इतने दिनों से पत्र क्यों नहीं लिखा। इसका कारण थीं घनघोर घटाएँ जो चारों ओर मँडरा रही थीं। तनिक भी शान्ति का अवसर नहीं देती थीं। इसी कारण मैंने उनमें फँसकर पत्र लिखने का सुयोग न पाया। अब यह बहुत दिनों बाद पत्र लिख रहा हूँ, जिससे आप शान्ति-लाभ करेंगे। परन्तु पिताजी, आप शान्ति हर दशा में रक्खें क्योंकि आप जानते हैं कि हमें कष्टों में आनन्द और सुख मालूम होता है। अब कुछ इस कारागार में वास करके तथा अपने ध्येय को सम्मुख रखते हुए कष्ट भी सुख ही प्रतीत होता है और यही है हमारा जीवन और जहाँ ये बातें इसमें नहीं रहीं तो समझिए कि हम मर गये। इसलिए आप या हमारी पूज्य बुआ जी तथा माता जी इस बात का ध्यान रखते हुए कभी कोई चिन्ता न करें और सर्वदा शान्तिपूर्वक आनन्दित रहें।

प्यारे भाई का क्या हाल है, इसकी सूचना मुझे शीघ्र दीजिएगा। उसे केवल वैद्य ही बनने का उपदेश न देना, बल्कि साथ-ही-साथ मनुष्य बनना भी बतलाना। आजकल मनुष्य वही हो सकता है जिसे वर्तमान वातावरण का ज्ञान हो, जो मनुष्य के कर्त्तव्य को जानता ही न हो परन्तु उसका पालन भी करता हो। इसलिए समाज की धरोहर को आलस्य तथा आरामतलबी तथा स्वार्थपरता में डालकर समाज के सामने कृतघ्न न

साबित हो। इससे शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार की उन्नति करता रहे, क्योंकि दोनों आवश्यक हैं। शारीरिक पुष्टि अन्न तथा व्यायाम से तथा मानसिक अध्ययन से। उसे आजकल के वातावरण का ज्ञान करने के लिए समाचार पत्र तथा ऐतिहासिक, साम्पत्तिक तथा राजनैतिक, सामाजिक पुस्तकों का अवलोकन (अध्ययन) को कहिए। समाज से मेरा मतलब आर्य समाज अथवा अन्य संकीर्णताव्यंजक समाज नहीं है, परन्तु जन साधारण का है। क्योंकि ये धार्मिक समाज मेरे सामने संकीर्ण होने के कारण कोई भी मूल्य नहीं रखते हैं और साथ ही इस संकीर्णता तथा स्वार्थपरता तथा अन्यायपूर्ण होने के कारण सब धर्मों से दूर रहना चाहता हूँ और दूसरों को भी ऐसा ही उपदेश देता हूँ। केवल एक बात मानता हूँ [और] उसको सबसे बढ़कर तथा मनुष्य तथा समाज का [के लिए] कल्याणकारी समझता हूँ। वह है, "मनुष्य का मनुष्य तथा प्राणी-मात्र के साथ कर्त्तव्य—बिना किसी जाति-भेद, रंगभेद, धर्म तथा धनभेद के।" यही मेरा उपदेश बेटी सरोजिनी को है और दूसरे हमारे भाइयों को भी है।

पूज्यवर, आज जब मैं देखता हूँ कि सबकी बहनें समाज की सेवा के लिए अपने को तन, मन, धन से लगाये हुए हैं, अभागा मैं ही ऐसा हूँ जिसकी ऐसी कोई बहन नहीं। यद्यपि यह मेरी संकीर्णता है क्योंकि अपने मन के अनुसार दूसरी बहनें भी अपनी ही हैं और वैसी ही समझता भी हूँ, परन्तु मैं उनकी संख्या में बढ़ती चाहता हूँ, जिसकी कुछ आशा मैं अपनी पूजनीय जिया महताब कुँवरि से करता था। उनका बहुत समय से कोई समाचार नहीं पाया है। यदि हो सके, मेरा चरण-स्पर्श कहियेगा। श्रीमान दादा जी सरदारसिंह जी को, जो मेरे पहले-पहल गुरु और आपके शिष्य हैं, सादर प्रणाम कहें। धनराजसिंह का हाल लिखना। चाचा वर्ग तथा सब माताओं को चरण-स्पर्श, भाइयों को नमस्ते। पूज्य बुआ जी तथा माता जी को प्रणाम, ललो दोनों बहनों को, मुंशीसिंह जी को नमस्कार, भानजे तथा भतीजों को प्यार। इति शुभम्। पत्र शीघ्र भेजियेगा।

पता : महावीरसिंह पी. आई. 68
सेलुलर जेल, पोर्टब्लेयर (अण्डमान)

आपका आज्ञाकारी पुत्र,
महावीरा

आपको याद होगा कि एक दिन मैंने आत्महत्या के विषय में आपसे चर्चा की थी। तब मैंने आपको बताया था, कई परिस्थितियों में आत्महत्या उचित हो सकती है, परन्तु आपने मेरे इस दृष्टिकोण का विरोध किया था। मुझे उस चर्चा का समय एवं स्थान भली प्रकार याद है। हमारी यह बात शहंशाही कुटिया में शाम के समय हुई थी। आपने मज़ाक के रूप में हँसते हुए कहा था कि इस प्रकार की कायरता का कार्य कभी उचित नहीं माना जा सकता। आपने कहा था कि इस प्रकार का कार्य भयानक और घृणित है, परन्तु इस विषय पर भी मैं देखता हूँ कि आपकी राय बिलकुल बदल चुकी है। अब आप उसे कुछ अवस्थाओं में न केवल उचित, वरन अनिवार्य एवं आवश्यक अनुभव करते हैं। मेरी इस विषय में अब वही राय है, जो पहले आपकी थी, अर्थात् आत्महत्या एक घृणित अपराध है, यह पूर्णतः कायरता का कार्य है। क्रान्तिकारी का तो कहना ही क्या, कोई भी मनुष्य ऐसे कार्य को उचित नहीं ठहरा सकता।

आप कहते हैं कि आप यह नहीं समझ सके कि केवल कष्ट-सहन करने से आप अपने देश की सेवा किस प्रकार कर सकते हैं। आप-जैसे व्यक्ति की ओर से ऐसा प्रश्न करना बड़े आश्चर्य की बात है; क्योंकि नौजवान भारत सभा के ध्येय 'सेवा द्वारा कष्टों को सहन करना एवं बलिदान करना' को हमने सोच-समझकर कितना प्यार किया था। मैं यह समझता हूँ कि आपने अधिक-से-अधिक सम्भव सेवा की। अब वह समय है कि जो कुछ आपने किया है, उसके लिए कष्ट उठायें। दूसरी बात यह है कि यही वह अवसर है, जब आपको सारी जनता का नेतृत्व करना है।

मानव किसी भी कार्य को उचित मानकर ही करता है, जैसे कि हमने लेजिस्लेटिव असेम्बली में बम फेंकने का कार्य किया था। कार्य करने के पश्चात् उसका परिणाम और उसका फल भोगने की बारी आती है। क्या आपका यह विचार है कि यदि हमने दया के लिए गिड़गिड़ाते हुए दण्ड से बचने का प्रयत्न किया होता, तो हमारा यह कार्य उचित होता? नहीं, इसका प्रभाव लोगों पर उल्टा होता। अब हम अपने लक्ष्य में पूर्णतया सफल हुए हैं।

बन्दी होने के समय हमारी संस्था के राजनैतिक बन्दियों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। हमने उसे सुधारने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया। मैं आपको पूरी गम्भीरता से बताता हूँ कि हमें यह विश्वास था कि हम बहुत कम समय के भीतर ही मर जायेंगे। हमें उपवास की स्थिति मे कृत्रिम रीति से भोजन दिये जाने का न तो ज्ञान ही था, न हमें यह विचार सूझता ही था। हम तो मृत्यु के लिए तैयार थे। क्या आपका यह अभिप्राय है कि हम आत्महत्या करना चाहते थे? नहीं, प्रयत्नशील होना एवं श्रेष्ठ और उत्कृष्ट आदर्श के लिए जीवन दे देना कदापि आत्महत्या नहीं कही जा सकती। हमारे मित्र (श्री यतीन्द्रनाथ दास) की मृत्यु तो स्पृहणीय है। क्या आप इसे आत्महत्या कहेगे? हमारा कष्ट सहन करना फलीभूत हुआ। समस्त देश में एक विराट और सर्वव्यापी आन्दोलन

शुरू हो गया। हम अपने लक्ष्य मे सफल हुए। इस प्रकार के सघर्ष में मरना एक आदर्श मृत्यु है।

इसके अतिरिक्त हममें से जिन लोगो को यह विश्वास है कि उनको मृत्युदण्ड दिया जायेगा, उनको धैर्यपूर्वक उस दिन की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब यह सजा सुनायी जायेगी और तत्पश्चात् उन्हे फॉसी दी जायेगी। यह मृत्यु भी सुन्दर होगी, परन्तु आत्महत्या करना, केवल कुछ दु खों से बचने के लिए अपने जीवन को समाप्त कर देना, तो कायरता है। मै आपको बताना चाहता हूँ कि विपत्तियाँ व्यक्ति को पूर्ण बनानेवाली होती हैं। मैं और आप, वरन मैं कहूँगा, हममे से किसी ने भी किंचित कष्ट सहन नहीं किया है। हमारे जीवन का यह भाग तो अभी आरम्भ होता है।

आपको यह याद होगा कि अनेक बार इस विषय पर हमने बातचीत की है कि रूसी साहित्य मे प्रत्येक स्थान पर जो वास्तविकता मिलती है, वह हमारे साहित्य मे कदापि नहीं दिखायी देती। हम उनकी कहानियो मे कष्टो और दुखदायी स्थितियो को बहुत पसंद करते है, परन्तु कष्ट-सहन की उस भावना को अपने भीतर अनुभव नही करते। हम उनके उन्माद और उनके चरित्र की असाधारण ऊँचाइयों के प्रशसक है, परन्तु इसके कारणो पर सोच-विचार करने की कभी चिन्ता नही करते। मैं कहूँगा कि केवल विपत्तियाँ सहन करने के उल्लेख ने ही उन कहानियो मे सहृदयता, दर्द की गहरी टीस और उनके चरित्र तथा साहित्य मे ऊँचाई उत्पन्न की है। हमारी दशा उस समय दयनीय और हास्यास्पद हो जाती है, जब हम अपने जीवन मे अकारण ही रहस्यवाद प्रविष्ट कर लेते हैं, यद्यपि इसके लिए कोई प्राकृतिक या ठोस आधार नही होता। हमारे जैसे व्यक्तियो को, जो प्रत्येक दृष्टि से क्रान्तिकारी होने का गर्व करते हैं, सदैव हर प्रकार से उन विपत्तियों, चिन्ताओ, दुखो और कष्टो को सहन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए जिनको हम स्वयं आरम्भ किये सघर्ष के द्वारा आमन्त्रित करते हैं एवं जिनके कारण हम अपने आपको क्रान्तिकारी कहते है।

मैं आपको बताना चाहता हूँ कि जेलो मे और केवल जेलों मे ही कोई व्यक्ति अपराध एवं पाप जैसे महान सामाजिक विषय का प्रत्यक्ष अध्ययन करने का अवसर पा सकता है। मैंने इस विषय का कुछ साहित्य पढा है और जेलें ही ऐसे विषयो का स्वाध्याय करने के सबसे अधिक उपयुक्त स्थान हैं। स्वाध्याय का सर्वश्रेष्ठ भाग है स्वय कष्टो को सहना।

आप भली प्रकार जानते हैं कि रूस में राजनैतिक बन्दियो का बन्दीगृहो मे विपत्तियाँ सहन करना ही ज़ारशाही का तख्ता उलटने के पश्चात उनके द्वारा जेलो के प्रबन्ध मे क्रान्ति लाये जाने का सबसे बड़ा कारण था। क्या भारत को ऐसे व्यक्तियो की आवश्यकता नही है, जो इस विषय से पूर्णतया परिचित हों और इस समस्या का निजी अनुभव रखते हों। केवल यह कह देना कि दूसरा कोई इस काम को कर लेगा या इस कार्य को करने के लिए बहुत लोग हैं, किसी प्रकार भी उचित नही कहा जा सकता। इस प्रकार

जो लोग क्रान्तिकारी क्षेत्र के कार्यों का भार दूसरे लोगों पर छोड़ने को अप्रतिष्ठापूर्ण एवं घृणित समझते हैं, उन्हें पूरी लगन के साथ वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ कर देना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे उन विधियों का उल्लंघन करें, परन्तु उन्हें औचित्य का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि अनावश्यक एवं अनुचित प्रयत्न कभी भी न्यायपूर्ण नहीं माना जा सकता। इस प्रकार का आन्दोलन क्रान्ति के कार्यकाल को बहुत सीमा तक कम कर देगा। जितने आन्दोलन अब तक आरम्भ हुए हैं, उन सबसे पृथक् रहने के लिए आपने जो तर्क दिये हैं, मैं उन्हें समझने में असमर्थ हूँ। कुछ मित्र ऐसे हैं, जो या तो मूर्ख हैं या नासमझ। वे आपके इस व्यवहार को (जिसे वे स्वयं कहते हैं कि हमें किंचित् भी नहीं समझ सकते, क्योंकि आप उनसे बहुत ऊँचे और उनकी समझ से बहुत परे हैं) अनोखा और अद्‌भुत समझते हैं।

वास्तव में यदि आप यह अनुभव करते हैं कि बन्दीगृह का जीवन वास्तव में अपमानपूर्ण है, तो आप उसके विरुद्ध आन्दोलन करके उसे सुधारने का प्रयास क्यों नहीं करते ? सम्भवतया आप यह कहेंगे कि यह संघर्ष सफल नहीं हो सकता, परन्तु यह तो वही तर्क है, जिसकी आड लेकर साधारणतया निर्बल लोग प्रत्येक आन्दोलन से बचना चाहते हैं। यह वह उत्तर है, जिसे हम उन लोगों से सुनते रहे हैं, जो जेल से बाहर क्रान्तिकारी प्रयत्नों में सम्मिलित होने से जान बचाना चाहते थे। क्या आज यही उत्तर मैं आपके मुख से सुनूँगा ? कुछ मुट्ठी-भर कार्यकर्ताओं के आधार पर संगठित हमारी पार्टी अपने लक्ष्यों और आदर्शों की तुलना में क्या कर सकती थी ? क्या हम इससे यह निष्कर्ष निकालें कि हमने इस काम के प्रारम्भ करने में नितान्त भूल की है ? नहीं, इस प्रकार का परिणाम निकालना उचित नहीं होगा। इससे तो उस व्यक्ति की भीतरी निर्बलता प्रकट होती है, जो इस प्रकार सोचता है।

आगे चलकर आप लिखते हैं कि चौदह वर्ष तक बन्दीगृह के कष्टों से भरपूर जीवन बिताने के पश्चात किसी व्यक्ति से यह आशा नहीं की जा सकती कि उस समय भी उसके विचार वही होंगे, जो जेल से पूर्व थे, क्योंकि जेल का वातावरण उसके समस्त विचारों को रौंदकर रख देगा। क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि क्या जेल से बाहर का वातावरण हमारे विचारो के अनुकूल था ? फिर भी असफलताओं के कारण क्या हम उसे छोड़ सकते थे ? क्या आपका आशय यह है कि यदि हम इस क्षेत्र में न उतरे होते, तो कोई भी क्रान्तिकारी कार्य कदापि नहीं हुआ होता ? यदि ऐसा है तो आप भूल कर रहे हैं। यद्यपि यह ठीक है कि हम भी वातावरण को बदलने मे बड़ी सीमा तक सहायक सिद्ध हुए हैं, तथापि हम तो केवल अपने समय की आवश्यकता की उपज हैं।

मैं तो यह भी कहूँगा कि साम्यवाद का जन्मदाता मार्क्स, वास्तव में इस विचार को जन्म देनेवाला नहीं था। असल में यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने ही एक विशेष प्रकार के विचारोंवाले व्यक्ति उत्पन्न किये थे। उनमें मार्क्स भी एक था। हाँ, अपने स्थान पर मार्क्स भी निस्सन्देह कुछ सीमा तक समय के चक्र को एक विशेष प्रकार की गति देने में

आवश्यक सहायक सिद्ध हुआ है।

मैंने (और आपने भी) इस देश में समाजवाद और साम्यवाद के विचारों को जन्म नहीं दिया, वरन यह तो हमारे ऊपर हमारे समय एवं परिस्थिति के प्रभाव का परिणाम है। निस्सन्देह हमने इन विचारों का प्रचार करने के लिए कुछ साधारण एवं तुच्छ कार्य अवश्य किया है, इसलिए मैं कहता हूँ कि जब हमने इस प्रकार एक कठिन कार्य को हाथ में ले ही लिया है, तो हमें उसे जारी रखना चाहिए और आगे बढ़ना चाहिए। विपत्तियों से बचने के लिए आत्महत्या कर लेने से जनता का मार्गदर्शन नहीं होगा, वरन यह तो एक प्रतिक्रियावादी कार्य होगा।

जेल के नियमों के अनुसार जीवन की निराशाओं, दबाव और हिंसा के असीम परीक्षायुक्त वातावरण का विरोध करते हुए हम कार्य करते रहे। जिस समय हम अपना कार्य करते थे, उस समय नाना प्रकार से हमें कठिनाइयों का निशाना बनाया जाता था। यहाँ तक कि जो लोग अपने आपको महान क्रान्तिकारी कहने का गौरव अनुभव करते थे, वे भी हमको छोड़ गये। क्या ये परिस्थितियाँ असीम परीक्षायुक्त न थीं? फिर अपने आन्दोलन एवं प्रयासों को जारी रखने के लिए हमारे पास क्या कारण और तर्क था?

क्या स्वयं यही तर्क हमारे विचारों को शक्ति नहीं देता है? और क्या ऐसे क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं के उदाहरण हमारे सामने नहीं हैं, जो जेलों से दण्ड भोग कर लौटे और अब भी कार्य कर रहे हैं? यदि बाकुनिन ने आपके समान सोच-विचार किया होता, तो वह प्रारम्भ में ही आत्महत्या कर लेता। आज आपको असंख्य ऐसे क्रान्तिकारी दिखायी देते हैं, जो रूसी राज्य में उत्तरदायी पदों पर विराजमान हैं और जिन्होंने अपने जीवन का अधिकतर भाग दण्ड भोगते हुए जेलों में बिताया है। मनुष्य को अपने विश्वासों पर दृढ़तापूर्वक अडिग रहने का प्रयत्न करना चाहिए। कोई नहीं कह सकता कि भविष्य में क्या घटना होनेवाली है।

क्या आपको याद है कि जब हम इस विषय पर चर्चा कर रहे थे कि हमारी बम-फैक्टरियों में अत्यन्त तीव्र एवं प्रभावकारी विष भी रखा जाना चाहिए, तो आपने बड़ी दृढ़ता से इसका विरोध किया था। आप इस विचार से ही घृणा करते थे। आपको इस पर विश्वास नहीं था। फिर अब क्या हुआ? यहाँ तो ऐसी विकट और जटिल परिस्थितियाँ भी नहीं हैं। मुझे तो इस प्रश्न पर विचार करने में भी घृणा होती है। आपको उस मनोवृत्ति से भी घृणा थी, जो आत्महत्या करने की अनुमति देती है। आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करें कि यदि आपने अपने बन्दी बनाये जाने के समय ही इन विचारों के अनुकूल कार्य किया होता (अर्थात आपने विष खाकर उस समय आत्महत्या कर ली होती) तो आपने क्रान्तिकारी कार्य की बहुत बड़ी सेवा की होती, परन्तु इस समय तो इस कार्य पर विचार करना भी हमारे लिए हानिकारक है।

एक और विशेष बात, जिस पर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, यह है कि हम लोग ईश्वर, पुनर्जन्म, नरक-स्वर्ग, दण्ड एवं पारितोषिक, अर्थात् भगवान द्वारा

11

विचारों की सान पर क्रान्ति की तलवार

[साण्डर्स की हत्या के बाद भगतसिंह कलकत्ता चले गये। शहीद भगवतीचरण वोहरा की विधवा दुर्गा भाभी ने अपने छोटे बच्चे के साथ खतरे मोल लेकर भगतसिंह की कलकत्ता पहुँचने में मदद की।

इसके बाद पार्टी की दिल्ली बैठक हुई। पब्लिक सेफ्टी बिल को असेम्बली में भारतीय सदस्यों के रद्द करने पर मार्च, 1929 में दोबारा लाया गया। यद्यपि बिल मतगणना से पास नहीं हो सकता था, तो भी वाइसराय उसे आर्डिनेंस द्वारा लागू करना चाहते थे। राष्ट्रीय नेता एक बार फिर ब्रिटिश सरकार की ताकत के सामने लाचारी और अप्रभावी होने की स्थिति पेश कर रहे थे। ऐसे समय पर लोगों की जरूरत को स्वीकारते हुए भगतसिंह ने सुझाव दिया कि असेम्बली हॉल में बम का धमाका किया जाये और क्रान्तिकारी पार्टी के विचारों से जनता को शिक्षित किया जाये। इसके लिए दो साथियों—शिव वर्मा और जयदेव कपूर को चुना गया। सुखदेव उस मीटिंग में नहीं थे। जब उन्हें इस फैसले की जानकारी हुई तो उन्होंने भगतसिंह से कुछ ऐसे सवाल किये कि पार्टी की मीटिंग दोबारा बुलायी गयी। इस मीटिंग में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को असेम्बली हॉल में बम का धमाका करने के लिए चुना गया। 8 अप्रैल, 1929 को हॉल में बम का धमाका किया गया।

सुखदेव और भगतसिंह में काफी घनिष्ठता थी और बम काण्ड में जानेवाले व्यक्ति को लेकर दोनों में कुछ गलतफहमी भी हुई। उसी गलतफहमी को दूर करने के लिए भगतसिंह ने सुखदेव को एक पत्र लिखा। नीचे उद्धृत यह पत्र 11 अप्रैल, 1929 को सुखदेव की गिरफ्तारी के समय उनसे बरामद हुआ और मुकदमे की कार्रवाई का हिस्सा बन गया।

प्यार और बलिदान-जैसे सूक्ष्म विषयों पर भगतसिंह के विचार इस पत्र से प्रकट हुए हैं और क्रान्तिकारियों के दिलो में कितनी गहरी मानवीय भावनाएँ थीं, यह पत्र इसका भी प्रमाण है । —सं.]

सुखदेव के नाम पत्र

प्रिय भाई,

जब तक तुम्हे यह खत मिलेगा, मैं दूर मंजिल की ओर जा चुका होऊँगा । मेरा यकीन कर, आजकल मैं बहुत प्रसन्नचित्त अपने आखिरी सफर के लिए तैयार हूँ । अपनी जिन्दगी की सारी खुशियों और मधुर यादों के बावजूद मेरे दिल में एक बात आज तक चुभती रही । वह यह कि मुझे अपने भाई ने गलत समझा और मुझ पर कमजोरी का बहुत ही गम्भीर आरोप लगाया । आज मैं पहले से कहीं ज्यादा पूरी तरह से सन्तुष्ट हूँ । मैं आज भी महसूस करता हूँ कि वह बात कुछ भी नहीं, बस गलतफहमी थी । गलत शक था । मेरे खुले व्यवहार के कारण मुझे बातूनी समझा गया और मेरे द्वारा सबकुछ स्वीकार कर लेने को कमजोरी माना गया । लेकिन आज मैं महसूस कर रहा हूँ कि कोई गलतफहमी नही, मैं कमजोर नही, अपनो में से किसी से भी कमजोर नहीं ।

भाई मेरे, मैं साफ दिल से विदा लूँगा और तुम्हारी शंका भी दूर करूँगा । इसमें तुम्हारी बहुत कृपालुता होगी । ध्यान रहे, तुम्हें जल्दबाजी से कोई कदम नहीं उठाना चाहिए । सोच-समझकर और शान्ति से काम को आगे बढ़ाना । अवसर पा लेने की जल्दबाजी न करना । जनता के प्रति जो तुम्हारा फर्ज है उसे निभाते हुए काम को सावधानीपूर्वक करते रहना । सलाह के तौर पर मैं कहना चाहता हूँ कि शास्त्री मुझे पहले से अधिक अच्छा लग रहा है । मैं उसे सामने लाने की कोशिश करता, बशर्ते कि वह साफगोई से अपने आपको एक अँधेरे भविष्य के लिए अर्पित करने के लिए सहमत हो । उसे साथियो के नजदीक आने दो ताकि वह उनके आचार-विचार का अध्ययन कर सके । यदि वह अर्पित भाव से काम करेगा तो काफी लाभदायक और मूल्यवान सिद्ध होगा । लेकिन जल्दबाजी न करना । तुम स्वयं अच्छे पारखी हो । जिस तरह जँचे, देख लेना । आ मेरे भाई, अब हम खुशियाँ मना लें ।

खैर, मैं कह सकता हूँ कि बहस के मामले में मुझसे अपने पक्ष पेश किये बिना नहीं रहा जाता । मैं पुरजोर कहता हूँ कि मैं आशाओ और आकांक्षाओं से भरपूर जीवन की समस्त रंगीनियों से ओतप्रोत हूँ, लेकिन वक्त आने पर मैं सबकुछ कुर्बान कर दूँगा । सही अर्थों में यही बलिदान है । यह वस्तुएँ मनुष्य की राह में कभी भी अवरोध नहीं बन सकती, बशर्ते कि वह इन्सान हो । जल्द ही तुम्हें इसका प्रमाण मिल जायेगा । किसी के चरित्र के सन्दर्भ में विचार करते समय एक बात विचारणीय होनी चाहिए कि क्या प्यार

किसी इन्सान के लिए मददगार साबित हुआ है ? इसका जवाब मैं आज देता हूँ—हाँ वह मेजिनी था। तुमने अवश्य पढ़ा होगा कि अपने पहले नाकाम विद्रोह, मन को कुचल डालनेवाली हार का दुख और दिवंगत साथियों की याद—यह सब वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था। वह पागल हो जाता या खुदकशी कर लेता। लेकिन प्रेमिका के एक पत्र से वह दूसरों जितना ही नहीं, बल्कि सबसे अधिक मजबूत हो गया।

जहाँ तक प्यार के नैतिक स्तर का सम्बन्ध है, मैं यह कह सकता हूँ कि यह अपने में एक भावना से अधिक कुछ भी नहीं और यह पशुवृत्ति नहीं बल्कि मधुर मानवीय भावना है। प्यार सदैव मानवचरित्र को ऊँचा करता है, कभी भी नीचा नहीं दिखाता, बशर्ते कि प्यार प्यार हो। इन लड़कियों (प्रेमिकाओं) को कभी भी पागल नहीं कहा जा सकता है जैसा कि हम फिल्मों में देखते हैं—वे सदैव पाशविक वृत्ति के हाथों में खेलती हैं। सच्चा प्यार कभी भी सृजित नहीं किया जा सकता। यह अपने ही आप आता है—कब, कोई कह नहीं सकता ?

मैं यह कह सकता हूँ कि नौजवान युवक-युवती आपस में प्यार कर सकते हैं और वे अपने प्यार के सहारे अपने आवेगों से ऊपर उठ सकते हैं। अपनी पवित्रता कायम रखे रह सकते हैं। मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जब मैंने प्यार को मानवीय कमजोरी कहा था तो यह किसी सामान्य व्यक्ति को लेकर नहीं कहा था, जहाँ तक कि बौद्धिक स्तर पर सामान्य व्यक्ति होते हैं पर वह सबसे उच्च आदर्श स्थिति होगी जब मनुष्य प्यार, घृणा और अन्य सभी भावनाओं पर नियन्त्रण पा लेगा। जब मनुष्य कर्म के आधार पर अपना पक्ष अपनायेगा। एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से प्यार की मैंने निन्दा की है, वह भी एक आदर्श स्थिति होने पर। मनुष्य के पास प्यार की एक गहरी भावना होनी चाहिए जिसे वह एक व्यक्ति विशेष तक सीमित न करके सर्वव्यापी बना दे।

मेरे विचार से मैंने अपने पक्ष को काफी स्पष्ट कर दिया है। हाँ, एक बात मैं तुम्हें खास तौर पर बताना चाहता हूँ कि बावजूद क्रान्तिकारी विचारों के हम नैतिकता सम्बन्धी सभी सामाजिक धारणाओं को नहीं अपना सके। क्रान्तिकारी बातें करके इस कमजोरी को बहुत सरलता से छिपाया जा सकता है, लेकिन वास्तविक जीवन में हम तुरन्त ही थर-थर काँपना शुरू कर देते हैं।

मैं तुमसे अर्ज करूँगा कि यह कमजोरी त्याग दो। अपने मन में बिना कोई गलत भावना लाये अत्यन्त नम्रतापूर्वक क्या मैं तुमसे आग्रह कर सकता हूँ कि तुममें जो अति आदर्शवाद है उसे थोड़ा-सा कम कर दो। जो पीछे रहेंगे और मेरी-जैसी बीमारी का शिकार होंगे, उनसे बेरुखी का व्यवहार न करना, झिड़ककर उनके दुख-दर्दों को न बढ़ाना, क्योंकि उनको तुम्हारी हमदर्दी की जरूरत है। क्या मैं यह आशा रखूँ कि तुम किसी विशेष व्यक्ति के प्रति खुन्दक रखने के बजाय उनसे हमदर्दी रखोगे, उनको इसकी बहुत जरूरत है। तुम तब तक इन बातो को नहीं समझ सकते जब तक कि स्वयं इस चीज का शिकार न बनो। लेकिन मैं यह सबकुछ क्यों लिख रहा हूँ ? दरअसल मैं अपनी

बातें स्पष्ट तौर पर कहना चाहता हूँ। मैंने अपना दिल खोल दिया है।
तुम्हारी सफलताओं और जीवन के लिए शुभकामनाओं के साथ।

तुम्हारा,
भगतसिंह

सुखदेव को भूख हड़ताल के दौरान एक और पत्र

[भूख हड़ताल शुरू होने के बाद भारतीय जनता की चेतना में भगतसिंह व बटुकेश्वर दत्त गहरे उतरते गये। भगतसिंह के शब्दों में 'हमारा कष्ट सहना फलीभूत हुआ। सारे देश में एक जन-आन्दोलन छिड़ गया। हम अपने लक्ष्य में सफल रहे।' 13 सितम्बर, 1929 को यतीन्द्रनाथ दास 63 दिन की भूख हड़ताल के बाद शहीद हो गये। जब उनका पार्थिव शरीर लाहौर से कलकत्ता ले जाया जा रहा था तो हर बड़े शहर के स्टेशन पर लाखों की भीड़ उनके अन्तिम दर्शनों के लिए उमड़ पड़ती थी। कलकत्ता में 4 लाख लोग उनके अन्तिम संस्कार में शामिल हुए।

इन दिनों भगतसिंह अपने किन विचारों के माध्यम से अपनी सारी लड़ाई लड़ रहे थे, इसका स्पष्ट पता उस पत्र से चलता है, जो उन्होंने सुखदेव के साथ चल रहे विचार-संघर्ष के सन्दर्भ में लिखा था। खेद है कि सुखदेव के जिस पत्र के उत्तर में भगतसिंह ने यह महत्त्वपूर्ण खत लिखा था, वह आज उपलब्ध नहीं है। फिर भी विचार और बहस के अन्तर्गत आनेवाले प्रायः सभी बिन्दु यहाँ स्पष्ट हैं। —सं.]

कष्टों से भागना कायरता है

प्रिय भाई,

मैंने आपके पत्र को कई बार ध्यानपूर्वक पढा। मैं अनुभव करता हूँ कि बदली हुई परिस्थितियों ने हम पर अलग-अलग प्रभाव डाला है। जिन बातों से जेल के बाहर घृणा करते थे, वे आपके लिए अब अनिवार्य हो चुकी हैं। इसी प्रकार मैं जेल से बाहर जिन बातों का विशेष रूप से समर्थन करता था, वे अब मेरे लिए विशेष महत्त्व नहीं रखतीं। उदाहरणार्थ, मैं व्यक्तिगत प्रेम को विशेष रूप से माननेवाला था, परन्तु अब इस भावना का मेरे हृदय एवं मस्तिष्क में कोई विशेष स्थान नहीं रहा। बाहर आप इसके कडे विरोधी थे, परन्तु इस सम्बन्ध में अब आपके विचारों में भारी परिवर्तन एवं क्रान्ति आ चुकी है। आप इसे मानव-जीवन का एक अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य अंग अनुभव करते हैं और अनुभूति से आपको एक प्रकार का आनन्द भी प्राप्त हुआ है।

उनकी कार्यवाहियाँ गुप्त होने की वजह से उनके वर्तमान इरादे और नीतियों के बारे में देशवासी अँधेरे में हैं, इसलिए हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन ने यह घोषणापत्र जारी करने की आवश्यकता महसूस की है।

विदेशियों की गुलामी से भारत की मुक्ति के लिए ये एसोसिएशन सशस्त्र संगठन द्वारा भारत में क्रान्ति के लिए दृढ़ संकल्प है। गुलाम रखे हुए लोगों की ओर से स्पष्ट तौर पर विद्रोह से पूर्व गुप्त प्रचार और गुप्त तैयारियाँ होनी आवश्यक हैं। जब देश क्रांति की उस अवस्था में आ जाता है तब विदेशी सरकार के लिए उसे रोकना कठिन हो जाता है। वह कुछ देर तक तो इसके सामने टिक सकती है, लेकिन उसका भविष्य सदा के लिए समाप्त हो चुका होता है। मानवीय स्वभाव भ्रमपूर्ण और यथास्थितिवादी होने के कारण क्रान्ति से एक प्रकार का भय प्रकट करता है। सामाजिक परिवर्तन सदा ही ताकत और विशेष सुविधाएँ माँगनेवालों के लिए भय पैदा करता है। क्रान्ति एक ऐसा करिश्मा है जिसे प्रकृति स्नेह करती है और जिसके बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती—न प्रकृति में और न ही इन्सानी कारोबार में। क्रान्ति निश्चय ही बिना सोची-समझी हत्याओं और आगजनी की दरिन्दा मुहिम नहीं है और न ही यहाँ-वहाँ चन्द बम फेंकना और गोलियाँ चलाना है; और न ही यह सभ्यता के सारे निशान मिटाने तथा समयोचित न्याय और समता के सिद्धान्त को खत्म करना है। क्रान्ति कोई मायूसी से पैदा हुआ दर्शन भी नहीं और न ही सरफरोशों का कोई सिद्धान्त है। क्रान्ति ईश्वर विरोधी हो सकती है लेकिन मनुष्य-विरोधी नहीं। यह एक पुख्ता और जिन्दा ताकत है। नये और पुराने के, जीवन और जिन्दा मौत के, रोशनी और अँधेरे के आन्तरिक द्वन्द्व का प्रदर्शन है, कोई सयोग नही है। न कोई संगीतमय एकसारता है और न ही कोई ताल है, जो क्रान्ति के बिना आयी हो। 'गोलियों का राग' जिसके बारे में कवि गाते आये हैं, सच्चाईरहित हो जायेगा अगर क्रान्ति को समूची सृष्टि में से खत्म कर दिया जाये। क्रान्ति एक नियम है, क्रान्ति एक आदेश है और क्रान्ति एक सत्य है।

हमारे देश के नौजवानों ने इस सत्य को पहचान लिया है। उन्होंने बहुत कठिनाइयाँ सहते हुए यह सबक सीखा है कि क्रान्ति के बिना—अफरा-तफरी, कानूनी गुण्डागर्दी और नफरत की जगह, जो आजकल हर ओर फैली हुई है—व्यवस्था, कानूनपरस्ती और प्यार स्थापित नहीं किया जा सकता। हमारी आशीर्वाद भरी धरती पर किसी को ऐसा विचार नहीं आना चाहिए कि हमारे नौजवान गैर-जिम्मेदार हैं। वे पूरी तरह जानते हैं कि वे कहाँ खड़े हैं। उनसे बढकर किसे मालूम है कि उनकी राह कोई फूलों की सेज़ नहीं है। समय-समय पर उन्होंने अपने आदर्शों के लिए बहुत बडी कीमत चुकायी है। इस कारण यह किसी के मुँह से नहीं निकलना चाहिए कि नौजवान उतावलेपन में किन्हीं मामूली बातों के पीछे लगे हुए हैं।

यह कोई अच्छी बात नहीं है कि हमारे आदर्शों पर कीचड़ उछाला जाता है। यह काफी होगा कि अगर आप जानें कि हमारे विचार बेहद मजबूत और तेज़-तर्रार हैं जो न

सिर्फ हमें आगे बढ़ाये रखते हैं बल्कि फाँसी के तख्ते पर भी मुस्कराने की हिम्मत देते हैं।

आजकल यह फैशन-सा हो गया है कि अहिंसा के बारे में अन्धाधुन्ध और निरर्थक बात की जाये। महात्मा गाँधी महान हैं और हम उनके सम्मान पर कोई भी आँच नहीं लाने देना चाहते, लेकिन हम यह दृढता से कहते हैं कि हम देश को स्वतन्त्र कराने के उनके ढंग को पूर्णतया नामंजूर करते हैं। यदि हम देश में चलाये जा रहे उनके असहयोग आन्दोलन द्वारा लोक-जागृति मे उनकी भागीदारी के लिए उनको सलाम न करें तो यह हमारे लिए बडा नाशुक्रापन होगा। परन्तु हमारे लिए महात्मा असम्भवताओं का एक दार्शनिक है। अहिंसा भले ही एक नेक आदर्श है लेकिन यह अतीत की चीज है। जिस स्थिति मे आज हम हैं, सिर्फ अहिंसा के रास्ते से कभी भी आजादी प्राप्त नहीं कर सकते। दुनिया सिर तक हथियारों से लैस है और [ऐसी] दुनिया पर हम हावी है। अमन की सारी बातें ईमानदार हो सकती हैं, लेकिन हम जो गुलाम कौम हैं, हमें ऐसे झूठे सिद्धान्तों के जरिए अपने रास्ते से नहीं भटकना चाहिए। हम पूछते हैं कि जब दुनिया का वातावरण हिंसा और गरीब की लूट सें भरा हुआ है, तब देश को अहिंसा के रास्ते पर चलाने की क्या तुक है? हम अपने पूरे जोर के साथ कहते हैं कि कौम के नौजवान कच्ची नींद के ऐसे सपनों से रिझाये नहीं जा सकते।

हम हिंसा में विश्वास रखते हैं—अपने आप में अन्तिम लक्ष्य के रूप में नहीं, बल्कि एक नेक परिणाम तक पहुँचने के लिए अपनाये गये तौर-तरीके के नाते। अहिंसा के पैरोकार और सावधानी के वकील यह बात तो मानते हैं कि हम अपने यकीन पर चलने और उसके लिए कष्ट सहने के लिए तैयार रहते हैं। तो क्या हमे इसीलिए अपने साथियों की साझी माँ की बलिवेदी पर कुर्बानियो की गिनती करानी पड़ेगी? अंग्रेज सरकार की जेलों की चारदीवारी के अन्दर रूह कँपा देने और दिल की धडकन पकडनेवाले कई दृश्य खेले जा चुके हैं। हमें हमारी आतंकवादी नीति के कारण कई बार सजाएँ हुई हैं। हमारा जवाब है कि क्रान्तिकारियों का मुद्दा आतंकवाद नहीं होता; तो भी हम यह विश्वास रखते हैं कि आतकवाद के रास्ते ही क्रान्ति आ जायेगी। पर इसमें कोई शक नही है कि क्रान्तिकारी बिल्कुल दुरुस्त सोचते हैं कि अंग्रेजी सरकार का मुँह मोड़ने के लिए इन तरीकों का इस्तेमाल करना ही कारगर तरीका है। अंग्रेजों की सरकार इसलिए चलती है, क्योंकि वे सारे भारत को भयभीत करने में कामयाब हुए हैं। हम इस सरकारी दहशत का किस तरह मुकाबला करें? सिर्फ क्रान्तिकारियों की ओर से मुकाबले की दहशत ही उनकी दहशत को रोकने में कामयाब हो सकती है। समाज में एक लाचारी की गहरी भावना फैली हुई है। इस खतरनाक मायूसी को कैसे दूर किया जाये? सिर्फ कुर्बानी की रूह को जगाकर खोये आत्म-विश्वास को जगाया जा सकता है। आतकवाद का एक अन्तर्राष्ट्रीय पहलू भी है। इंग्लैण्ड के काफी शत्रु है जो हमारी ताकत के पूर्ण प्रदर्शन से हमारी सहायता करने को तैयार हैं। यह भी एक बड़ा लाभ है।

भारत साम्राज्यवाद के जुए के नीचे पिस रहा है। इसमें करोड़ों लोग आज अज्ञानता

और गरीबी के शिकार हो रहे हैं। भारत की बहुत बडी जनसंख्या जो मजदूरों और किसानो की है, उनको विदेशी दबाव एवं आर्थिक लूट ने पस्त कर दिया है। भारत के मेहनतकश वर्ग की हालत आज बहुत गम्भीर है। उसके सामने दोहरा खतरा है—विदेशी पूँजीवाद का एक तरफ से और भारतीय पूँजीवाद के धोखे भरे हमले का दूसरी तरफ से खतरा है। भारतीय पूँजीवाद विदेशी पूँजी के साथ हर रोज बहुत-से गठजोड कर रहा है। कुछ राजनैतिक नेताओं का डोमिनियन [प्रभुतासम्पन्न] का रूप स्वीकार करना भी हवा के इसी रुख को स्पष्ट करता है।

भारतीय पूँजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूँजीपति से विश्वासघात की कीमत के रूप में सरकार में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएँ अब सिर्फ समाजवाद पर टिकी हैं और सिर्फ यही पूर्ण स्वराज्य और सब भेदभाव खत्म करने में सहायक साबित हो सकता है। देश का भविष्य नौजवानों के सहारे है। वही धरती के बेटे हैं। उनकी दुख सहने की तत्परता, उनकी बेखौफ बहादुरी और लहराती कुर्बानी दर्शाती है कि भारत का भविष्य उनके हाथ में सुरक्षित है। एक अनुभूतिमय घड़ी में देशबन्धु दास ने कहा था, "नौजवान भारत माता की शान एवं आशाएँ हैं। आन्दोलन के पीछे उनकी प्रेरणा है, उनकी कुर्बानी है और उनकी जीत है। आजादी की राह पर मशालें लेकर चलनेवाले ये ही हैं। मुक्ति की राह पर ये तीर्थ यात्री हैं।"

भारतीय रिपब्लिक के नौजवानो, नहीं सिपाहियो, कतारबद्ध हो जाओ। आराम के साथ न खड़े रहो और न ही निरर्थक कदमताल किये जाओ। लम्बी दरिद्रता को, जो तुम्हें नाकारा कर रही है, सदा के लिए उतार फेंको। तुम्हारा बहुत ही नेक मिशन है। देश के हर कोने और हर दिशा में बिखर जाओ और भावी क्रान्ति के लिए, जिसका आना निश्चित है, लोगों को तैयार करो। फर्ज के बिगुल की आवाज सुनो। वैसे ही खाली जिन्दगी न गँवाओ। बढ़ो, तुम्हारी जिन्दगी का हर पल इस तरह के तरीके और तरतीब ढूँढ़ने में लगना चाहिए, कि कैसे अपनी पुरातन धरती की आँखों में ज्वाला जागे और एक लम्बी अँगड़ाई लेकर जागे। अंग्रेज साम्राज्य के खिलाफ नवयुवकों के उर्वर हृदयों में एक उकसाहट और नफरत भर दो, ऐसे बीज डालो जोकि उगें और बडे वृक्ष बन जायें क्योंकि इन बीजों को तुम अपने गर्म खून के जल से सींचोगे। तब एक भयानक भूचाल आयेगा, जो बड़े धमाके से गलत चीजों को नष्ट कर देगा और साम्राज्यवाद के महल को कुचलकर धूल में मिला देगा और यह तबाही महान होगी।

तब, और सिर्फ तभी, एक भारतीय कौम जागेगी, जो अपने गुणों और शान से इन्सानियत को हैरान कर देगी। तब चालाक और बलवान सदा से कमजोर लोगों से हैरान रह जायेंगे। तभी व्यक्तिगत मुक्ति भी सुरक्षित होगी और मेहनतकश की सरदारी और प्रभुसत्ता को सत्कारा जायेगा। हम ऐसी ही क्रान्ति के आने का सन्देश दे रहे हैं। क्रान्ति अमर रहे! —करतारसिंह अध्यक्ष,
रिपब्लिकन प्रेस, अरहवन, भारत से प्रकाशित

बम का दर्शन

(26 जनवरी, 1930)

[राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान क्रान्तिकारियों की निन्दा में गाँधी जी ब्रिटिश सरकार से एक कदम आगे रहते थे। 23 दिसम्बर, 1929 को क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के स्तम्भ वाइसराय की गाडी को उड़ाने का प्रयास किया, लेकिन जो असफल रहा। गाँधी जी ने इस घटना पर एक कटुतापूर्ण लेख 'बम की पूजा' लिखा, जिसमें उन्होंने वाइसराय को देश का शुभचिन्तक और नवयुवकों को आजादी के रास्ते में रोड़ा अटकानेवाले कहा। इसी के जवाब में हि. स. प्र. स. की ओर से भगवतीचरण वोहरा ने 'बम का दर्शन' लेख लिखा, जिसका शीर्षक 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र समाजवादी सभा का घोषणापत्र' रखा। भगतसिंह ने जेल में इसे अन्तिम रूप दिया। 26 जनवरी, 1930 को इसे देश-भर में बाँटा गया।—सं.]

हाल ही की घटनाएँ! विशेष रूप से 23 दिसम्बर, 1929 को वाइसराय की स्पेशल ट्रेन उड़ाने का जो प्रयत्न किया गया था, उसकी निन्दा करते हुए कांग्रेस द्वारा पारित किया गया प्रस्ताव तथा 'यंग इण्डिया' में गाँधी जी द्वारा लिखे गये लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने गाँधी जी से साठ-गाँठ कर भारतीय क्रान्तिकारियों के विरुद्ध घोर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया है। जनता के बीच भाषणों तथा पत्रों के माध्यम से क्रान्तिकारियों के विरुद्ध बराबर प्रचार किया जाता रहा है। या तो यह जान-बूझकर किया गया या फिर केवल अज्ञान के कारण उनके विषय में गलत प्रचार होता रहा और उन्हें गलत समझा जाता रहा; परन्तु क्रान्तिकारी अपने सिद्धान्तों तथा कार्यों की ऐसी आलोचना से नहीं घबराते हैं। बल्कि वे ऐसी आलोचना का स्वागत करते हैं, क्योंकि वे इसे इस बात का स्वर्णावसर मानते हैं कि ऐसा करने से उन्हें उन लोगों को क्रान्तिकारियों के मूलभूत सिद्धान्तों तथा उच्चादर्शों को, जो उनकी प्रेरणा तथा शक्ति के अनवरत स्रोत हैं, समझाने का अवसर मिलता है। आशा की जाती है कि इस लेख द्वारा आम जनता को यह जानने का अवसर मिलेगा कि क्रान्तिकारी क्या हैं, और उनके विरुद्ध किये गये, भ्रमात्मक प्रचार से उत्पन्न होनेवाली गलतफहमियों से उन्हें बचाया जा सकेगा।

पहले हम हिंसा और अहिंसा के प्रश्न पर ही विचार करें। हमारे विचार से इन शब्दों का प्रयोग ही गलत किया गया है, और ऐसा करना ही दोनों दलों के साथ अन्याय करना है, क्योंकि इन शब्दों से दोनों ही दलों के सिद्धान्तों का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता। हिंसा का अर्थ है अन्याय के लिए किया गया बल-प्रयोग, परन्तु क्रान्तिकारियों का तो यह उद्देश्य नहीं है, दूसरी ओर अहिंसा का जो आम अर्थ समझा जाता है, वह है आत्मिक शक्ति का

किये जानेवाले जीवन के हिसाब आदि में कोई विश्वास नहीं रखते। अतः हमें जीवन एवं मृत्यु के विषय में भी नितान्त भौतिकवादी रीति से सोचना चाहिए। एक दिन जब मुझे पहचाने जाने के लिए दिल्ली से यहाँ लाया गया था, तो गुप्तचर विभाग के कुछ अधिकारियों ने मेरे पिताजी की उपस्थिति में मुझसे इस विषय पर बातचीत की थी। उन्होंने कहा था कि मैं कोई भेद खोलने और इस प्रकार अपना जीवन बचाने के लिए तैयार नहीं हूँ, इससे यह सिद्ध होता है कि मैं जीवन से बहुत दुःखी हूँ। उनका तर्क था कि मेरी यह मृत्यु तो आत्महत्या के समान होगी, परन्तु मैंने उनको उत्तर दिया था कि मेरे-जैसे विश्वास और विचारोंवाला व्यक्ति व्यर्थ में ही मरना कदापि सहन नहीं कर सकता। हम तो अपने जीवन का अधिक-से-अधिक मूल्य प्राप्त करना चाहते हैं। हम मानवता की अधिक-से-अधिक सम्भव सेवा करना चाहते हैं। विशेषकर मेरे-जैसा भला मनुष्य, जिसका जीवन किसी भी रूप में दुःखी या चिन्तित नहीं है, किसी समय भी, आत्महत्या करना तो दूर रहा, उसका विचार भी हृदय में लाना ठीक नहीं समझता। वही बात मैं इस समय आपसे कहना चाहता हूँ।

आशा है आप मुझे अनुमति देंगे कि मैं आपको यह बताऊँ कि मैं अपने बारे में क्या सोचता हूँ। मुझे अपने लिए मृत्युदण्ड सुनाये जाने का अटल विश्वास है। मुझे किसी प्रकार की पूर्ण क्षमा या नम्र व्यवहार की तनिक भी आशा नहीं है। यदि कोई क्षमा हुई भी तो पूर्णतः सबके लिए न होगी, वरन वह भी हमारे अतिरिक्त अन्य लोगों के लिए नितान्त सीमित एवं कई बन्धनों से जकड़ी हुई होगी। हमारे लिए तो न क्षमा हो सकती है और न वह होगी ही। इस पर भी मेरी इच्छा है कि हमारी मुक्ति का प्रस्ताव सम्मिलित रूप में और विश्वव्यापी हो और उसके साथ ही मेरी अभिलाषा यह है कि जब यह आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँचे, तो हमें फाँसी दे दी जाये। मेरी यह इच्छा है कि यदि कोई सम्मानपूर्ण और उचित समझौता होना कभी सम्भव हो जाये, तो हमारे-जैसे व्यक्तियों का मामला उसके मार्ग में कोई रुकावट या कठिनाई उत्पन्न करने का कारण न बने। जब देश के भाग्य का निर्णय हो रहा हो तो व्यक्तियों के भाग्य को पूर्णतया भुला देना चाहिए। हम क्रान्तिकारी होने के नाते अतीत के समस्त अनुभवों से पूर्णतया अवगत हैं। इसलिए हम नहीं मान सकते कि हमारे शासकों और विशेषकर अंग्रेज जाति की भावनाओं में इस प्रकार का आश्चर्यजनक परिवर्तन उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार का परिवर्तन क्रान्ति के बिना सम्भव ही नहीं है। क्रान्ति तो केवल सतत कार्य करते रहने से, प्रयत्नों से, कष्ट सहन करने एवं बलिदानों से ही उत्पन्न की जा सकती है, और की जायेगी।

जहाँ तक मेरे दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, मैं तो केवल उसी दशा में सबके लिए सुविधाओं और क्षमादान का स्वागत कर सकता हूँ जब उसका प्रभाव स्थायी हो और देश के लोगों के हृदयों पर हमारी फाँसियों से कुछ अमिट चिह्न अंकित हो जायें। बस यही; इससे अधिक कुछ नहीं।

[भगतसिंह ने अपने विचार स्पष्ट रूप से भारतीय जनता के सामने रखे । उनके विचार में, "क्रान्ति की तलवार विचारों की धार से ही तेज होती है ।" वे विचारधारात्मक क्रान्तिकारी हालात के लिए संघर्ष कर रहे थे । अपने विचारों पर हुए सभी वारों का उन्होंने तर्कपूर्ण उत्तर दिया । यह वार अंग्रेजी सरकार की ओर से किये गये या देशी नेताओं की ओर से अखबारो में ।

शहीद यतीन्द्रनाथ दास 63 दिन की भूख हडताल के बाद शहीद हुए । 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक रामानन्द चट्टोपाध्याय ने उनकी शहादत के बाद भारतीय जनता द्वारा शहीद के प्रति किये गये सम्मान और उनके 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे की आलोचना की । भगतसिंह और बी. के. दत्त ने 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक को उनके उस सम्पादकीय का निम्नलिखित उत्तर दिया था । —सं.]

सम्पादक, माडर्न रिव्यू के नाम पत्र

इन्कलाब जिन्दाबाद क्या है ?

श्री सम्पादक जी,

माडर्न रिव्यू ।

आपने अपने सम्मानित पत्र के दिसम्बर, 1929 के अंक में एक टिप्पणी 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' शीर्षक से लिखी है और इस नारे को निरर्थक ठहराने की चेष्टा की है । आप सरीखे परिपक्व विचारक तथा अनुभवी और यशस्वी सम्पादक की रचना में दोष निकालना तथा उसका प्रतिवाद करना, जिसे प्रत्येक भारतीय सम्मान की दृष्टि से देखता है, हमारे लिए एक बड़ी धृष्टता होगी । तो भी इस प्रश्न का उत्तर देना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि इस नारे से हमारा क्या अभिप्राय है ।

यह आवश्यक है, क्योंकि इस देश में इस समय इस नारे को सब लोगों तक पहुँचाने का कार्य हमारे हिस्से में आया है । इस नारे की रचना हमने नहीं की है । यही नारा रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रयोग किया गया है । प्रसिद्ध समाजवादी लेखक अप्टन सिक्लेयर ने अपने उपन्यासों 'बोस्टन' और 'आईल' में यही नारा कुछ अराजकतावादी क्रान्तिकारी पात्रों के मुख से प्रयोग कराया है । इसका अर्थ क्या है ? इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सशस्त्र संघर्ष सदैव जारी रहे और कोई भी व्यवस्था अल्प समय के लिए भी स्थायी न रह सके, दूसरे शब्दों में—देश और समाज में अराजकता फैली रहे ।

दीर्घकाल से प्रयोग में आने के कारण इस नारे को एक ऐसी विशेष भावना प्राप्त हो चुकी है, जो सम्भव है भाषा के नियमों एवं कोष के आधार पर इसके शब्दों से उचित

तर्कसम्मत रूप में सिद्ध न हो पाये, परन्तु इसके साथ ही इस नारे से उन विचारों को पृथक् नहीं किया जा सकता, जो इसके साथ जुड़े हुए हैं। ऐसे समस्त नारे एक ऐसे स्वीकृत अर्थ के द्योतक हैं, जो एक सीमा तक उनमें उत्पन्न हो गये हैं तथा एक सीमा तक उनमें निहित हैं।

उदाहरण के लिए हम यतीन्द्रनाथ ज़िन्दाबाद का नारा लगाते हैं। इससे हमारा तात्पर्य यह होता है कि उनके जीवन के महान आदर्शों तथा उस अथक उत्साह को सदा-सदा के लिए बनाये रखे, जिसने इस महानतम बलिदानी को उस आदर्श के लिए अकथनीय कष्ट झेलने एवं असीम बलिदान करने की प्रेरणा दी। यह नारा लगाने से हमारी यह लालसा प्रकट होती है कि हम भी अपने आदर्शों के लिए ऐसे ही अचूक उत्साह को अपनायें। यही वह भावना है, जिसकी हम प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार हमें 'इन्कलाब' शब्द का अर्थ भी कोरे शाब्दिक रूप में नहीं लगाना चाहिए। इस शब्द का उचित एवं अनुचित प्रयोग करनेवाले लोगों के हितों के आधार पर इसके साथ विभिन्न अर्थ एवं विभिन्न विशेषताएँ जोड़ी जाती हैं। क्रान्तिकारियों की दृष्टि में यह एक पवित्र वाक्य है। हमने इस बात को ट्रिब्यूनल के सम्मुख अपने वक्तव्य मे स्पष्ट करने का प्रयास किया था।

इस वक्तव्य में हमने कहा था कि क्रान्ति (इन्कलाब) का अर्थ अनिवार्य रूप में सशस्त्र आन्दोलन नही होता। बम और पिस्तौल कभी-कभी क्रांति को सफल बनाने के साधन मात्र हो सकते हैं। इसमे भी सन्देह नहीं है कि कुछ आन्दोलनो में बम एवं पिस्तौल एक महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध होते हैं, परन्तु केवल इसी कारण से बम और पिस्तौल क्रान्ति के पर्यायवाची नहीं हो जाते। विद्रोह को क्रान्ति नहीं कहा जा सकता, यद्यपि यह हो सकता है कि विद्रोह का अन्तिम परिणाम क्रान्ति हो।

इस वाक्य में क्रान्ति शब्द का अर्थ 'प्रगति के लिए परिवर्तन की भावना एवं आकाक्षा' है। लोग साधारणतया जीवन की परम्परागत दशाओं के साथ चिपक जाते हैं और परिवर्तन के विचार मात्र से ही काँपने लगते हैं। यही एक अकर्मण्यता की भावना है, जिसके स्थान पर क्रांतिकारी भावना जाग्रत करने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अकर्मण्यता का वातावरण निर्मित हो जाता है और रूढ़िवादी शक्तियाँ मानव समाज को कुमार्ग पर ले जाती हैं। ये परिस्थितियाँ मानव समाज की उन्नति में गतिरोध का कारण बन जाती हैं।

क्रान्ति की इस भावना से मनुष्य जाति की आत्मा स्थायी तौर पर ओतप्रोत रहनी चाहिए, जिससे कि रूढ़िवादी शक्तियाँ मानव समाज की प्रगति की दौड़ में बाधा डालने के लिए संगठित न हो सकें। यह आवश्यक है कि पुरानी व्यवस्था सदैव न रहे और वह नयी व्यवस्था के लिए स्थान रिक्त करती रहे, जिससे कि एक आदर्श व्यवस्था संसार को बिगड़ने से रोक सके। यह है हमारा वह अभिप्राय जिसको हृदय में रखकर हम 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा ऊँचा करते हैं।

22 दिसम्बर, 1929

भगतसिंह–बी. के. दत्त

विद्यार्थियों के नाम पत्र

[भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त की ओर से जेल से भेजा गया यह पत्र 19 अक्तूबर, 1929 को पंजाब छात्र संघ, लाहौर के दूसरे अधिवेशन में पढ़कर सुनाया गया था। अधिवेशन के सभापति थे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस। –स.]

इस समय हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठायें। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण काम है। आनेवाले लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस देश की आजादी के लिए जबरदस्त लडाई की घोषणा करनेवाली है। राष्ट्रीय इतिहास के इन कठिन क्षणों में नौजवानों के कन्धों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ेगी। यह सच है कि स्वतन्त्रता के इस युद्ध में अग्रिम मोर्चों पर विद्यार्थियों ने मौत से टक्कर ली है। क्या परीक्षा की इस घड़ी मे वे उसी प्रकार की दृढ़ता और आत्मविश्वास का परिचय देने से हिचकिचायेंगे? नौजवानों को क्रान्ति का यह सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फैक्टरी-कारखानो के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोंपड़ियों मे रहनेवाले करोडो लोगो में इस क्रांति की अलख जगानी है, जिससे आजादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा। पंजाब वैसे ही राजनीतिक तौर पर पिछडा हुआ माना जाता है। इसकी भी जिम्मेदारी युवक वर्ग पर ही है। आज वे देश के प्रति अपनी असीम श्रद्धा और शहीद यतीन्द्रनाथ दास के महान बलिदान से प्रेरणा लेकर यह सिद्ध कर दें कि स्वतन्त्रता के इस संघर्ष में वे दृढता से टक्कर ले सकते हैं।

22 अक्तूबर, 1929 के 'ट्रिब्यून' (लाहौर) में प्रकाशित।

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का घोषणापत्र

[लाहौर कांग्रेस में बाँटे गये इस दस्तावेज को मुख्य तौर पर भगवतीचरण वोहरा ने लिखा था। दुर्गा भाभी और अन्य क्रान्तिकारी साथियों ने इसे वहाँ वितरित किया। सी. आई. डी. ने इसे पकड़ लिया था और उसी के कागजों से इसकी प्रति मिली। –सं.]

स्वतन्त्रता का पौधा शहीदों के रक्त से फलता है। भारत में स्वतन्त्रता का पौधा फलने के लिए दशकों से क्रान्तिकारी अपना रक्त बहाते रहे हैं। बहुत कम लोग हैं जो उनके मन में पाले हुए आदर्शों की उच्चता तथा उनके महान बलिदानों पर प्रश्नचिह्न लगाये, लेकिन

सिद्धान्त। उसका उपयोग व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अपने-आपको कष्ट देकर आशा की जाती है कि इस प्रकार अन्त में अपने विरोधी का हृदय-परिवर्तन सम्भव हो सकेगा।

एक क्रान्तिकारी जब कुछ बातों को अपना अधिकार मान लेता है तो वह उनकी माँग करता है, अपनी उस माँग के पक्ष में दलीलें देता है, समस्त आत्मिक शक्ति के द्वारा उन्हें प्राप्त करने की इच्छा करता है, उसकी प्राप्ति के लिए अत्यधिक कष्ट सहन करता है, इसके लिए वह बड़े-से-बड़ा त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहता है और उसके समर्थन में वह अपना समस्त शारीरिक बल-प्रयोग भी करता है। इसके इन प्रयत्नों को आप चाहे जिस नाम से पुकारें, परन्तु आप इन्हें हिंसा के नाम से सम्बोधित नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करना कोष में दिये इस शब्द के अर्थ के साथ अन्याय होगा। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। उसकी स्वीकृति के लिए केवल आत्मिक शक्ति के प्रयोग का ही आग्रह क्यों? इसके साथ-साथ शारीरिक बल-प्रयोग भी [क्यों] न किया जाये? क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए अपनी शारीरिक एवं नैतिक शक्ति दोनों के प्रयोग में विश्वास करता है, परन्तु नैतिक शक्ति का प्रयोग करनेवाले शारीरिक बल-प्रयोग को निषिद्ध मानते हैं। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि आप हिंसा चाहते हैं या अहिंसा, बल्कि प्रश्न तो यह है कि आप अपनी उद्देश्य-प्राप्ति के लिए शारीरिक बल सहित नैतिक बल का प्रयोग करना चाहते हैं, या केवल आत्मिक शक्ति का?

क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि देश को क्रान्ति से ही स्वतन्त्रता मिलेगी। वे जिस क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील हैं और जिस क्रान्ति का रूप उनके सामने स्पष्ट है उसका अर्थ केवल यह नहीं है कि विदेशी शासकों तथा उनके पिट्ठुओं से क्रान्तिकारियों का केवल सशस्त्र संघर्ष हो, बल्कि इस सशस्त्र संघर्ष के साथ-साथ नवीन सामाजिक व्यवस्था के द्वार देश के लिए मुक्त हो जायें। क्रान्ति पूँजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलानेवाली प्रणाली का अन्त कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खडा करेगी, उससे नवीन राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा। क्रान्ति से सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मजदूर तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब सामाजिक अवांछित तत्त्वों को समाप्त कर देगी जो देश की राजनैतिक शक्ति को हथियाये बैठे हैं।

आज की तरुण पीढ़ी को जो मानसिक गुलामी तथा धार्मिक रूढ़िवादी बन्धन जकडे हैं और उससे छुटकारा पाने के लिए तरुण समाज की जो बेचैनी है, क्रान्तिकारी उसी में प्रगतिशीलता के अंकुर देख रहा है। नवयुवक जैसे-जैसे मनोविज्ञान आत्मसात् करता जायेगा वैसे-वैसे राष्ट्र की गुलामी का चित्र उसके सामने स्पष्ट होता जायेगा तथा उसकी देश को स्वतन्त्र करने की इच्छा प्रबल होती जायेगी। और उसका यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि युवक न्याय, क्रोध और क्षोभ मे ओतप्रोत हो अन्याय करनेवालों की हत्या न प्रारम्भ कर देगा। इस प्रकार देश मे आतंकवाद का जन्म होता है। आतंकवाद सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं और क्रान्ति भी आतंकवाद के बिना पूर्ण नहीं। यह

तो क्रान्ति का एक आवश्यक और अवश्यम्भावी अंग है। इस सिद्धान्त का समर्थन इतिहास की किसी भी क्रान्ति का विश्लेषण कर जाना जा सकता है। आतंकवाद आततायी के मन में भय पैदा कर पीड़ित जनता में प्रतिशोध की भावना जाग्रत कर उसे शक्ति प्रदान करता है। अस्थिर भावनावाले लोगों को इससे हिम्मत बँधती है तथा उनमें आत्मविश्वास पैदा होता है। इससे दुनिया के सामने क्रान्ति के उद्देश्य का वास्तविक रूप प्रकट हो जाता है क्योंकि ये किसी राष्ट्र की स्वतन्त्रता की उत्कट महत्त्वाकांक्षा का विश्वास दिलानेवाले प्रमाण हैं, जैसे दूसरे देशों में होता आया है, वैसे ही भारत में भी आतंकवाद क्रान्ति का रूप धारण कर लेगा और अन्त में क्रान्ति से ही देश को सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

तो यह हैं क्रान्तिकारी के सिद्धान्त, जिनमें वह विश्वास करता है और जिन्हें देश के लिए प्राप्त करना चाहता है। इस तथ्य की प्राप्ति के लिए वह गुप्त तथा खुले-आम दोनों ही तरीकों से प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार एक शताब्दी से संसार में जनता तथा शासक वर्ग में जो संघर्ष चला आ रहा है, वही अनुभव उसके लक्ष्य पर पहुँचने का मार्गदर्शक है क्रान्तिकारी जिन तरीकों में विश्वास करता है, वे कभी असफल नहीं हुए।

इस बीच कांग्रेस क्या कर रही थी? उसने अपना ध्येय स्वराज्य से बदलकर पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित किया। इस घोषणा से कोई भी व्यक्ति यही निष्कर्ष निकालेगा कि कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा न कर क्रान्तिकारियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस का पहला वार था उसका वह प्रस्ताव जिसमें 23 दिसम्बर, 1929 को वाइसराय की स्पेशल ट्रेन उड़ाने के प्रयत्न की निन्दा की गयी। इस प्रस्ताव का मसविदा गाँधी जी ने तैयार किया था और उसे पारित कराने के लिए गाँधी जी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। परिणाम यह हुआ कि 1913 की सदस्य संख्या में वह केवल 31 अधिक मतों से पारित हो सका। क्या इस अत्यल्प बहुमत में भी राजनैतिक ईमानदारी थी? इस सम्बन्ध में हम सरलादेवी चौधरानी का मत ही यहाँ उद्धृत करें। वे तो जीवन-भर कांग्रेस की भक्त रही हैं। इस सम्बन्ध में प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा है—मैंने महात्मा गाँधी के अनुयायियों के साथ इस विषय में जो बातचीत की, उससे मुझे मालूम हुआ कि वे इस सम्बन्ध में अपने स्वतन्त्र विचार महात्मा जी के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा के कारण प्रकट न कर सके, तथा इस प्रस्ताव के विरुद्ध मत देने में असमर्थ रहे, जिसके प्रणेता महात्मा जी थे। जहाँ तक गाँधी जी की दलील का प्रश्न है, उस पर हम बाद में विचार करेंगे। उन्होंने जो दलीलें दी हैं वे कुछ कम या अधिक इस सम्बन्ध में कांग्रेस में दिये गये भाषण का ही विस्तृत रूप हैं।

इस दुखद प्रस्ताव के विषय में एक बात मार्के की है जिसे हम अनदेखा नहीं कर सकते, वह यह कि यह सर्वविदित है कि कांग्रेस अहिंसा का सिद्धान्त मानती है और पिछले दस वर्षों से वह इसके समर्थन में प्रचार करती रही है। यह सब होने पर भी प्रस्ताव के समर्थन में भाषणों में गाली-गलौच की गयी। उन्होंने क्रान्तिकारियों को बुजदिल कहा

और उनके कार्यों को घृणित । उनमें से एक वक्ता न धमकी देते हुए यहाँ तक कह डाला कि यदि वे (सदस्य) गाँधी जी का नेतृत्व चाहते हैं तो उन्हें इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित करना चाहिए । इतना सबकुछ किये जाने पर भी यह प्रस्ताव बहुत थोड़े मतों से ही पारित हो सका । इससे यह बात निशंक प्रमाणित हो जाती है कि देश की जनता पर्याप्त संख्या में क्रान्तिकारियों का समर्थन कर रही है । इस तरह से इसके लिए गाँधी जी हमारी बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने इस प्रश्न पर विवाद खडा किया और इस प्रकार संसार को दिखा दिया कि कांग्रेस, जो अहिंसा का गढ़ माना जाता है, वह सम्पूर्ण नहीं तो एक हद तक तो कांग्रेस से अधिक क्रान्तिकारियों के साथ है ।

इस विषय में गाँधी जी ने जो विजय प्राप्त की वह एक प्रकार की हार ही के बराबर थी और अब वे 'दि कल्ट ऑफ दि बम' लेख द्वारा क्रान्तिकारियों पर दूसरा हमला कर बैठे हैं । इस सम्बन्ध में आगे कुछ कहने से पूर्व इस लेख पर हम अच्छी तरह विचार करेगे । इस लेख में उन्होंने तीन बातों का उल्लेख किया है । उनका विश्वास, उनके विचार और उनका मत । हम उनके विश्वास के सम्बन्ध में विश्लेषण नहीं करेंगे, क्योंकि विश्वास में तर्क के लिए स्थान नहीं है । गाँधी जी जिसे हिंसा कहते हैं और जिसके विरुद्ध उन्होंने जो तर्कसंगत विचार प्रकट किये हैं, हम उनका सिलसिलेवार विश्लेषण करें ।

गाँधी जी सोचते हैं कि उनकी यह धारणा सही है कि अधिकतर भारतीय जनता को हिंसा की भावना छू तक नहीं गयी है और अहिंसा उनका राजनैतिक शस्त्र बन गया है । हाल ही में उन्होंने देश का जो भ्रमण किया है उस अनुभव के आधार पर उनकी यह धारणा बनी है, परन्तु उन्हें अपनी इस यात्रा के इस अनुभव से इस भ्रम में न पड़ना चाहिए । यह बात सही है कि (कांग्रेस) नेता अपने दौरे वहीं तक सीमित रखता है जहाँ तक डाक गाड़ी उसे आराम से पहुँचा सकती है, जबकि गाँधीजी ने अपनी यात्रा का दायरा वहाँ तक बढ़ा दिया है जहाँ तक कि मोटरकार द्वारा वे जा सकें । इस यात्रा में वे धनी व्यक्तियों के ही निवास स्थानों पर रुके । इस यात्रा का अधिकतर समय उनके भक्तों द्वारा आयोजित गोष्ठियों में की गयी उनकी प्रशंसा, सभाओं में यदा-कदा अशिक्षित जनता को दिये जानेवाले दर्शनों में बीता, जिसके विषय में उनका दावा है कि वे उन्हें अच्छी तरह समझते हैं, परन्तु यही बात इस दलील के विरुद्ध है कि वे आम जनता की विचारधारा को जानते हैं ।

कोई व्यक्ति जन-साधारण की विचारधारा को केवल मंचों से दर्शन और उपदेश देकर नहीं समझ सकता । वह तो केवल इतना ही दावा कर सकता है कि उसने विभिन्न विषयों पर अपने विचार जनता के सामने रखे । क्या गाँधी जी ने इन वर्षों में आम जनता के सामाजिक जीवन में भी कभी प्रवेश करने का प्रयत्न किया ? क्या कभी उन्होंने किसी सन्ध्या को गाँव की किसी चौपाल के अलाव के पास बैठकर किसी किसान के विचार जानने का प्रयत्न किया ? क्या किसी कारखाने के मजदूर के साथ एक भी शाम गुजारकर उसके विचार समझने की कोशिश की है ? पर हमने यह किया है और इसीलिए हम दावा

करते हैं कि हम आम जनता को जानते हैं। हम गाँधी जी को विश्वास दिलाते हैं कि साधारण भारतीय साधारण मानव के समान ही अहिंसा तथा अपने शत्रु से प्रेम करने की आध्यात्मिक भावना को बहुत कम समझता है। संसार का तो यही नियम है—तुम्हारा एक मित्र है, तुम उससे स्नेह करते हो, कभी-कभी तो इतना अधिक कि तुम उसके लिए अपने प्राण भी दे देते हो। तुम्हारा शत्रु है, तुम उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते हो। क्रान्तिकारियों का यह सिद्धान्त नितान्त सत्य, सरल और सीधा है और यह ध्रुव सत्य आदम और हौवा के समय से चला आ रहा है तथा इसे समझने में कभी किसी को कठिनाई नहीं हुई। हम यह बात स्वयं के अनुभव के आधार पर कह रहे हैं। वह दिन दूर नहीं जब लोग क्रान्तिकारी विचारधारा को सक्रिय रूप देने के लिए हजारों की संख्या में जमा होंगे।

गाँधी जी घोषणा करते हैं कि अहिंसा के सामर्थ्य तथा अपने आपको पीड़ा देने की प्रणाली से उन्हें यह आशा है कि वे एक दिन विदेशी शासकों का हृदय परिवर्तन कर अपनी विचारधारा का उन्हें अनुयायी बना लेंगे। अब उन्होंने अपने सामाजिक जीवन की इस चमत्कार की 'प्रेम संहिता' के प्रचार के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है। वे अडिग विश्वास के साथ उसका प्रचार कर रहे हैं, जैसा कि उनके कुछ अनुयायियों ने भी किया है। परन्तु क्या वे बता सकते हैं कि भारत में कितने शत्रुओं का हृदय-परिवर्तन कर वे उन्हें भारत का मित्र बनाने में समर्थ हुए हैं? वे कितने ओडायरों, डायरों तथा रीडिंग और इरविन को भारत का मित्र बना सके हैं? यदि किसी को भी नहीं तो भारत उनकी इस विचारधारा से कैसे सहमत हो सकता है कि वे इंग्लैण्ड को अहिंसा द्वारा समझा-बुझाकर इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार कर लेंगे कि वह भारत को स्वतन्त्रता दे दे।

यदि वाइसराय की गाड़ी के नीचे बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो दो में से एक बात अवश्य हुई होती, या तो वाइसराय अत्यधिक घायल हो जाते या उनकी मृत्यु हो गयी होती। ऐसी स्थिति में वाइसराय तथा राजनैतिक दलों के नेताओं के बीच मन्त्रणा न हो पाती, यह प्रयत्न रुक जाता और उससे राष्ट्र का भला ही होता। कलकत्ता कांग्रेस की चुनौती के बाद भी स्वशासन की भीख माँगने के लिए वाइसराय भवन के आसपास मँडरानेवालों के ये घृणास्पद प्रयत्न विफल हो जाते। यदि बमों का ठीक से विस्फोट हुआ होता तो भारत का एक शत्रु उचित सज़ा पा जाता। 'मेरठ' तथा 'लाहौर-षड्यन्त्र' और 'भुसावल काण्ड' का मुकदमा चलानेवाले केवल भारत के शत्रुओं को ही मित्र प्रतीत हो सकते हैं। साइमन कमीशन के सामूहिक विरोध से देश में जो एकजुटता स्थापित हो गयी थी, गाँधी तथा नेहरू की राजनैतिक 'बुद्धिमत्ता' के बाद ही इरविन उसे छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हो सका। आज कांग्रेस में भी आपस में फूट पड़ गयी है। हमारे इस दुर्भाग्य के लिए वाइसराय या उसके चाटुकारों के सिवा कौन जिम्मेदार हो सकता है! इस पर भी हमारे देश में ऐसे लोग हैं जो उसे भारत का मित्र कहते हैं।

देश में ऐसे भी लोग होंगे जिन्हें कांग्रेस के प्रति श्रद्धा नहीं, इससे वे कुछ आशा भी नहीं करते। यदि गाँधी जी क्रान्तिकारियों को इस श्रेणी में गिनते हैं तो वे उनके साथ अन्याय करते हैं। वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि कांग्रेस ने जन-जागृति का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उसने आम जनता में स्वतन्त्रता की भावना जाग्रत की है, गोकि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक कांग्रेस में सेन गुप्ता जैसे 'अद्भुत प्रतिभाशाली' व्यक्तियों का, जो वाइसराय की ट्रेन उड़ाने में गुप्तचर विभाग का हाथ होने की बात करते हैं, तथा अन्सारी जैसे लोग, जो राजनीति कम जानते हैं और उचित तर्क की उपेक्षा कर बेतुकी और तर्कहीन दलील देकर यह कहते हैं कि किसी राष्ट्र ने बम से स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की—जब तक कांग्रेस के निर्णयों में इनके-जैसे विचारों का प्राधान्य रहेगा, तब तक देश उससे बहुत कम आशा कर सकता है। क्रान्तिकारी तो उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब कांग्रेसी आन्दोलन से अहिंसा की यह सनक समाप्त हो जायेगी और वह क्रान्तिकारियों के कन्धे से कन्धा मिलाकर पूर्ण स्वतन्त्रता के सामूहिक लक्ष्य की ओर बढ़ेगी। इस वर्ष कांग्रेस ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है, जिसका प्रतिपादन क्रान्तिकारी पिछले 25 वर्षों से करते चले आ रहे हैं। हम आशा करें कि अगले वर्ष वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के तरीकों का भी समर्थन करेगी।

गाँधी जी यह प्रतिपादित करते हैं कि जब-जब हिंसा का प्रयोग हुआ है तब-तब सैनिक खर्च बढ़ा है। यदि उनका मन्तव्य क्रान्तिकारियों की पिछली 25 वर्षों की गतिविधियों से है तो हम उनके वक्तव्य को चुनौती देते हैं कि वे अपने इस कथन को तथ्य और आँकड़ों से सिद्ध करें। बल्कि हम तो यह कहेंगे कि उनके अहिंसा और सत्याग्रह के प्रयोगों का परिणाम, जिनकी तुलना स्वतन्त्रता संग्राम से नहीं की जा सकती, नौकरशाही अर्थ-व्यवस्था पर हुआ है। आन्दोलनों का, फिर वे हिंसात्मक हों या अहिंसात्मक, सफल हों या असफल, परिणाम तो भारत की अर्थव्यवस्था पर होगा ही।

हमें समझ नहीं आता कि देश में सरकार ने जो विभिन्न वैधानिक सुधार किये, गाँधी जी उनमें हमें क्यों उलझाते हैं? उन्होंने मार्लोमिण्टो रिफार्म, माण्टेग्यू रिफार्म या ऐसे ही अन्य सुधारों की न तो कभी परवाह की और न ही उनके लिए आन्दोलन किया। ब्रिटिश सरकार ने तो यह टुकड़े वैधानिक आन्दोलनकारियों के सामने फेंके थे, जिससे उन्हें उचित मार्ग पर चलने से पथभ्रष्ट किया जा सके। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें तो यह घूस दी थी, जिससे वे क्रान्तिकारियों को समूल नष्ट करने की उनकी नीति के साथ सहयोग करें। गाँधी जी जैसा कि इन्हें सम्बोधित करते हैं, कि भारत के लिए ये खिलौने-जैसे हैं, उन लोगों को बहलाने-फुसलाने के लिए जो समय-समय पर होम रूल, स्वशासन, जिम्मेदार सरकार, पूर्ण जिम्मेदार सरकार, औपनिवेशिक स्वराज्य जैसे अनेक वैधानिक नाम जो गुलामी के हैं, माँग करते हैं। क्रान्तिकारियों का लक्ष्य तो शासन-सुधार का नहीं है, वे तो स्वतन्त्रता का स्तर कभी का ऊँचा कर चुके हैं और वे उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के बलिदान कर रहे हैं। उनका दावा है कि उनके बलिदानों ने जनता

की विचारधारा में प्रचण्ड परिवर्तन किया है । उसके प्रयत्नों से वे देश को स्वतन्त्रता के मार्ग पर बहुत आगे बढा ले गये हैं और यह बात उनसे राजनैतिक क्षेत्र में मतभेद रखनेवाले लोग भी स्वीकार करते हैं ।

गाँधी जी का कथन है कि हिंसा से प्रगति का मार्ग अवरुद्ध होकर स्वतन्त्रता पाने का दिन स्थगित होता जाता है, तो हम इस विषय में अनेक ऐसे उदाहरण दे सकते हैं, जिनमें जिन देशों ने हिंसा से काम लिया उनकी सामाजिक प्रगति होकर उन्हें राजनैतिक स्वतन्त्रता हुई । हम रूस तथा तुर्की का ही उदाहरण ले । दोनों ने हिंसा के उपायों से ही सशस्त्र क्रान्ति द्वारा सत्ता प्राप्त की । उसके बाद भी सामाजिक सुधारों के कारण वहाँ की जनता ने बडी तीव्र गति से प्रगति की । एकमात्र अफगानिस्तान के उदाहरण से राजनैतिक सूत्र सिद्ध नहीं किया जा सकता । यह तो अपवाद मात्र है ।

गाँधी जी के विचार में 'असहयोग आन्दोलन के समय जो जन-जागृति हुई है वह अहिंसा के उपदेश का ही परिणाम था' परन्तु यह धारणा गलत है और यह श्रेय अहिंसा को देना भी भूल है, क्योंकि जहाँ भी अत्यधिक जन-जागृति हुई वह सीधे मोर्चे की कार्रवाई से हुई । उदाहरणार्थ, रूस में शक्तिशाली जन-आन्दोलन से ही वहाँ किसान और मजदूरों मे जागृति उत्पन्न हुई । उन्हें तो किसी ने अहिंसा का उपदेश नहीं दिया था, बल्कि हम तो यहाँ तक कहेंगे कि अहिंसा तथा गाँधी जी की समझौता-नीति से ही उन शक्तियों में फूट पड़ गयी जो सामूहिक मोर्चे के नारे से एक हो गयी थीं । यह प्रतिपादित किया जाता है कि राजनैतिक अन्यायो का मुकाबला अहिंसा के शस्त्र से किया जा सकता है, पर इस विषय मे सक्षेप मे तो यही कहा जा सकता है कि यह अनोखा विचार है, जिसका अभी प्रयोग नहीं हुआ है ।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयो के जो न्यायोचित अधिकार माँगे जाते थे उन्हें प्राप्त करने में अहिंसा का शस्त्र असफल रहा । वह भारत को स्वराज्य दिलाने में भी असफल रहा, जबकि राष्ट्रीय कांग्रेस स्वयसेवकों की एक बडी सेना उसके लिए प्रयत्न करती रही तथा उस पर लगभग सवा करोड रुपया भी खर्च किया गया । हाल ही मे बारदोली सत्याग्रह मे इसकी असफलता सिद्ध हो चुकी है । इस अवसर पर सत्याग्रह के नेता गाँधी और पटेल ने बारदोली के किसानों को जो कम-से-कम अधिकार दिलाने का आश्वासन दिया था, उसे भी वे न दिला सके । इसके अतिरिक्त अन्य किसी देशव्यापी आन्दोलन की बात हमें मालूम नहीं । अब तक इस अहिंसा को एक ही आशीर्वाद मिला और वह था असफलता का । ऐसी स्थिति में यह आश्चर्य नहीं कि देश ने फिर उसके प्रयोग से इन्कार कर दिया । वास्तव में गाँधी जी जिस रूप में सत्याग्रह का प्रचार करते हैं, वह एक प्रकार का आन्दोलन है, एक विरोध है जिसका स्वाभाविक परिणाम समझौते में होता है, जैसाकि प्रत्यक्ष देखा गया है । इसलिए जितनी जल्दी हम समझ ले कि स्वतन्त्रता और गुलामी में कोई समझौता नहीं हो सकता, उतना ही अच्छा है ।

गाँधी जी सोचते हैं 'हम नये युग में प्रवेश कर रहे हैं ।' परन्तु कांग्रेस विधान में शब्दों

का हेर-फेर मात्र कर, अर्थात् स्वराज्य को पूर्ण स्वतन्त्रता कह देने से नया युग प्रारम्भ नहीं हो जाता। वह दिन वास्तव में एक महान दिवस होगा जब कांग्रेस देशव्यापी आन्दोलन प्रारम्भ करने का निर्णय करेगी, जिसका आधार सर्वमान्य क्रान्तिकारी सिद्धान्त होंगे। ऐसे समय तक स्वतन्त्रता का झण्डा फहराना हास्यास्पद होगा। इस विषय में हम सरलादेवी चौधरानी के उन विचारों से सहमत हैं जो उन्होंने एक पत्र-सम्वाददाता को भेंट में व्यक्त किये। उन्होंने कहा : '31 दिसम्बर, 1929 की अर्धरात्रि के ठीक एक मिनट बाद स्वतन्त्रता का झण्डा फहराना एक विचित्र घटना है। उस समय जी. ओ. सी., असिस्टेण्ट जी. ओ. सी. तथा अन्य लोग इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि स्वतन्त्रता का झण्डा फहराने का निर्णय आधी रात तक अधर में लटका है, क्योंकि यदि वाइसराय या सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का कांग्रेस को यह सन्देश आ जाता है कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया गया है, तो रात्रि को 11 बजकर 59 मिनट पर भी स्थिति में परिवर्तन हो सकता था। इससे स्पष्ट है कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति का ध्येय नेताओं की हार्दिक इच्छा नहीं थी, बल्कि एक बाल हठ के समान था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए उचित तो यही होता कि वह पहले स्वतन्त्रता प्राप्त कर फिर उसकी घोषणा करती।' यह सच है कि अब औपनिवेशिक स्वराज्य के बजाय कांग्रेस के वक्ता जनता के सामने पूर्ण स्वतन्त्रता का ढोल पीटेंगे। वे अब जनता से कहेंगे कि जनता को उस संघर्ष के लिए तैयार हो जाना चाहिए जिसमें एक पक्ष तो मुक्केबाजी करेगा और दूसरा उन्हें केवल सहता रहेगा, जब तक कि वह खूब पिटकर इतना हताश न हो जाये कि फिर न उठ सके। क्या उसे संघर्ष कहा जा सकता है और क्या इससे देश को स्वतन्त्रता मिल सकती है? किसी भी राष्ट्र के लिए सर्वोच्च लक्ष्य-प्राप्ति का ध्येय सामने रखना अच्छा है, परन्तु साथ में यह भी आवश्यक है इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उन साधनों का उपयोग किया जाये जो योग्य हों और जो पहले उपयोग में आ चुके हों, अन्यथा संसार के सम्मुख हमारे हास्यास्पद बनने का भय बना रहेगा।

गाँधी जी ने सभी विचारशील लोगों से कहा कि वे लोग क्रान्तिकारियों से सहयोग करना बन्द कर दें तथा उनके कार्यों की निन्दा करें, जिससे हमारे इस प्रकार उपेक्षित देशभक्तों की हिंसात्मक कार्यों से जो हानि हुई, उसे समझ सकें। लोगों को उपेक्षित तथा पुरानी दलीलो के समर्थक कह देना जितना आसान है, उसी प्रकार उनकी निन्दा कर जनता से उनसे सहयोग न करने को कहना, जिससे वे अलग-अलग हो अपना कार्यक्रम स्थगित करने के लिए बाध्य हो जायें, यह सब करना विशेष रूप से उस व्यक्ति के लिए आसान होगा जो कि जनता के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों का विश्वासपात्र हो। गाँधी जी ने जीवन-भर जन-जीवन का अनुभव किया है, पर यह बडे दुख की बात है कि वे भी क्रान्तिकारियों का मनोविज्ञान न तो समझते हैं और न समझना ही चाहते हैं। वह सिद्धान्त अमूल्य है, जो प्रत्येक क्रान्तिकारी को प्रिय है। जो व्यक्ति क्रान्तिकारी बनता है, जब वह अपना सिर हथेली पर रखकर किसी क्षण भी आत्मबलिदान के लिए तैयार रहता

है तो वह केवल खेल के लिए नहीं । वह यह त्याग और बलिदान इसलिए भी नहीं करता कि जब जनता उसके साथ सहानुभूति दिखाने की स्थिति में हो तो उसकी जय-जयकार करे । वह इस मार्ग का इसलिए अवलम्बन करता है कि उसका सद्विवेक उसे इसकी प्रेरणा देता है, उसकी आत्मा उसे इसके लिए प्रेरित करती है ।

एक क्रान्तिकारी सबसे अधिक तर्क में विश्वास करता है । वह केवल तर्क और तर्क में ही विश्वास करता है । किसी प्रकार का गाली-गलौच या निन्दा, चाहे फिर वह ऊँचे-से-ऊँचे स्तर से की गयी हो, उसे अपने निश्चित उद्देश्य-प्राप्ति से वंचित नहीं कर सकती । यह सोचना कि यदि जनता का सहयोग न मिला या उसके कार्य की प्रशंसा न की गयी तो वह अपने उद्देश्य को छोड़ देगा, निरी मूर्खता है । अनेक क्रान्तिकारी, जिनके कार्यों की वैधानिक आन्दोलनकारियों ने घोर निन्दा की, फिर भी वे उसकी परवाह न कर फाँसी के तख्ते पर झूल गये । यदि तुम चाहते हो कि क्रान्तिकारी अपनी गतिविधियों को स्थगित कर दें तो उसके लिए होना तो यह चाहिए कि उनके साथ तर्क द्वारा अपना मत प्रमाणित किया जाये । यह एक, और केवल यही एक रास्ता है, और बाकी बातों के विषय में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए । क्रान्तिकारी इस प्रकार के डराने-धमकाने से कदापि हार माननेवाला नहीं ।

हम प्रत्येक देशभक्त से निवेदन करते हैं कि वे हमारे साथ गम्भीरतापूर्वक इस युद्ध में शामिल हों। कोई भी व्यक्ति अहिंसा और ऐसे ही अजीबो-गरीब तरीकों से मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर राष्ट्र की स्वतन्त्रता के साथ खिलवाड न करे । स्वतन्त्रता राष्ट्र का प्राण है । हमारी गुलामी हमारे लिए लज्जास्पद है, न जाने कब हममें यह बुद्धि और साहस होगा कि हम उससे मुक्ति प्राप्त कर स्वतन्त्र हो सकें ? हमारी प्राचीन सभ्यता और गौरव की विरासत का क्या लाभ, यदि हममें यह स्वाभिमान न रहे कि हम विदेशी गुलामी, विदेशी झण्डे और बादशाह के सामने सिर झुकाने से अपने आपको न रोक सकें !

क्या यह अपराध नहीं है कि ब्रिटेन ने भारत में अनैतिक शासन किया ? हमें भिखारी बनाया; तथा हमारा समस्त खून चूस लिया ? एक जाति और मानवता के नाते हमारा घोर अपमान तथा शोषण किया गया है । क्या जनता अब भी चाहती है कि इस अपमान को भुलाकर हम ब्रिटिश शासकों को क्षमा कर दें ! हम बदला लेंगे, जो जनता द्वारा शासकों से लिया गया न्यायोचित बदला होगा । कायरों को पीठ दिखाकर समझौता और शान्ति की आशा से चिपके रहने दीजिए । हम किसी से भी दया की भिक्षा नहीं माँगते हैं और हम भी किसी को क्षमा नहीं करेंगे । हमारा युद्ध विजय या मृत्यु के निर्णय तक चलता ही रहेगा । क्रान्ति चिरंजीवी हो !

करतारसिंह
प्रेज़ीडेण्ट

भारतीय क्रान्ति का आदर्श

[अध्ययन के क्षणों में भगतसिंह भारतीय क्रान्ति के मसले पर बड़ी गहराई और सिलसिले से सोचते थे। इसमें उनका वैज्ञानिक चिन्तन और ऐतिहासिक नजरिया बराबर बना रहता था। नीचे दिया गया दस्तावेज इसी बात का ठोस प्रमाण है। यह एक टिप्पणी की शक्ल में है, जिसे अदालत में पेश किया गया था। सम्भवतः इसे एक पुस्तक की रूपरेखा के रूप में भी देखा जा सकता है।—सं.]

1. भारतीय क्रान्ति का आदर्श
   (क) अंग्रेजी भारत में प्रकट और गुप्त क्रान्तियों का इतिहास
   (ख) रिपब्लिक का आदर्श
   (ग) 1914-15 का विद्रोह, स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व का आदर्श
   (घ) भारतीय राजकुमार और क्रान्तिकारी 'सरकार का पर्चा'।
   ['सरकार' एक बंगाली लेखक थे।—सं.]
   (ङ) भारतीय मुसलमान राजाओं को तुर्की का संदेश
   (च) बर्लिन कमेटी और जर्मन प्लाट
   (छ) 1919 का विद्रोह और दंगे
   (ज) असहयोग
   स्वराज्य बिना किसी स्पष्ट परिभाषा के
   (झ) असहयोग आन्दोलन की असफलता और क्रान्तिकारी दल
   (ञ) 1925 का घोषणापत्र
   (त) विचारधाराओं के अब के स्कूल—
      1. सरकार के स्कूल की विचारधारा (साम्प्रदायिक)
      2. बंगाल स्कूल की विचारधारा (राष्ट्रवादी)
      3. चन्द्रनगर आम विचारधारा का स्कूल—मोतीलाल (अध्यात्मवादी)
      4. उच्च विचार (समाजवादी) डॉ. भूपेन्द्रनाथ दत्त
      5. कम्युनिस्ट विचारधारा का स्कूल
      6. बूर्ज्वाजी

      नेहरू रिपोर्ट *[मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट, जिसमें डोमिनियन स्टेट्स की माँग की गयी थी।—सं.]*
      7. पी. बी. *[शायद प्रोविंशियल बोर्ड की ओर संकेत है, जो क्रान्तिकारी दल की स्थापना में एक और जगह कहा गया है।—सं.]*

8. ढंग

1. आतंकवादी
2. जनक्रान्तिकारी
3. अहिंसक सिविल नाफरमानी
   अराजकतावाद
   समाजवाद
   साम्यवाद
   सिडनीकेनिज़्म
   कुल्किटीविज़्म

1. भारतीय क्रान्ति का आदर्श
2. क्रान्ति या दुनिया की क्रान्ति का आदर्श
3. विवाह ।

युद्ध अभी जारी है…

[फाँसी पर लटकाये जाने से 3 दिन पूर्व–20 मार्च, 1931 को–सरदार भगतसिंह तथा उनके सहयोगियों श्री राजगुरु एवं श्री सुखदेव ने निम्नांकित पत्र के द्वारा सम्मिलित रूप से पंजाब के गवर्नर से माँग की थी कि उन्हें युद्धबन्दी माना जाये तथा फाँसी पर लटकाये जाने के बजाय गोली से उडा दिया जाये । यह पत्र इन राष्ट्रवीरो की प्रतिभा, राजनीतिक मेधा, साहस एवं शौर्य की अमरगाथा का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है ।–सं.]

हमें फाँसी देने के बजाय गोली से उड़ा दिया जाये

20 मार्च, 1931
प्रति, गवर्नर पंजाब, शिमला

महोदय,

उचित सम्मान के साथ हम नीचे लिखी बातें आपकी सेवा में रख रहे हैं–

भारत की ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च अधिकारी वाइसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी करके लाहौर षड्यन्त्र अभियोग की सुनवायी के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) स्थापित किया था, जिसने 7 अक्तूबर, 1930 को हमें फाँसी का दण्ड सुनाया । हमारे विरुद्ध सबसे बड़ा आरोप यह लगाया गया है कि हमने सम्राट जार्ज पंचम के विरुद्ध युद्ध किया है ।

न्यायालय के इस निर्णय से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं–

पहली यह कि अंग्रेज जाति और भारतीय जनता के मध्य एक युद्ध चल रहा है। दूसरे यह कि हमने निश्चित रूप में इस युद्ध में भाग लिया है, अतः हम युद्धबन्दी हैं।

यद्यपि इनकी व्याख्या में बहुत सीमा तक अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, तथापि हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि ऐसा करके हमें सम्मानित किया गया है। पहली बात के सम्बन्ध में हम तनिक विस्तार से प्रकाश डालना चाहते हैं। हम नहीं समझते कि प्रत्यक्ष रूप में ऐसी कोई लडाई छिड़ी हुई है। हम नहीं जानते कि युद्ध छिड़ने से न्यायालय का आशय क्या है? परन्तु हम इस व्याख्या को स्वीकार करते हैं और साथ ही इसे इसके ठीक सन्दर्भ में समझाना चाहते हैं।

युद्ध की स्थिति

हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है–चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूँजीपति और अंग्रेज या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। चाहे शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तो भी इस स्थिति में कोई अन्तर नही पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के मुखियों पर प्रभाव जमाने मे सफल हो जाये, कुछ सुविधाएँ मिल जायें, अथवा समझौते हो जायें, इससे भी स्थिति नहीं बदल सकती, तथा जनता पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ता है। हमें इस बात की भी चिन्ता नहीं कि युवकों को एक बार फिर धोखा दिया गया है और इस बात का भी भय नही है कि हमारे राजनीतिक नेता पथ-भ्रष्ट हो गये हैं और वे समझौते की बातचीत मे इन निरपराध, बेघर और निराश्रित बलिदानियों को भूल गये हैं, जिन्हें दुर्भाग्य से क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य समझा जाता है। हमारे राजनीतिक नेता उन्हें अपना शत्रु समझते हैं, क्योंकि उनके विचार में वे हिंसा में विश्वास रखते हैं। हमारी वीरांगनाओं ने अपना सबकुछ बलिदान कर दिया है। उन्होंने अपने पतियों को बलिवेदी पर भेंट किया, भाई भेंट किये, और जो कुछ भी उनके पास था–सब न्यौछावर कर दिया। उन्होने अपने आपको भी न्यौछावर कर दिया। परन्तु आपकी सरकार उन्हें विद्रोही समझती है। आपके एजेण्ट भले ही झूठी कहानियाँ बनाकर उन्हें बदनाम कर दें और पार्टी की प्रसिद्धि को हानि पहुँचाने का प्रयास करें, परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा।

युद्ध के विभिन्न स्वरूप

हो सकता है कि यह लड़ाई भिन्न-भिन्न दशाओं मे भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। किसी समय यह लडाई प्रकट रूप ले ले, कभी गुप्त दशा में चलती रहे, कभी भयानक

रूप धारण कर ले, कभी किसान के स्तर पर युद्ध जारी रहे और कभी यह घटना इतनी भयानक हो जाये कि जीवन और मृत्यु की बाजी लग जाये। चाहे कोई भी परिस्थिति हो, इसका प्रभाव आप पर पड़ेगा। यह आपकी इच्छा है कि आप जिस परिस्थिति को चाहें चुन ले, परन्तु यह लड़ाई जारी रहेगी। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जायेगा। बहुत सम्भव है कि यह युद्ध भयंकर स्वरूप ग्रहण कर ले। पर निश्चय ही यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा जब तक कि समाज का वर्तमान ढाँचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन या क्रान्ति समाप्त नहीं हो जाती और मानवी सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता।

अन्तिम युद्ध

निकट भविष्य में अन्तिम युद्ध लड़ा जायेगा और यह युद्ध निर्णायक होगा। साम्राज्यवाद व पूँजीवाद कुछ दिनों के मेहमान हैं। यही वह लड़ाई है जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप में भाग लिया है और हम अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ ही किया है और न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त ही होगा। हमारी सेवाएँ इतिहास के उस अध्याय में लिखी जायेंगी जिसको यतीन्द्रनाथ दास और भगवतीचरण के बलिदानों ने विशेष रूप में प्रकाशमान कर दिया है। इनके बलिदान महान हैं। जहाँ तक हमारे भाग्य का सम्बन्ध है, हम जोरदार शब्दों में आपसे यह कहना चाहते हैं कि आपने हमें फाँसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है। आप ऐसा करेंगे ही, आपके हाथों में शक्ति है और आपको अधिकार भी प्राप्त है। परन्तु इस प्रकार आप जिसकी लाठी उसकी भैंसवाला सिद्धान्त ही अपना रहे हैं—और आप उस पर कटिबद्ध हैं। हमारे अभियोग की सुनवाई इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हमने कभी कोई प्रार्थना नहीं की और अब भी हम आपसे किसी प्रकार की दया की प्रार्थना नहीं करते। हम आपसे केवल यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि आपकी सरकार के ही एक न्यायालय के निर्णय के अनुसार हमारे विरुद्ध युद्ध जारी रखने का अभियोग है। इस स्थिति में हम युद्धबन्दी हैं, अतः इस आधार पर हम आपसे माँग करते हैं कि हमारे प्रति युद्धबन्दियों-जैसा ही व्यवहार किया जाये और हमें फाँसी देने के बदले गोली से उड़ा दिया जाये।

अब यह सिद्ध करना आपका काम है कि आपको उस निर्णय में विश्वास है जो आपकी सरकार के एक न्यायालय ने किया है। आप अपने कार्य द्वारा इस बात का प्रमाण दीजिए। हम विनयपूर्वक आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप अपने सेना-विभाग को आदेश दे दें कि हमें गोली से उड़ाने के लिए एक सैनिक टोली भेज दी जाये।

भवदीय,
भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव

'ड्रीमलैण्ड' (स्वप्न-लोक) की भूमिका

[लाला रामसरन दास आजादी की लड़ाई के उन कतिपय जाने-माने योद्धाओं में हैं, चलने के बाद जिन्होंने कभी रुकने का नाम नहीं लिया। 1907 में शहीद भगतसिंह के चाचा स. अजीतसिंह के साथ उन्होंने जंगे-आज़ादी में कदम रखा। उम्र कैद काटकर जेल से आये तो क्रान्तिकारियों की मदद करने लगे। लाहौर षड्यन्त्र केस में उन्हें फँसाया गया और फिर पाँच साल की कैद हुई। जेल में ही वे अंग्रेजी में कविता लिखते रहते थे। उनकी काव्य पुस्तक 'ड्रीमलैण्ड' जब तैयार हुई तो भगतसिंह से उन्होंने उसकी भूमिका लिखने का अनुरोध किया। भगतसिंह ने इसे बड़े संकोच से स्वीकारा और लाहौर सेण्ट्रल जेल में ही 15 जनवरी, 1931 को भूमिका-स्वरूप इस आलोचनात्मक आलेख की रचना की। मूल रूप में यह अंग्रेजी में लिखी गयी थी। 'ड्रीमलैण्ड की भूमिका' से भगतसिंह की साहित्यिक समझ और संवेदना का भी पता चलता है और विचारधारात्मक पक्ष के सन्दर्भ में भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लाला रामसरन दास के हम ऋणी हैं, जिनसे यह रचना हमें मिली। —सं.]

मेरे लायक दोस्त लाला रामसरन दास ने मुझसे अपनी पुस्तक 'ड्रीमलैण्ड' (स्वप्नलोक)की भूमिका लिखने के लिए कहा है। मैं न तो कवि हूँ, न साहित्यकार, न मैं पत्रकार हूँ और न ही आलोचक। इसलिए मैं उनकी इस माँग का कोई औचित्य नहीं खोज पा रहा हूँ। लेकिन मैं जिन परिस्थितियों में हूँ, वे मुझे लेखक से इस मामले पर बहस अथवा तर्क-वितर्क करने की सुविधा प्रदान नहीं करतीं और इस प्रकार मेरे सामने इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं छोड़तीं कि मैं अपने मित्र की इच्छा पूरी करूँ।

चूँकि मैं कवि नहीं हूँ इसलिए मैं इस पर उस दृष्टिकोण से बहस करने नहीं जा रहा हूँ। मुझे छन्द और तुक का बिल्कुल ज्ञान नहीं है और मैं यह भी नहीं जानता कि तुक के मानदण्डों से परखने पर यह सही साबित होगी या नहीं। साहित्यकार न होने के नाते राष्ट्र के साहित्य में उसे उचित स्थान दिलाने के दृष्टिकोण से भी मैं उस पर बहस करने नहीं जा रहा हूँ।

एक राजनैतिक कार्यकर्ता होने के नाते मैं अधिक-से-अधिक इस पर उसी दृष्टिकोण से बात कर सकता हूँ। लेकिन यहाँ भी एक बात मेरे काम को करीब-करीब असम्भव बना देती है क्योंकि मैं पुस्तक के विषय के बारे में लेखक से सहमत नही हूँ। मैं अपने मित्र से सभी मामलों पर एकमत नहीं हूँ। वे इस बात को जानते थे कि मैं बहुत-से बुनियादी प्रश्नों पर उनसे मतभेद रखता हूँ। इसलिए मैं जो लिखने जा रहा हूँ वह किसी भी हालत में पुस्तक की भूमिका नहीं होगी। वह बहुत कुछ उसकी आलोचना हो सकती है और इसलिए उसका स्थान पुस्तक के अन्त में होगा, आरम्भ में नहीं।

राजनैतिक क्षेत्र मे 'ड्रीमलैण्ड' का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। मौजूदा स्थिति में वह आन्दोलन की एक महत्त्वपूर्ण कमी को पूरा कर रही है। दरअसल आधुनिक इतिहास में किसी प्रकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रखनेवाला हर राजनैतिक आन्दोलन आदर्शहीन रहा है। क्रान्तिकारी आन्दोलन भी इसका अपवाद नहीं है। एक गदर पार्टी को छोड़कर, जिसने अमरीकी ढंग की सरकार से प्रेरित होकर स्पष्ट कहा था कि वह भारत की मौजूदा सरकार को हटाकर उसके स्थान पर प्रजातान्त्रिक प्रकार की सरकार स्थापित करना चाहती है, अपनी पूरी कोशिशों के बावजूद मुझे ऐसी एक भी क्रान्तिकारी पार्टी नहीं मिली जिसे इस बात का स्पष्ट ज्ञान हो कि वह किस बात के लिए लड़ रही है। अन्य सभी पार्टियों में जो लोग थे वे मात्र इतना जानते थे कि उन्हें विदेशी शासकों से लड़ना है। वह विचार अपने मे बहुत सराहनीय है लेकिन उसे क्रान्तिकारी विचार नहीं कहा जा सकता। हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि क्रान्ति का मतलब मात्र उथल-पुथल या एक खूनी संघर्ष नहीं है। जब हम क्रान्ति की बात करते हैं तो उसमें मौजूदा हालात (अर्थात् सरकार) को पूरी तरह ध्वंस करने के बाद समाज के व्यवस्थित पुनर्गठन के कार्यक्रम की बात निहित है।

राजनैतिक क्षेत्र में उदारतावादी लोग (लिबरल्स) मौजूदा सरकार के नीचे रहकर ही कुछ सुधार चाहते थे, जबकि उग्रवादी लोगो की माँगे कुछ अधिक थी और वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उग्र उपायों से काम लेने के लिए तैयार थे। क्रान्तिकारी हमेशा उग्र उपायो के हक मे रहे हैं और उनका विचार रहा है—विदेशी आधिपत्य को उखाड फेकना। निस्सन्देह इनमें कुछ ऐसे लोग भी थे जो इन उग्र उपायो से कुछ और सुधार प्राप्त करना चाहते थे। इन सभी आन्दोलनो को सही अर्थों में क्रान्तिकारी नहीं कहा जा सकता। लेकिन लाला रामसरन दास पहले क्रान्तिकारी हैं जिन्हें पजाब में एक बगाली फरार ने 1908 में औपचारिक तौर पर (क्रान्तिकारी पार्टी में) भर्ती किया था। तब से वे लगातार क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्पर्क में रहे और अन्त में वे गदर पार्टी मे भर्ती हो गये। लेकिन आन्दोलन के आदर्श के बारे में उन लोगों के (1908 के क्रान्तिकारियों के) जो पुराने विचार थे उनका उन्होंने परित्याग नहीं किया। पुस्तक की खूबसूरती और उसके मूल्य को बढानेवाली एक और भी दिलचस्प बात है। लाला रामसरन दास को 1915 में मृत्यु-दण्ड मिला था। बाद मे वह सजा घटाकर आजीवन कारावास कर दी गयी थी। आज स्वयं फाँसी की कोठरी में बैठकर अपने पाठकों से साधिकार कह सकता हूँ कि आजीवन कारावास मौत की बनिस्बत अपेक्षाकृत कहीं अधिक कठोर दण्ड है। लाला रामसरन दास को पूरे चौदह साल जेल में बिताने पड़े थे और उन्होने यह काव्य दक्षिण की किसी जेल में लिखा था। लेखक की उस समय की मनोदशा और मानसिक संघर्ष की काव्य पर स्पष्ट छाप है और वह इसे और भी सुन्दर तथा दिलचस्प बना देती है। इस काव्य को लिखने का निश्चय करने से पहले वह (लेखक) किन्हीं अवसादपूर्ण मनोभावों के विरुद्ध कठिन सघर्ष करता रहा है। ऐसे समय पर जब बहुत-से साथी आश्वासन (अण्डरटेकिंग) देकर छूट गये थे और सबके सामने—उसके सामने भी—बड़े-बड़े प्रलोभन थे, और जब पत्नी तथा बच्चों की मधुर एवं दुखद स्मृतियाँ

मुक्ति-लाभ की प्रबल आकांक्षा को और अधिक बल दे रही थीं, तब उसे इन सब बातों के पस्त करनेवाले प्रभाव के खिलाफ कठिन संघर्ष करना पड़ा था और उसने अपना ध्यान इस (काव्य-रचना) की ओर मोड़ दिया था। यही कारण है कि काव्य के प्रारम्भिक पदों में हमें इस प्रकार का आकस्मिक भावोद्वेग मिलता है—

"Wife, Children, Friends that me surround
Were poisionous snakes all around."

"पत्नी, पुत्र मित्रगण मेरे
जो मुझको रहते हैं घेरे
विषधर नाग सदृश थे ये सब
देते रहते चहुँदिशि फेरे।"

वह आरम्भ में दर्शन की बात करता है। यह दर्शन बंगाल तथा पंजाब के सभी क्रान्तिकारी आन्दोलनों की रीढ़ है। मेरा लेखक से इस प्वाइण्ट पर बहुत बड़ा मतभेद है। उसकी विश्व की व्याख्या हेतुवादी एव पारलौकिक (मेटाफिज़िकल) है; जबकि मैं एक भौतिकवादी हूँ और गोचर जगत की मेरी व्याख्या कारण सम्बद्ध होगी। फिर भी यह रचना किसी हालत में असामयिक नहीं है। हमारे देश में जो साधारण विचार प्रचलित हैं वे लेखक द्वारा व्यक्त किये गये विचारो से अधिक मेल खाते हैं। उस समय की अपनी उदासी की मनोदशा से लड़ने के उद्देश्य से उसने प्रार्थना का मार्ग अपनाया है। यह इस बात से स्पष्ट है कि पुस्तक का सारा-का-सारा प्रारम्भिक भाग ईश्वर, उसकी स्तुति और उसकी परिभाषा आदि को अर्पित है। ईश्वर पर विश्वास रहस्यवाद का परिणाम है और रहस्यवाद मानसिक अवसाद की स्वाभाविक उपज है। यह जगत 'माया' है या 'मिथ्या' है, एक स्वप्न या कल्पना है—ऐसे विचारो को रहस्यवाद कहते हैं। इन विचारों को पुराने जमाने के शंकराचार्य तथा उन-जैसे अन्य दार्शनिकों ने जन्म दिया और विकसित किया था। लेकिन भौतिकवादी दर्शन के अन्तर्गत इस प्रकार की विचारधारा के लिए कोई स्थान नहीं है। फिर भी लेखक का यह रहस्यवाद किसी भी रूप में हीन, ओछा या खेदोत्पादक नहीं है। उसका अपना सौन्दर्य एवं आकर्षण है। उसके विचार उत्साहवर्धक हैं। देखिए—

"Be a foundation stone obscure,
And on thy breast Cheerfully bear
The architecture vast and huge,
In suffering find true refuge
Envy not the plastered top-stone
On which all worldly praise is thrown"
etc. etc.

अर्थात् :

निगाह से ओझल छिपे हुए बुनियाद के पत्थर बनो,
और अपने सीने पर सहर्ष बर्दाश्त करो
विशाल और भारी इमारत का बोझ
कष्ट सहन में अनुभव करो सच्ची शरण (सन्तोष)
करो न ईर्षा द्वार पर जड़े पत्थर से
जिस पर उँड़ेलता है जग सारी प्रशंसा।

अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं साधिकार कह सकता हूँ कि गुप्त कार्यों में, जब मनुष्य को लगातार खतरे का जीवन बिताना पड़ता है–'आशा रहित और निर्भय', हमेशा 'अजानी, सम्मान रहित, संगीतहीन' मृत्यु के लिए तत्पर–तब ऐसे अवसरों पर व्यक्तिगत प्रलोभनों और इच्छाओं से वह इस प्रकार के रहस्यवाद के सहारे लड़ सकता है। और ऐसा रहस्यवाद किसी प्रकार से भी पस्ती या शिथिलता उत्पन्न करनेवाला नहीं होता।

लेखक ने एक क्रान्तिकारी की मनोवृत्ति का वर्णन किया है। लाला रामसरन दास एक ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी के सदस्य थे जिसे बहुत-से हिंसक कामों के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था। लेकिन इससे यह साबित नहीं होता कि क्रान्तिकारी लोग बरबादी और तबाही में सुख अनुभव करनेवाले खून के प्यासे दानव होते हैं। देखिए–

"यदि आवश्यकता हो तो ऊपर से उग्र एवं भयानक बनो,
लेकिन अपने दिल में हमेशा नम्र रहो
फुफकारो यदि आवश्यकता हो, किन्तु काटो मत,
दिल से प्यार करो और ऊपर से लड़ो।"

निर्माण के लिए ध्वंस आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। क्रान्तिकारियों को उसे अपने कार्यक्रम के आवश्यक अंग के रूप में अपनाना पड़ता है। और हिंसा तथा अहिंसा के दर्शन का उपरोक्त पंक्तियों में बहुत खूबसूरती के साथ वर्णन किया गया है। लेनिन ने एक बार गोर्की से कहा था कि ऐसा संगीत सुनने को नहीं मिला जो शरीर के तन्तुओं में प्राण फूँक दे और यह कि ऐसा संगीत सुनकर उनकी इच्छा कलाकारों के सिर थपथपाने की होती है। उन्होंने आगे कहा, "लेकिन यह समय सिर थपथपाने का नहीं है। इस समय तो हाथों का काम सरों को तोड़ने का है, यद्यपि हमारा अन्तिम उद्देश्य हर प्रकार की हिंसा को समाप्त करना है।" जब क्रान्तिकारियों को एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में हिंसात्मक उपायों से काम लेना पड़ता है तो वे भी ठीक ऐसा ही अनुभव करते हैं।

इसके बाद लेखक ने आपस में टकरानेवाले विभिन्न धर्मों की समस्या को लिया है। वह सभी धर्मों में तालमेल बिठलाने की कोशिश करता है, जैसा कि प्रायः सभी राष्ट्रवादी

करते हैं। प्रश्न को सुलझाने का यह तरीका लम्बा और गोलमोल है और जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं इसे कार्ल मार्क्स के एक वाक्य में यह कहकर रद्द कर दूँगा कि "धर्म जनता के लिए अफ़ीम है।"

अन्त में उसकी कविता का सबसे महत्त्वपूर्ण वह हिस्सा आता है जहाँ उसने भावी समाज के बारे में लिखा है, जिस समाज की स्थापना के लिए हम सब लालायित हैं। लेकिन मैं आरम्भ में ही एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। 'ड्रीम लैण्ड' सचमुच का एक स्वप्न-लोक है। लेखक ने बड़े ही निष्कपट भाव से पुस्तक के शीर्षक द्वारा इसे स्वीकार कर लिया है। वह इस विषय पर कोई वैज्ञानिक थीसिस लिखने का दावा नहीं करता। 'ड्रीमलैण्ड' (स्वप्न-लोक) शीर्षक इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर देता है। लेकिन स्वप्न-लोकों की निश्चित रूप से सामाजिक प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सेन्ट साइमन, फूरिये और राबर्ट ओवेन और उनके सिद्धान्तों के अभाव में मार्क्सवादी वैज्ञानिक समाजवाद भी न होता। जब हमारे कार्यकर्ता अपने आन्दोलन के दर्शन को व्यवस्थित रूप देने और आन्दोलन के बारे में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण गढ़ने के महत्त्व को समझेंगे, उस समय यह पुस्तक उनके लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

मैंने यह बात मार्क की है कि लेखक की अभिव्यक्ति-शैली परिमार्जित नहीं है। अपने स्वप्नलोक का वर्णन करते समय लेखक मौजूदा समाज के विचारों से अछूता नहीं रह पाया है।

जरूरतमंदों को दान देना

भविष्य के समाज में अर्थात् कम्युनिस्ट समाज में जिसका हम निर्माण करना चाहते हैं, हम धर्मार्थ संस्थाएँ स्थापित करने नहीं जा रहे हैं, बल्कि उस समाज में न गरीब होंगे न जरूरतमन्द, न दान देनेवाले, न दान लेनेवाले। इस असंगति के बावजूद लेखक ने प्रश्न को बड़ी खूबसूरती के साथ पेश किया है।

पुस्तक में लेखक ने समाज की जिस साधारण रूप-रेखा पर बहस की है वह बहुत कुछ वैसी ही है जैसी वैज्ञानिक समाजवाद की। लेकिन उसमें ऐसी बातें भी हैं जिनका विरोध या प्रतिवाद आवश्यक है, या यूँ कहा जाये कि उनमें सुधार आवश्यक है। मिसाल के तौर पर 427वें पद के नीचे दी हुई टिप्पणी में वह लिखता है कि राजकर्मचारियों को अपनी रोजी कमाने के लिए प्रतिदिन चार घण्टे खेतों पर या कारखानों में काम करना चाहिए। लेकिन यह अव्यावहारिक तथा हवाई बात है। यह बात शायद आज की व्यवस्था में राजकर्मचारियों को जो ऊँचा वेतन दिया जाता है, उसके खिलाफ प्रतिक्रिया की ही उपज है। दरअसल बोल्शेविकों को भी यह स्वीकार करना पड़ा था कि दिमागी काम उतना ही उत्पादक श्रम है, जितना कि शारीरिक श्रम, और आनेवाले समाज में जब विभिन्न तत्वों के आपसी सम्बन्धों का समायोजन समानता के आधार पर होगा तो उत्पादक और वितरक दोनों समान रूप से महत्त्वपूर्ण माने जायेंगे। आप एक नाविक से

यह उम्मीद नही कर सकते कि वह हर चौबीस घण्टे बाद अपना जहाज रोककर रोजी कमाने के लिए चार घण्टे काम करने चला जायेगा, या एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला और अपना प्रयोग (काम) छोडकर खेत पर अपने काम का कोटा पूरा करने चला जायेगा। यह दोनो ही बहुत उत्पादक काम कर रहे हैं। समाजवादी समाज मे इतने ही अन्तर की आशा की जाती है कि दिमागी काम करनेवाला शारीरिक काम करनेवाले से ऊँचा नही माना जायेगा।

नि शुल्क शिक्षा के बारे मे लाला रामसरन दास का विचार सचमुच ध्यान देने योग्य है और रूस में वहाँ की समाजवादी सरकार ने बहुत कुछ उसी प्रकार की पद्धति अपनायी है।

अपराध के बारे मे उनकी बहस सचमुच बहुत आगे बढी हुई विचारधारा है। अपराध (जुर्म) एक बहुत गम्भीर सामाजिक समस्या है जो बहुत सतर्क इलाज चाहती है। लेखक ने अपने जीवन का अच्छा भाग जेल मे बिताया है। उसे अमली तजुर्बा है। एक स्थान पर उसने ठेठ जेल की शब्दावली का प्रयोग किया है जैसे हल्की मशक्कत, दरमियानी मशक्कत और सख्त मशक्कत, आदि। सभी अन्य समाजवादियो की भाँति उसका सुझाव है दण्ड का आधार प्रतिशोध के बजाय सुधार का सिद्धान्त होना चाहिए। न्याय-विधान को परिचालित करनेवाला सिद्धान्त दण्ड देना न होकर सुपथ पर लाना होना चाहिए और जेलो का रूप वास्तविक नर्क होने के बजाय सुधारालयों का हो। इस सम्बन्ध मे पाठकों को चाहिए कि रूसी कारागार-व्यवस्था का अध्ययन करें।

सेनाओ पर बात करते समय उसने युद्धों के बारे मे भी अपने विचार व्यक्त किये है। मेरा मत है कि उस समय (भविष्य में—अनु) के विश्वकोष मे युद्ध के बारे मे बहुत कम सफे रहेंगे और युद्ध-सामग्री अजायबघरों की शोभा बढ़ायेगी, क्योंकि उस समाज मे युद्धो को जन्म देनेवाले परस्पर विरोधी हित नही रह जायेंगे।

अधिक-से-अधिक हम यह कह सकते है कि युद्ध संक्रमण काल तक रहेंगे। यानी हम रूस का उदाहरण लें तो इस बात को अच्छी तरह समझ सकेंगे। वहाँ इस समय सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतन्त्र है। वे लोग समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं। तब तक के लिए पूँजीवादी समाज से अपनी रक्षा करने के लिए उन्हें एक सेना रखनी पड रही है। लेकिन उसके युद्ध-उद्देश्य भिन्न होंगे। क्रान्तिकारी सेनाएँ दूसरे देशों मे जायेगी—वहाँ की जनता पर शासन करने या उसे लूटने के लिए नही बल्कि शोषक शासको को उनके सिंहासनों से नीचे गिराने के लिए, उनके खून चूसनेवाले शोषण का अन्त करने के लिए और वहाँ की मेहनतकश जनता को मुक्ति दिलाने के लिए। लेकिन वहाँ हमारे जवानों को लड़ने के लिए उकसाने हेतु पुरानी राष्ट्रीय या जातीय घृणा नहीं होगी।

आज के सभी मुक्त विचारको का सबसे अधिक जनप्रिय और फौरी उद्देश्य है विश्व संघ; और लेखक ने उस विषय पर अच्छा लिखा है और तथाकथित 'लीग ऑफ नेशन्स'

की आलोचना बड़ी सुन्दर है।

571वें (572) पद के नीचे दिये एक फुटनोट में लेखक ने सक्षेप में उपायों के प्रश्न को लिया है। वह कहता है, "इस प्रकार के राज्य शारीरिक हिंसात्मक क्रान्तियों द्वारा नही स्थापित किये जा सकते। वह समाज पर बाहर से थोपा नहीं जा सकता। उसे तो अन्दर से ही विकसित होना पडेगा । इसकी प्राप्ति धीरे-धीरे क्रमविकास की प्रक्रिया द्वारा और जनता को ऊपर बतलाई लाइन पर प्रशिक्षिन करके हो सकती है," आदि। इस बयान में अपने में कोई असंगति नहीं है। यह बिल्कुल सही है। लेकिन पूरी तरह से उसकी व्याख्या न की जाने के कारण वह कुछ गलतफहमियाँ या उलझन पैदा कर सकता है। क्या इसका यह मतलब है कि लाला रामसरन दास को बल-प्रयोग की निरर्थकता का ज्ञान हो गया है? क्या वे अहिंसा के कट्टर समर्थक हो गये हैं? नहीं, इसका यह मतलब नहीं निकलता।

उपरोक्त बयान का क्या मतलब है, आइए, उस पर थोड़ी रोशनी डालते चलें। अन्य किसी व्यक्ति की अपेक्षा क्रान्तिकारी इस बात को ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं कि समाजवादी समाज की स्थापना हिंसात्मक उपायों से नहीं हो सकती बल्कि उसे अन्दर से ही प्रस्फुटित और विकसित होना चाहिए। लेखक का सुझाव है कि उपाय के रूप में केवल प्रशिक्षण से ही काम लेना चाहिए। लेकिन हर व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह समझ सकता है कि यहाँ की मौजूदा सरकार, दरअसल सभी पूँजीवादी सरकारें इस प्रकार के प्रयासों की न सिर्फ सहायता नही करेंगी बल्कि इसके विपरीत निर्दयतापूर्वक उसका दमन करेंगी। तब उसके क्रमविकास से क्या हाथ लगेगा? हम क्रान्तिकारी लोग सत्ता हथियाने और एक क्रान्तिकारी सरकार सगठित करने का प्रयास कर रहे हैं। उस सरकार को जनता को प्रशिक्षित करने के लिए अपने सभी साधनो को काम मे लाना होगा, जैसा कि इस समय रूस में हो रहा है। पूँजीपतियों के हाथों से सत्ता छीनने के बाद रचनात्मक कार्य के लिए शान्तिपूर्ण उपाय काम में लाये जायेंगे और बाधाओ को कुचलने मे शक्ति का प्रयोग किया जायेगा। यदि लेखक का यही अभिप्राय है तो हम उसके साथ हैं। और मुझे विश्वास है कि उसका यही मतलब है।

पुस्तक पर मैंने काफी विस्तार से लिखा है। दरअसल मैंने उसकी आलोचना लिख डाली है। लेकिन मैं पुस्तक मे किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए कहने नहीं जा रहा हूँ, क्योंकि उसका एक ऐतिहासिक मूल्य है। 1914-15 के क्रान्तिकारियों के यही विचार थे।

मै अपने नौजवानों के लिए खासतौर पर इस पुस्तक की सिफारिश करता हूँ, लेकिन एक चेतावनी के साथ। कृपया आँख मूँदकर इस पर अमल करने के लिए या इसमे जो कुछ लिखा है उसे वैसा ही मान लेने के लिए इसे न पढ़े। इसे पढ़ें, इसकी आलोचना करें, इस पर सोचें और इसकी सहायता से स्वय अपनी समझदारी बनाये।

भगतसिह

15-1-31

अनुवाद—**शिव वर्मा**

क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसौदा

[शहीद भगतसिंह और उनके साथियों की प्रत्येक कोशिश व पूरा समय जन-जागृति फैलाने में लगा। भारतीय जनता के भविष्य को ध्यान में रखकर उन्होंने भारत मे क्रान्ति करने की पूरी योजना अपने साथियों के लिए बनाकर जेल से बाहर भेजी थी। क्रान्तिकारी कार्यक्रम की योजना के दो हिस्से हैं। एक, छापकर बाँटने के लिए जो एक पत्र की तरह लिखा गया है और दूसरा, एक लेख के रूप में क्रान्तिकारी साथियों में विचार, बहस व काम में दिग्दर्शन के लिए है। इसका पहला हिस्सा 'नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम' शीर्षक से उस समय के विभिन्न समाचारपत्रों में काट-छाँटकर छपा था। लाहौर के 'पीपुल्ज़' में 29 जुलाई, 1931 और इलाहाबाद के 'अभ्युदय' में 8 मई, 1931 के अंक में इसके कुछ अंश प्रकाशित हुए थे।

उस समय के राष्ट्रीय समाचारपत्रों द्वारा इस दस्तावेज को प्रकाशित करने से इन्कार करने पर शहीद सुखदेव की प्रतिक्रिया 'आवाज दबाना दुखदायी है'—अध्याय 10 में देखी जा सकती है, जहाँ वे तीन तारीख के पत्र का जिक्र करते हैं। यह तो निश्चित है कि जेल की कोठरियों में क्रान्तिकारियों के बीच विचार-विमर्श व भरपूर बहस होती रही थी। इस पत्र मे शहीद सुखदेव के यह शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—"अभी-अभी पता चला है कि समाचारपत्रों ने हमारा तीन तारीख का वक्तव्य नही छापा। कारण यह बताया गया है कि उसमें नेताओ की आलोचना की गयी है।"

यह दस्तावेज अपने समग्र रूप में हाल ही में अंग्रेज सरकार की एक गुप्त पुस्तक मे से मिला है। यह पुस्तक सी. आई. डी. अधिकारी सी. ई. एस. फेयरवैदर ने 1936 में 'बंगाल में संयुक्त मोर्चा-आन्दोलन की प्रगति पर नोट' शीर्षक से लिखी थी। उसके अनुसार यह मसौदा भगतसिंह ने लिखा था और 3 अक्तूबर, 1931 को श्रीमती विमला प्रभा देवी के घर से तलाशी में हासिल हुआ था। इस पुलिस अधिकारी ने 'निश्चित रूप से' यह कहा था कि अब सभी क्रान्तिकारी शक्तियाँ इस कार्यक्रम में उल्लिखित सुझावों के अनुसार काम कर रही हैं।

यह दस्तावेज यहाँ पहली बार अपने सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।—सं.]

नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र

प्रिय साथियो,

इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दौर से गुजर रहा है। एक साल के

कड़े संघर्ष के बाद गोलमेज सम्मेलन ने हमारे सामने, संवैधानिक सुधारों सम्बन्धी कुछ निश्चित बातें प्रस्तुत की हैं और कांग्रेसी नेताओं से कहा गया है कि वर्तमान परिस्थितियों में अपना आन्दोलन वापिस लेकर इसमें मदद करें। इस बात का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं है कि वे आन्दोलन समाप्त करने का निर्णय करते हैं या नहीं करते। यह तो निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी-न-किसी तरह के समझौते के रूप में होगा। यह बात अलग है कि समझौता जल्द होता है या देर से। वास्तव में समझौता कोई घटिया या घृणित वस्तु नहीं है, जैसा कि प्रायः समझा जाता है। राजनीतिक संघर्षों का यह एक जरूरी दाँव-पेंच है। कोई भी राष्ट्र जो अत्याचारी शासकों के खिलाफ उठ खड़ा होता है, शुरू में अवश्य असफल रहता है। संघर्ष के बीच में समझौते द्वारा कुछ आधे-अधूरे सुधार हासिल करता है और सिर्फ अन्तिम दौर में ही—जब सभी शक्तियाँ और साधन पूरी तरह संगठित हो जाते हैं—शासक वर्ग को नष्ट करने के लिए आखिरी जोरदार हमला किया जा सकता है। लेकिन यह भी सम्भव है कि तब भी असफलता हाथ लगे और किसी प्रकार का समझौता अनिवार्य हो जाये। रूस के उदाहरण से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट की जा सकती है।

1905 में जब रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन शुरू हुआ तो राजनीतिक नेताओं को बड़ी आशाएँ थी। लेनिन तब विदेश से, जहाँ वे शरण लिये हुए थे, लौट आये थे और संघर्ष का नेतृत्व कर रहे थे। लोग उन्हें यह बताने पहुँचे कि दर्जनो जागीरदार मार दिये गये हैं और बीसियों महल जला दिये गये हैं। लेनिन ने उत्तर में कहा कि लौटकर 1200 जागीरदार मारो और इतने ही महल व हवेलियाँ जला दो, क्योंकि यदि असफल रहे तो भी इसका कुछ मतलब होगा। ड्यूमा (रूसी ससद) की स्थापना हुई। अब लेनिन ने ड्यूमा में हिस्सा लेने की वकालत की। यह 1907 की बात है, जबकि 1906 में वे पहली ड्यूमा में हिस्सा लेने के खिलाफ थे, बावजूद इसके कि उस ड्यूमा में काम करने का अवसर अधिक था और इस ड्यूमा के अधिकार अत्यन्त सीमित कर दिये गये थे। यह फैसला बदली हुई परिस्थितियो के कारण था। अब प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ बहुत बढ़ रही थी और लेनिन ड्यूमा के मंच को समाजवादी विचारों पर बहस के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे।

पुनः, 1917 की क्रान्ति के बाद, जब बोलशेविक ब्रेष्ट-लिटोवस्क सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश हुए तो लेनिन के सिवाय बाकी सभी इसका विरोध कर रहे थे। लेकिन लेनिन ने कहा—"शान्ति, शान्ति और पुनः शान्ति! किसी भी कीमत पर शान्ति होनी चाहिए।" जब कुछ बोलशेविक-विरोधियों ने इस सन्धि के लिए लेनिन की निन्दा की तो उन्होंने स्पष्ट कहा कि "बोल्शेविक जर्मन हमले का मामना करने की सामर्थ्य नहीं रखते, इसीलिए सम्पूर्ण तबाही की जगह सन्धि को प्राथमिकता दी गयी है।"

जो बात मै स्पष्ट करना चाहता हूँ वह यह है कि समझौता एक ऐसा जरूरी हथियार है, जिसे सघर्ष के विकास के साथ-ही-साथ इस्तेमाल करना जरूरी बन जाता है, लेकिन

जिस चीज का हमेशा ध्यान रहना चाहिए वह है आन्दोलन का उद्देश्य । जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं, उनके बारे में, हमें पूरी तरह स्पष्ट होना चाहिए । इस बात से अपने आन्दोलन की उपलब्धियों, सफलताओं व असफलताओं को आँकने में हमें सहायता मिलती है और अगला कार्यक्रम बनाने व तय करने में भी । तिलक की नीति–उनके उद्देश्यों के बावजूद–यानी उनके दॉव-पेंच बहुत अच्छे थे । आप अपने शत्रु से सोलह आना पाने के लिए लड़ रहे हैं । आपको एक आना मिलता है, उसे जेब मे डालिए और बाकी के लिए संघर्ष जारी रखिए । नर्म दल के लोगों में जिस चीज की कमी हम देखते हैं वह उनके आदर्शो की है । वे इकन्नी के लिए लड़ते हैं और इसलिए उन्हे मिल ही कुछ नहीं सकता । क्रान्तिकारियों को यह बात हमेशा अपने मन मे रखनी चाहिए कि वे सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए लड़ रहे है । ताकत की बागडोर पूरी तरह अपने हाथों मे लेनी है । समझौतो से इसीलिए डर महसूस होता है, क्योंकि प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ समझौते के बाद क्रान्तिकारी शक्तियों को समाप्त करवाने की कोशिशे करती हैं । लेकिन समझदार और बहादुर क्रान्तिकारी नेता आन्दोलन को ऐसे गढ़ो में गिरने से बचा सकते हैं । हमे ऐसे समय और ऐसे मोड पर वास्तविक मुद्दो और विशेषत. उद्देश्यों सम्बन्धी कुछ गडबड़ नहीं होने देनी चाहिए । इग्लैण्ड की लेबर पार्टी ने वास्तविक सघर्ष से धोखा किया है और वे [उसके नेता] सिर्फ कुटिल साम्राज्यवादी बनकर रह गये हैं ।

मेरे विचार मे इन रँगे हुए साम्राज्यवादी लेबर नेताओं से कट्टर प्रतिक्रियावादी हमारे लिए बेहतर है । दाँव-पेचो और रणनीति सम्बन्धी लेनिन के जीवन और लेखन पर हमें विचार करना चाहिए । समझौते के मामले पर 'वामपथी कम्युनिज्म' मे उनके स्पष्ट विचार मिलते हैं ।

कांग्रेस का उद्देश्य क्या है ?

मैंने कहा है कि वर्तमान आन्दोलन किसी-न-किसी समझौते या पूर्ण असफलता मे समाप्त होगा ।

मैंने यह इसलिए कहा है क्योंकि मेरी राय मे इस समय वास्तविक क्रान्तिकारी ताकतें मैदान में नहीं हैं । यह सघर्ष मध्यवर्गीय दुकानदारों और चन्द पूँजीपतियो के बलबूते किया जा रहा है । यह दोनों वर्ग, विशेषत: पूँजीपति, अपनी सम्पत्ति या मिल्कीयत खतरे मे डालने की जुर्रत नहीं कर सकते । वास्तविक क्रान्तिकारी सेनाएँ तो गाँवो और कारखानों में हैं–किसान और मजदूर । लेकिन हमारे 'बूर्ज्वा' नेताओ मे उन्हें साथ लेने की हिम्मत नहीं है, न ही वे ऐसी हिम्मत कर सकते है । यह सोये हुए सिह यदि एक बार गहरी नीद से जग गये तो वे हमारे नेताओ की लक्ष्य-पूर्ति के बाद ही रुकनेवाले नहीं हैं । 1920 में अहमदाबाद के मजदूरों के साथ अपने प्रथम अनुभव के बाद महात्मा गाँधी ने कहा था, ''हमें मजदूरों के साथ साँठ-गाँठ नहीं करनी चाहिए । कारखानों के सर्वहारा

वर्ग का राजनीतिक हितों के लिए इस्तेमाल करना खतरनाक है।" (मई, 1931 के 'दि टाइम्स' से)। तब से उन्होंने इस वर्ग को साथ लेने का कष्ट नहीं उठाया। यही हाल किसानों के साथ है। 1922 का बारदोली-सत्याग्रह पूरी तरह यह स्पष्ट करता है कि नेताओं ने जब किसान वर्ग के उस विद्रोह को देखा, जिसे न सिर्फ विदेशी राष्ट्र के ग़लबः [प्रभुत्व] से ही मुक्ति हासिल करनी थी वरन देशी जमींदारों की जजीरें भी तोड़ देनी थीं, तो कितना खतरा महसूस किया था।

यही कारण है कि हमारे नेता किसानों के आगे झुकने की जगह अंग्रेजो के आगे घुटने टेकना पसन्द करते हैं। पण्डित जवाहरलाल को छोड़ दें तो क्या आप किसी भी नेता का नाम ले सकते हैं, जिसने मजदूरों या किसानो को संगठित करने की कोशिश की हो। नहीं, वे खतरा मोल नही लेंगे। यही तो उनमें कमी है, इसीलिए मैं कहता हूँ कि वे सम्पूर्ण आजादी नहीं चाहते। आर्थिक और प्रशासकीय दबाव डालकर वे चन्द और सुधार, यानी भारतीय पूँजीपतियों के लिए चन्द और रियायतें हासिल करना चाहेंगे। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस आन्दोलन का बेड़ा तो डूबेगा ही—शायद किसी-न-किसी समझौते या ऐसी किसी चीज के बिना ही। नवयुवक कार्यकर्ता, जो पूरी तनदेही से 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते हैं, स्वयं पूरी तरह सगठित नहीं हैं और अपना आन्दोलन आगे ले जाने की ताकत नहीं रखते हैं। वास्तव में पण्डित मोतीलाल नेहरू के सिवाय हमारे बड़े नेता कोई जिम्मेदारी नहीं लेना चाहते। यही कारण है कि वे हर बार गाँधी के आगे बिना शर्त घुटने टेक देते हैं। अलग राय होने पर भी वे पूरे जोर से विरोध नहीं करते और गाँधी के कारण प्रस्ताव पास कर दिये जाते हैं। ऐसी परिस्थितियो में, क्रान्ति के प्रति पूरी संजीदगी रखनेवाले नौजवान कार्यकर्ताओ को मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि कठिन समय आ रहा है, वे चौकस रहें, हिम्मत न हारे और उलझनों में न फँसें। 'महान गाँधी' के दो सघर्षो के अनुभवों के बाद हम आज की परिस्थिति व भविष्य के कार्यक्रम के बारे में स्पष्ट राय बना सकते है।

अब मैं बिल्कुल सादे ढग से यह केस बताता हूँ। आप 'इन्कलाब-जिन्दाबाद' का नारा लगाते हो। मैं यह मानकर चलता हूँ कि आप इसका मतलब समझते हो। असेम्बली बम केस में दी गयी हमारी परिभाषा के अनुसार इन्कलाब का अर्थ मौजूदा सामाजिक ढाँचे में पूर्ण परिवर्तन और समाजवाद की स्थापना है। इस लक्ष्य के लिए हमारा पहला कदम ताकत हासिल करना है। वास्तव में 'राज्य', यानी सरकारी मशीनरी, शासक वर्ग के हाथो में अपने हितो की रक्षा करने और उन्हें आगे बढ़ाने का यन्त्र ही है। हम इस यन्त्र को छीनकर अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं। हमारा आदर्श है—नये ढंग की सामाजिक सरचना, यानी मार्क्सवादी ढंग से। इसी लक्ष्य के लिए हम सरकारी मशीनरी का इस्तेमाल करना चाहते हैं। जनता को लगातार शिक्षा देते रहना है ताकि अपने सामाजिक कार्यक्रम की पूर्ति के लिए अनुकूल व सुविधाजनक वातावरण बनाया जा सके। हम उन्हें सघर्षो के दौरान ही अच्छा प्रशिक्षण

और शिक्षा दे सकते हैं।

इन बातों के बारे में स्पष्टता, यानी हमारे फौरी और अन्तिम लक्ष्य को स्पष्टता से समझने के बाद हम आज की परिस्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं। किसी भी स्थिति का विश्लेषण करते समय हमें हमेशा बिल्कुल बेझिझक, बेलाग व व्यावहारिक होना चाहिए।

हम जानते हैं कि जब भारत सरकार में भारतीयों की हिस्सेदारी को लेकर हल्ला हुआ था तो मिन्टो-मार्ले-सुधार लागू हुए थे, जिनके द्वारा केवल सलाह देने का अधिकार रखनेवाली वायसराय-परिषद बनायी गयी थी।

विश्वयुद्ध के दौरान जब भारतीय सहायता की अत्यन्त आवश्यकता थी तो स्वायत्त शासनवाली सरकार का वायदा किया गया और मौजूदा सुधार लागू किये गये। असेम्बली को कुछ सीमित कानून बनाने की ताकत दी गयी, लेकिन सब कुछ वायसराय की खुशी पर निर्भर है। अब तीसरी स्टेज है।

अब सुधारों सम्बन्धी विचार हो रहा है और निकट भविष्य में ये लागू होंगे। अब नौजवान इनकी परीक्षा कैसे कर सकते हैं? यह एक सवाल है। मैं नहीं जानता कि कांग्रेसी नेता कैसे इनकी परख करेंगे? लेकिन हम क्रान्तिकारी इन्हें निम्नलिखित कसौटी पर परखेंगे–

1. किस सीमा तक शासन की जिम्मेदारी भारतीयो को सौंपी जाती है?
2. शासन चलाने के लिए किस तरह की सरकार बनायी जाती है और सामान्य जनता को इसमें हिस्सा लेने का कहाँ तक अवसर मिलता है?
3. भविष्य मे क्या सम्भावनाएँ हो सकती हैं और इन उपलब्धियों को किस प्रकार बचाया जा सकता है?

इसके लिए शायद कुछ और स्पष्टीकरण की जरूरत हो। पहली बात यह कि हमारी जनता के प्रतिनिधियों को कार्यकारिणी (Executive) पर कितना अधिकार और जिम्मेदारी हासिल होती है। अब तक कार्यकारिणी को लेजिस्लेटिव असेम्बली के सामने उत्तरदायी नहीं बनाया गया है। वायसराय के पास वोटो की ताकत है, जिससे चुने हुए प्रतिनिधियों की सारी कोशिशें बेअसर और ठप्प कर दी जाती हैं।

हम स्वराज्य पार्टी के शुक्रगुजार हैं जिनकी कोशिशो से वायसराय ने अपनी इस ताकत का बड़ी बेशर्मी से बार-बार इस्तेमाल किया और राष्ट्रीय प्रतिनिधियो के मर्यादा-भरे निर्णय पाँव तले कुचल दिये। यह बात पूरी तरह स्पष्ट है और इस पर और बहस की जरूरत नही है।

आइए, सबसे पहले कार्यकारिणी की स्थापना के ढंग पर विचार करें? क्या कार्यकारिणी को असेम्बली के चुने हुए सदस्य चुनते हैं या पहले की ही तरह ऊपर से थोपी जायेगी? क्या यह असेम्बली के आगे उत्तरदायी होगी या पहले की ही तरह असेम्बली का अपमान करेगी?

जहाँ तक दूसरी बात का सम्बन्ध है, उसे हम वयस्क मताधिकार की सम्भावना से देख सकते हैं । सम्पत्ति होने की धारा को पूरी तरह समाप्त कर व्यापक मताधिकार दिये जाने चाहिए । हर वयस्क स्त्री-पुरुष को वोट का अधिकार मिलना चाहिए । अब तो सिर्फ यह देख सकते हैं कि मताधिकार किस सीमा तक दिये जाते हैं ।

जहाँ तक व्यवस्था का प्रश्न है, अभी दो सभाओंवाली सरकार है । मेरे ख्याल में उच्च सभा बूर्ज्वा भ्रमजाल या बहकावे के अतिरिक्त कुछ नहीं । मेरी समझ से जहाँ तक उम्मीद की जा सके, एक सभावाली सरकार अच्छी है ।

यहाँ मैं प्रान्तीय स्वायत्तता के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ । जो कुछ मैंने सुना है, उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि ऊपर से थोपा हुआ गवर्नर, जिसके पास असेम्बली से ऊपर विशेष अधिकार होंगे, तानाशाह से कम सिद्ध नहीं होगा । हम इसे प्रान्तीय स्वायत्तता न कहकर प्रान्तीय अत्याचार कहें । राज्य की संस्थाओं का यह अजीब लोकतांत्रीकरण है ।

तीसरी बात तो बिल्कुल स्पष्ट है । पिछले दो साल से अंग्रेज राजनीतिज्ञ उस वायदे को मिटाने मे लगे हैं, जिसे मोंटेग्यू ने यह कहकर रद्द कर दिया था कि जब तक अंग्रेजी खजाने में दम है, प्रत्येक दस वर्ष पर और सुधार किये जाते रहेगे ।

हम देख सकते हैं कि उन्होंने भविष्य के लिए क्या फैसला किया है । मैं यह बात स्पष्ट कर दूँ कि हम इन बातों का विश्लेषण इसलिए नहीं कर रहे कि उपलब्धियों पर जश्न मनाये जायें, वरन इसलिए कि जनता मे जागृति लायी जा सके और उन्हें आनेवाले संघर्षों के लिए तैयार किया जा सके । हमारे लिए समझौता घुटने टेकना नही है, बल्कि एक कदम बढ़ना और फिर कुछ आराम करना है ।

लेकिन इसके साथ ही हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि समझौता इससे अधिक कुछ और है भी नहीं । यह अन्तिम लक्ष्य और अन्तिम विश्राम की जगह नहीं है ।

वर्तमान परिस्थिति पर कुछ हद तक विचार करने के बाद भविष्य के कार्यक्रम और कार्यनीति पर भी विचार कर लिया जाये ।

जैसाकि मैंने पहले भी कहा है कि किसी क्रान्तिकारी पार्टी के लिए निश्चित कार्यक्रम होना बहुत जरूरी है । आपको यह पता होना चाहिए कि क्रान्ति का मतलब गतिविधि है । इसका मतलब संगठित व क्रमबद्ध काम द्वारा सोची-समझी तब्दीली लाना है और यह तोड़-फोड़—असंगठित, एकदम या स्वत: परिवर्तन—के विरुद्ध है । कार्यक्रम बनाने के लिए अनिवार्य रूप मे इन बातो के अध्ययन की जरूरत है—

1. मंजिल (लक्ष्य) या उद्देश्य ।
2. आधार, जहाँ से शुरू करना है, यानी वर्तमान परिस्थिति ।
3. कार्यरूप, यानी साधन व दाँव-पेंच ।

जब तक इन तत्वों के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट संकल्प नहीं है, तब तक कार्यक्रम

सम्बन्धी कोई विचार सम्भव नहीं।

वर्तमान परिस्थिति पर हम कुछ हद तक विचार कर चुके हैं, लक्ष्य सम्बन्धी भी कुछ चर्चा हुई है। हम समाजवादी क्रान्ति चाहते हैं, जिसके लिए बुनियादी जरूरत राजनीतिक क्रान्ति की है। यही है जो हम चाहते हैं। राजनीतिक क्रान्ति का अर्थ राजसत्ता (यानी मोटे तौर पर ताकत) का अंग्रेजी हाथों से भारतीय हाथों में आना है और वह भी उन भारतीयों के हाथों में, जिनका अन्तिम लक्ष्य हमारे लक्ष्य से मिलता हो। और स्पष्टता से कहें तो—राजसत्ता का सामान्य जनता की कोशिश से क्रान्तिकारी पार्टी के हाथों में आना। इसके बाद पूरी संजीदगी से पूरे समाज को समाजवादी दिशा में ले जाने के लिए जुट जाना होगा। यदि क्रान्ति से आपका यह अर्थ नही है तो महाशय, मेहरबानी करे और 'इन्कलाब-जिन्दाबाद' के नारे लगाने बन्द कर दें। कम-से-कम हमारे लिए 'क्रान्ति' शब्द में बहुत ऊँचे विचार निहित हैं और इसका प्रयोग बिना संजीदगी के नहीं करना चाहिए, नही तो इसका दुरुपयोग होगा। लेकिन यदि आप कहते हैं कि आप राष्ट्रीय क्रान्ति चाहते हैं जिसका लक्ष्य भारतीय गणतन्त्र की स्थापना है तो मेरा प्रश्न यह है कि उसके लिए आप, क्रान्ति में सहायक होने के लिए, किन शक्तियों पर निर्भर कर रहे हैं? क्रान्ति राष्ट्रीय हो या समाजवादी, जिन शक्तियो पर हम निर्भर हो सकते हैं वे हैं किसान और मजदूर। कांग्रेसी नेताओ मे इन्हें संगठित करने की हिम्मत नही है, इस आन्दोलन में यह आपने स्पष्ट देख लिया है। किसी और से अधिक उन्हे इस बात का अहसास है कि इन शक्तियों के बिना वे विवश हैं। जब उन्होंने सम्पूर्ण आजादी का प्रस्ताव पास किया तो इसका अर्थ क्रान्ति ही था, पर इनका (कांग्रेस का) मतलब यह नही था। इसे नौजवान कार्यकर्त्ताओं के दबाव मे पास किया गया था और इसका इस्तेमाल वे धमकी के रूप मे करना चाहते थे, ताकि अपना मनचाहा डोमिनियन स्टेट्स हासिल कर सके। आप कांग्रेस के पिछले तीनो अधिवेशनों के प्रस्ताव पढकर इस सम्बन्ध मे ठीक राय बना सकते हैं। मेरा इशारा मद्रास, कलकत्ता व लाहौर-अधिवेशनों की ओर है। कलकत्ता मे डोमिनियन स्टेट्स की माँग का प्रस्ताव पास किया गया। 12 महीने के भीतर इस माँग को स्वीकार करने के लिए कहा गया और यदि ऐसा न किया गया तो कांग्रेस मजबूर होकर पूर्ण आजादी को अपना उद्देश्य बना लेगी। पूरी संजीदगी से वे 31 दिसम्बर, 1929 की आधी रात तक इस तोहफे को प्राप्त करने का इन्तजार करते रहे और तब उन्होने पूर्ण आजादी का प्रस्ताव मानने के लिए स्वयं को 'वचनबद्ध' पाया, जो कि वे चाहते नही थे। और तब भी महात्मा जी ने यह बात छिपाकर नहीं रखी कि बातचीत के दरवाजे खुले हैं। यह था इसका वास्तविक आशय। बिल्कुल शुरू मे ही वे जानते थे कि उनके आन्दोलन का अन्त किसी-न-किसी तरह के समझौते मे होगा। इस बेदिली से हम नफरत करते है ना कि संघर्ष के किसी मसले पर समझौते से।

खैर! हम इस बात पर विचार कर रहे थे कि क्रान्ति किन-किन ताकतो पर निर्भर है? लेकिन यदि आप सोचते है कि किसानों और मजदूरों को सक्रिय हिस्सेदारी के लिए

आप मना लेंगे तो मैं बताना चाहता हूँ कि वे किसी प्रकार की भावुक बातों से बेवकूफ नहीं बनाये जा सकते। वे साफ-साफ पूछेंगे कि उन्हें आपकी क्रान्ति से क्या लाभ होगा, वह क्रान्ति जिसके लिए आप उनसे बलिदान की माँग कर रहे हैं। भारत सरकार का प्रमुख लार्ड रीडिंग की जगह यदि सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास हो तो उन्हें (जनता को) इससे क्या फर्क पड़ता है? एक किसान को इससे क्या फर्क पड़ेगा, यदि लार्ड इरविन की जगह सर तेज बहादुर सप्रू आ जायें। राष्ट्रीय भावनाओं की अपील बिल्कुल बेकार है। उसे आप अपने काम के लिए 'इस्तेमाल' नहीं कर सकते। आपको गम्भीरता से काम लेना होगा और उन्हें समझाना होगा कि क्रान्ति उनके हित मे है और उनकी अपनी है। सर्वहारा श्रमिक वर्ग की क्रान्ति, सर्वहारा के लिए।

जब आप अपने लक्ष्य के बारे में स्पष्ट अवधारणा बना लेंगे तो ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप अपनी शक्ति सँजोने में जुट जायेंगे। अब दो अलग-अलग पड़ावों से गुजरना होगा—पहला तैयारी का पड़ाव, दूसरा उसे कार्यरूप देने का।

जब यह वर्तमान आन्दोलन खत्म होगा तो आप अनेक ईमानदार व गम्भीर क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ताओं को निराश व उचाट पायेंगे। लेकिन आपको घबराने की जरूरत नहीं है। भावुकता एक ओर रखो। वास्तविकता का सामना करने के लिए तैयार होओ। क्रान्ति करना बहुत कठिन काम है। यह किसी एक आदमी की ताकत के वश की बात नहीं है और न ही यह किसी निश्चित तारीख को आ सकती है। यह तो विशेष सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से पैदा होती है और एक संगठित पार्टी को ऐसे अवसर को सँभालना होता है और जनता को इसके लिए तैयार करना होता है। क्रान्ति के दुस्साध्य कार्य के लिए सभी शक्तियों को संगठित करना होता है। इस सबके लिए क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ताओं को अनेक कुर्बानियाँ देनी होती हैं। यहाँ मैं यह स्पष्ट कह दूँ कि यदि आप व्यापारी हैं या सुस्थिर दुनियादार या पारिवारिक व्यक्ति हैं तो महाशय! इस आग से न खेलें। एक नेता के रूप में आप पार्टी के किसी काम के नहीं हैं। पहले ही हमारे पास ऐसे बहुत से नेता हैं जो शाम के समय भाषण देने के लिए कुछ वक्त जरूर निकाल लेते हैं। ये नेता हमारे किसी काम के नहीं हैं। हम तो लेनिन के अत्यन्त प्रिय शब्द 'पेशेवर क्रान्तिकारी' का प्रयोग करेंगे। पूरा समय देनेवाले कार्यकर्त्ता, क्रान्ति के सिवाय जीवन में जिनकी और कोई ख्वाहिश ही न हो। जितने अधिक ऐसे कार्यकर्त्ता पार्टी में संगठित होंगे, उतने ही सफलता के अवसर अधिक होंगे।

पार्टी को ठीक ढंग से आगे बढने के लिए जिस बात की सबसे अधिक जरूरत है वह यह है कि ऐसे कार्यकर्ता स्पष्ट विचार, प्रत्यक्ष समझदारी, पहलकदमी की योग्यता और तुरन्त निर्णय कर सकने की शक्ति रखते हों। पार्टी में फौलादी अनुशासन होगा और यह जरूरी नहीं कि पार्टी भूमिगत रहकर ही काम करे, बल्कि इसके विपरीत खुले रूप मे काम कर सकती है, यद्यपि स्वेच्छा मे जेल जाने की नीति पूरी तरह छोड़ दी जानी चाहिए। इस तरह बहुत-से कार्यकर्ताओं को गुप्त रूप से काम करते हुए जीवन बिताने की भी जरूरत

पड़ सकती हैं, लेकिन उन्हें उसी तरह पूरे उत्साह से काम करते रहना चाहिए और यही है वह ग्रुप जिससे अवसर सँभाल सकनेवाले नेता तैयार होंगे।

पार्टी को कार्यकर्ताओ की जरूरत होगी, जिन्हें नौजवानों के आन्दोलनों से भरती किया जा सकता है। इसीलिए नवयुवकों के आन्दोलन सबसे पहली मंजिल हैं, जहाँ से हमारा आन्दोलन शुरू होगा। युवक-आन्दोलन को अध्ययन केन्द्र (स्टडी सर्कल) खोलने चाहिए। लीफलेट, पैम्फलेट, पुस्तके, मैगजीन छापने चाहिए। क्लासों में लेक्चर होने चाहिए। राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए मस्ती करने और प्रशिक्षण देने की यह सबसे अच्छी जगह होगी।

उन नौजवानों को पार्टी में ले लेना चाहिए, जिनके विचार विकसित हो चुके हैं और वे अपना जीवन इस काम में लगाने के लिए तैयार हैं। पार्टी-कार्यकर्ता नवयुवक आन्दोलन के काम को दिशा देंगे। पार्टी अपना काम प्रचार से शुरू करेगी। यह अत्यन्त आवश्यक है। गदर पार्टी (1914-15) के असफल होने का मुख्य कारण था—जनता की अज्ञानता, लगावहीनता और कई बार विरोध। इसके अतिरिक्त किसानों और मजदूरों का सक्रिय समर्थन हासिल करने के लिए भी प्रचार जरूरी है। पार्टी का नाम कम्युनिस्ट पार्टी हो। ठोस अनुशासनवादी राजनीतिक कार्यकर्ताओ की यह पार्टी बाकी सभी आन्दोलन चलायेगी। इसे मजदूरों व किसानों की तथा अन्य पार्टियो का सचालन भी करना होगा और लेबर यूनियन कांग्रेस तथा इस तरह की अन्य राजनीतिक संस्थाओ पर प्रभावी होने की कोशिश भी पार्टी करेगी। पार्टी एक बडा प्रकाशन-अभियान चलायेगी जिससे राष्ट्रीय चेतना ही नही, वर्ग-चेतना भी पैदा होगी। समाजवादी सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे जनता को सचेत बनाने के लिए सभी समस्याओ की विषयवस्तु प्रत्येक व्यक्ति की समझ में आनी चाहिए और ऐसे प्रकाशनो को बड़े पैमाने पर वितरित किया जाना चाहिए। लेखन सादा और स्पष्ट हो।

मजदूर आन्दोलन मे ऐसे व्यक्ति हैं जो मजदूरो और किसानो की आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता के बारे मे बड़े अजीब विचार रखते हैं। ये लोग उत्तेजना फैलानेवाले हैं या बौखलाये हुए है। ऐसे विचार या तो ऊल-जलूल हैं या कल्पनाहीन। हमारा मतलब जनता की आर्थिक स्वतन्त्रता से है और इसी के लिए हम राजनीतिक ताकत हासिल करना चाहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शुरू में छोटी-मोटी आर्थिक माँगों और इन वर्गो के विशेष अधिकारो के लिए हमे लडना होगा। यही सघर्ष उन्हे राजनीतिक ताकत हासिल करने के अन्तिम संघर्ष के लिए सचेत व तैयार करेगा।

इसके अतिरिक्त सैनिक विभाग भी सगठित करना होगा। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। कई बार इसकी बुरी तरह जरूरत होती है। उस समय शुरू करके आप ऐसा ग्रुप तैयार नही कर सकते जिसके पास काम करने की पूरी ताकत हो। शायद इस विषय को बारीकी से समझाना जरूरी है। इस विषय पर मेरे विचारों को गलत रंग दिये जाने की बहुत अधिक सम्भावना है। ऊपरी तौर पर मैंने एक आतंकवादी की तरह काम किया है,

लेकिन मैं आतंकवादी नहीं हूँ। मैं एक क्रान्तिकारी हूँ, जिसके दीर्घकालीन कार्यक्रम सम्बन्धी ठोस व विशिष्ट विचार हैं जिन पर यहाँ विचार किया जा रहा है। 'शस्त्रों के साथी' मेरे कुछ साथी मुझे रामप्रसाद बिस्मिल की तरह इस बात के लिए दोषी ठहरायेंगे कि फाँसी की कोठरी में रहकर मेरे भीतर कुछ प्रतिक्रिया पैदा हुई है। इसमें कुछ भी सच्चाई नहीं है। मेरे विचार वही हैं, मुझमें वही दृढ़ता है और वही जोश व स्पिरिट मुझमें यहाँ है, जो बाहर थी—नहीं, उससे कुछ अधिक है। इसलिए अपने पाठकों को मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि मेरे शब्दों को वे पूरे ध्यान से पढ़ें।

उन्हें पंक्तियों के बीच कुछ भी नहीं देखना चाहिए। मैं अपनी पूरी ताकत से यह कहना चाहता हूँ कि क्रान्तिकारी जीवन के शुरू के चन्द दिनों के सिवाय न तो मैं आतंकवादी हूँ और न ही था; और मुझे पूरा यकीन है कि इस तरह के तरीकों से हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। हिन्दुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन पार्टी के इतिहास से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। हमारे सभी काम इसी दिशा में थे, यानी बड़े राष्ट्रीय आन्दोलन के सैनिक विभाग की जगह अपनी पहचान करवाना। यदि किसी ने मुझे गलत समझ लिया है तो वे सुधार कर ले। मेरा मतलब यह कदापि नहीं है कि बम व पिस्तौल बेकार हैं, वरन् इसके विपरीत, यह लाभदायक हैं। लेकिन मेरा मतलब यह जरूर है कि केवल बम फेंकना न सिर्फ बेकार, बल्कि नुकसानदायक है। पार्टी के सैनिक विभाग को हमेशा तैयार रहना चाहिए, ताकि संकट के समय काम आ सके। इसे पार्टी के राजनीतिक काम में सहायक के रूप में होना चाहिए। यह अपने आप स्वतन्त्र काम न करे।

जैसे ऊपर इन पंक्तियों मे बताया गया है, पार्टी अपने काम को आगे बढाये। समय-समय पर मीटिंगें और सम्मेलन बुलाकर अपने कार्यकर्ताओ को सभी विषयो के बारे में सूचनाएँ और सजगता देते रहना चाहिए। यदि आप इस तरह से काम शुरू करते हैं तो आपको काफी गम्भीरता से काम लेना होगा। इस काम को पूरा होने मे कम-से-कम बीस साल लगेगे। क्रान्ति सम्बन्धी यौवन काल के दस साल मे पूरे होने के सपनों को एक ओर रख दे, ठीक वैसे ही जैसे गाँधी के (एक साल मे स्वराज के) सपने को परे रख दिया था। न तो इसके लिए भावुक होने की जरूरत है और न ही यह सरल है। जरूरत है निरन्तर सघर्ष करने, कष्ट सहने और कुर्बानी भरा जीवन बिताने की। अपना व्यक्तिवाद पहले खत्म करो। व्यक्तिगत सुख के सपने उतारकर एक ओर रख दो और फिर काम शुरू करो। इंच-इच कर आप आगे बढ़ेगे। इसके लिए हिम्मत, दृढता और बहुत मजबूत इरादे की जरूरत है। कितने ही भारी कष्ट व कठिनाइयाँ क्यो न हों, आपकी हिम्मत न काँपे। कोई भी पराजय या धोखा आपका दिल न तोड़ सके। कितने भी कष्ट क्यों न आयें, आपका क्रान्तिकारी जोश ठण्डा न पड़े। कष्ट सहने और कुर्बानी करने के सिद्धान्त से आप सफलता हासिल करेंगे और यह व्यक्तिगत सफलताएँ क्रान्ति की अमूल्य सम्पत्ति होगी।

इन्कलाब-जिन्दाबाद! 2 फरवरी, 1931

हमारे लिए सुनहरा अवसर

भारत की स्वतन्त्रता अब शायद दूर का स्वप्न नहीं रहा। घटनाएँ बड़ी तेजी से घट रही हैं और इसलिए स्वतन्त्रता अब हमारी आशाओं से भी जल्द ही एक सच्चाई बन जायेगी। ब्रिटिश साम्राज्य बुरी तरह लताड़ा हुआ है। जर्मनी को मुँह की खानी पड रही है, फ्रांस थर-थर कॉप रहा है और अमेरिका हिला हुआ है और इन सबकी कठिनाइयाँ हमारे लिए सुनहरा अवसर है। प्रत्येक चीज उस महान भविष्यवाणी की ओर संकेत कर रही है, जिसके अनुसार समाज का पूँजीवादी ढाँचा नष्ट होना अटल है। कूटनीतिज्ञ लोग स्वयं को बचाने के लिए प्रयत्नशील हो सकते हैं और पूँजीवादी षड्यन्त्र से 'क्रान्ति के बाध' को अपने घर से दूर रखने की कोशिशें कर सकते हैं। अंग्रेजों का बजट सन्तुलित हो सकता है और मृत्यु के मुँह में पड़े पूँजीवाद को कुछ पलों की राहत मिल सकती है। 'डालर राजा' चाहे अपना ताज सँभाल ले तो भी व्यापक मन्दी यदि जारी रही और जिसका जारी रहना लाजिमी है, तो बेरोजगारो की फौज तेजी से बढेगी और यह बढ भी रही है, क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन-व्यवस्था ही ऐसी है। यह चक्कर पूँजीवादी व्यवस्था को पटरी से उतार देगा। बस, बात कुछ महीनों की ही है। इसीलिए क्रान्ति अब भविष्यवाणी या सम्भावना नहीं, वरन 'व्यावहारिक राजनीति' है जिसे सोची-समझी योजना और कठोर अमल से सफल बनाया जा सकता है। इसके विभिन्न पहलुओं और तात्पर्य, इसके तरीकों और उद्देश्यो सम्बन्धी कोई विचारधारात्मक उलझन नही होनी चाहिए।

गाँधीवाद

कांग्रेस आन्दोलन की सम्भावनाओं, पराजयों और उपलब्धियों के बारे में हमें किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए। आज चल रहे इस आन्दोलन को गाँधीवाद कहना ही उचित है। यह दावे के साथ आजादी के लिए स्टैण्ड नहीं लेता, बल्कि सत्ता में 'हिस्सेदारी' के पक्ष में है। 'पूर्ण स्वतन्त्रता' के अजीब अर्थ निकाले जा रहे हैं। इसका तरीका अनूठा है, लेकिन बेचारे लोगों के किसी काम का नहीं है। साबरमती के सन्त को गाँधीवाद कोई स्थायी शिष्य नहीं दे पायेगा। यह एक बीच की पार्टी—यानी लिबरल-रैडीकल मेल-जोल—का काम कर रही है और करती भी रही है। मौके की असलियत से टकराने में इसे शर्म आती है। इसे चलानेवाले देश के ऐसे ही लोग हैं जिनके हित इससे बँधे हुए हैं और वे अपने हितों के लिए बूर्ज्वा हठ से चिपके हुए हैं। यदि क्रान्तिकारी रक्त से इसे गर्मजोशी न दी गयी तो इसका ठण्डा होना लाजिमी है। इसे इसी के दोस्तों से बचाने की जरूरत है।

आतंकवाद

आइए, हम इस कठिन सवाल के बारे मे स्पष्ट हों। बम का रास्ता 1905 से चला आ रहा है और क्रान्तिकारी भारत पर यह एक दर्दनाक टिप्पणी है। अभी यह महसूस नहीं किया गया कि इसका उपयोग व दुरुपयोग क्या है। आतंकवाद हमारे समाज में क्रान्तिकारी चिन्तन की पकड के अभाव की अभिव्यक्ति है; या एक पछतावा। इसी तरह यह अपनी असफलता का स्वीकार भी है। शुरू-शुरू में इसका कुछ लाभ था। इसने राजनीति को आमूल बदल दिया। नवयुवक बुद्धिजीवियों की सोच को चमकाया, आत्म-त्याग की भावना को ज्वलन्त रूप दिया और दुनिया व अपने दुश्मनों के सामने अपने आन्दोलन की सच्चाई और शक्ति को जाहिर करने का अवसर मिला। लेकिन यह स्वयं में पर्याप्त नहीं है। सभी देशों में इसका [आतकवाद का] इतिहास असफलता का इतिहास है—फ्रांस, रूस, जर्मनी में बाल्कन देशो, स्पेन में—हर जगह इसकी यही कहानी है। इसकी पराजय के बीज इसके भीतर ही ह. ने हैं। साम्राज्यवादियों को अच्छी तरह पता है कि 30 करोड़ लोगों पर शासन के लिए प्रि. वर्ष 30 व्यक्तियों की बलि दी जा सकती है। शाासन करने का स्वाद बमों या पिस्तौलों से किरकिरा तो किया जा सकता है, लेकिन शोषण के व्यावहारिक लाभ उसे बनाये रखने पर विवश करेंगे। भले ही हमारी उम्मीद के अनुसार हथियार आसानी से मिल जायें और यदि हम पूरे जोर से लड़ें, जैसा कि इतिहास में पहले कभी न घटा हो, तो भी आतंकवाद अधिक-से-अधिक साम्राज्यवादी ताकत को समझौते के लिए ही मजबूर कर सकता है। ऐसे समझौते, हमारे उद्देश्य—पूर्ण आजादी—से हमेशा ही कहीं दूर रहेंगे। इस प्रकार आतंकवाद, एक समझौता, सुधारों की एक किश्त निचोडकर निकाल सकता है और इसे ही हासिल करने के लिए गाँधीवाद जोर लगा रहा है। वह चाहता है कि दिल्ली का शासन गोरे हाथों से भूरे हाथों में आ जाये। यह लोगों के जीवन से दूर हैं और इनके गद्दी पर बैठते ही जालिम बन जाने की बहुत सम्भावनाएँ हैं। आयरिश उदाहरण यहाँ लागू नहीं होगा, यह चेतावनी मैं देना चाहता हूँ। आयरलैण्ड में इक्की-दुक्की आतंकवादी कार्रवाइयाँ नहीं थीं, बल्कि यह राष्ट्रीय स्तर पर जनसाधारण की बगावत थी, जिसमें बन्दूकधारी अपनी नजदीकी जानकारी और हमदर्दी से लोगों से जुड़ा हुआ था। उन्हें बड़ी आसानी से हथियार मिल जाते थे, क्योंकि अमेरिकी आयरिश उन्हें अथाह आर्थिक मदद दे रहे थे। भौगोलिक स्थिति भी ऐसे युद्ध के लिए लाभदायक थी। लेकिन तो भी आयरलैण्ड को अपने आन्दोलन के अपूर्ण उद्देश्यों के साथ ही सन्तोष करना पड़ा। इसने आयरिश जनता की गुलामी तो कम की है, लेकिन आयरिश श्रमिक वर्ग को पूँजीपतियों के जंजाल से मुक्त नहीं करवाया। भारत को आयरलैण्ड से सीखना है। यह एक चेतावनी भी है कि किस प्रकार क्रान्तिकारी सामाजिक आधार से खाली राष्ट्रवादी आदर्शवाद, हालात के साजगार होने पर भी साम्राज्यवाद से समझौते की रेत में गुम हो सकता है। क्या भारत को अभी भी आयरलैण्ड की नकल करनी

चाहिए—यदि वह की भी जा सके, तो भी ?

एक प्रकार से गाँधीवाद अपना भाग्यवाद का विचार रखते हुए भी, क्रान्तिकारी विचारों के कुछ नजदीक पहुँचने का यत्न करता है, क्योंकि यह सामूहिक कार्रवाई पर निर्भर करता है, यद्यपि यह कार्रवाई समूह के लिए नहीं होती। उन्होंने मजदूरों को आन्दोलन में भागीदार बनाकर उन्हें मजदूर-क्रान्ति के रास्ते पर डाल दिया है। यह बात अलग है कि उन्हे कितनी असभ्यता या स्वार्थ से अपने राजनीतिक कार्यक्रम के लिए इस्तेमाल किया गया है। क्रान्तिकारियों को 'अहिंसा के फरिश्ते' को उसका योग्य स्थान देना चाहिए।

आतंकवाद के शैतान को दाद देने की जरूरत नहीं है। आतंकवादियों ने काफी काम कर लिया है, काफी कुछ सिखा दिया है। यदि हम अपने उद्देश्यों और तरीकों सम्बन्धी भूलें न करें तो यह अभी भी कुछ लाभप्रद हो सकता है। विशेषतः निराशा के समय आतंकवादी तरीका हमारे प्रचार-अभियान में सहायक हो सकता है, लेकिन यह पटाखेबाजी के सिवाय है कुछ नहीं और इसे विशेष समय और कुछ गिने-चुने लोगों के लिए सुरक्षित रखना चाहिए। क्रान्तिकारी को निरर्थक आतंकवादी कार्रवाइयों और व्यक्तिगत आत्म-बलिदान के दूषित चक्र में न डाला जाये। सभी के लिए उत्साहवर्धक आदर्श, उद्देश्य के लिए मरना न होकर उद्देश्य के लिए जीना—और वह भी लाभदायक तरीके से योग्य रूप में जीना—होना चाहिए।

यह कहने की तो कोई जरूरत नहीं है कि हम आतंकवाद से पूरी तरह सम्बन्ध नहीं तोड़ रहे। हम श्रमिक क्रान्ति के दृष्टिकोण से इसका पूरे तौर पर मूल्यांकन चाहते हैं। जो नवयुवक परिपक्व व चुपचाप [तरीके से] संगठन के काम में फिट नहीं होते, उनकी दूसरी भूमिका हो सकती है। उन्हें नीरस कामों से मुक्त कर अपनी इच्छा पूरी करने के लिए छोड़ देना चाहिए। लेकिन संचालक संस्था को पार्टी और उस काम के प्रभाव को, लोगों पर उसके प्रभाव और दुश्मन की ताकत को पहले ही देखना चाहिए। ऐसे काम पार्टी और जनता का ध्यान जुझारू जनसंघर्ष से हटाकर तेज भड़कीले कामों की ओर लगा सकते हैं और इस प्रकार पार्टी की जड़ों पर प्रहार करने का बहाना बन सकते हैं। इस प्रकार किसी भी स्थिति में इस आदर्श को आगे नहीं बढ़ाना है।

लेकिन गुप्त सैनिक विभाग कोई श्रापग्रस्त चीज नहीं है। वास्तव में यह तो अग्रिम पंक्ति है। क्रान्तिकारी पार्टी की 'गोलीमार पंक्ति' 'आधार' से पूरी तरह जुड़ी होनी चाहिए। 'आधार' जुझारू व गतिशील जन-पार्टी को बनना है। संगठन के लिए धन और हथियार संग्रह करने में इसीलिए कोई झिझक नहीं होनी चाहिए।

क्रान्ति

क्रान्ति से हमारा क्या आशय है, यह स्पष्ट है। इस शताब्दी में इसका सिर्फ एक ही अर्थ हो सकता है—जनता के लिए जनता का राजनीतिक शक्ति हासिल करना। वास्तव में

यही है 'क्रान्ति', बाकी सभी विद्रोह तो सिर्फ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूँजीवादी सड़ाँध को ही आगे बढ़ाते हैं। किसी भी हद तक लोगों से या उनके उद्देश्यों से जतायी हमदर्दी जनता से वास्तविकता नहीं छिपा सकती, लोग छल को पहचानते हैं। भारत में हम भारतीय श्रमिक के शासन से कम कुछ नहीं चाहते। भारतीय श्रमिकों को—भारत में साम्राज्यवादियों और उनके मददगार हटाकर जो कि उसी आर्थिक व्यवस्था के पैरोकार हैं, जिसकी जड़ें शोषण पर आधारित हैं—आगे आना है। हम गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाकर कष्ट नहीं उठाना चाहते। बुराइयाँ, एक स्वार्थी समूह की तरह, एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए तैयार हैं।

साम्राज्यवादियों को गद्दी से उतारने के लिए भारत का एकमात्र हथियार श्रमिक क्रान्ति है। कोई और चीज इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती। सभी विचारोंवाले राष्ट्रवादी एक उद्देश्य पर सहमत हैं कि साम्राज्यवादियों से आजादी हासिल हो। पर उन्हें यह समझने की भी जरूरत है कि उनके आन्दोलन की चालक शक्ति विद्रोही जनता है और उसकी जुझारू कार्रवाइयों से ही सफलता हासिल होगी। चूँकि इसका सरल समाधान नहीं हो सकता, इसलिए स्वयं को छलकर वे उस ओर लपकते हैं, जिसे वे आरज़ी इलाज, लेकिन झटपट और प्रभावशाली मानते हैं—अर्थात् चन्द सैकड़े दृढ़ आदर्शवादी राष्ट्रवादियों के सशस्त्र विद्रोह के जरिए विदेशी शासन को पलटकर राज्य का समाजवादी रास्ते पर पुनर्गठन। उन्हें समय की वास्तविकता में झाँककर देखना चाहिए। हथियार बड़ी संख्या में प्राप्त नहीं हैं और जुझारू जनता से अलग होकर अशिक्षित गुट की बगावत की सफलता का इस युग में कोई चांस नहीं है। राष्ट्रवादियों की सफलता के लिए उनकी पूरी कौम को हरकत में आना चाहिए और बगावत के लिए खड़ा होना चाहिए। और कौम कांग्रेस के लाऊडस्पीकर नहीं हैं, वरन वे मजदूर-किसान हैं, जो भारत की 95 प्रतिशत जनसंख्या है। राष्ट्र स्वयं को राष्ट्रवाद के विश्वास पर ही हरकत में लायेगा, यानी साम्राज्यवाद और पूँजीपति की गुलामी से मुक्ति के विश्वास दिलाने से।

हमें यह याद रखना चाहिए कि श्रमिक क्रान्ति के अतिरिक्त न किसी और क्रान्ति की इच्छा करनी चाहिए और न ही वह सफल हो सकती है।

कार्यक्रम

क्रान्ति का स्पष्ट और ईमानदार कार्यक्रम होना समय की जरूरत है और इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए मजबूत कार्रवाई होनी चाहिए।

1917 में अक्तूबर क्रान्ति से पूर्व, जब लेनिन अभी मास्को में भूमिगत थे तो उन्होंने सफल क्रान्ति के लिए तीन जरूरी शर्तें बतायी थीं—

1. राजनीतिक-आर्थिक परिस्थिति।

2. जनता के मन में विद्रोह-भावना।
3. एक क्रान्तिकारी पार्टी, जो पूरी तरह प्रशिक्षित हो और परीक्षा के समय जनता को नेतृत्व प्रदान कर सके।

भारत में पहली शर्त पूरी हो चुकी है, दूसरी व तीसरी शर्त अन्तिम रूप में अपनी पूर्ति की प्रतीक्षा कर रही हैं। इसके लिए हरकत में आना आजादी के सभी सेवकों का पहला काम है और इसी मुद्दे को सामने रखकर कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए। इसकी रूपरेखा नीचे दी जा रही है और उसके प्रत्येक अनुभाग सम्बन्धी सुझाव अनुसूची 'क' व 'ख' में दर्ज हैं–

1. बुनियादी काम–कार्यकर्ताओं के सामने सबसे पहली जिम्मेदारी है जनता को जुझारू काम के लिए तैयार व लामबन्द करना। हमें अन्धविश्वासों, भावनाओं, धार्मिकता या तटस्थता के आदर्शों से खेलने की जरूरत नहीं है। हमें जनता से सिर्फ प्याज के साथ रोटी का वायदा ही नहीं करना। ये वायदे सम्पूर्ण व ठोस होंगे और इन पर हम ईमानदारी और स्पष्टता से बात करेंगे। हम कभी भी उनके मन में भ्रमों का जमघट नहीं बनने देंगे। क्रान्ति जनता के लिए होगी। कुछ स्पष्ट निर्देश यह होंगे–

1. सामन्तवाद की समाप्ति।
2. किसानों के कर्जे समाप्त करना।
3. क्रान्तिकारी राज्य की ओर से भूमि का राष्ट्रीयकरण ताकि सुधरी हुई व साझी खेती स्थापित की जा सके।
4. रहने के लिए आवास की गारण्टी।
5. किसानों से लिये जानेवाले सभी खर्च बन्द करना। सिर्फ इकहरा भूमि-कर लिया जायेगा।
6. कारखानों का राष्ट्रीयकरण और देश में कारखाने लगाना।
7. आम शिक्षा।
8. काम करने के घण्टे जरूरत के अनुसार कम करना।

जनता ऐसे कार्यक्रम के लिए जरूर हामी भरेगी। सबसे जरूरी काम इस समय यही है कि हम लोगों तक पहुँचें। थोपी हुई अज्ञानता ने एक ओर से और बुद्धिजीवियों की उदासीनता ने दूसरी ओर से–शिक्षित क्रान्तिकारियों और हथौड़े-दराँतवाले उनके अभागे अर्धशिक्षित साथियों के बीच एक बनावटी दीवार खड़ी कर दी है। क्रान्तिकारियों को इस दीवार को अवश्य ही गिराना है। इसके लिए निम्न काम जरूरी हैं–

1. कांग्रेस के मंच का लाभ उठाना।
2. ट्रेड यूनियनों पर कब्जा करना और नयी यूनियनों व संगठनों को जुझारू रूप में स्थापित करना।
3. राज्यों की यूनियनें बनाकर उन्हें उपरोक्त बातों के आधार पर संगठित करना।

4. प्रत्येक सामाजिक व स्वयंसेवी संगठनों में—(यहाँ तक कि सहकारिता सोसायटियों), जिनसे जनता तक पहुँचने का अवसर मिलता है—गुप्त रूप से दाखिल होकर इनकी कार्रवाइयों को इस रूप में चलाना कि असल मुद्दे और उद्देश्यों को आगे बढ़ाया जा सके।
5. दस्तकारों की समितियाँ, मजदूरों और बौद्धिक काम करनेवालों की यूनियनें हर जगह स्थापित की जायें।

यह कुछ रास्ते हैं जिनसे पढ़े-लिखे, प्रशिक्षित क्रान्तिकारी लोगों तक पहुँच सकते हैं। और एक बार वहाँ पहुँच जायें तो प्रशिक्षण के जरिए पहले तो अपने अधिकारों की उत्साहपूर्वक पुष्टि कर सकते हैं और फिर हड़तालों और काम रोकने के तरीकों से जुझारू हल निकाल सकते हैं।

क्रान्तिकारी पार्टी

क्रान्तिकारियों के सक्रिय ग्रुप की मुख्य जिम्मेदारी, जनता तक पहुँचने और उन्हें सक्रिय बनाने की तैयारी में होती है। यही हैं वे चलते-फिरते दृढ़ इरादों के लोग जो राष्ट्र को जुझारू जीवनी शक्ति देंगे। ज्यों-ज्यों परिस्थितियाँ पकती हैं तो इन्हीं क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों—जो बूर्ज्वा व पेटी-बूर्ज्वा से आते हैं और कुछ समय तक इसी वर्ग से आते भी रहेंगे, लेकिन जिन्होंने स्वयं को इस वर्ग की परम्पराओं से अलग कर लिया होता है—से क्रान्तिकारी पार्टी बनेगी और फिर इसके गिर्द अधिक-से-अधिक सक्रिय मजदूर-किसान और छोटे दस्तकार राजनीतिक कार्यकर्ता जुड़ते रहेंगे। लेकिन मुख्य तौर पर यह क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी स्त्रियों व पुरुषों की पार्टी होगी, जिनकी मुख्य जिम्मेदारी यह होगी कि वे योजना बनायें, फिर उसे लागू करें, प्रोपेगण्डा या प्रचार करें, अलग-अलग यूनियनों में काम शुरू कर उनमें एकजुटता लायें, उनके एकजुट हमले की योजना बनायें, सेना व पुलिस को क्रान्ति-समर्थक बनायें और उनकी सहायता या अपनी अन्य शक्तियों से विद्रोह या आक्रमण की शक्ल में क्रान्तिकारी टकराव की स्थिति बनायें, लोगों को विद्रोह के लिए प्रयत्नशील करें और समय पड़ने पर निर्भीकता से नेतृत्व दे सकें।

वास्तव में वही आन्दोलन का दिमाग हैं। इसीलिए उन्हें दृढ़ चरित्र की जरूरत होगी, यानी पहलकदमी और क्रान्तिकारी नेतृत्व की क्षमता। उनकी समझ राजनीतिक, आर्थिक और ऐतिहासिक समस्याओं, सामाजिक रुझानों, प्रगतिशील विज्ञान, युद्ध के नये वैज्ञानिक तरीकों और उसकी कला आदि के अनुशासित भाव से किये गये गहरे अध्ययन पर आधारित होनी चाहिए। क्रान्ति परिश्रमी विचारकों और परिश्रमी कार्यकर्ताओं की पैदावार होती है। दुर्भाग्य से भारतीय क्रान्ति का बौद्धिक पक्ष हमेशा दुर्बल रहा है, इसलिए क्रान्ति की अत्यावश्यक चीजों और किये कामों के प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया जाता रहा। इसलिए एक क्रान्तिकारी को अध्ययन-मनन अपनी पवित्र

जिम्मेदारी बना लेना चाहिए ।

यह तो स्पष्ट है कि पार्टी कुछ विशेष मामलों में खुले रूप मे काम कर सकती है। जहाँ तक सम्भव हो, पार्टी को गुप्त नहीं होना चाहिए । इससे सन्देह नहीं रहेंगे और पार्टी को शक्ति व प्रतिष्ठा मिलेगी । पार्टी को बहुत बडी जिम्मेदारियाँ उठानी होंगी, इसलिए सुविधा की दृष्टि से पार्टी को कुछ समितियों में बाँटा जा सकता है जो प्रत्येक क्षेत्र के लिए विशेष कामों की देखभाल करेंगी । काम का यह विभाजन समय की आवश्यकता के अनुसार लचीला होना चाहिए या सदस्य की सम्भावनाएँ आँककर उसे किसी स्थानीय समिति में काम दिया जा सकता है । स्थानीय समिति, प्रान्तीय बोर्ड के अधीन होगी व बोर्ड सुप्रीम कौंसिल के अधीन । प्रान्त के भीतर सम्पर्क का काम पान्तीय बोर्ड के अधीन होगा । बिखरे-बिखरे सभी कामों या बिखरानेवाले तत्त्वों को रोकना चाहिए, लेकिन अधिक केन्द्रीयकरण की सम्भावना नही है, इसलिए उसकी अभी कोशिश भी नहीं करनी चाहिए ।

सभी स्थानीय समितियो को एक दूसरे से सम्पर्क रखते हुए काम करने चाहिए और समिति में एक सदस्य भी होना चाहिए । समिति छोटी, सयुक्त व कुशल हो और इसे वाद-विवाद-क्लब में पतित नहीं होने देना चाहिए ।

इसलिए प्रत्येक क्षेत्र मे क्रान्तिकारी पार्टी इस तरह हो—

(क) सामान्य समिति: भर्ती करना, मेना मे प्रचार, सामान्य नीति, संगठन, जन-सगठनों में सम्पर्क—(परिशिष्ट क) ।

(ख) वित्त समिति : समिति में महिला सदस्यो की संख्या अधिक हो सकती है । इस समिति के सिर पर सबसे मुश्किल कामो से भी मुश्किल काम निर्भर है, इसलिए सभी को खुले दिल से इसकी सहायता करनी चाहिए। धन के स्रोत प्राथमिकता के अनुसार हों—स्वैच्छिक चन्दा, जबरी चन्दा (सरकारी धन), विदेशी पूँजीपति या बैंक, विदेश में रहनेवालों की देशी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर कब्जा या गैरकानूनी तरीके, जैसे गबन । (अन्तिम दोनों हमारी नीति के विपरीत हैं और पार्टी को हानि पहुँचाते हैं, इसलिए इन्हें अधिक बढ़ावा नहीं देना चाहिए ।)

(ग) ऐक्शन कमेटी (कार्रवाई समिति) : इसका रूप—साबोताज, हथियार-संग्रह और विद्रोह का प्रशिक्षण देने के लिए एक गुप्त समिति ।

ग्रुप (क)—नवयुवक : शत्रु की खबरें एकत्र करना, स्थानीय सैनिक-सर्वेक्षण ।

ग्रुप (ख)—विशेषज्ञ : शस्त्र संग्रह, सैनिक-प्रशिक्षण आदि ।

(घ) स्त्री-समिति : यद्यपि जाहिरा तौर पर स्त्री-पुरुषो मे कोई भेदभाव नहीं रखा जाता तथापि पार्टी की सुरक्षा व सुविधा के लिए ऐसी समिति की जरूरत है जो अपने सदस्यों की पूरी जिम्मेदारी ओढ़ सके । उन्हें वित्त समिति का पूरा भार सौंपा जा सकता है और काफी हद तक सामान्य समिति के काम भी दिये जा सकते हैं । कार्रवाई समिति के

लिए इनमें अधिक सम्भावना नहीं है। इनकी प्रारम्भिक जिम्मेदारियाँ हैं—स्त्रियों को क्रांतिकारी बनाना और इनमें से प्रत्यक्ष सेवा के लिए सक्रिय सदस्य भर्ती करना।

ऊपर बताये गये कार्यक्रम से यह निष्कर्ष निकालना सम्भव है कि क्रान्ति या आजादी के लिए कोई छोटा रास्ता नहीं है। यह 'किसी सुन्दरी की तरह सुबह-सुबह हमें दिखायी नहीं देगी' और यदि ऐसा हुआ तो वह बड़ा मनहूस दिन होगा। बिना किसी बुनियादी काम के, बगैर जुझारू जनता के और बिना किसी पार्टी के जो [क्रान्ति] हर तरह से तैयार हो, तो यह एक असफलता होगी। इसीलिए हमें स्वयं को झिझोड़ना होगा। हमें हमेशा यह याद रखना चाहिए कि पूँजीवादी व्यवस्था चरमरा रही है और तबाही की ओर बढ़ रही है। दो या तीन साल में शायद इसका विनाश हो जाये। यदि आज भी हमारी शक्ति बिखरी रही और क्रान्तिकारी शक्तियाँ एकजुट होकर न बढ़ सकीं तो ऐसा संकट आयेगा कि हम उसे सँभालने के लिए तैयार नहीं होंगे। आइए, हम यह चेतावनी स्वीकार करें और दो या तीन वर्ष में क्रांति की ओर बढ़ने की योजना बनाएँ।

मैं नास्तिक क्यों हूँ ?

[भगतसिंह जब लाहौर जेल में थे, तब गदर पार्टी से सम्पर्क रखने के अपराध में भाई साहिब भाई रणधीरसिंह भी कैद भुगत रहे थे। भाई रणधीरसिंह की—अपनी रिहाई से कुछ दिन पहले—भगतसिंह से भेंट हुई। गदरी बाबों—बाबा हरनामसिंह कालासन्घिया व तेजासिंह चूहड़काना ने यह भेंट करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। भाई रणधीरसिंह ने एक बार यह कहकर कि भगतसिंह ने केश कटा दिये हैं, उनसे मिलने से इन्कार कर दिया था। इसके उत्तर में पत्र लिखकर भगतसिंह ने कहा था, "मैं सिख धर्म की अंग-अंग कटवाने की परम्परा का कायल हूँ। अभी तो मैंने एक ही अंग [केश] कटवाया है—यह भी पेट के लिए नहीं, देश के लिए—जल्दी ही गर्दन भी कटवाऊँगा। लेकिन एक सिख की तंगनज़री व तंगदिली का गिला जरूर रहेगा।"

इसके बाद भाई साहिब मुलाकात के लिए आये।

एक बार इसी विषय पर चर्चा करते हुए भगतसिंह ने बाबा सोहनसिंह भकना से कहा था, "हमारी पुरानी विरासत के दो पक्ष होते हैं, एक सांस्कृतिक और दूसरा मिथिहासिक। मैं सांस्कृतिक गुणों, जैसे—निष्काम देश-सेवा, बलिदान, विश्वासों पर अटल रहना—को पूरी सच्चाई से अपनाकर आगे बढ़ने की कोशिश में हूँ, लेकिन मिथिहासिक विचारों को, जोकि पुराने समय की समझ के अनुरूप हैं, वैसे-का-वैसा मानने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हूँ, क्योंकि

विज्ञान ने ज्ञान में खूब वृद्धि की है और वैज्ञानिक विचार अपनाकर ही भविष्य की समस्याएँ हल हो सकती हैं।" अब, भले ही साम्प्रदायिक तत्व यह कोशिश करते रहे हैं कि भगतसिंह के विचारों में गँदलापन लाया जाय, लेकिन ऐसा करना सम्भव नहीं है। भगतसिंह की रचनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण इस दस्तावेज़ (मैं नास्तिक क्यों हूँ?) ने भाई साहिब के सवालों के उत्तर देते हुए धर्म-सम्प्रदाय सम्बन्धी अस्पष्टता के लिए कोई आधार ही नहीं छोड़ा। इस दस्तावेज़ की रचना 5-6 अक्तूबर, 1930 को हुई थी।—सं.]

एक नयी समस्या उठ खड़ी हुई है—क्या मैं किसी अहंकार के कारण सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञानी ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करता हूँ? मैंने कभी कल्पना भी न की थी कि मुझे इस समस्या का सामना करना पडेगा। लेकिन अपने दोस्तों से बातचीत के दौरान मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मेरे कुछ दोस्त—यदि मित्रता का मेरा दावा गलत न हो—मेरे साथ अपने थोडे-से सम्पर्क में इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए उत्सुक हैं कि मै ईश्वर के अस्तित्व को नकारकर कुछ जरूरत से ज्यादा आगे जा रहा हूँ और मेरे घमण्ड ने कुछ हद तक मुझे इस अविश्वास के लिए उकसाया है। जी हाँ, यह एक गम्भीर समस्या है। मैं ऐसी कोई शेखी नही बघारता कि मैं मानवीय कमजोरियों से बहुत ऊपर हूँ। मैं एक मनुष्य हूँ, और इससे अधिक कुछ नही। कोई भी इससे अधिक होने का दावा नही कर सकता। एक कमजोरी मेरे अन्दर भी है। अहंकार मेरे स्वभाव का अंग है। अपने कामरेडों के बीच मुझे एक निरकुश व्यक्ति कहा जाता था। यहाँ तक कि मेरे दोस्त श्री बी. के दत्त भी मुझे कभी-कभी ऐसा कहते थे। कई मौको पर स्वेच्छाचारी कहकर मेरी निन्दा भी की गयी। कुछ दोस्तो को यह शिकायत है, और गम्भीर रूप से है, कि मैं अनचाहे ही अपने विचार उन पर थोपता हूँ और अपने प्रस्तावों को मनवा लेता हूँ। यह बात कुछ हद तक सही है, इससे मैं इन्कार नही करता। इसे अहंकार भी कहा जा सकता है। जहाँ तक अन्य प्रचलित मतों के मुकाबले हमारे अपने मत का सवाल है, मुझे निश्चय ही अपने मत पर गर्व है। लेकिन यह व्यक्तिगत नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यह केवल अपने विश्वास के प्रति न्यायोचित गर्व हो और इसको घमण्ड नहीं कहा जा सकता। घमण्ड या सही शब्दों में 'अहकार' तो स्वयं के प्रति अनुचित गर्व की अधिकता है। तो फिर क्या यह अनुचित गर्व है जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया, अथवा इस विषय का खूब सावधानी के साथ अध्ययन करने और उस पर खूब विचार करने के बाद मैंने ईश्वर पर अविश्वास किया? यह वह प्रश्न है जिसके बारे में मैं यहाँ बात करना चाहता हूँ। लेकिन पहले मैं यह साफ कर दूं कि आत्माभिमान और अहकार—दो अलग-अलग बातें हैं।

पहली बात तो मैं यह समझने में पूरी तरह से असमर्थ रहा हूँ कि अनुचित गर्व या वृथाभिमान किस प्रकार किसी व्यक्ति के ईश्वर में विश्वास करने के रास्ते में रोड़ा बन

सकता है । मैं वास्तव में किसी महान व्यक्ति की महानता को मान्यता न दूँ यह तभी हो सकता है जब मुझे भी थोड़ा ऐसा यश प्राप्त हो गया हो जिसके या तो मैं योग्य नहीं हूँ या मेरे अन्दर वो गुण नहीं हैं जो कि इसके लिए आवश्यक अथवा अनिवार्य हैं । यहाँ तक तो समझ में आता है । लेकिन यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति, जो ईश्वर में विश्वास रखता हो, सहसा अपने व्यक्तिगत अहंकार के कारण उसमें विश्वास करना बन्द कर दे ? दो ही रास्ते सम्भव हैं । या तो मनुष्य अपने को ईश्वर का प्रतिद्वन्द्वी समझने लगे या वह स्वयं को ही ईश्वर मानना शुरू कर दे । इन दोनों ही अवस्थाओं में वह सच्चा नास्तिक नहीं बन सकता । पहली अवस्था में तो वह अपने प्रतिद्वन्द्वी के अस्तित्व को नकारता ही नहीं है । दूसरी अवस्था में भी वह एक ऐसी चेतना के अस्तित्व को मानता है, जो पर्दे के पीछे से प्रकृति की सभी गतिविधियों का संचालन करती है । हमारे लिए इस बात का कोई महत्त्व नहीं कि वह अपने को ही परम-आत्मा समझता है या यह समझता है कि वह परम-चेतना उससे परे कुछ और है । मूल बात तो मौजूद है । उसका विश्वास मौजूद है । वह किसी भी तरह एक नास्तिक नहीं है । तो, मैं यह कहना चाहता था कि न तो मैं पहली श्रेणी में आता हूँ न दूसरी में । मै तो उस सर्वशक्तिमान परम-आत्मा के अस्तित्व से ही इन्कार करता हूँ । मैं इससे क्यों इन्कार करता हूँ, इसको बाद में देखेंगे । यहाँ तो मैं एक बात यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह अहंकार नहीं है जिसने मुझे नास्तिकता के सिद्धान्त को ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया । न तो मैं एक प्रतिद्वन्द्वी हूँ न ही एक अवतार और न ही स्वय परम-आत्मा । एक बात निश्चित है, यह अहकार नहीं है जो मुझे इस भाँति सोचने की ओर ले गया । इस अभियोग को अस्वीकार करने के लिए, आइए, तथ्यों पर गौर करे । मेरे इन दोस्तों के अनुसार, दिल्ली बम केस और लाहौर षड्यन्त्र केस के दौरान मुझे जो अनावश्यक यश मिला, शायद उस कारण मैं वृथा-भिमानी हो गया हूँ ! तो फिर आइए, देखें कि क्या यह पक्ष सही है । मेरा नास्तिकतावाद कोई अभी हाल की उत्पत्ति नही है । मैंने तो ईश्वर पर विश्वास करना तब छोड़ दिया था जब मैं एक अप्रसिद्ध नौजवान था, जिसके अस्तित्व के बारे में मेरे उपरोक्त दोस्तों को कुछ पता भी न था । कम-से-कम एक कालेज का विद्यार्थी तो ऐसे किसी अनुचित अहंकार को नहीं पाल-पोस सकता जो उसे नास्तिकता की ओर ले जाये । यद्यपि मैं कुछ अध्यापकों का चहेता था तथा कुछ अन्य को मैं अच्छा नहीं लगता था, पर मैं कभी बहुत मेहनती अथवा पढ़ाकू विद्यार्थी नही रहा । अहकार-जैसी भावना में फँसने का तो कोई मौका ही न मिल सका । मैं तो एक बहुत लज्जालु स्वभाव का लड़का था, जिसकी भविष्य के बारे में कुछ निराशावादी प्रकृति थी । और उन दिनों मैं पूर्ण नास्तिक नहीं था । मेरे बाबा, जिनके प्रभाव में मैं बड़ा हुआ, एक रूढ़िवादी आर्यसमाजी हैं । एक आर्यसमाजी और कुछ भी हो, नास्तिक नहीं होता । अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद मैंने डी. ए. वी. स्कूल, लाहौर में प्रवेश लिया और पूरे एक साल उसके छात्रावास में रहा । वहाँ सुबह और शाम की प्रार्थना के अतिरिक्त मैं घण्टों गायत्री मन्त्र जपा करता था । उन

दिनों मैं पूरा भक्त था। बाद में मैंने अपने पिता के साथ रहना शुरू किया। जहाँ तक धार्मिक रूढ़िवादिता का प्रश्न है, वह एक उदारवादी व्यक्ति हैं। उन्हीं की शिक्षा से मुझे स्वतन्त्रता के ध्येय के लिए अपने जीवन को समर्पित करने की प्रेरणा मिली। किन्तु वे नास्तिक नहीं हैं। उनका ईश्वर में दृढ़ विश्वास है। वे मुझे प्रतिदिन पूजा-प्रार्थना के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। इस प्रकार से मेरा पालन-पोषण हुआ। असहयोग आन्दोलन के दिनों में मैंने राष्ट्रीय कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आकर ही मैंने सारी धार्मिक समस्याओं, यहाँ तक कि ईश्वर के बारे में उदारतापूर्वक सोचना, विचारना तथा उसकी आलोचना करना शुरू किया। पर अभी भी मैं पक्का आस्तिक था। उस समय तक मैंने अपने बिना काटे व सँवारे हुए लम्बे बालों को रखना शुरू कर दिया था, यद्यपि मुझे कभी भी सिक्ख या अन्य धर्मों की पौराणिकता और सिद्धान्तों मे विश्वास न हो सका था। किन्तु मेरी ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ निष्ठा थी।

बाद में मैं क्रान्तिकारी पार्टी से जुड़ा। वहाँ पर जिस पहले नेता से मेरा सम्पर्क हुआ, वे तो पक्का विश्वास न होते हुए भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने का साहस ही नहीं कर सकते थे। ईश्वर के बारे में मेरे हठपूर्वक पूछते रहने पर वे कहते, "जब इच्छा हो तब पूजा कर लिया करो।" यह नास्तिकता है जिसमें इस विश्वास को अपनाने के साहस का अभाव है। दूसरे नेता जिनके मैं सम्पर्क में आया वे पक्के श्रद्धालु थे। उनका नाम बता दूँ—आदरणीय कामरेड शचीन्द्रनाथ सान्याल, जो कि आजकल काकोरी षड्यन्त्र केस के सिलसिले में आजीवन कारावास भोग रहे हैं। उनकी अकेली प्रसिद्ध पुस्तक 'बन्दी जीवन' में पहले पेज से ही ईश्वर की महिमा का जोर-शोर से गान है। उस सुन्दर पुस्तक के दूसरे भाग के अन्तिम पेज में उन्होंने ईश्वर के ऊपर प्रशंसा के जो रहस्यात्मक—वेदान्त के कारण—पुष्प बरसाये हैं वे उनके विचारों का अजीबो-गरीब हिस्सा हैं। 28 जनवरी, 1925 को पूरे भारत मे जो 'दि रिवोल्यूशनरी' (क्रान्तिकारी) पर्चा बाँटा गया था वह अभियोग पक्ष की कहानी के अनुसार उन्हीं के बौद्धिक श्रम का परिणाम है। अब इस प्रकार के गुप्त कार्यों में कोई प्रमुख नेता अनिवार्यतः अपने विचारों को ही रखता है, जो उसे स्वयं बहुत प्रिय होते हैं और अन्य कार्यकर्त्ताओं को उनसे सहमत होना होता है, उन मतभेदों के बावजूद जो उनको हो सकते हैं। उस पर्चे में पूरा एक पैराग्राफ उस सर्वशक्तिमान तथा उसकी लीला एवं कार्यों की प्रशंसा से भरा पड़ा था। यह सब रहस्यवाद है। मैं जो कहना चाहता था वह यह है कि ईश्वर के प्रति अविश्वास का भाव क्रान्तिकारी दल में भी प्रस्फुटित नहीं हुआ था। काकोरी के प्रसिद्ध सभी चार शहीदों ने अपने अन्तिम दिन भजन-प्रार्थना में गुजारे थे। रामप्रसाद बिस्मिल एक रूढ़िवादी आर्यसमाजी थे। समाजवाद तथा साम्यवाद में अपने वृहत अध्ययन के बावजूद, राजेन्द्र लाहिड़ी उपनिषद एवं गीता के श्लोकों के उच्चारण की अपनी अभिलाषा को दबा न सके। मैंने उन सबमें सिर्फ एक ही व्यक्ति को देखा जो कभी प्रार्थना नहीं करता था और कहता था, "दर्शनशास्त्र मनुष्य की दुर्बलता अथवा ज्ञान के सीमित

होने के कारण उत्पन्न होता है।" वह भी आजीवन निर्वासन की सजा भोग रहा है। परन्तु उसने भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने की कभी हिम्मत नहीं की।

इस समय तक मैं केवल एक रोमाण्टिक आदर्शवादी क्रान्तिकारी था। अब तक हम दूसरों का अनुसरण करते थे, अब अपने कन्धों पर जिम्मेदारी उठाने का समय आया था। कुछ समय तक तो, अवश्यम्भावी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पार्टी का अस्तित्व ही असम्भव-सा दिखा। उत्साही कामरेडों—नहीं नेताओं—ने भी हमारा उपहास करना शुरू कर दिया। कुछ समय तक तो मुझे यह डर लगा कि एक दिन मैं भी कहीं अपने कार्यक्रम की व्यर्थता के बारे में आश्वस्त न हो जाऊँ। वह मेरे क्रान्तिकारी जीवन का एक निर्णायक बिन्दु था। 'अध्ययन' की पुकार मेरे मन के गलियारों में गूँज रही थी—विरोधियों द्वारा रखे गए तर्कों का सामना करने योग्य बनने के लिए अध्ययन करो। अपने मत के समर्थन में तर्क देने के लिए सक्षम होने के वास्ते पढ़ो। मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। इससे मेरे पुराने विचार व विश्वास अद्भुत रूप से परिष्कृत हुए। हिंसात्मक तरीकों को अपनाने का रोमांस, जो कि हमारे पुराने साथियों में अत्यधिक व्याप्त था, की जगह गम्भीर विचारों ने ले ली। अब रहस्यवाद और अन्धविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं रहा। यथार्थवाद हमारा आधार बना। हिंसा तभी न्यायोचित है जब किसी विकट आवश्यकता में उसका सहारा लिया जाये। अहिंसा सभी जन-आन्दोलनों का अनिवार्य सिद्धान्त होना चाहिए। यह तो रही तरीकों की बात। सबसे आवश्यक बात उस आदर्श की स्पष्ट धारणा है जिसके लिए हमें लड़ना है। चूँकि उस समय कोई विशेष क्रान्तिकारी कार्य नहीं हो रहा था अतः मुझे विश्व-क्रान्ति के अनेक आदर्शों के बारे में पढ़ने का खूब मौका मिला। मैंने अराजकतावादी नेता बाकुनिन को पढ़ा, कुछ साम्यवाद के पिता मार्क्स को, किन्तु ज्यादातर लेनिन, त्रात्स्की व अन्य लोगों को पढ़ा जो अपने देश में सफलतापूर्वक क्रान्ति लाये थे। वे सभी नास्तिक थे। बाकुनिन की पुस्तक 'ईश्वर और राज्य' इस विषय पर, यद्यपि आंशिक रूप में, एक अच्छा अध्ययन है। बाद में मुझे निरलम्ब स्वामी द्वारा लिखी एक पुस्तक 'सहज ज्ञान' मिली। इसमें केवल एक रहस्यवादी नास्तिकता थी। इस विषय के प्रति मेरा गहरा रुझान हो गया। 1926 के अन्त तक मुझे इस बात का विश्वास हो गया कि एक सर्वशक्तिमान परम-आत्मा की बात—जिसने ब्रह्माण्ड का सृजन किया, दिग्दर्शन और संचालन किया—एक कोरी बकवास है। मैंने अपने इस अविश्वास को प्रदर्शित किया। मैंने इस विषय पर अपने दोस्तों से बहस की। मैं एक घोषित नास्तिक हो चुका था। किन्तु इसका अर्थ क्या था, यह मैं आगे बतलाऊँगा।

मई, 1927 में मैं लाहौर में गिरफ्तार हुआ। यह गिरफ्तारी अकस्मात हुई थी। मुझे इसका जरा भी अहसास नहीं था कि पुलिस को मेरी तलाश है। अचानक एक बगीचे से गुजरते हुए मैंने पाया कि मैं पुलिसवालों से घिरा हुआ हूँ। मुझे स्वयं आश्चर्य हुआ कि मैं उस समय बहुत शान्त रहा। न तो मुझे कोई सनसनी महसूस हुई न ही जरा भी उत्तेजना

का अनुभव हुआ। मुझे पुलिस हिरासत में ले लिया गया था। अगले दिन मुझे रेलवे पुलिस हवालात में ले जाया गया, जहाँ मुझे पूरा एक महीना काटना पड़ा। पुलिस अफसरों से कई दिनों की बातचीत के बाद मुझे ऐसा लगा कि उन्हें मेरे काकोरी दल के साथ सम्बन्धों के बारे में तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्धित मेरी गतिविधियों के बारे में कुछ जानकारी है। उन्होंने मुझे बताया कि मैं लखनऊ में था जब वहाँ मुकदमा चल रहा था, कि मैंने उन्हें छुड़ाने की किसी योजना पर बात की थी, कि उनकी सहमति पाने के बाद हमने कुछ बम प्राप्त किये थे, कि 1926 में दशहरा के अवसर पर उन बमो में से एक परीक्षण के लिए भीड़ पर फेंका गया। उसके बाद मेरे भले के लिए उन्होंने मुझे बताया कि यदि मैं क्रान्तिकारी दल की गतिविधियों पर प्रकाश डालनेवाला एक वक्तव्य दे दूँ तो मुझे गिरफ्तार नहीं किया जायेगा और इसके विपरीत मुझे अदालत में मुखबिर की तरह पेश किये बगैर रिहा कर दिया जायेगा और इनाम दिया जायेगा। मैं इस प्रस्ताव पर हँसा। यह सब बेकार की बात थी। हम लोगों की भाँति विचार रखनेवाले अपनी निर्दोष जनता पर बम नहीं फेंका करते। एक दिन सुबह सी.आई.डी. के वरिष्ठ अधीक्षक श्री न्यूमन मेरे पास आये। लम्बी-चौड़ी सहानुभूतिपूर्ण बातो के बाद उन्होंने मुझे, अपनी समझ में, यह अत्यन्त दुखद समाचार दिया कि यदि मैंने उनके द्वारा माँगा गया वक्तव्य नहीं दिया तो वे मुझ पर काकोरी-केस से सम्बन्धित विद्रोह छेड़ने के षड्यन्त्र तथा दशहरा बम उपद्रव में क्रूर हत्याओं के लिए मुकदमा चलाने पर बाध्य होंगे। और आगे उन्होंने मुझे यह भी बताया कि उनके पास मुझे सजा दिलाने व [फाँसी पर] लटकवाने के लिए उचित प्रमाण मौजूद हैं। उन दिनों मुझे यह विश्वास था—यद्यपि मैं बिल्कुल निर्दोष था—कि पुलिस यदि चाहे तो ऐसा कर सकती है। उसी दिन से कुछ पुलिस अफसरों ने मुझे नियम से दोनों समय ईश्वर की स्तुति करने के लिए फुसलाना शुरू कर दिया। पर अब मैं एक नास्तिक था। मै स्वयं के लिए यह बात तय करना चाहता था कि क्या शान्ति और आनन्द के दिनों मे ही मैं नास्तिक होने का दम्भ भरता हूँ अथवा ऐसे कठिन समय में भी मैं उन सिद्धान्तों पर अडिग रह सकता हूँ। बहुत सोचने के बाद मैंने यह निश्चय किया कि किसी भी तरह ईश्वर पर विश्वास तथा प्रार्थना मैं नहीं कर सकता। न ही मैंने एक क्षण के लिए भी अरदास की। यही असली परीक्षण था और इसमें मैं सफल रहा। एक क्षण को भी अन्य बातों की कीमत पर अपनी गर्दन बचाने की मेरी इच्छा नहीं हुई। अब मैं एक पक्का नास्तिक था और तब से लगातार हूँ। इस परीक्षण पर खरा उतरना आसान काम न था। 'विश्वास' कष्टों को हल्का कर देता है, यहाँ तक कि उन्हें सुखकर बना सकता है। ईश्वर से मनुष्य को अत्यधिक सांत्वना देनेवाला एक आधार मिल सकता है। 'उसके' बिना मनुष्य को स्वय अपने ऊपर निर्भर होना पड़ता है। तूफान और झंझावात के बीच अपने पाँवों पर खड़ा रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है। परीक्षा की इन घड़ियों में अहंकार, यदि है, तो भाप बनकर उड़ जाता है और मनुष्य आम विश्वास को ठुकराने का साहस नहीं कर पाता। पर यदि करता है, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है

वर्तमान एवं भविष्य, इसके क्यों और कहाँ से को—समझने का प्रयास किया तो सीधे प्रमाणों के भारी अभाव में हर व्यक्ति ने इन प्रश्नों को अपने-अपने ढंग से हल किया। यही कारण है कि विभिन्न धार्मिक मतों के मूल तत्त्व में ही हमें इतना अन्तर मिलता है जो कभी-कभी तो वैमनस्य तथा झगड़े का रूप ले लेता है। न केवल पूर्व और पश्चिम के दर्शनों में मतभेद है, बल्कि प्रत्येक गोलार्द्ध के विभिन्न मतों में आपस में अन्तर है। एशियायी धर्मों में, इस्लाम तथा हिन्दू धर्मों में जरा भी एकरूपता नहीं है। भारत में ही बुद्ध तथा जैन धर्म उस ब्राह्मणवाद से बहुत अलग हैं, जिसमें स्वयं आर्यसमाज व सनातन धर्म-जैसे विरोधी मत पाये जाते हैं। पुराने समय का एक अन्य स्वतन्त्र विचारक चार्वाक है। उसने ईश्वर को पुराने समय में ही चुनौती दी थी। यह सभी मत एक-दूसरे से मूलभूत प्रश्नों पर मतभेद रखते हैं और हर व्यक्ति अपने को सही समझता है। यही तो दुर्भाग्य की बात है। बजाय इसके कि हम पुराने विद्वानों एवं विचारकों के अनुभवों तथा विचारों को भविष्य में अज्ञानता के विरुद्ध लड़ाई का आधार बनायें और इस रहस्यमय प्रश्न को हल करने की कोशिश करें—हम आलसियों की तरह, जो कि हम सिद्ध हो चुके हैं, विश्वास की; उनके कथन में अविचल एवं संशयहीन विश्वास की—चीख-पुकार मचाते रहते हैं और इस प्रकार मानवता के विकास को जड़ बनाने के अपराधी हैं।

प्रत्येक मनुष्य को, जो विकास के लिए खड़ा है, रूढ़िगत विश्वासों के हर पहलू की आलोचना तथा उन पर अविश्वास करना होगा और उनको चुनौती देनी होगी। प्रत्येक प्रचलित मत की हर बात को हर कोने से तर्क की कसौटी पर कसना होगा। यदि काफी तर्क के बाद भी वह किसी सिद्धान्त अथवा दर्शन के प्रति प्रेरित होता है, तो उसके विश्वास का स्वागत है। उसका तर्क असत्य, भ्रमित या छलावा और कभी-कभी मिथ्या हो सकता है। लेकिन उसको सुधारा जा सकता है, क्योंकि विवेक उसके जीवन का दिशा-सूचक है। पर निरा विश्वास और अन्धविश्वास खतरनाक है। यह मस्तिष्क को मूढ़ तथा मनुष्य को प्रतिक्रियावादी बना देता है। जो मनुष्य अपने को यथार्थवादी होने का दावा करता है उसे समस्त प्राचीन विश्वासों को चुनौती देनी होगी। यदि वे तर्क का प्रहार न सह सके तो टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेंगे। तब उस व्यक्ति का पहला काम होगा, तमाम पुराने विश्वासों को धराशायी करके नये दर्शन की स्थापना के लिए जगह साफ करना। यह तो नकारात्मक पक्ष हुआ। इसके बाद सही कार्य शुरू होगा, जिसमें पुनर्निर्माण के लिए पुराने विश्वासों की कुछ बातों का प्रयोग किया जा सकता है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं प्रारम्भ में ही मानता हूँ कि इस दिशा में मैं अभी कोई विशेष अध्ययन नहीं कर पाया हूँ। एशियायी दर्शन को पढ़ने की मेरी बड़ी लालसा थी पर ऐसा करने का मुझे कोई संयोग या अवसर नहीं मिला। किन्तु जहाँ तक इस विवाद के नकारात्मक पक्ष की बात है, मैं प्राचीन विश्वासों के ठोसपन पर प्रश्न उठाने के सम्बन्ध में आश्वस्त हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि एक चेतन, परम-आत्मा का, जो कि प्रकृति की गति का दिग्दर्शन एवं संचालन करती है, कोई अस्तित्व नहीं है। हम प्रकृति में विश्वास

करते हैं और समस्त प्रगति का ध्येय मनुष्य द्वारा, अपनी सेवा के लिए, प्रकृति पर विजय पाना है। इसको दिशा देने के लिए पीछे कोई चेतन शक्ति नहीं है। यही हमारा दर्शन है।

जहाँ तक नकारात्मक पहलू की बात है, हम आस्तिकों से कुछ प्रश्न करना चाहते हैं—

(i) यदि, जैसा कि आपका विश्वास है, एक सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञानी ईश्वर है जिसने कि पृथ्वी या विश्व की रचना की, तो कृपा करके मुझे यह बतायें कि उसने यह रचना क्यों की? कष्टों और आफतों से भरी यह दुनिया—असंख्य दुखों के शाश्वत और अनन्त गठबन्धनों से ग्रसित! एक भी प्राणी पूरी तरह सुखी नहीं!

कृपया, यह न कहें कि यही उसका नियम है। यदि वह किसी नियम से बँधा है तो वह सर्वशक्तिमान नहीं। फिर तो वह भी हमारी ही तरह गुलाम है। कृपा कर यह भी न कहें कि यह उसका शुग़ल है। नीरो ने सिर्फ एक रोम जलाकर राख किया था। उसने चन्द लोगों की हत्या की थी। उसने तो बहुत थोड़ा दुख पैदा किया, अपने शौक और मनोरंजन के लिए। और उसका इतिहास में क्या स्थान है? उसे इतिहासकार किस नाम से बुलाते हैं? सभी विषैले विशेषण उस पर बरसाये जाते हैं। जालिम, निर्दयी, शैतान-जैसे शब्दों से नीरो की भर्त्सना में पृष्ठ-के-पृष्ठ रँगे पड़े हैं। एक चंगेज खाँ ने अपने आनन्द के लिए कुछ हजार जानें ले लीं और आज हम उसके नाम से घृणा करते हैं। तब फिर तुम उस सर्वशक्तिमान अनन्त नीरो को जो हर दिन, हर घण्टे और हर मिनट असंख्य दुख देता रहा है और अभी भी दे रहा है, किस तरह न्यायोचित ठहराते हो? फिर तुम उसके उन दुष्कर्मों की हिमायत कैसे करोगे, जो हर पल चंगेज़ के दुष्कर्मो को भी मात दिये जा रहे हैं? मैं पूछता हूँ कि उसने यह दुनिया बनायी ही क्यों थी—ऐसी दुनिया जो सचमुच का नर्क है, अनन्त और गहन वेदना का घर है? सर्वशक्तिमान ने मनुष्य का सृजन क्यों किया, जबकि उसके पास मनुष्य का सृजन न करने की ताकत थी? इन सब बातों का तुम्हारे पास क्या जवाब है? तुम यह कहोगे कि यह सब अगले जन्म में, इन निर्दोष कष्ट सहनेवालों को पुरस्कार और गलती करनेवालों को दण्ड देने के लिए हो रहा है। ठीक है, ठीक है। तुम कब तक उस व्यक्ति को उचित ठहराते रहोगे जो हमारे शरीर को जख्मी करने का साहस इसलिए करता है कि बाद में इस पर बहुत कोमल तथा आरामदायक मलहम लगायेगा? ग्लैडियेटर संस्था के व्यवस्थापकों तथा सहायकों का यह काम कहाँ तक उचित था कि एक भूखे-खूँख्वार शेर के सामने मनुष्य को फेंक दो कि यदि वह उस जंगली जानवर से बचकर अपनी जान बचा लेता है तो उसकी खूब देख-भाल की जायेगी? इसलिए मैं पूछता हूँ, "उस परम चेतन और सर्वोच्च सत्ता ने इस विश्व और उसमें मनुष्यों का सृजन क्यों किया? आनन्द लूटने के लिए? तब उसमें और नीरो में क्या फर्क है?"

मुसलमानो और ईसाइयो! हिन्दू-दर्शन के पास अभी और भी तर्क हो सकते हैं। मैं

तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारे पास ऊपर पूछे गये प्रश्नों का क्या उत्तर है ? तुम तो पूर्वजन्म में विश्वास नहीं करते । तुम तो हिन्दुओं की तरह यह तर्क पेश नहीं कर सकते कि प्रत्यक्षतः निर्दोष व्यक्तियों के कष्ट उनके पूर्वजन्मों के कुकर्मों का फल है । मैं तुमसे पूछता हूँ कि उस सर्वशक्तिशाली ने विश्व की उत्पत्ति के लिए छः दिन मेहनत क्यों की और यह क्यों कहा था कि सब ठीक है । उसे आज ही बुलाओ, उसे पिछला इतिहास दिखाओ । उसे मौजूदा परिस्थितियों का अध्ययन करने दो । फिर हम देखेंगे कि क्या वह आज भी यह कहने का साहस करता है—सब ठीक है !

कारावास की काल-कोठरियों से लेकर, झोंपड़ियों तथा बस्तियों में भूख से तड़पते लाखों-लाख इन्सानों के समुदाय से लेकर, उन शोषित मजदूरों से लेकर जो पूँजीवादी पिशाच द्वारा खून चूसने की क्रिया को धैर्यपूर्वक या कहना चाहिए, निरुत्साह होकर देख रहे हैं तथा उस मानव-शक्ति की बर्बादी देख रहे हैं जिसे देखकर कोई भी व्यक्ति, जिसे तनिक भी सहज ज्ञान है, भय से सिहर उठेगा; और अधिक उत्पादन को जरूरतमन्द लोगों में बाँटने के बजाय समुद्र में फेंक देने को बेहतर समझने से लेकर राजाओं के उन महलों तक—जिनकी नींव मानव की हड्डियों पर पड़ी है उसको यह सब देखने दो और फिर कहे—''सबकुछ ठीक है ।'' क्यों और किसलिए ? यही मेरा प्रश्न है । तुम चुप हो ? ठीक है, तो मैं अपनी बात आगे बढ़ाता हूँ ।

और तुम हिन्दुओ, तुम कहते हो कि आज जो लोग कष्ट भोग रहे हैं, ये पूर्वजन्म के पापी हैं । ठीक है । तुम कहते हो आज के उत्पीड़क पिछले जन्मों में साधु पुरुष थे, अतः वे सत्ता का आनन्द लूट रहे हैं । मुझे यह मानना पड़ता है कि आपके पूर्वज बहुत चालाक व्यक्ति थे । उन्होंने ऐसे सिद्धान्त गढ़े जिनमें तर्क और अविश्वास के सभी प्रयासों को विफल करने की काफी ताकत है । लेकिन हमं यह विश्लेषण करना है कि ये बातें कहाँ तक टिकती हैं ।

न्यायशास्त्र के सर्वाधिक प्रसिद्ध विद्वानों के अनुसार, दण्ड को अपराधी पर पड़नेवाले असर के आधार पर, केवल तीन या चार कारणों से उचित ठहराया जा सकता है । वे हैं—प्रतिकार, भय तथा सुधार । आज सभी प्रगतिशील विचारकों द्वारा प्रतिकार के सिद्धान्त की निन्दा की जाती है । भयभीत करने के सिद्धान्त का भी अन्त वही है । केवल सुधार करने का सिद्धान्त ही आवश्यक है और मानवता की प्रगति का अटूट अंग है । इसका उद्देश्य अपराधी को एक अत्यन्त योग्य तथा शान्तिप्रिय नागरिक के रूप में समाज को लौटाना है । किन्तु यदि हम यह बात मान भी लें कि कुछ मनुष्यों ने (पूर्व जन्म में) पाप किये हैं तो ईश्वर द्वारा उन्हें दिये गये दण्ड की प्रकृति क्या है ? तुम कहते हो कि वह उन्हें गाय, बिल्ली, पेड़, जड़ी-बूटी या जानवर बनाकर पैदा करता है । तुम ऐसे 84 लाख दण्डों को गिनाते हो । मैं पूछता हूँ कि मनुष्य पर सुधारक के रूप में इनका क्या असर है ? तुम ऐसे कितने व्यक्तियों से मिले हो जो यह कहते हैं कि वे किसी पाप के कारण पूर्वजन्म में गदहा के रूप में पैदा हुए थे ? एक भी नहीं ? अपने पुराणों से उदाहरण मत दो । मेरे पास तुम्हारी पौराणिक कथाओ

के लिए कोई स्थान नहीं है। और फिर, क्या तुम्हें पता है कि दुनिया में सबसे बड़ा पाप गरीब होना है? गरीबी एक अभिशाप है, यह एक दण्ड है। मैं पूछता हूँ कि अपराध-विज्ञान, न्यायशास्त्र या विधिशास्त्र के एक ऐसे विद्वान की आप कहाँ तक प्रशंसा करेंगे जो किसी ऐसी दण्ड-प्रक्रिया की व्यवस्था करे जो कि अनिवार्यतः मनुष्य को और अधिक अपराध करने को बाध्य करे? क्या तुम्हारे ईश्वर ने यह नहीं सोचा था? या उसको भी ये सारी बातें—मानवता द्वारा अकथनीय कष्टों के झेलने की कीमत पर—अनुभव से सीखनी थीं? तुम क्या सोचते हो—किसी गरीब तथा अनपढ़ परिवार, जैसे एक चमार या मेहतर के यहाँ पैदा होने पर इन्सान का भाग्य क्या होगा? चूँकि वह गरीब है, इसलिए पढ़ाई नहीं कर सकता। वह अपने उन साथियों से तिरस्कृत एवं त्यक्त रहता है जो ऊँची जाति में पैदा होने के कारण अपने को उससे ऊँचा समझते हैं। उसका अज्ञान, उसकी गरीबी तथा उससे किया गया व्यवहार उसके हृदय को समाज के प्रति निष्ठुर बना देते हैं। मान लो यदि वह कोई पाप करता है तो उसका फल कौन भोगेगा? ईश्वर, वह स्वयं या समाज के मनीषी? और उन लोगों के दण्ड के बारे में तुम क्या कहोगे जिन्हें दम्भी एवं घमण्डी ब्राह्मणों ने जान-बूझकर अज्ञानी बनाये रखा तथा जिन्हें तुम्हारी ज्ञान की पवित्र पुस्तकों—वेदों के कुछ वाक्य सुन लेने के कारण कान में पिघले सीसे की धारा को सहने की सजा भुगतनी पड़ती थी? यदि वे कोई अपराध करते हैं तो उसके लिए कौन जिम्मेदार होगा और उसका प्रहार कौन सहेगा? मेरे प्रिय दोस्तो! ये सारे सिद्धान्त विशेषाधिकार युक्त लोगों के आविष्कार हैं। ये अपनी हथियाई हुई शक्ति, पूँजी तथा उच्चता को इन सिद्धान्तों के आधार पर सही ठहराते हैं। जी हाँ, शायद वह अपटन सिंक्लेयर ही था, जिसने किसी जगह लिखा था कि मनुष्य को बस (आत्मा की) अमरता में विश्वास दिला दो और उसके बाद उसका सारा धन व सम्पत्ति लूट लो। वह बगैर बड़बड़ाये इस कार्य में तुम्हारी सहायता करेगा। धर्म के उपदेशकों तथा सत्ता के स्वामियों के गठबन्धन से ही जेल, फाँसीघर, कोड़े और ये सिद्धान्त उपजते हैं।

मैं पूछता हूँ कि तुम्हारा सर्वशक्तिशाली ईश्वर हर व्यक्ति को उस समय क्यों नहीं रोकता है जब वह कोई पाप या अपराध कर रहा होता है? ये तो वह बहुत आसानी से कर सकता है। उसने क्यों नहीं लड़ाकू राजाओं को या उनके अन्दर लड़ने के उन्माद को समाप्त किया और इस प्रकार विश्वयुद्ध द्वारा मानवता पर पड़नेवाली विपत्तियों से उसे क्यों नहीं बचाया? उसने अंग्रेजों के मस्तिष्क में भारत को मुक्त कर देने हेतु भावना क्यों नहीं पैदा की? वह क्यों नहीं पूँजीपतियों के हृदय में यह परोपकारी उत्साह भर देता कि वे उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत सम्पत्ति का अपना अधिकार त्याग दें और इस प्रकार न केवल सम्पूर्ण श्रमिक समुदाय, वरन समस्त मानव-समाज को पूँजीवाद की बेड़ियों से मुक्त करें। आप समाजवाद की व्यावहारिकता पर तर्क करना चाहते हैं, मैं इसे आपके सर्वशक्तिमान पर छोड़ देता हूँ कि वह इसे लागू करे। जहाँ तक जन सामान्य की भलाई की बात है, लोग समाजवाद के गुणों को मानते हैं, पर वह इसके व्यावहारिक न होने का बहाना

लेकर इसका विरोध करते हैं। चलो, आपका परमात्मा आये और वह हर चीज को सही तरीके से कर दे। अब घुमा-फिराकर तर्क करने का प्रयास न करें, वह बेकार की बातें हैं। मैं आपको यह बता दूँ कि अंग्रेजों की हुकूमत यहाँ इसलिए नहीं है कि ईश्वर चाहता है, बल्कि इसलिए कि उनके पास ताकत है और हममें उनका विरोध करने की हिम्मत नहीं। वे हमें अपने प्रभुत्व में ईश्वर की सहायता से नहीं रखे हुए हैं बल्कि बन्दूकों, राइफलों, बम और गोलियों, पुलिस और सेना के सहारे रखे हुए हैं। यह हमारी ही उदासीनता है कि वे समाज के विरुद्ध सबसे निन्दनीय अपराध—एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र द्वारा अत्याचारपूर्ण शोषण—सफलतापूर्वक कर रहे हैं। कहाँ है ईश्वर ? वह क्या कर रहा है ? क्या वह मनुष्य जाति के इन कष्टो का मजा ले रहा है ? वह नीरो है, चंगेज़ है, तो उसका नाश हो !

क्या तुम मुझसे पूछते हो कि मैं इस विश्व की उत्पत्ति तथा मानव की उत्पत्ति की व्याख्या कैसे करता हूँ ? ठीक है, मैं तुम्हें बतलाता हूँ। चार्ल्स डारविन ने इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने की कोशिश की है। उसको पढ़ो। सोहन स्वामी की 'सहज ज्ञान' पढ़ो। तुम्हें इस सवाल का कुछ सीमा तक उत्तर मिल जायेगा। यह [विश्व-सृष्टि] एक प्राकृतिक घटना है। विभिन्न पदार्थों के, निहारिका के आकार में, आकस्मिक मिश्रण से पृथ्वी बनी। कब ? इतिहास देखो। इसी प्रकार की घटना से जन्तु पैदा हुए और एक लम्बे दौर के बाद मानव। डारविन की 'जीव की उत्पत्ति' पढ़ो। और तदुपरान्त सारा विकास मनुष्य द्वारा प्रकृति से लगातार संघर्ष और उस पर विजय पाने की चेष्टा से हुआ। यह इस घटना की संभवतः सबसे संक्षिप्त व्याख्या है।

तुम्हारा दूसरा तर्क यह हो सकता है कि क्यों एक बच्चा अन्धा या लँगड़ा पैदा होता है, यदि यह उसके पूर्वजन्म में किये कार्यों का फल नहीं है तो ? जीवविज्ञानवेत्ताओं ने इस समस्या का वैज्ञानिक समाधान निकाला है। उनके अनुसार इसका सारा दायित्व माता-पिता के कन्धों पर है जो अपने उन कार्यों के प्रति लापरवाह अथवा अनभिज्ञ रहते हैं जो बच्चे के जन्म के पूर्व ही उसे विकलांग बना देते हैं।

स्वभावतः तुम एक और प्रश्न पूछ सकते हो—यद्यपि यह निरा बचकाना है। वह सवाल यह कि यदि ईश्वर कहीं नहीं है तो लोग उसमें विश्वास क्यों करने लगे ? मेरा उत्तर संक्षिप्त तथा स्पष्ट होगा—जिस प्रकार लोग भूत-प्रेतों तथा दुष्ट-आत्माओं में विश्वास करने लगे, उसी प्रकार ईश्वर को मानने लगे। अन्तर केवल इतना है कि ईश्वर में विश्वास विश्वव्यापी है और उसका दर्शन अत्यन्त विकसित। कुछ उग्र परिवर्तनकारियों (रैडिकल्स) के विपरीत मैं इसकी उत्पत्ति का श्रेय उन शोषकों की प्रतिभा को नहीं देता जो परमात्मा के अस्तित्व का उपदेश देकर लोगों को अपने प्रभुत्व में रखना चाहते थे तथा उनसे अपनी विशिष्ट स्थिति का अधिकार एवं अनुमोदन चाहते थे। यद्यपि मूल बिन्दु पर मेरा उनसे विरोध नहीं है कि सभी धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, और ऐसी अन्य संस्थाएँ अन्त में निर्दयी और शोषक संस्थाओं, व्यक्तियों तथा वर्गों की समर्थक हो जाती हैं। राजा के विरुद्ध विद्रोह हर धर्म में सदैव ही पाप रहा है।

ईश्वर की उत्पत्ति के बारे में मेरा अपना विचार यह है कि मनुष्य ने अपनी सीमाओं, दुर्बलताओं व कमियों को समझने के बाद, परीक्षा की घड़ियों का बहादुरी से सामना करने, स्वयं को उत्साहित करने, सभी खतरों को मर्दानगी के साथ झेलने तथा सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य में उसके विस्फोट को बाँधने के लिए—ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की रचना की। अपने व्यक्तिगत नियमों तथा अभिभावकीय उदारता से पूर्ण ईश्वर की बढ़ा-चढ़ाकर कल्पना एवं चित्रण किया गया। जब उसकी उग्रता तथा व्यक्तिगत नियमों की चर्चा होती है तो उसका उपयोग एक डरानेवाले के रूप में किया जाता है, ताकि मनुष्य समाज के लिए एक खतरा न बन जाये। जब उसके अभिभावकीय गुणों की व्याख्या होती है तो उसका उपयोग एक पिता, माता, भाई, बहन, दोस्त तथा सहायक की तरह किया जाता है। इस प्रकार जब मनुष्य अपने सभी दोस्तों के विश्वासघात तथा उनके द्वारा त्याग देने से अत्यन्त दुखी हो तो उसे इस विचार से सान्त्वना मिल सकती है कि एक सदा सच्चा दोस्त उसकी सहायता करने को है, उसे सहारा देगा, जो कि सर्वशक्तिमान है और कुछ भी कर सकता है। वास्तव में आदिम काल में यह समाज के लिए उपयोगी था। विपदा में पड़े मनुष्य के लिए ईश्वर की कल्पना सहायक होती है।

समाज को इस ईश्वरीय विश्वास के विरुद्ध उसी तरह लड़ना होगा जैसे कि मूर्ति-पूजा तथा धर्म-सम्बन्धी क्षुद्र विचारों के विरुद्ध लड़ना पड़ा था। इसी प्रकार मनुष्य जब अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास करने लगे तथा यथार्थवादी बन जाये तो उसे ईश्वरीय श्रद्धा को एक ओर फेंक देना चाहिए और उन सभी कष्टों, परेशानियों का पौरुष के साथ सामना करना चाहिए जिनमें परिस्थितियाँ उसे पटक सकती हैं। मेरी स्थिति आज यही है। यह मेरा अहंकार नहीं है। मेरे दोस्तो! यह मेरे सोचने का ही तरीका है जिसने मुझे नास्तिक बनाया है। मैं नहीं जानता कि ईश्वर में विश्वास और रोज-बरोज की प्रार्थना—जिसे मैं मनुष्य का सबसे अधिक स्वार्थी और गिरा हुआ काम मानता हूँ—मेरे लिए सहायक सिद्ध होगी या मेरी स्थिति को और चौपट कर देगी। मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढ़ा है, जिन्होंने सभी विपदाओं का बहादुरी से सामना किया, अतः मैं भी एक मर्द की तरह फाँसी के फंदे की अन्तिम घड़ी तक सिर ऊँचा किये खड़ा रहना चाहता हूँ।

देखना है कि मैं इस पर कितना खरा उतर पाता हूँ। मेरे एक दोस्त ने मुझे प्रार्थना करने को कहा। जब मैंने उसे अपने नास्तिक होने की बात बतलायी तो उसने कहा, "देख लेना, अपने अन्तिम दिनों में तुम ईश्वर को मानने लगोगे।" मैंने कहा, "नहीं प्रिय महोदय, ऐसा नहीं होगा। ऐसा करना मेरे लिए अपमानजनक तथा पराजय की बात होगी। स्वार्थ के लिए मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।" पाठको और दोस्तो, क्या यह अहंकार है? अगर है, तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद : **शिव वर्मा**

और अन्त में

शहीद भगतसिंह के अन्तिम समय के विचारों सम्बन्धी विवाद क्यों ?

पिछले कुछ समय से, शहीद भगतसिंह के अन्तिम समय के विचारों को लेकर पुनः कुछ भ्रम पैदा किये गये हैं। इसके लिए कुछ कथित इतिहास-लेखक भी दोषी हैं, जिन्होंने बिना विश्लेषण किये भ्रमों को हवा दी।

सबसे बड़ा भ्रम ज्ञानी नाहरसिंह, सम्पादक 'जेल के पत्र', पृष्ठ 629 की टिप्पणी ने पैदा किया है। इसमें लिखा है कि "भगतसिंह को फाँसी लगने के बाद समाचार-पत्रों में यह सिलसिला शुरू हुआ कि उनका विश्वास 'सिखी' पर था। कसूर के ग्रन्थी भाई नत्थासिंह का वक्तव्य भी अखबारों में छपा था कि अन्तिम संस्कार के समय भगतसिंह के छह-छह इंच लम्बे केश थे। सरकार ने भी घोषणा की थी कि इनका अन्तिम संस्कार सिख धर्म के अनुसार कराया गया था। बम्बई के 'बिल्ट्ज' अखबार के 26 मार्च, 1949 के अंक में भगतसिंह का केशोंवाला चित्र प्रकाशित हुआ था। ...यह चित्र भगतसिंह जी के फाँसी लगने से कुछ मिनट पहले दिल्ली के एक सज्जन शामलाल ने खींचा था। इससे पता चलता है कि भाई साहिब भाई रणधीरसिंह के वचनों के प्रभाव से भगतसिंह सिख-विश्वास में आकर केशधारी बने।"

यह नोट सभी भ्रमों का मूल है। ज्ञानी नाहरसिंह स्वयं गदर पार्टी में रहे, लेकिन फिर भ्रम कैसे हुआ ? उपरोक्त नोट से यह निष्कर्ष निकलते हैं—1. कसूर के ग्रन्थी का बयान, 2. अंग्रेज सरकार की घोषणा, 3. चारपाई पर बैठे भगतसिंह का चित्र।

पहले दोनों निष्कर्षों का आधार उन्हें सच मानकर चलना है; और यही सच्चाई से दूर होना है। यहाँ यह याद रहे कि जब अंग्रेज सरकार जीवित भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव को न बाँट सकी और न ही उनके सम्बन्ध में भ्रम पैदा कर सकी तो आखिरी चाल चली गयी। 23 मार्च, 1931 को शाम सात बजे उन्हें फाँसी देकर उनकी लाशों के

टुकड़े-टुकड़े किये गये। फिर फिरोज़पुर, सतलुज के किनारे उन्हें जलाने की कोशिश की गयी और अधजली हालत में सतलुज नदी में बहाया गया। यह सब बहुत जल्दबाजी में किया गया। टुकड़े करने और अधजली हालत का प्रमाण 24 मार्च, 1931 को शहीद भगतसिंह की बहिन बीबी अमरकौर व अन्य देशवासियों द्वारा खून-सने पत्थर, रेत और तेज धार हथियार से कटी अधजली हड्डियाँ हैं, जिन्हें आजकल खटकड़कलाँ गाँव में प्रदर्शित किया गया है। 23 मार्च की रात में ही अंग्रेज सरकार ने एक विज्ञापन लगाया था, जिसमें भगतसिंह का अन्तिम संस्कार सिख-परम्परा से, राजगुरु का सनातनी परम्परा से और सुखदेव का आर्यसमाजी परम्परा से करने की बात कही गयी थी। इसकी गवाही कसूर के ग्रन्थी व पण्डितों से दिलायी गयी थी। यह चाल अंग्रेजों ने भारत की साम्प्रदायिकता की कमज़ोरी से लाभ उठाने के लिए खेली। यदि ग्रन्थी महोदय संस्कार पर गये थे तो उन्हें केवल केश ही नजर आये, टुकड़े व लहू नजर नहीं आया। बीबी अमरकौर के अनुसार सुबह वहाँ पहुँचने पर उन्होंने संतरे के छिलके व गंडेरियाँ भी देखीं। यह भी पता चला कि लाशों के साथ सिर्फ अंग्रेज सैनिक ही आये थे। भगतसिंह व उनके साथियों से अंग्रेज इस कदर आतंकित थे तथा उन पर इस तरह क्रुद्ध थे कि काला वारंट लिखनेवाली कलम फिल्लौर किले में लाकर रखी गयी, ताकि ट्रेनिंग पा रहे अंग्रेज अधिकारियों को सांडर्स का चित्र व कलम दिखाकर उनका हौसला बढ़ा सकें। खैर, अंग्रेजों की फूटपरस्त साम्प्रदायिकता की चाल के जाल में ज्ञानी नाहरसिंह फँस ही गये, क्योंकि उन्हें भाई रणधीरसिंह के चामत्कारिक व्यक्तित्व में अथाह विश्वास था।

हाँ, यह बात सही है कि भाई साहिब और शहीद भगतसिंह के बीच 1930 में एक भेंट हुई, जिसकी चर्चा पुस्तक में की गई है।

तीसरे भ्रम का आधार चारपाई पर बैठे भगतसिंह व सी. आई. डी. इन्सपेक्टर का चित्र है। यह बहुत अफसोसनाक बात है कि ज्ञानीजी, जो स्वयं जेल में रहे हैं, भ्रम और अन्धविश्वास में यह भी भूल गये कि काल-कोठरी में न तो चारपाई मिलती है और न ही फटा कमीज़ पहनने को दिया जाता है। क्योंकि चित्र की प्रति श्री शामलाल से मिली, जिन्हें यह प्रति शहीद भगतसिंह के भाई कुलबीरसिंह से मिली, उससे यह समझ लेना कि इसे फाँसी से कुछ क्षण पहले खींचा गया, यह भ्रम वस्तुगत चिन्तन से रहित किसी भी व्यक्ति को हो सकता है। इस फोटो की असलियत श्री मिलखासिंह निझर बता सकते हैं, जिनके पास चित्र की असल प्रति है और जिन्होंने इसे पुलिस-रिकार्ड से चोरी किया था और 1940 में सरदार कुलबीरसिंह को सौंप दिया था। यह चित्र मई, 1927 में शहीद की पहली गिरफ्तारी के समय सप्ताह-भर की पूछताछ के दौरान पुलिस ने चोरी से खींचा था। चित्र में भगतसिंह के साथ गोपालसिंह नौशहरा पन्नुआँ डी. एस. पी. (सी. आई. डी.) बैठे हैं। ('आरसी', अप्रैल 1980)।

अतः पाठकगण, आप स्वयं सोचें कि यह तीनों आधार निराधार हैं। यह भ्रम पैदा कर भगतसिंह को पुनः फाँसी अवश्य चढ़ाया गया है, क्योंकि अंग्रेज चाहते थे कि यदि यह

प्रमाणित कर दिया जाय कि दृढ़ विचारोंवाले क्रान्तिकारी भगतसिंह अन्तिम क्षणों में लड़खड़ा गये थे तो उनका आतंक का हथियार चल सकेगा। अब तक हमने यह देखा है कि झूठे प्रचार द्वारा धर्मों, सम्प्रदायों को आधार बनाकर शासक जो कुछ करते हैं, उससे कितना बड़ा अन्याय हो सकता है।

अब सवाल यह उठता है कि भाई साहिब भाई रणधीरसिंह और शहीद भगतसिंह में जो मुलाकात हुई उसका प्रभाव क्या पड़ा? इस भेंटवार्ता से सम्बन्धित दो लिखित वर्णन हैं और कुछ लेखक के मुँहजबानी वक्तव्य। लिखित है भाई साहिब का गद्य जो 1937-38 में, यानी भेंटवार्ता के 7-8 वर्ष बाद, ज्ञानी नाहरसिंह से जानकारी साझी करते हुए लिखा गया। दूसरा लेख शहीद भगतसिंह का 'मैं नास्तिक क्यों हूँ', जो 27 सितम्बर, 1931 के साप्ताहिक 'दी प्यूपल' में छपा भी। और लेख के इस अंश कि ''हमें अच्छी तरह पता है, हमारे मुकदमे का क्या फैसला होगा। सप्ताह-भर में फैसला सुना दिया जायेगा'', के अनुसार यह लेख अक्तूबर, 1930 से कुछ दिन पहले लिखा गया। 7 अक्तूबर, 1930 को फाँसी की सज़ा सुनाये जाने के बाद जब भगतसिंह व उनके साथियों को काल-कोटरियों में भेजा गया तो यह लेख व कुछ अन्य कागज, 404 पृष्ठ की एक नोटबुक व कुछ व्यक्तिगत इस्तेमाल की चीज़ें घरवालों को मिल गयी थीं।

दोनों तर्कों को एक साथ पढ़ने पर शहीद भगतसिंह के विचारों की वैज्ञानिकता, व्यवस्था व दृढ़ता स्पष्ट हो जाती है।

शहीद भगतसिंह के लेख के आरम्भ में ही भाई साहिब के उठाये सवालों का वर्णन है—''अपने कुछ मित्रों (बाबा तेजासिंह चूहड़काना व बाबा हरनामसिंह कालासंघिया—गदरी) के साथ बातचीत से पता चला कि मेरे कुछ मित्रों (संकेत भाई रणधीरसिंह जी की ओर है)—यदि मित्रता का मेरा दावा गलत न हो—ने मेरे साथ थोड़े-से सम्पर्क के बाद यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि मेरा ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करना मेरी उद्दण्डता है और यह भी कि मेरा अहंकार ही मेरे अविश्वास का कारण है।'' और फिर पूरा लेख इस सवाल का वैज्ञानिक ढंग से दिया उत्तर है।

भाई साहिब स्वयं अपनी वार्ता में यह जिक्र करते हैं कि भगतसिंह ने कहा था, ''मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं स्पष्ट शब्दों में अपना दिल खोल दूँ कि मैं नास्तिक हूँ, ईश्वर में विश्वास नहीं करता।'' ('जेल के पत्र', पृष्ठ 627)।

इस पर भाई साहिब के इन शब्दों कि 'तुम अरदास किया करो' का जिक्र भगतसिंह के लेख में निम्नानुसार है—

''समाज ने जिस प्रकार बुत-पूजा और धर्म के तंगनजर विचारों के विरुद्ध संघर्ष किया था उसी प्रकार समाज को ईश्वरीय विश्वास के विरुद्ध संघर्ष करना होगा। इसी प्रकार मनुष्य जब अपने पैरों पर खड़ा होने की कोशिश करने लगे और यथार्थवादी बनने लगे तो उसे ईश्वर पर श्रद्धा को परे फेंकना होगा और हर कठिनाई, हर आफत और हर तरह की परिस्थिति का दृढ़ता से सामना करना होगा। इस समय मेरी हालत बिल्कुल

यही है। मेरे मित्रो, यह मेरा अहंकार नहीं है। मैं अपने सोचने के तरीके से ही नास्तिक बना हूँ। मेरे विचार में, ईश्वर में विश्वास करने और हर रोज अरदास करने से (जिसे मैं मनुष्य का सर्वाधिक स्वार्थी व घटिया काम मानता हूँ) मेरा कुछ नहीं बननेवाला। बल्कि इससे मेरी स्थिति कुछ बदतर हो जायेगी। मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढ़ा है जिन्होंने सभी कठिनाइयों का खूब डटकर सामना किया। इसीलिए मैं आखिर तक, फाँसी के तख्ते पर भी मर्दों की तरह सिर ऊँचा रख सुदृढ़ रहने की कोशिश कर रहा हूँ।

''देखें, मैं इस पर कितना खरा उतरता हूँ। मेरे किसी मित्र (संकेत फिर भाई रणधीरसिंह की ओर है) ने मुझे अरदास करने के लिए कहा था। जब मैंने उनसे बताया कि मैं तो नास्तिक हूँ तो कहने लगे, 'देखना, अपने अन्तिम दिनों में तुम ईश्वर को मानने लगोगे।' मैंने उत्तर में कहा, 'नहीं प्रिय महोदय! ऐसा हर्गिज नहीं होगा। ऐसा करना मेरे लिए घटिया व पराजय की बात होगी। स्वार्थ के लिए मैं अरदास नहीं करूँगा।' पाठकगण व मित्रो, क्या यह अहं है? यदि है, तो मुझे यह अहं अच्छा लगता है।'' ('मैं नास्तिक क्यों हूँ' से)।

अब कुछ तथ्य कि यह मुलाकात हुई कैसे? बाबा सोहनसिंह भकना, बाबा हरनामसिंह कालासंघिया, बीबी अमरकौर, कुलबीरसिंह व कुलतारसिंह (अन्तिम तीन भगतसिंह के बहिन-भाई) ने इन पंक्तियों के लेखक को बताया कि बाबा तेजासिंह चूहड़काना व बाबा हरनामसिंह कालासंघिया सभी कैदियों को दूध बाँटने के जिम्मेदार थे। वे भगतसिंह के बी क्लास वार्ड की ओर भी जाते थे। भाई रणधीरसिंह के लाहौर जेल में पहुँचने की खबर उन्होंने दी। भगतसिंह के मन में 1914-15 के गदरी बाबों के लिए बहुत सम्मान था, अतः उन्होंने मुलाकात के लिए संदेश दिया। भाई साहिब ने शहीद के केश कटे होने की वजह से मिलने से इन्कार कर दिया। इसके उत्तर में भगतसिंह ने चिट पर लिख भेजा कि ''मैं सिखी की बंद-बंद (अंग-अंग) कटवाने की परम्परा में विश्वास रखता हूँ। अभी तो मैंने एक अंग कटवाया है, वह भी पेट के लिए नहीं वरन् देश के लिए; शीघ्र ही इसके लिए गर्दन भी कटवाऊँगा। लेकिन सिखी की तंगनज़री और तंगदिली का गिला जरूर रहेगा।'' यह पढ़कर भाई साहब ने मुलाकात के लिए हाँ की थी।

आइए, अब देखें कि भगतसिंह अपना अन्तिम समय कैसे बिता रहे थे। पूरे परिवार से उनकी अन्तिम मुलाकात 3 मार्च, 1931 को हुई। भगतसिंह का चेहरा खिला हुआ था। उसी शाम दोनों भाइयों को पत्र लिखे और कहा–

''मेरे अज़ीज, मेरे परम प्रिय भाई, जिन्दगी बहुत सख्त है और दुनिया बड़ी बेमुरव्वत है। सभी लोग बड़े बेरहम हैं। सिर्फ मुहब्बत और हिम्मत से गुजारा हो सकेगा।'' और–